भारतीय सस्कृति मे जितना महत्त्वपूर्ण स्थान वेदो, पुराणो रामायण, गीता, महाभारत आदि ग्रथो का है, उतना ही महत्त्व उपनिषदो का भी है। उपनिषदो मे हिदू धर्म के हर विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

उपनिषद कुल सख्या मे 108 है। हमने उन 108 उपनिषदो को अपने पाठको के लिए अत्यंत सरल और सुगम भाषा मे इस पुस्तक मे प्रस्तुत किया है।

—प्रकाशक

१०८ उपनिषद्

डॉ० भवान सिंह राणा

डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2
नई दिल्ली –110 020

प्रकाशक :
डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
एक्स-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेस-2
नई दिल्ली– 110 020
फोन. 011-6822803, 6822804, 6841033
फैक्स: 011-6925020

वितरक :
पंजाबी पुस्तक भंडार
257, दरिबा कलां, दिल्ली– 110 006

संस्करण : 1999

स्पेशल ईफेक्टस :
ग्राफ़िक्स बी, मेरठ– 250 005

प्रिंटर्स : आदर्श प्रिन्टर्स, नवीन शाहदरा

---

108 UPNISHAD Dr BHAWAN SINGH RANA

अनुक्रमणिका

1. ईशोपनिषद

शांति पाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह कार्य जगत भी पूर्ण है । उसी पूर्ण से इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अतः उस पूर्ण से इस पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है ।

(1) इस परिवर्तनशील जगत मे यह जो कुछ भी चराचर दिखाई पडनेवाली वस्तुए है, ईश्वर उन सब में व्याप्त है । अतः उसका त्यागभाव से उपभोग करना चाहिए । जो वस्तु आपके पास नही है, उसका लोभ मत करो । भला यह धन किसका है ?

(2) इस विश्व मे जन्म लेकर श्रेष्ठ पुरुषार्थ करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए । इस प्रकार (पूर्व श्लोक तथा इस श्लोक मे वर्णित) सभी उपदेशो के अनुसार आचरण करो । इससे अतिरिक्त उत्थान के लिए कोई मार्ग नही है । जो मनुष्य सासारिक भोगो को भोगते हुए भी कर्म मार्ग का परित्याग नही करता, उसे कर्म से उत्पन्न दोष नही छूते ।

(3) जो लोग केवल शारीरिक बल प्रदर्शन अर्थात परपीडन के लिए प्रसिद्ध है, जिनमे आदर्श मानवीय मार्ग को समझने की शक्ति नही है, वे वस्तुत असत मार्ग मे लगे है, वे अज्ञान के अधकार से व्याप्त है । वे वस्तुत आत्मघाती हैं । प्राण त्याग करने के बाद भी वे आसुरी लोको को प्राप्त होते है ।

(4) वह ब्रह्म एक है, चचलता रहित है, सबसे प्राचीन है, स्फूर्ति प्रदान करनेवाला है और मन से भी तेज चलनेवाला है । आख, जिह्वा, कान आदि इद्रियां उस तक नही पहुंच सकती । वह स्थिर रहने पर भी अन्य दौडते हुए लोगो से आगे बढ़ जाता है । मां के गर्भ मे रहनेवाला जीव उसी ब्रह्म के आधार से अपने पूर्व में किए हुए कर्म फल को प्राप्त करता है ।

(5) वह पूर्ण ब्रह्म समस्त सृष्टि को गति देते हुए भी स्वयं चंचलता रहित है । वह दूर भी है (अज्ञानियों के लिए) और पास भी है (ज्ञानियों के लिए) । वह इस चराचर जगत में प्रत्येक के अदर भी है और बाहर भी है । क्योंकि ज्ञानी लोग उसे अपने अंदर देखते है और अज्ञानी नही देखते ।

(6) जो मनुष्य सभी प्राणियो की आत्मा के अंदर आत्मा है, ऐसा अनुभव करता है और समस्त प्राणियों में उसी एक आत्मा का विश्वासपूर्वक अनुभव करता है, उसे किसी प्राणी के प्रति घृणा नही रहती ।

(7) इस प्रकार की अवस्था में पहुंचने पर ज्ञानी मनुष्य को आत्मा सर्वभूतमय है—ऐसा अनुभव होता है । इस प्रकार का अनुभव होने पर उसे मोह बाध नही सकते ।

(8) वह आत्मा सर्वत्र व्यापक है, शरीर रहित है, स्नायु एव व्रण हीन है, शुद्ध, निष्पाप और तेजोमय है। इद्रिय ज्ञान से परे है, मनीषी है, विजयी और स्वयंजन्मा है। उसने अनादिकाल से सभी इंद्रियो (जीभ, आंख, नाक, कान और त्वचा) तथा उनके विषयो (रस, देखना, सूंघना, सुनना और स्पर्श) की व्यवस्था की है।

(9) जो—आत्मा नही है—इस प्रकार की अविद्या के अनुयायी हैं, वे अज्ञान के प्रगाढ अधकार में प्रवेश करते है। साथ ही जो केवल आत्मज्ञान में ही डूब जाते हैं, वे अविद्या[1] के उपासक से भी अधिक गहन अंधकार में जाते है, क्योंकि सांसारिक सुखसाधन भी जीवन-यात्रा के निर्वाह हेतु आवश्यक है।

(10) विद्या अर्थात् आत्मज्ञान से आत्मा की उन्नति होती है। अविद्या से सासारिकता प्राप्त होती है। अत इन दोनो का फल भिन्न-भिन्न है। ऐसा हमने धीरोदात्त मनीषियों से सुना है, जिन्होने हमें इस विषय का उपदेश दिया था।

(11) विद्या से आत्मबल बढता है और अविद्या से सासारिक उन्नति प्राप्त होती है। जो इन दोनो को समान रूप से जानता है, वह अविद्या से अकाल मृत्यु को दूर करता है तथा विद्या से अमरत्व प्राप्त करता है।

(12) जो असंभूति (पृथकतावाद) की बात करते है, वे गहन अंधकार में प्रवेश करते है, और जो केवल संघवाद के ही उपासक है (व्यक्तिगत स्वतत्रता के विरोधी हैं), वे असभूतिवादियों से भी प्रगाढ अधकार को प्राप्त करते है[2] अत संघवाद और वैयक्तिक स्वतत्रता—(संभूति एव असभूति) दोनों की अतिवादिता उचित नही है।

(13) सघवाद और असभूतिवाद, इन दोनों के फल भिन्न-भिन्न हैं—ऐसा कहा गया है। ऐसा हमने धीरे पुरुषों से सुना है, जिन्होने हमें यह उपदेश दिया था।

(14) जो संघवाद और असघवाद दोनों के समुचित प्रयोग को जानता है, वह असघवाद से अपनी अकाल मृत्यु (रोग आदि) को दूर करके सघवाद से अमरता प्राप्त करता है।

(15) स्वर्णमय पान से सत्य का मुख वंद पडा है। भौतिकता सत्य को ढक देती है। हे परमात्मा । सत्यधर्म का पालन करने के लिए तू उसे खोल दे। सत्यधर्म का पालन करने के लिए स्वर्ण अर्थात् धन-सपत्ति का लोभत्याग करना अनिवार्य है। तात्पर्य यह है कि धन सपत्ति का लालच व्यक्ति को सत्य से विमुख कर देता है। अत हे परमात्मा तू हमें लोभ मे बचा ले।

---

1 उपनिषदों में अविद्या शब्द का अर्थ वैद्यक, रसायन तत्र आदि भौतिक विज्ञानों से है तथा विद्या शब्द का अर्थ अध्यात्म विद्या है।

2 सघवाद की चरमवादिता व्यक्तिगत स्वतत्रता को नष्ट कर देती है। इस चरमवादिता के कारण ही हिटलर जैसे अधिनायकों का अभ्युदय हुआ था जो विश्वयुद्ध का कारण बना। काट, हीगल आदि पाश्चात्य विचारक इसी विचारधारा के प्रबल समर्थक थे।

(16) हे पोषक द्रष्टा नियामक, तेज स्वरूप, प्रजापालक ईश्वर । अपनी किरणो को एक ओर समेट लो (इनकी चकाचौंध मुझे देखने नही देती), और जो तेरा परम कल्याणकारक तेजस्वी स्वरूप है, उसे मै देखता हू । यह जो इस शरीर मे प्राणो को धारण करनेवाला भक्त है, वह मैं ही हू ।

(17) हमारा यह आत्मा अपार्थिव और अमृतरूपी शक्तिवाला है, और यह शरीर अत मे भस्म होनेवाला है । अत हे कर्म करने वाले पुरुष अपने द्वारा किए जानेवाले कर्मो का ध्यान कर । सर्वरक्षक आत्मा का ध्यान कर हे कर्म करनेवाले पुरुष किए हुए कर्मों का ध्यान कर ।

(18) हे अग्निस्वरूप ईश्वर हमें उत्तम मार्ग से अभ्युदय की ओर ले चल । हे देव । तू हमारे सभी कर्मो को जानता है । हमारे पास से कुटिल पापो को दूर कर । हम तुझे विशेष रूप से नमन करते हुए तेरी स्तुति करते है ।

□

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायतु ममागानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मोनिषद माह ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरण मेऽस्तुतदात्मानि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु ।

ॐ शांति शाति शाति ।

मेरे अग पुष्ट हो तथा मेरे वाक, प्राण चक्षु, श्रोत्र, बल और सपूर्ण इंद्रिया पुष्ट हो । यह सब उपनिषद विद्या ब्रह्म है । मै ब्रह्म का निराकरण न करू, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे । इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो । उपनिषदों मे जो धर्म है, वह आत्मज्ञान मे लगे हुए मुझ मे निहित हो, वह मुझ मे निहित हो । त्रिविध तापो की शाति हो ।

प्रथम खंड

(1) यह मन किसकी इच्छा से प्रेरित होकर अपने विषयो में गिरता है ? यह प्राण किसके द्वारा प्रयुक्त होने पर चलता है ? यह वाणी किसके द्वारा इच्छा किए जाने पर बोलती है ? कौन देव नेत्रो तथा कानो को प्रेरित करता है ?

(2) जो कानो का भी कान, मन का भी मन और वाणी की भी वाणी है, वही प्राणा का भी प्राण और चक्षु का भी चक्षु है । इस तथ्य को जानकर धीर पुरुष मृत्यु के पश्चात मुक्त होकर अमर हो जाते है ।

(3) उस ब्रह्म तक आंखें, वाणी और मन पहुच ही नही सकते । अत: उस ब्रह्म के विषय में शिष्य को किस प्रकार उपदेश देना चाहिए, यह हम नही जानते, यह हमारी बुद्धि में नही आता । वह विदित एव अविदित से अन्य ही है, ऐसा हमने अपने पूर्व पुरुषो से सुना है, जिन्होने हमें उसका उपदेश दिया था ।

(4) जो वाणी से प्रकाशित नही हो सकता, कितु जिससे वाणी प्रकाशित होती है उसी को ब्रह्म समझना चाहिए । यह जिस विशेष नाम युक्त ईश्वर (जैसे इद्र, अग्नि, वायु, विष्णु, रुद्र आदि) की लोग उपासना करते है, वह ब्रह्म नही है ।

(5) जिसके विषय में मन मनन नही कर सकता, परतु जिसकी सत्ता से मन मनन करने की सामर्थ्य रखता है, ऐसा कहा जाता है, उसी को ब्रह्म समझो । जिस विशेष नामयुक्त ईश्वर की लोग उपासना करते है, वह ब्रह्म नही है ।

(6) जिसे कोई नेत्र नही देखता, कितु जिसकी सहायता से नेत्र अपने विषय को देखते है, उसी को ब्रह्म समझो, जिस विशेष नाम युक्त ईश्वर की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नही ।

/

(7) जिसे कोई कान नही सुनता,परंतु जिसकी सहायता से कान सुनने का कार्य करते है,उसी को ब्रह्म समझो। जिस विशेष नामधारी ईश्वर की लोग उपासना करते है,वह ब्रह्म नही है।

(8) जो नासिका मे स्थित प्राण वायु का विषय नही बन सकता, अपितु जिससे प्राण अपने विषय (सूघना) कार्य करते है,उसी को ब्रह्म समझो। जिस विशेष नामधारी ईश्वर की लोग उपासना करते है,वह ब्रह्म नही है।

द्वितीय खंड

(1) 'यदि तुम यह समझते हो कि तुम ईश्वर को अच्छी तरह जानते हो,तो निश्चय ही तुम ब्रह्म का अल्प रूप ही जानते हो। इसका जो रूप तुम जानते हो और जो रूप देवताओ मे जाना जाता है,वह भी अल्प ही है। अत तुम्हारे लिए ब्रह्म विचार करने योग्य है।' इस पर एकांत मे विचार करने के अनंतर शिष्य ने कहा कि 'वह अब ईश्वर को जान गया है।'

(2) मै न तो यह मानता हूं कि मै ब्रह्म को अच्छी तरह जान गया हू और न यही समझता हूं कि उसे नही जानता हूं। इसलिए मै उसे जानता भी हू और नही भी जानता हू। हम शिष्यो मे ब्रह्म के विषय में जिसकी यह धारणा है कि मै उसे जानता भी हूं और नही भी जानता हू,वही ब्रह्म को जानता है।

(3) ब्रह्म जिसे ज्ञात नही है,उसी को ज्ञात है। जिसको ज्ञात है,वह उसे नही जानता,क्योकि वह जाननेवालों का बिना जाना हुआ और न जाननेवालों का जाना हुआ है। अन्य वस्तुओ के समान दिखाई न पड़ने के कारण वह इद्रियों का विषय नही बन सकता।

(4) सभी इंद्रियां ब्रह्म की सत्ता से ही कार्य करती है,अत प्रत्येक इद्रिय के विषय से उसका ही बोध होता है,इसी से वह जाना जाता है,यही उसका ज्ञान है। इसी ब्रह्मज्ञान से अमरता प्राप्त होती है। अमरता स्वय से ही प्राप्त होती है,विद्या तो केवल अज्ञान के अंधकार को दूर करने मे सहायक सिद्ध होती है।

(5) यदि इसी जन्म मे ब्रह्म को जान लिया जाए,तब तो ठीक है। यदि ऐसा न हो पाए तो यह प्राणी के लिए सर्वाधिक हानि की बात है। ज्ञानी लोग प्रत्येक प्राणी में ब्रह्म की सत्ता को देखकर, मृत्यु के पश्चात अमर हो जाते है।

तृतीय खंड

(1) यह प्रसिद्ध है कि पूर्व कथित लक्षणोवाले परब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की थी। कहते है कि उस ब्रह्म की विजय से देवताओं ने विजय प्राप्त की थी।

(2) तब देवताओं ने सोचा यह विजय उनके निजी प्रयत्नों से मिली है। कहते है— वह ब्रह्म देवताओं के मनोभावों को जान गया और उनके सामने यक्ष के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। यक्ष के रूप में आए हुए उस ब्रह्म को देवता लोग नही पहचान सके कि यह कौन है?

(3) वे देवता अग्नि से बोले, 'हे अग्नि यह ज्ञात करो कि यह यक्ष कौन है ?' अग्नि ने स्वीकृति दे दी।

(4) अग्नि यक्ष रूपी ब्रह्म के पास गया, यक्ष ने अग्नि से पूछा, 'तुम कौन हो।' इस पर अग्नि ने उत्तर दिया, 'मै अग्नि हू। मेरा नाम जातवेदास भी है।'

(5) इस पर यक्ष ने पूछा, 'हे जातवेदास, तेरे नाम के अनुरूप तुझमें कौन-सी शक्ति है ?'

अग्नि ने उत्तर दिया, 'पृथ्वी में दिखाई देनेवाले इस समस्त चराचर को मैं जला सकता हू। आकाश में स्थित वस्तुए भी मुझसे जल सकती है।'

(6) यक्ष ने अग्नि को एक तिनका दिया और कहा, 'इसे जलाकर दिखाओ।'

अग्नि उस तिनके में प्रविष्ट हुआ, किंतु अपनी संपूर्ण शक्ति से भी उसे न जला सका और लौटकर देवताओ के पास चला आया तथा उनसे बोला, 'यह यक्ष कौन है ? मै इस तथ्य का पता न लगा पाया।'

(7) तदनतर देवताओं ने वायुदेव को आज्ञा दी, 'हे वायु, अब तुम मालूम करो कि यह यक्ष कौन है ?'

वायु 'बहुत अच्छा' कहते हुए चल पड़ा।

(8) वायु यक्ष के पास गया। इस पर यक्ष ने प्रश्न किया, 'तुम कौन हो ?' यह पूछे जाने पर वायु ने कहा, 'मै वायु हू, मुझे मातरिश्वा भी कहते हैं।'

(9) तब यक्ष ने पूछा, 'हे वायु । तुझमें क्या शक्ति है ?' वायु ने कहा, 'पृथ्वी में जो कुछ भी है, उसे मै उडा सकता हूं।'

(10) तब यक्ष ने एक तिनका देते हुए वायु से कहा, 'इसे उड़ाओ,' इस पर वायु तिनके के पास गया, किंतु अपनी पूरी शक्ति से भी उसे उड़ा नही सका। तब वह भी देवताओं के पास लौट आया और बोला, मै इस बात को नही जान पाया कि यह यक्ष कौन है ?'

(11) तब देवताओं ने इद्र से कहा, 'हे मेघवन । अब तुम इस बात का पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है ?' 'बहुत अच्छा' कहकर इद्र यक्ष के पास गया, किंतु यक्ष इंद्र के सामने से अतर्धान हो गया।

(12) जिस आकाश में वह यक्ष अतर्धान हुआ था, इंद्र भी वही गया। वही उसने उस शोभामयी स्त्री हिमालय की पुत्री उमा (ब्रह्म विद्या) से पूछा, यह यक्ष कौन है ?'

चतुर्थ खंड

(1) उस विद्या देवी ने स्पष्ट शब्दों में कहा, 'यह ब्रह्म है, इसकी विजय मे ही तुम महिमामय हुए हो।' ऐसा कहते हैं कि तभी इद्र ने जाना कि वह ब्रह्म था।

(2) अग्नि, वायु और इद्र इन तीनों देवताओं ने ही सबसे पहले यह जाना कि 'यह ब्रह्म है।' तथा इन तीनों ने ही सर्वप्रथम उसका स्पर्श किया था। वे अन्य देवताओ मे श्रेष्ठ माने गए।

(3) इद्र ने सर्वप्रथम समीपस्थ ब्रह्म का स्पर्श किया और जाना कि यह ब्रह्म है, अत वह सभी देवताओ मे प्रमुख माना गया ।

(4) यह उस ब्रह्म का उपासना-सबंधी उपदेश है,जो पलक झपकने अथवा विद्युत चमकने के समान उत्पन्न हुआ । यह उस ब्रह्म का अधिदेवता रूप है ।

(5) अब अध्यात्म उपासना का उपदेश इस प्रकार है—मन को गतिमान कहा जाता है । यह ब्रह्म इस प्रकार मन से ही बार-बार ब्रह्म का स्मरण होता है तथा निरतर सकल्प किया जाता है ।

(6) वह ब्रह्म ही वन अर्थात् भजन करने योग्य है, अतः उसकी वन नाम से उपासना करनी चाहिए । जो उसे इस तरह जानता है,उसी को सभी प्राणी अच्छी तरह चाहने लगते है ।

(7) शिष्य द्वारा गुरु से उपनिषद् शिक्षा के विषय मे अनुरोध किया गया । अत इस शिक्षा को देने के बाद गुरु ने कहा—'मै तुम्हे ब्रह्मविषयक उपनिषद् का ज्ञान दे चुका हू । अब तुम्हे ब्रह्म जाति संबंधी उपनिषद् का ज्ञान दूगा ।

(8) उस ब्राह्मी उपनिषद् की तप, दम, कर्म, वेद और संपूर्ण वेदांग (व्याकरण, ज्योतिष, छद आदि) यह सब प्रतिष्ठा है तथा सत्य उसका घर है ।

(9) जो निश्चयपूर्वक इस उपनिषद् को इस प्रकार जानता है, वह अपने पापों को नष्ट करके अनत और महान स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

□

3. कठोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहे।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहे।

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम द्वेष न करें।

प्रथम अध्याय

प्रथम वल्ली

(1) वाजश्रवा के पुत्र उद्यालक ने यज्ञ में प्रबल फल की कामना से अपना सब कुछ दान कर दिया। उनका नचिकेता नाम का एक पुत्र था।

(2) ब्राह्मण दान में मिली बूढी गायों को ले जा रहे थे, तब बालक नचिकेता के मन में इन गायों के प्रति दयाभावना उत्पन्न हुई। अत. उसने विचार किया।

(3) ये गाए अपने जीवन का पानी पी चुकी है, घास चर चुकी है, इनका दूध दुहा जा चुका है तथा अब ये अत्यत दुर्बल एव प्रजनन शक्ति रहित हो चुकी हैं। इस प्रकार की गाए ब्राह्मणों को दान में देने से उन्हें क्या सुख मिलेगा ?

(4) पिता के इस व्यवहार को देखकर बालक नचिकेता ने पूछा, 'पिताजी । जब आप इन बूढी गायों को ब्राह्मणों को दान में दे रहे हैं, तो मुझे किसे देंगे ? बालक के बार-बार यही प्रश्न पूछे जाने पर खिन्न होकर पिता ने कहा, 'मै तुझे मृत्यु को दूंगा।'

(5) अपने प्रिय पुत्र के प्रति ऐसे वचन कहे जाने पर बालक ने मन में सोचा कि पिता के शब्द मिथ्या सिद्ध न हों। अत उसने कहा—

(6) आप अपने पूर्वजों और अन्य साधु-महात्माओं के जीवन का अवलोकन कीजिए तथा उन्ही के अनुसार अपने वचन को मिथ्या सिद्ध नही होने दीजिए, क्योंकि मनुष्य फसलों के समान ही जीर्ण होकर मृत्यु को प्राप्त होता है तथा पुन. जन्म लेता है। अत· अपने वचन का पालन कीजिए।

(7) अपने वचन को पूर्ण करने के लिए पिता ने पुत्र को यम के पास भेज दिया। यम के सभासदों ने उससे कहा, 'अपने तेज से घरों को जलाता हुआ जिस तरह साक्षात अग्नि के समान यह ब्राह्मण आपके यहा आया है, अत. आप पांव धोने हेतु जल देकर अर्थात् समुचित साक्षात्कार करके उसे शात कीजिए।

(8) जिसके घर में ब्राह्मण भूखा रहता है, उसकी सभी इच्छाए, प्रतीक्षाएं, सत्सग मे प्राप्त फल, सत्य वाणी बोलने का फल, यज्ञ आदि करने मे प्राप्त फल, पुत्र, पशु आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

(9) तब यम ने कहा, 'हे ब्राह्मण अतिथि। आपने मेरे यहां अनशन करते हुए तीन रात्रिया व्यतीत की है। मैं आपको नमस्कार करता हू। आप कुपित न हो। मेरा कोई अमगल न हो। अत आप मुझसे कोई तीन वर मांग लीजिए।'

(10) नचिकेता ने कहा, 'हे मृत्यु। यदि आप मुझे वर देना चाहते है, तो प्रथम वर यह दीजिए कि मेरे पिता का मेरे प्रति क्रोध शात हो जाए और वह मुझसे प्रसन्न हो जाएं। यहा से घर लौटने पर वह मुझे पहचान लें। तीन वरो में यही प्रथम वर मुझे दीजिए।

(11) यम ने कहा, 'हे नचिकेता मुझे मृत्यु के पास से लौटे हुए तुमको सामने देखकर तुम्हारे पिता पहले की तरह ही प्रसन्न हो जाएगे।'

(12) नचिकेता ने पुन. कहा, 'स्वर्गलोक मे न तो हे मृत्यु तुम्हारा भय है और न वृद्धावस्था का। वहा भूख और प्यास का बधन भी नही है। अत· वहां मनुष्य सदा प्रसन्न रहता है।'

(13) हे मृत्यु स्वर्गलोक को प्राप्त करने की साधनभूत उस अग्नि के ज्ञान को मुझे दीजिए, जिससे देवपद की प्राप्ति होती है। यह अग्नि विज्ञान को वर ही मेरा द्वितीय वर है।

(14) यम ने कहा, 'नचिकेता। उस स्वर्गप्रद अग्नि का मै तुम्हे उपदेश देता हू। तुम उसे एकाग्र मन होकर जान लो। अनत लोक में प्रतिष्ठा देनेवाली, विद्वानो द्वारा गुप्त रखी हुई और मेरे द्वारा कही गई इस अग्नि को जानो।'

(15) मृत्यु ने जगत की उत्पत्ति के प्रथम कारण उस अग्नि का उसके सभी नियमों और प्रयोगो की विधि सहित नचिकेता को उपदेश दिया। नचिकेता ने उस समस्त उपदेश को फिर यम के समक्ष दोहराया तब यम संतुष्ट हुआ।

(16) इस पर संतुष्ट होते हुए यम ने कहा, 'मै तुम्हे यह आशीर्वाद देता हूं कि जिस अग्नि विद्या का मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, वह तुम्हारे ही नाम से (नाचिकेत अग्नि) जानी जाएगी और विविध वर्णोवाली तथा शब्द करनेवाली इस माला को भी ग्रहण करो।

(17) इस नाचिकेत अग्नि का तीन बार स्तवन करनेवाला माता-पिता और गुरु इन तीनों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला जन्म और मृत्यु के बधन से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्म से उत्पन्न इस प्रशसनीय ज्ञान का साक्षात्कार करनेवाला मनुष्य परम शक्ति को प्राप्त करता है।

(18) जो तीन नाचिकेत अग्नि की उपासना करता है और इसे ठीक-ठीक जानकर यज्ञ करता है, वह मृत्यु के बंधन और शोक से मुक्त होकर स्वर्गलोक में आ नद प्राप्त करता है।

(19) यम बोले, 'हे नचिकेता स्वर्ग प्राप्त करने की साधन इस अग्नि का वरदान मैंने तुम्हारे कहने पर दिया तथा यह अग्नि तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी, यह वर मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें दिया है। अब तुम अपना तीसरा वर मागो।'

(20) नचिकेता ने पूछा, 'कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के उपरात आत्मा इस शरीर को छोडकर दूसरी देह धारण कर लेती है तथा कुछ अन्य लोग इसे नही मानते; अत यहा इस विषय में मुझे सदेह

जैसा हो रहा है। कृपया आप मुझे अपना शिष्य मानते हुए, तृतीय वर के रूप में इसी विद्या का ज्ञान दीजिए।'

(21) यम ने कहा, 'प्राचीन काल मे देवताओं को भी इस विषय में सशय हुआ था; आज तुम भी इसी संशय के विषय मे समाधान चाहते हो। आत्मा-संबंधी यह प्रश्न अत्यत कठिन है, तुम इसे नही समझ पाओगे; अत· इसके स्थान पर कोई दूसरा वर माग लो।'

(22) नचिकेता ने कहा, 'देवताओ ने भी इस प्रश्न पर शका की थी, और हे मृत्यु आप भी इसे कठिन कहते है, इस प्रश्न के विषय मे आपके समान उपदेशक दूसरा नही हो सकता इसके समान कोई दूसरा वर नही हो सकता।'

(23) यम ने कहा, 'हे नचिकेता तुम सौ-सौ वर्ष की आयुवाले पुत्रो और पौत्रो का वर माग लो, जितने चाहो हाथी, घोड़े और सोना माग लो, जितनी चाहो भूमि माग लो और अपने लिए इच्छित आयु माग लो, कितु यह वर न मागो।

(24) इससे भी अधिक जो कुछ भी तुम चाहो और जितनी अवधि के लिए चाहो, धन अथवा भूमि, तुम मागो मै सहर्ष देने को तैयार हू।

(25) जो-जो भी वस्तुए संसार मे दुर्लभ है, वह सब कुछ तुम मांग लो। मनुष्यो द्वारा सर्वथा अप्राप्य वाहनो और रथों से युक्त सुदर अप्सराए माग लो और उनसे अपनी सेवा कराओ, कितु मरण विषयक इस प्रश्न को न पूछो।

(26) इन सब काम भोगो की निदा करते हुए नचिकेता ने कहा, 'ये सब काम-भोग आज है, तो कल नही रहेगे। हे मृत्यु ! मनुष्य की सभी इद्रिया धीरे-धीरे तेजहीन हो जाती है। कितनी ही लबी आयु क्यों न मिले वह भी नष्ट होनेवाली है। यह सब रथ आदि वाहन और नृत्यगीत आदि आप अपने ही पास रहने दें।

(27) मनुष्य को चाहे कितना ही धन क्यों न मिले, वह की संतुष्ट नही हो सकता। हे मृत्यु मैने तुम्हारे दर्शन कर लिए है और एक-न-एक दिन सभी को आपके पास आना होता है। अत असीमित धन भी व्यर्थ ही है। तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही मानव जीवित रह सकता है। इस सबको देखते हुए मैं आपसे यही वर चाहता हू।

(28) अजर और अमर लोक को प्राप्त करने का उपाय जान जाने पर कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो वृद्धावस्था और मृत्युवाली इस पृथ्वी की गति को जानते हुए अल्पकालिक जीवन के राग-रग और आमोद-प्रमोद में मन लगाएगा।

(29) अत हे मृत्यु इन कामादि प्रलोभनों को छोडकर आप मेरे द्वारा चाहे गए इस मृत्यु विषयक वर को ही मुझे दीजिए। इस गूढ वरदान के अतिरिक्त आपसे कुछ नही मागता।

द्वितीय वल्ली

अनेक प्रकार से नचिकेता की परीक्षा लेने के बाद यम ने कहना प्रारभ किया कि हे नचिकेता ! 'श्रेय (कल्याणकारक) और प्रेय (प्रिय लगनेवाला) दो भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। यह दोनो अनेक प्रकार

से पुरुष को बधन मे डालते है। इनमे श्रेय का वरण करनेवाला व्यक्ति कल्याण को प्राप्त करता है तथा प्रेय का वरण करनेवाले के कल्याण की हानि होती है। बुद्धिमान मनुष्य श्रेय एव प्रेय पर भली-भाति विचार करके श्रेय (श्रेयस्कर) मार्ग को अपनाता है, कितु मूर्ख व्यक्ति अपने योगक्षेम के वहन हेतु प्रेय का मार्ग अपनाता है।

अत हे नचिकेता तुमने प्रिय काम भोगो की तुलना मे इस श्रेयस्कर (मृत्यु विद्या) मार्ग का वरण किया है। बडे-बडे लोग (जो वस्तुत मूर्ख हैं) इस वित्तमयी माया मे डूब जाते है, कितु तुम इससे उबर गए हो।

यह श्रेय और प्रेय विषयक विद्याए एक दूसरे से दूर और विपरीत गुणोवाली है। हे ब्रह्म विद्या के इच्छुक नचिकेता मै समझता हू कि कामनाएं तुम्हे डिगा नही पाई है।

अपने को धीर और पडित माननेवाले अविद्या के अधकार मे डूबे हुए एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का मार्गदर्शन कराया जाना ठीक उसी प्रकार है, जैसे एक अधे द्वारा दूसरे अधे का मार्गदर्शन। इस प्रकार वह दोनो ही वास्तविक मार्ग से भटक जाते है।

धन के लोभ मे डूबे हुए मूर्ख व्यक्ति को प्रमाद के कारण स्वर्गलोक-प्राप्ति का मार्ग अच्छा नही लगता है। इस लोक के अतिरिक्त दूसरा लोक नही है, ऐसा मानने वाले मूर्ख लोग बार-बार मुझ मृत्यु को प्राप्त करते है।

जिस आत्मा के विषय मे बहुत से लोगो ने सुना भी नही है और सुनकर भी बहुत से लोग इसके विषय में कुछ नही जानते है। इसके विषय मे बोलनेवाला भी विरला ही होता है और इसे प्राप्त करनेवाला भी विरला ही होता है। किसी कुशल आचार्य द्वारा उपदेश प्राप्त किया हुआ इसको जानने वाला तो कोई एक ही होता है।

इस जिस आत्मा के विषय मे तुमने मुझसे प्रश्न किया है, वह अनेक बार चितन किए जाने पर भी सरलता से समझा जानेवाला नही है। साथ ही कोई सामान्य व्यक्ति भी इसके विषय मे कुछ नही बता सकता। इसे तर्क से नही समझा जा सकता। किसी आत्मसाक्षात्कार किए हुए आचार्य की कृपा से ही इसका अनुभव किया जा सकता है।

यह सुबुद्धि तर्क द्वारा प्राप्त नही होती। इसका उपदेश कोई आत्मा को जानने वाला आचार्य ही दे सकता है। अत हे प्रिय सत्यवादी धैर्यशाली नचिकेता ! तुमने यह ज्ञान मुझसे कृपावश प्राप्त किया है, क्योकि तुम जैसा प्रश्नकर्ता विश्व मे कोई दूसरा नही होगा। (1-9)

नाशवान वस्तुओ से अनश्वर (आत्मतत्त्व) की प्राप्ति नही हो सकती। मै जानता हू कि यह धन-सपत्तिया अनित्य हैं। इसलिए मैने भी धन-धान्यादि अनित्य सुखो का परित्याग करके इस चिरस्थायी नचिकेता अग्नि को प्राप्त किया है। (10)

तुमने समस्त कामनाओं को, विश्वभर की प्रतिष्ठा को अनंत यज्ञों के फल को, आत्मज्ञान के अत को, परम अभय पद को, प्रशसनीय अणिमा आदि सिद्धियों को तथा महान गति को प्राप्त कर लिया है। हे नचिकेता तुम अपने धैर्य से सभी सासारिक भोगो से ऊपर उठ गए हो।

उस गूढ़ दुर्लभ दर्शन हृदय गुहा में प्रविष्ट ब्रह्म को अध्यात्मिक योग से देखने पर साधक हर्ष एव शोक से मुक्त हो जाता है। तुम्हारे जैसे लोग इस ज्ञान को सुनकर ग्रहण करके फिर उस पर विचार करके जानकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेते है। अतः तुम्हारे लिए परम धाम का द्वार खुल गया है। (11-13)

नचिकेता ने कहा, 'हे यम जिस परमात्मा को तुम धर्म-अधर्म, भूत-भविष्य तथा कर्म-कारण से परे कहते हो, उसके विषय में बताओ।' (14)

यम ने बताया, 'जिसकी महिमा को वेद बताते है, जिसका समस्त तप अभ्यास करते है और जिसकी प्राप्ति हेतु ब्रह्मचारी व्रत पालन करते है, उस 'ओम' के विषय मे मै सक्षेप मे तुम्हे बताता हूं। यही अक्षर ब्रह्म, परम ब्रह्म है। इसे जानकर सभी कुछ मिल जाता है। इसी का आाबन श्रेष्ठ एव परम पुनीत है। इस आलबन को जानकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। न तो यह आत्मा उत्पन्न होता है और न मरता है। न इससे कोई पैदा होता है। नश्वर शरीर मे रहने पर भी यह शाश्वत अजन्मा, पुराना और नित्य है। मारने या मरनेवाला यदि स्वय को हता या मरा समझते है, तो यह उनका अज्ञान है, न तो कोई किसी को मारता है और न कोई मरता है। प्राणी की गुणो मे स्थित आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा महान से भी महान है। परमात्मा की कृपा से ही कोई शोकरहित साधक उसे देख सकता है। यह बैठा हुआ भी दूर तथा सोया हुआ भी चारो ओर चला जाता है। मेरे सिवा इसे अन्य कौन समझा सकता है ? यह शरीरों मे अशरीर एव अस्थिरो मे स्थिर है। इस महान विभु को जाननेवाला कभी दुःखी नही होता। यह प्रवचनो, बुद्धि या बहुत सुने जाने पर भी प्राप्त नही होता। केवल उसी की कृपा से यह प्राप्त होता है। दुश्चरित्र, असयमी और स्थिर व्यक्ति उसे अपनी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा भी नही देख सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि प्राणी जिसके भोजन बन जाते हैं और मृत्यु जिसका उपसेचन बनती है, ऐमे परमात्मा को कौन जान सकता है ? (15-25)

तृतीय वल्ली

परम गुहा में स्थित लोक में अपने कर्मफलों को भोगते हुए छाया और प्रकाश के समान ब्रह्मवेत्ता तथा तीन बार नाचिकेत अग्नि का सेवन करके पंचयज्ञों को करनेवाले भी ऐसा कहते है कि प्रकृति-रूपी वृक्ष पर स्थित जीवन और ब्रह्म-रूपी दो पक्षी है। इनमे एक फलो का स्वाद लेता है और दूसरा न खाते हुए भी साक्षी जैसा है। हे नाचिकेत अग्नि यज्ञ कर्ताओं को ससार सागर मे पार करने के साथ ही इसमे रहनेवाले मनुष्यों को भी अक्षर ब्रह्म को जानने की शक्ति दो। शरीर को रथ जीवात्मा को सवार, बुद्धि को सारथी तथा मन को लगाम समझो। इद्रिया को घोडे, शब्दादि विषयों को मार्ग तथा जीवात्मा को विद्वानों ने भोक्ता कहा है। विवेकहीन बुद्धि तथा असयमी मनवाले की इद्रिया अप्रशिक्षित सारथी के समान स्वछंद हो जाती है। विवेकशील बुद्धि तथा सयमित मन व्यक्ति की इद्रिया कुशल सारथी के घोडों के समान वश में रहती हैं। अविवेकी बुद्धि तथा असयमित मनवाले पापी को परम पद प्राप्ति नही होती; वह सदा जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है। इसके विपरीत विवेक बुद्धि, सयमी मन तथा पवित्र आत्मा जन्म-मृत्यु चक्र से छूटकर परमपद प्राप्त करता है। विवेकी सारथी के समान बुद्धिवाला मन-रूपी लगाम वश मे रखकर ससार

से मुक्त होकर परमपद पाता है । इंद्रियों से विषय,विषयो से मन तथा मन से बुद्धि शक्तिशाली है और आत्मा सबसे शक्तिशाली और श्रेष्ठ है । (9-10)

आत्मा से अव्यक्त, अव्यक्त से परम पुरुष श्रेष्ठ है और इससे कुछ भी श्रेष्ठ नही है । यही पराकाष्ठा और परम गति है । उन सभी प्राणियो में गूढ आत्मा प्रकाशित नही होता । केवल सूक्ष्मदर्शी ही अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उसे देखते है । ज्ञानी व्यक्ति वाणी को मन से,मन को ज्ञान से, ज्ञान को बुद्धि से,बुद्धि को आत्मा से तथा आत्मा को प्रशात आत्मा के साथ जोड़े । उठो,जागो और श्रेष्ठ जनों की संगति से परमेश्वर को जानो । विद्वानो ने इसकी प्राप्ति के मार्ग को छुरे की धार के समान तेज कहा है । शब्द,स्पर्श आदि पाच विषयो के ज्ञान से दूर परमात्मा आदि—अतहीन,नित्य अव्यय तथा आत्मा से भी श्रेष्ठ है । इसके ज्ञान से मनुष्य मृत्यु के मुख से बच जाता है । (11-15)

यमराज द्वारा नचिकेता से कहे गए इस पुराण आख्यान को कहकर या सुनकर विवेकी पुरुष ब्रह्मलोक मे स्थान पाता है । जो पवित्रता के साथ ब्राह्मणों की सभा मे अथवा श्राद्ध के समय इस रहस्य विद्या को कहता है,वह अनत शक्तिवाला बनता है । (16-17)

द्वितीय अध्याय

प्रथम वल्ली

स्वयभू परमात्मा ने इद्रियो के द्वार बाहर की ओर बनाए है,अत· ये बाह्य वस्तुओ को ही ग्रहण कर सकती है,अतरात्मा को नही देख सकती । विरले ही धैर्यशाली अमृत्व की इच्छा से चक्षुद्वार को अदर को प्रेरित करके परमात्मा के दर्शन किए । बुद्धिहीन बाह्य विषयो मे फंसकर मृत्युपाश मे बधते है,बुद्धिमान सत्य स्वरूप को जानकर इनमे नही पडते । जिस परमेश्वर की प्रेरणा से मानव शब्द आदि विषयों और सुखो का अनुभव करता है,उसी की प्रेरणा से वह यह भी जानता है कि यहा क्या शेष रहता है । स्वप्न के तथा जागृत अवस्था के दृश्यो को मनुष्य जिसके द्वारा देखता है, उस परमात्मा को जानकर धीर लोग शोक मुक्त हो जाते है । इस जीवनदाता भूत-भविष्य के शासक परमात्मा को अपने समीप देखकर उसकी निंदा न करनेवाला उसी के समान हो जाता है । यह आत्मा तप तथा जल से भी पहले जन्मा है और हृदय गुहा में प्रवेश करके पचभूतों के साथ स्थित परमात्मा को देखता है । यही वह जीव है । प्राणों सहित जो देवी अदिति पैदा होकर हृदय गुहा मे प्रविष्ट होती है, यह वही है । नारी के गर्भ मे रक्षित शिशु के समान अरणियो मे विद्यमान अग्नि सदृश सर्वत्र व्याप्त परमात्मा प्रतिदिन स्तुति करने योग्य है । (1-8)

सूर्य का उदय और अस्त होना सब ईश्वर के कारण है,ऐसे ब्रह्म का कोई उल्लघन नही कर सकता । लोक-परलोक मे एक ही ब्रह्म है । इसे अलग-अलग माननेवाले अज्ञानी बार-बार मृत्यु को प्राप्त होते है । अंतर्मुखी होने से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है उसमे भिन्नता देखना उचित नही है । हृदयाकाश में स्थित अगुष्ठ मात्र जीव के मध्य ब्रह्म निवास करता है । उस ब्रह्म के साक्षात्कार से साधक प्रसन्न रहता है । अंगुष्ठमात्र इस निर्विकार ज्योति के समान ही ब्रह्म सबका स्वामी और सदा एक समान रहनेवाला है । गुण और गुणी एक-दूसरे से पृथक् नही हो सकते । अत गुणी ईश्वर गुण सृष्टि मे सर्वत्र व्याप्त है । जैसे दुर्ग मे बरसा हुआ जल पर्वत के विभिन्न स्थानों मे जाता है,वैसे ही

विभिन्न धर्म के जीव उसे विभिन्न रूप में देखते हुए भी उसी के पीछे दौडते है । जैसे वर्षा का जल जलाशयों में पहुचकर उन्ही जैसा हो जाता है, वैसे ही परमात्मा का ज्ञाता भी उसी के समान हो जाता है । (9-15)

द्वितीय वल्ली

चैतन्य रूप परमात्मा का नगर (शरीर) ग्यारह द्वारो (छिद्रो)वाला है । इस परमात्मा का ज्ञाता नि शोक होकर जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटकर उसी के समान हो जाता है । परम धाम मे स्थित परमात्मा योनियों में तथा अंतरिक्ष में रहनेवाला भी है । वही आहुति देने वाला है । अतिथि है, वही मनुष्यो, देवताओ आदि मे है । जल, पृथ्वी, श्रेष्ठकर्म आदि मे प्रकट होनेवाला भी वही महान सत्य है । प्राणों को ऊपर उठानेवाले तथा स्वय देह मे नीचे निवास करनेवाले उस परमेश्वर की सभी देवता उपासना करते है । देह मे विद्यमान तथा एक से दूसरे देह मे जानेवाले आत्मा के देह को छोडने पर क्या शेष रहता है ? यही वह परमेश्वर है । देहधारी केवल प्राण एव अपान से ही जीवित नही रहता । यह देह भी गूढ सनातन ब्रह्म पर आश्रित है । हे नचिकेता तुम्हे अप्रकट सनातन विद्या बताता हूं कि देह के मरने पर आत्मा कैसे रहता है ? अपने-अपने कर्मो के अनुसार जीवात्मा योनि धारण करते हैं । कोई वृक्ष, लता आदि स्थावर भी बन जाते है । परमेश्वर का कोई भी अतिक्रमण नही कर सकता । वह विभिन्न भोगों को निर्माता है, सोने पर भी जागता है और उसी शुद्धस्वरूप अविनाशी ब्रह्म मे समस्त लोक स्थित है । (1-8)

एक ही होते हुए भी अतरात्मा रूप परमेश्वर विभिन्न देहो मे प्रविष्ट होकर अनेक प्रकार का बना है । सपूर्ण विश्व मे स्थित वह अग्निरूप बाहर भी है और अदर भी । वायु रूप मे भी वह इसी प्रकार है । सारे लोकों का नेत्र सूर्य जैसे प्राणियों के नेत्र दोषो से प्रभावित नही होता, वैसे ही परमात्मा भी प्राणियो के दु:खो आदि मे लिप्त नही होता । वह सबमें स्थित होते हुए भी उनसे बाहर है । सबके देहों में रहकर उन पर नियंत्रण रखनेवाला एक ही परमेश्वर अनेक रूप धारण करता है । अपने अदर स्थित उस ब्रह्म का निरतर दर्शन करने से विद्वानों को शाश्वन सुख की प्राप्ति होती है, अन्यो को नही । वह नित्यों का नित्य तथा चेतनों का चेतन है । अकेला होते हुए भी वह अनेको कार्य करता है । आत्मा में स्थित इस ब्रह्म को जो धैर्यशाली देखते है, वे शाश्वत शाति को प्राप्त करते है, अन्य नही । वह अनिर्वचनीय ब्रह्म ऐसा ही है । उसे कैसे समझाया जाए ? वह प्रकट होता है या उसकी अनुभूति होती है । वहा सूर्य, चद्रमा, तारे या विद्युत भी प्रकाशित नही होते । अग्नि का तो वश ही क्या ? ये सब उसी के प्रकाश से प्रकाशमान है । संपूर्ण विश्व उसी से प्रकाशवाला है । (9-15)

तृतीय वल्ली

नीचे जड और ऊपर शाखाओंवाला यह सनातन पीपल का वृक्ष है, वही चैतन्य है, वही ब्रह्म है, उसी को अमृत कहते है । इसी ब्रह्म में समस्त लोक आश्रित है । इसका कोई उल्लघन नही कर सकता । उसी मे यह जगत है तथा उसी से प्राणी गतिमान हैं । भयकर वज्र के समान शक्तिशाली इस परमात्मा के ज्ञान से अमृत्व प्राप्त होता है । इसी के भय से अग्नि और सूर्य तपते है तथा इसी से वायु, इद्र एव मृत्यु क्रियाशील हैं । देहांत से पूर्व ही परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करना उचित है,

अन्यथा युगो तक योनियो मे जाना पड़ता है। दर्पण के समान निर्मल मन होने पर भी पितृलोक मे स्वप्न के समान ईश्वर दीखने लगता है, गंधर्व लोक मे जल के समान तथा ब्रह्म लोक मे तो धूप-छांव की तरह सब पृथक् दिखाई देने लगता है। पृथक्-पृथक् स्थिति और इद्रियो के विभिन्न भावों को जो उनके उदय और अस्त को जान लेता है कि ये नाशवान एव क्षणिक है, वह मनीषी दु:खी नही होता। इंद्रियो से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से जीवात्मा तथा इससे भी अव्यक्त उत्तम है। अव्यक्त से व्यापक परम पुरुष बड़ा है। इसका ज्ञाता जीवन मुक्त होकर अमृत्व पाता है। इसका यथार्थ रूप सामने नही आता, क्योंकि आखे इसे देख नही सकती। यह केवल चितन, पवित्र हृदय तथा बुद्धि द्वारा ही देखा जा सकता है। उसका ज्ञाता अमर हो जाता है। जब मन और पाचो ज्ञानेंद्रियां नियत्रित हो जाती है और बुद्धि स्थिर हो जाती है तो यह अवस्था परमगति कहलाती है। (9-10)

इद्रियो की स्थिरता को योग कहते है। तब प्रमाद नही रहता, किंतु यह उदय-अस्तशील है अत इसका निरंतर अभ्यास करना चाहिए। न तो यह मन से प्राप्त होता है और न ही वाणी या नेत्रो से, अत केवल 'ब्रह्म है', ऐसा कहने भर से इसकी प्राप्ति नही होती। निश्चयपूर्वक उसका अस्तित्व स्वीकार करके तत्त्व भाव से उसे प्राप्त करे, तभी उसका तत्त्व भाव प्रकट होता है। हृदय की सभी कामनाए नष्ट होने पर साधक अमर होकर यही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। जब इसी लोक मे हृदय की सभी ग्रथिया कट जाती है, तो यही अमृत्व को प्राप्त करता है। यही निश्चय नियम है। हृदय स्थित एक सौ एक नाडियो मे से एक मूर्छा की ओर जाती है और इससे साधक ऊर्ध्व लोक मे पहुचकर अमृत्व प्राप्त करता है। अन्य सौ नाड़ियां प्राणो के साथ निकलकर विभिन्न गतिया प्राप्त करती है। अगुष्ठ मात्र अंतरात्मा पुरुष सदा प्राणियो के हृदय मे स्थित रहता है। उसे मूज के ततु के समान अपने से पृथक् कर उसी को अमृतमय समझो। यम द्वारा कही गई इस विद्या को पाकर नचिकेता मृत्युबधन से मुक्त होकर ब्रह्मरूप बन गया। इस अध्यात्म विद्या का ज्ञाता भी वैसा ही हो जाता है। (11-18)

☐

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभ्य शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्रा
स्थिरेरगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि. स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति शांति शाति ।

हम कानो से कल्याणमय वचन सुने, नेत्रो से कल्याणमय चीजो को देखे और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे । इद्र हमारा कल्याण करे, पूषा हमारा कल्याण करें । अमंगल नाशक गरुड और वृहस्पति हमारा कल्याण करे । दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के दु ख शात हो ।

प्रथम प्रश्न

भारद्वाज पुत्र सुकेशा, शिवि पुत्र सत्यकाम, गर्ग गोत्रीय सौर्यायणी, कौशल गोत्रीय अश्वलायन, भार्गव और कात्यायन गोत्रीय कवधी परम ब्रह्मनिष्ठ ऋषि ब्रह्म की जिज्ञासा से परमात्मा का अनुसंधान करते हुए समिधाए लेकर पिप्पलाद ऋषि के पास आए । उन्हे पिप्पलाद ऋषि ने आज्ञा दी कि वे श्रद्धा सहित ब्रह्मचर्य का पालन करके एक वर्ष तक तप करें तभी वे अपनी जिज्ञासा प्रकट करें और तव यदि सभव हुआ तो उनके उत्तर दिए जाएगे । ऐसा ही करने के बाद सर्वप्रथम कबंधी ने उनके पास जाकर पूछा, 'भगवन किस कारण से यह प्रजा विभिन्न रूपों मे प्रकट होती है ?' इस पर महर्षि पिप्पलाद बोले, प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा मे प्रजापति ने तपस्या करके सबसे पहले एक जोडा उत्पन्न किया, एक रयि तथा दूसरा प्राण, जिससे यह जोडा अनेक प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करे । वस्तुत सूर्य ही प्राण है और चद्रमा ही रयि है । विश्व मे मूर्त एव अमूर्त जो कुछ भी है, वह सव रयि का ही स्वरूप है । इसलिए मूर्तमान को रयि ही मानना चाहिए । रात्रि की समाप्ति होने पर उदय होनेवाला सूर्य प्राणो को अपनी किरणो मे धारण करता हुआ पूर्व दिशा मे उदित होता है । वही सूर्य दक्षिण को, पश्चिम को, ऊपर-नीचे सभी दिशाओं को प्रकाशित करके सभी प्राणियो के प्राणों को अपनी किरणों मे धारण करता है । ऐसा यह उदय होनेवाला सूर्य वैश्वानर अग्नि, विश्वरूप तथा प्राण-अग्नि रूप है । इसी वात को ऋचाओं ने भी कहा है । (1-7)

विश्वरूप, सवके आधार, सवके द्वारा जाने गए सवके आधार, तपते हुए, एकमात्र ज्योति, जो हजारों किरणों से सैकडों प्रकार मे व्याप्त है, सृष्टि के समस्त प्राणियो के लिए प्राण स्वरूप है, उदय को प्राप्त होते हैं (8) । वर्ष ही प्रजापति है जो दो अयन (उत्तरायण एव दक्षिणायन) वाला है । अत इस लोक मे जो लोग इच्छित कामना की पूर्ति के लिए इसे कर्म मानकर उपासना करते है, वे चद्रमा

के ही लोक को प्राप्त करते है। और वे ही जब पुन· लौटकर आते है,तो संतान की इच्छा करनेवाले वे ऋषि दक्षिण मे जाते है। यही रयि अर्थात् पितृयान नामक मार्ग है ऐसे व्यक्ति ब्रह्मचर्य सहित तपस्या करके श्रद्धा सहित अध्यात्म विद्या प्राप्त करके परमेश्वर का अनुसधान करके उत्तरायण से सूर्यलोक मे पहुच जाते है। यही सूर्य प्राणो का निवास स्थान है,यही अविनाशी है,भय से रहित है तथा यही परम गति भी है। ऐसा करनेवाले साधक जन्म लेकर संसार मे नही आते है। उनका जन्म-मृत्यु बधन छूट जाता है। (1-10)

सबके जानने योग्य परम ब्रह्म पांच पावोवाला, बारह आकृतियोवाला, स्वर्ग से भी ऊचे स्थानवाला,जल को उत्पन्न करनेवाला है, जो सात चक्रों (पहियो) तथा छ· अरो (रथ के बीच की लकड़िया)वाले विलक्षण रथ पर आरूढ होता है। मास (महीना) प्रजापति का रूप है। शुक्ल एव कृष्ण पक्ष इसके दो प्राण है। दूसरा पक्ष—कृष्ण पक्ष रयि है। इसमे सासारिक भोगो से सबधित अनुष्ठान आदि कर्म सपन्न किए जाते है,किंतु ऋषि लोग निष्काम कर्म करनेवाले होते है। अत वे समस्त कर्म शुक्ल पक्ष मे ही करते है। (11-12)

दिन एव रात्रि प्रजापति रूप है। दिन प्राण तथा रात्रि रयि है। अत· दिन मे रति कर्म करनेवाले व्यक्ति अपने प्राणो को नष्ट करते है। इसके प्रतिकूल रात्रि में यह कर्म करनेवाले को उसका कर्म हानिकारक नही होता। वह ब्रह्मचारी ही माना जाता है। अन्न भी प्रजापति का स्वरूप है। इसी से वीर्य बनता है। वीर्य से ही समस्त प्राणियो की उत्पत्ति होती है। प्रजापत्य व्रत का आचरण करनेवाले लोग मिथुन को जन्म देते है। जो व्यक्ति तपस्वी होते है तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते है और सत्य का आचरण करते है,वे ब्रह्म लोक प्राप्त करने के अधिकारी होते है। जो व्यक्ति कुटिल आचरणवाले,मिथ्या का आश्रय लेनेवाले तथा सासारिक माया के वशीभूत होते है,उन्हे ब्रह्मलोक की प्राप्ति कदापि नही हो सकती। (13-15)

द्वितीय प्रश्न

इसके पश्चात् विदर्भ देश के भार्गव ऋषि ने पिप्पलाद ऋषि से पूछा,'भगवन् प्रजा को कितने देवता धारण करते है ? उनमे कितने प्रकाशित करनेवाले है ? तथा इन सबमे श्रेष्ठ कौन है ? (1)

महर्षि ने उत्तर दिया,'आकाश सबसे महान है। वायु,अग्नि,जल,पृथ्वी,वाणी,मन,चक्षु तथा कान,सभी देवता ही है। वे सब प्रकट होकर कहने लगे कि इस देह को उन्होंने ही धारण किया है, अत इसके आश्रय वे ही है। प्राण उन सबमें वरिष्ठ था। अत वह बोला,'गलतफहमी मे मत रहो। मै ही प्राण,अपान व्यान,उदान तथा समान अपने इन पांच रूपो से प्राणी के देह को आश्रय प्रदान करता हू और उसे धारण करता हू।' किंतु अन्य देवता उसकी बात नही माने। जैसे मधुमक्खिया छत्ता छोड देती है और राजा (वस्तुत· रानी) के बाहर निकलने पर सभी मधुमक्खिया छत्ता छोड देती है और राजा के ठहरने पर रुक जाती हैं,उसी प्रकार प्राण भी गर्व के साथ बाहर निकलने लगा। और उसके निकलते ही वाणी,मन,नेत्र आदि भी बाहर निकलने लगे। जब प्राण रुक गया,तो ये सभी रुक गए। इससे प्राण श्रेष्ठ सिद्ध हो गया। तब वाणी,मन आदि देवताओ ने उसकी स्तुति की। प्राण

को तपानेवाला अग्नि है। वही सूर्य है, वही मेघ है, वही वायु है, वही पृथ्वी तथा रयि है तथा सत-असत तथा अमृतमय भी यही प्राण है। (2-5)

रथ के पहियों—नाभि में लगे अरो के समान ऋचाओ मे, यजुष मे, साम मे, यज्ञ मे तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सभी में प्राणों का ही आधार बना हुआ है। अत हे प्राण तू ही प्रजापति है, तू ही गर्भ मे है, जो विचरण करता है और माता-पिता की आकृति मे तू ही उत्पन्न करनेवाला है अत हे प्राण। ये सभी देहधारी तुझे बलि अर्पित करते है। तू देह मे रहनेवाले पाचो प्राणो के साथ मे प्रतिष्ठित है। देवगणो के लिए वह्नि श्रेष्ठ है, पितर गणो के लिए स्वधा प्रथम वस्तु है, ऋषियो के श्रेष्ठ अथर्वा और अगिरस द्वारा इस सत्य को प्रमाणित किया गया है। हे प्राण तुम्ही इंद्र हो, और तुम ही सब तरह से रक्षा करनेवाले रुद्र हो, तुम्ही अपने तेज से अतरिक्ष में विचरण करते हो और तुम्ही समस्त तारा आदि ज्योतियो के स्वामी हो। हे प्राण! स्वरूप सूर्य जब तुम जल बरसाते हो तो तुम्हारी यही प्रजा यह सोचकर प्रसन्न हो जाती है कि पर्याप्त अन्न उपजेगा। (6-10)

हे प्राण! तुम एक अकेले व्रात्य होकर भी ऋषि हो। सारा विश्व तुम्हारी ही सपत्ति है। हम तुम्हारे लिए आद्य जीव को प्रदान करते है; तुम उसके उपभोग करनेवाले हो। तुम ही हमारे पिता हो और व्योम मे विचरण करनेवाले मातरिश्वा भी तुम्ही हो। तुम्हारा यह जो स्वरूप शरीरो मे, वाणी में, कानो मे तथा नेत्रों मे प्रतिष्ठित है और जो मन में प्रतिष्ठित है, उसे कल्याण से सयुक्त करो। हमारी इन देहो से निकलकर बाहर निकलने का प्रयत्न मत करो। इस विश्व मे और ऊपर स्वर्ग लोक मे जो कुछ भी विद्यमान है, वह सब प्राण के ही नियंत्रण में है। अत हे प्राण तू माता और पिता के समान हमारी रक्षा कर और हमें धन-सपत्ति तथा सद्‌बुद्धि से युक्त कर।'

तृतीय प्रश्न

इस प्रश्न के बाद ऋषि आश्वलायन ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा, 'भगवन इस प्राण की उत्पत्ति किससे हुई है और यह स्वय को किस विधि से देहों में प्रतिष्ठित रखता है? तथा अपने को विभाजित करते हुए भी यह कैसे इनमें स्थित रहता है? किस प्रकार यह बाह्य जगत को और किस प्रकार अध्यात्म जगत अर्थात् मन एव श्रोत्र, वाक, चक्षु आदि इद्रियों को धारण करता है? किस प्रकार यह देहों से निष्क्रमण करता है? (1)

अश्वलायन के इस प्रश्न से महर्षि पिप्पलाद अत्यत प्रसन्न हुए और बोले, 'तुमने अत्यत जटिल विषय से संबधित प्रश्न पूछा है। तुम वस्तुत· वेदों के ज्ञाता तथा ब्रह्मनिष्ठ ऋषि हो, अत मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूं। तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार है—जैसे पुरुष की छाया सदा उसका अनुगमन करती है, वैसे ही यह प्राण भी है, जो आत्मा अर्थात् परमात्मा से उत्पन्न होता है और उसी के प्रति यह आश्रित भी है और मन के सकल्प के अनुसार ही यह प्राणियों के इस शरीर मे प्रविष्ट होता है। जैसे सम्राट शासन-तंत्र के सम्यक् सचालन के लिए विभिन्न स्तरों पर अधिकारियो की नियुक्ति करता है, उसी प्रकार यह प्राण भी पांच प्रकार के वायु को (प्राण, अपान, व्यान, उदान एव समान) शरीर के विभिन्न भागों में स्थित रहता है। यह स्वयं मुंह तथा नाक से चक्षु एव श्रोत्रेंद्रिय मे विद्यमान रहता है। देह के मध्य भाग में यह समान वायु के रूप में स्थित रहता है। प्राण का समान

नामक यही अश अन्न को विभिन्न भागो तक पहुचाता है । उसी से यह सप्तार्चिष (ज्वाला) के रूप में प्रकट होता है । वायु तथा उपस्थ में प्राण अपान वायु की नियुक्ति करते है । (2-5)

यह आत्मा हृदय मे विद्यमान रहता है । हृदय में से ही एक सौ नाडियो का समूह निकलता है । इन सौ नाडियों में प्रत्येक की सौ-सौ शाखाए निकली है तथा इन दस हजार नाडियो मे से पुन बहत्तर हजार नाडिया प्रत्येक शाखा से निकलती है । इनमे व्यान वायु सचरण करता है । (6)

इन समस्त नाड़ियो के अतिरिक्त सुषुम्ना नाम की एक नाड़ी और होती है । इसकी गति उदान वायु की ओर होती है । इसी से मनुष्य पुण्य के प्रति अभिमुख होता है,इस पर यही उसे पुण्य लोक की प्राप्ति कराती है । मनुष्य यदि पाप करनेवाला होता है,तो यही उसे अधो योनिया प्राप्त कराती है । इस प्रकार यह पाप तथा पुण्य,दोनो कर्मो से मनुष्य को इस लोक में स्थित रखती है । (7)

आदित्य ही बाह्य प्राण है,जो हमारे चक्षु विषयक प्राणो पर कृपा करता हुआ उदय होता है । भूमि रूपी ईश्वर मनुष्य के अपान वायु को सुस्थित करता है । आकाश समान वायु का प्रतिरूप है । आकाश में स्थित वायु व्यान वायु का ही बाह्य रूप है । तेज ही उदान है । जिसका देह अथवा तेज शीतलता को प्राप्त हो जाता है उसकी समस्त इद्रियां मन सहित विलीन हो जाती है । तब उसे अन्य देह की प्राप्ति होती है । जैसा मानसिक संकल्प आत्मा का होगा,उसी सकल्प के अनुरूप वह प्राणो से युक्त होगा । तेज से युक्त होकर प्राण इस सकल्प के अनुसार ही आत्मा को विभिन्न योनियो की प्राप्ति कराता है जो विद्वान यहां वर्णित इस रहस्य को जान लेता है,उसकी वश-परपरा कभी नष्ट नही होती तथा वह अमृत्व को प्राप्त करता है । कहा गया है कि जो मनुष्य प्राणो की उत्पत्ति,स्थिति तथा स्थानो को जान लेता है और इसके पाचो भेदो के अध्यात्म को जान लेता है,उसे नि सदेह अमृत्व की प्राप्ति होती है । (8-12)

चतुर्थ प्रश्न

इसके अनंतर गर्ग गोत्रीय सौर्यायणी ने प्रश्न किया—मनुष्य देह में स्थित कौन-कौन देवता सोते है ? तथा कौन जागते रहते है ? कौन देवता स्वप्न देखते है ? तथा किसे सुख का अनुभव होता है ? और सभी देवगण किसमें प्रतिष्ठित होते है ?(1)

महर्षि पिप्पलाद ने उत्तर दिया,'गार्ग्य सौर्यायणी सुनो—जिस प्रकार अस्त होते हुए सूर्य की समस्त किरणें उसी तेजोमडल रूप सूर्य में एकीभूत होकर लीन हो जाती है तथा उसके उदय होने पर पुन प्रसारित हो जाती हैं,उसी प्रकार समस्त इंद्रियां मनरूपी परमेश्वर मे लीन हो जाती है । तब यह देहधारी पुरुष न तो देखता है,न सूंघता है,न स्वाद लेता है,न बोलता है और न ही स्पर्श करता है । इसी प्रकार आनंद का अनुभव,विचरण,मूत्र-पुरीषोत्सर्ग आदि क्रियाएं भी नही करता । इस प्रकार इद्रियों के विषयों का रुक जाना ही इनका सो जाना है । इस शरीर रूपी पुर (नगर) मे पाच अग्नियों का निवास स्थान है,ये पाचों प्राण रूप मे जागृत रहते हैं । इनमे अपान गार्हपत्य अग्नि है, व्यान अन्वाहार्य पवन नामक अग्नि है । गार्हपत्य अग्नि द्वारा ले जायी जानेवाली अग्नि ही प्राण है, यह अग्नि आह्वनीय है । शरीरधारी जो नि श्वास और उच्छवास लेते है,ये दो आहुतियो के सदृश समान नामक प्राणों का भेद विशेष है । उन्हे भली-भांति समान रूप में संतुलित रखने के कारण ही

इसे समान कहा जाता है, अत यही ऋत्विक है। मन यजमान स्वरूप है और अभीष्ट फल ही उदान है, जो इस मनरूपी यजमान को दिन-प्रतिदिन हृदय गुहा में स्थित ब्रह्म की ओर ले जाता है। यह आत्मारूपी देव स्वप्न में भी अपनी महिमा का अनुभव कराता है। देखे हुए को बार-बार पुन देखता है, सुने हुए और उसके अर्थ को वार-बार सुनता है। विभिन्न स्थानों और दिशाओ मे सुनी हुई और अनुभवजन्य बातों को फिर-फिर अनुभव करता है। देखे-अनदेखे, सुने-अनसुने, अनुभूत-अननुभूत तथा सत एव असत सभी विषयों को बार-बार सुनता है, अनुभव करता है तथा उन पर विचार करता है, अर्थात् उन्हे पहले न करने पर देख लेता है। (2-5)

तेज से अभिभूत तनवाला यह जीवात्मा स्वप्नो को नही देखता किंतु उस काल मे यह इस सुख का सपूर्ण अनुभव करता है।

हे सौम्य। जैसे अनेको पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय लेते हुए उसमें निवास करते है, वैसे ही यह सभी तत्त्व परमेश्वर रूपी वृक्ष का आश्रय लिए हुए है। पृथ्वी तत्त्व तथा उसकी मात्रा, जल और उसकी तन्मात्रा तेज और तेजोमात्रा, वायु और वायुमात्रा तथा आकाश और आकाशमात्रा, नेत्र और दर्शनीय वस्तुए, कान और सुनने योग्य विषय, नासिका और सूंघने योग्य सुगध, रसना (जीभ) और रस, त्वचा और स्पर्श योग पदार्थ, वाणी और बोलने योग्य शब्द, हाथ और लेने योग्य पदार्थ, उपस्थ और रति आदि विषय, पायु और पुरीष, पाव और जाने योग्य स्थान, मन और विचार करते योग्य विषय, बुद्धि और जानने योग्य, अहकार और उसका कार्य, चित्त और चितनीय बाते, तेज और उसका विषय, प्राण और धारण करने के योग्य पदार्थ, यह सब परमात्मा के अधीन है। (6-8)

यह देखनेवाला, सूघनेवाला, स्वाद आदि लेनेवाला, मननशील, ज्ञाता और कर्ता विशुद्ध ज्ञानवाला आत्मा पुरुष भी उस परम अविनाशी आत्मा में ही प्रतिष्ठित है। जो इस परम अक्षर (अविनाशी) छाया शून्य, विदेह, अलोहित शुभ्र अनश्वर परमात्मा को जानता है, वह भी सर्वज्ञ बनकर उसी के समान सर्वरूप बन जाता है। अत कहा गया है कि जो विशुद्ध ज्ञान स्वरूप देहवाले सभी प्राणियो मे स्थित उस परमात्मा को जान लेता है, वह सर्वज्ञ बन जाता है तथा उसी सर्वस्वरूप मे प्रविष्ट हो जाता है। उसी मे सभी इद्रिया, पाचो प्राण आदि भी प्रतिष्ठित है। (9-11)

पंचम प्रश्न

इस समाधान के बाद राजा शिवि के पुत्र सत्यकाम ने अपना प्रश्न किया— 'भगवन। प्राणात होने तक जो समुचित प्रकार से 'ओम' का अभ्यास करता है, वह इसके द्वारा किस लोक को प्राप्त होता है?' (1)

तब महर्षि पिप्पलाद बोले—'यह 'ओम' परब्रह्म भी है तथा अपरब्रह्म भी। इसे जाननेवाला मनुष्य इतने मात्र से ही ब्रह्म के एक रूप को प्राप्त कर लेता है यानि वह एक ही मात्रावाले इस 'ओंकार' का ध्यान करे, तो वह इसकी महिमा मे तुरंत ही जगत में प्रकट हो जाता है। ऋग्वेद की ऋचाए उस मनुष्य की देह को प्राप्त करती है, वह तपस्या से, ब्रह्मचर्य से तथा श्रद्धा मे सपन्न होकर महिमाशाली बन जाता है। दो मात्राओंवाले ओंकार का ध्यान करने से चद्रलोक प्राप्त होता है। यजुर्वेद के मंत्रों की सहायता मे वह इस लोक को प्राप्त करता है। वहा पर वह सुखों-ऐश्वर्यों का

उपभोग करता है तथा पुन इस लोक में जन्म लेकर नही लौटता। तीन मात्राओंवाले इस ओकार रूप परमात्मा का ध्यान पुरुष को तेजस्वी सूर्य से सपन्न कराता है, वह सूर्यलोक प्राप्त कराता है। साप की केचुल के समान वह पुरुष पापों से मुक्त हो जाता है। तब सामवेद उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराता है। समस्त प्राणियो मे प्रशसनीय एवं श्रेष्ठ बनकर वह परम पुरुष का साक्षात्कार करता है। कहा गया है कि ओकार की तीनो मात्राए आपस मे संबद्ध रूप मे रहती है,उन्हे एक-दूसरे से पृथक् नही किया जा सकता,इस तथ्य का ज्ञाता पुरुष सुदृढ सकल्पवान और परमेश्वर को जाननेवाला बन जाता है। इसकी एक मात्रावाली उपासना उपासक को ऋचाओं द्वारा मृत्यु लोक को प्राप्त करानेवाली होती है,दो मात्राओवाली उपासना करनेवाले साधक को यजुर्वेद के मत्रों द्वारा अतरिक्ष लोक प्राप्त कराती है तथा ओकार का उपासक श्रुतियों द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। इस लोक मे केवल पुरुष ही है,जिसे जाना जाता है। विद्वान साधक ओंकार के ध्यान से अजर (कभी वृद्ध न होनेवाला), अमर (कभी न मरनेवाला) और अभय,ऐसे परम शांत एव श्रेष्ठ परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। (2-7)

षष्ठम् प्रश्न

अत मे भारद्वाज सुकेशा ने महर्षि पिप्पलाद से प्रश्न किया,'भगवन ! जो प्रश्न मैं पूछ रहा हू, मुझसे कोशल के राजकुमार हिरण्यनाभ ने यही प्रश्न पूछा था कि क्या तुम (सुकेशा) सोलह कलाओवाले पुरुष को जानते हो ? मै इस प्रश्न का उत्तर नही जानता। अत उसे न बता सका। झूठ बोलना मुझे उचित नही लगा, क्योंकि झूठ बोलनेवाला जड सहित सूख जाता है। इसलिए राजकुमार बिना अपने प्रश्न का उत्तर पाए ही चला गया; और जब यही प्रश्न मैं आपसे पूछ रहा हू। कृपया बताए कि वह सोलह कलाओवाला पुरुष कहां रहता है। (1)

महर्षि पिप्पलाद बोले,'सौम्य ! जिस पुरुष में सोलह कलाएं उत्पन्न होती है, वह इसी देह मे रहनेवाला है। उसने एक बार अपने मन में विचार किया कि किसके निकल जाने पर मैं भी इस देह से निकल जाऊंगा तथा किसके कारण मैं स्वय भी प्रतिष्ठित रहूंगा। उसने सर्वप्रथम प्राणो को बनाया और फिर श्रद्धा को। इसके बाद उसने आकाश,वायु,तेज,जल और पृथ्वी इन पाच महाभूतो को,फिर मन इद्रिया और अन्न का निर्माण किया। अन्न से वीर्य की उत्पत्ति हुई। इसके बाद तप, मत्र,कर्म,लोक और नाम को बनाया। जैसे समस्त नदिया समुद्र की ओर बहती हुई उसमे जाकर मिल जाती है,और तब उनका स्वतत्र अस्तित्व (नाम और रूप) भी मिट जाता है,बिलकुल उसी तरह परमात्मा की सोलह कलाए उसी को प्राप्त होकर उसी मे लीन हो जाती है। इस पर उनके नाम,रूप आदि सभी समाप्त हो जाते है। इतने पर भी वह परमेश्वर कलारहित तथा अनश्वर ही है। (2-5)

जैसे रथ के पहिए के अरो का आधार पहिए की नाभि होती है,वैसे ही इन कलाओ का आधार परम पुरुष को ही समझना चाहिए। इसे जान लेने पर तुम मृत्यु से व्यथित नही होओगे।' (6)

अत में महर्षि पिप्पलाद ने उन सभी ऋषियो को सबोधित करते हुए कहा,'उस परम ब्रह्म को मैं इसी रूप में जानता हूं कि वही सब कुछ है। उसके अतिरिक्त अधिक कुछ भी नही है।' तब उन ऋषियों ने महर्षि की अर्चना की और बोले,'आपने हमे अविद्या से पार कर दिया है। अत आप ही वास्तविक अर्थो में हमारे पिता है। हे महर्षि आपको हम बार-बार नमस्कार करते है। (7-8)

□

5. मुंडक उपनिषद

शांति पाठ :

ॐ भद्र कर्णेभ्य श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमार्ताक्षिभिर्यजत्रा.
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वास्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।
ॐ शांति. शांति. शाति ।

हे देवताओ ! हम कानों से कल्याणकारी वचन सुनें, आंखों से कल्याणकारक दृश्य देखें, समस्त अगों सहित शरीर से देवताओं के समान आयु को प्राप्त करें । यशस्वी इंद्र हमारा कल्याण करे, सूर्य हमारा कल्याण करें तथा अरिष्टनाशक वृहस्पति हमारा कल्याण किरें ।

प्रथम मुंडक

प्रथम खंड

समस्त देवताओं मे सर्वप्रथम ब्रह्मा पैदा हुए । वह समस्त विश्व के रचयिता तथा उसके रक्षक है । सभी विद्याओं की आधार व्रह्म विद्या का उपदेश उन्होंने सर्वप्रथम अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को दिया ।

अथर्वा ने यह उपदेश अंगी को दिया । फिर यह विद्या अंगी से भारद्वाज गोत्रीय सत्यवहा को, सत्यवहा से अगिरा को प्राप्त हुई ।

एक वार एक संपन्न गृहस्थ शौनक अंगिरा के पास आया । उसने अंगिरा से पूछा, 'भगवन, जिसको जान लेने से समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह क्या है ?'

अगिरा ने कहा कि दो विद्याएं जानने योग्य हैं, एक परा तथा दूसरी अपरा । इनमें चारों वेदों तथा शिक्षा कल्प आदि में कही गई विद्या अपरा है और अक्षर का ज्ञान परा विद्या है ।

वह जो अदृश्य, अग्राह्य है, गोत्र, वर्ण, चक्षु, कान, हाथ, पैर आदि मे हीन है और नित्य, वविभु, सर्वगत, अति सूक्ष्म तथा अव्यय है, जो सबका कारण है, उसे विवेकशील लोग चारों ओर देखते है ।

जिस प्रकार मकडी जाले को वुनती है और स्वयं निगल जाती है, जैसे पृथ्वी में औपधिया तथा पुरुप के शरीर में केश लोमादि उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार इस अक्षर से यह मपूर्ण व्रह्म उत्पन्न होता है ।

तप एव ज्ञान से व्रह्म अन्न उत्पन्न करता है । अन्न से क्रमश प्राण, मन, मृत्य, लोक, कर्म एव अमृत फल उत्पन्न होते हैं । जो सर्वज्ञ है, सर्व ज्ञानमय है, उमी से यह व्रह्म, वम्नुओं के नाम, रूप और अन्न उत्पन्न हुए है ।

द्वितीय खंड

जिन मन्त्रों से कवि-ऋषियो ने कर्म को देखा,वही सत्य है । त्रेता युग मे इन कर्मो का विस्तार हुआ । सत्य की इच्छा करते हुए इन कर्मो का सदैव पालन करो । यही सच्चा मार्ग है । इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो जाने पर उसे निरतर आगे बढ़ाता रहे ।

जिसका अग्निहोत्र दैनिक, मासिक अथवा चतुर्मासिक और आग्रायण इन कर्मो से रहित अथवा विद्वानों के सत्कार और अतिथि की पूजा के बिना किया जाता है,उसकी सात पीढिया नष्ट हो जाती है ।

अग्नि की काली, कराली, मनोजुवा सुलोहिता सुधूम्रवर्णा, स्फुलिगिनी और विश्वरुचि, यह सात जिह्वाएं अथवा लपटे है । यज्ञ मे इन्हें आहुति दें । जो व्यक्ति इन चमकती जिह्वाओ को उचित समय तक आहुतिया देता है,उसे सूर्य की किरणे देवों के स्वामी परमात्मा के पास ले जाती है । और उसे ले जाती हुई यह आहुतिया मधुर वाणी मे उससे मानो कहती है कि यह तुम्हारे ही सुंदर कर्मो का फल है ।

अठारह प्रकार के निम्न स्तरीय यज्ञ रूपी कर्मो को करनेवाले लोगो को जरा,जन्म और मरण से कोई नही बचा सकता । मूर्ख लोग इन्हें करते हुए प्रसन्न होते है ।

अज्ञान के अंधकार मे रहनेवाले स्वय को धीर और पडित माननेवाले मूर्ख लोग एक अधे के द्वारा ले जाए जाते हुए दूसरे अधे के समान नष्ट हो जाते है । अविद्या मे रहकर भी अपने को कृतार्थ समझनेवाले मूर्ख सासारिकता मे इतने मग्न हो जाते है कि उन्हे यही ज्ञान नही रहता कि वे क्या कर रहे है । अत मे उनका पतन ही होता है ।

अपनी इच्छाओ की पूर्ति को ही परम लक्ष्य माननेवाले, दूसरी किसी भी बात को ठीक न माननेवाले मूर्ख लोग्र श्रेष्ठ वस्तु की केवल पीठ को ही छू सकते है,जबकि वे समझते है कि उन्होने बहुत बडा काम कर लिया है । अत मे उन्हे हीन लोक प्राप्त होता है ।

तपस्वी,श्रद्धासहित काम करने वाले शांत चित्त लोग,जो जीवनयापन को भिक्षा मे मिली वस्तु समझते है,वे सूर्य द्वारा श्रेष्ठ आत्माओं के पास पहुंचते है ।

इस कर्ममय लोकों को समझकर विद्वान व्यक्ति इसके प्रति उदासीन हो जाता है । ससार के सभी पदार्थ अनित्य है,इनसे हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता । यह विचार करके व्यक्ति को किसी वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञ गुरु के पास कुछ भेंट लेकर जाना चाहिए ।

वह गुरु उस शाति चित्त तथा जितेंद्रिय शिष्य को ऐसी ब्रह्म विद्या का उपदेश दे,जिससे उसे उस अक्षर पुरुष,जो एकमात्र सत्य है,का ज्ञान हो सके ।

द्वितीय मुंडक

प्रथम खंड

सत्य है कि जिस प्रकार सुदर प्रदीप्त अग्नि से उसी के रूपवाली चिनगारियां निकलती है,उसी प्रकार उस अक्षर ब्रह्म से नाना प्रकार की वस्तुए उत्पन्न होती है । वह निश्चय ही दिव्य, अमूर्त पुरुष बाह्य और अतर में विद्यमान है । वह अजन्मा, अप्राण, मनरहित विशुद्ध तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है ।

इसी अक्षर ब्रह्म से प्राण,मन,इंद्रिया आकाश,वायु,तेज,जल तथा पृथ्वी उत्पन्न होती है ।

अग्नि,जिसका मस्तक है,सूर्य-चंद्र नेत्र है,दिशाएं कान है,जिसकी वेद प्रसिद्ध वाणी है,वायु प्राण है,समस्त विश्व हृदय है,जिसके चरणो में पृथ्वी है वह देव सभी प्राणियों का आत्मा है । उस अक्षर ब्रह्म से अग्नि पैदा होती है । जो सूर्य में अग्नि की तरह समिधा बनकर जलती है,उसी से पृथ्वी में पर्जन्य और औषधिया उत्पन्न होती हैं । उसी से स्त्रियों मे सीचा जानेवाला तथा प्रजा की उत्पत्ति का कारण वीर्य पुरुषो मे पैदा होता है ।

उसी से ऋक,यजुष,सामवेद,समग्र यज्ञ,क्रतु दक्षिणा,संवत्सर,यजमान तथा जहा तक सोम पवित्र करता है और सूर्य पहुचता है,सब लोक जन्म लेते है । उसी से बहुत सारे देवता,साध्य,मनुष्य, पशु एव पक्षी उत्पन्न हुए । उसी से श्रद्धा,सत्य ब्रह्मचर्य तथा अन्य जीवन विधियां उत्पन्न हुई ।

परमात्मा से ही सातो प्राण,सातों अग्नियां,उनके सातो विषय,उन्हे पूर्ण करनेवाले कर्म और इन सात विषयों के स्थान उत्पन्न हुए । यह सातों शक्तिया इच्छाए उनके साधन और इच्छाए मानव शरीर मे है ।

इसी से समस्त समुद्र,पर्वत,नदिया,वनस्पतियां आदि उत्पन्न होती है । यह जो समस्त भूतो (प्राणियो) की गुहा में उपस्थित रहता है । इसे जो जान लेता है,उसका अज्ञान का अधकार नष्ट हो जाता है ।

द्वितीय खंड

शरीर की गुहा में विचरण करनेवाला महान पद को प्राप्त वह ब्रह्म इसके प्रति समर्पित और सयुक्त है । इस शरीर की प्राण आदि तथा पलक झपकना आदि क्रियाए उसी के प्रति समर्पित है । उस ब्रह्म को सत-असत से भिन्न,विज्ञान से परे तथा प्रजाओं से ऊपर समझना चाहिए ।

जो दीप्तिमान एवं सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है,जिसमें समस्त लोक और उनके प्राणी निहित हैं,वह बडे से भी बडा अक्षर ब्रह्म है,वह वेद है,प्राण हैं,मन है और सत्य है । वह अमृत और जानने योग्य है ।

विद्वानों द्वारा उपनिषद् रूपी धनुष पर उपासना का बाण चढाकर उसके भाव के प्रति दत्तचित्त होकर ध्यान करना चाहिए । उस अक्षर ब्रह्म के लक्ष्य का सधान करना चाहिए । इसके लिए ओंकार धनुष है,आत्मा तीर है,ब्रह्म लक्ष्य है दत्तचित्त होकर लक्ष्य वेध करना चाहिए ।

जिसमें द्यौ,पृथ्वी,अतरिक्ष मन और समस्त प्राणों सहित ओतप्रोत है । अन्य सब बातो को छोडकर उसी एक आत्मा को जानो । वही अमरता का साधन है ।

रथ के पहिए में लगे अरों के समान,शरीर की सभी नाडिया हृदय से जुडी होती है । हृदय में अनेक प्रकार से प्रकट होनेवाला परमात्मा शरीर मे विचरण करता है । उसका ओम नाम से चितन करो वही अज्ञान को दूर करके कल्याण करेगा ।

जो सदा,सर्वत्र और सर्वज्ञ है,जिसकी महिमा पृथ्वी एव ब्रह्मपुर दोनो मे है,वह सपूर्ण व्योम में विद्यमान है । वह इस मनोमय प्राण एवं शरीर को ले जानेवाला अन्न मे उपस्थित तथा हृदय को

स्पदित करनेवाला है। विद्वान उसे ज्ञानचक्षुओ से देखते है वह आनंदमय और अमरत्व प्रदान करनेवाला है। उस ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर हृदय ग्रथि खुल जाती है, सशय दूर हो जाता है तथा कर्मफल नष्ट हो जाते है।

स्वर्णमय कोश (ज्ञान कोश) से परे कलाहीन ब्रह्म विराजमान है, वह निर्मल एव ज्योति रूप है। केवल आत्मज्ञानी ही उसे जान सकते है।

वहा न तो सूर्य का प्रकाश पहुच सकता है, न चंद्रमा का, न तारो का, तब अग्नि की तो गणना ही करना व्यर्थ है। उसी के प्रकाश से अन्य सब वस्तुए प्रकाशित होती है। वह अमृतमय ब्रह्म ही सामने-पीछे, दाए-बाएं, नीचे-ऊपर फैला हुआ है। वही सब कुछ और श्रेष्ठ है।

तृतीय मुंडक

प्रथम खंड

दो सुदर पखोवाले पक्षी साथ-साथ मैत्री से एक ही वृक्ष के आश्रय मे रहते है, उनमे से एक सुदर स्वादिष्ट फलो को खाता है और दूसरा देखता रहता है।

परमात्मा के साथ समान प्रकृति के आश्रय से रहनेवाला जीवात्मा अपनी हीन कामनाओ से मोहित हो जाता है, किंतु जब वह परमात्मा से सयुक्त होता है, तो उसका मोह दूर हो जाता है।

जब वह ईश्वर को देखता है तथा उसे पा लेता है, तब वह पाप-पुण्य से छूट जाता है, उसके से सब समान रूप हो जाते है।

जो समस्त प्राणियो मे विद्यमान है और उनमे कार्य करने की सामर्थ्य पैदा करता है, वह प्राण है। इस तथ्य को जान लेने पर विद्वान आत्मप्रशसा नहीं करता। वह आत्मा के विषय मे ही चितन करता हुआ ब्रह्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ कहलाता है।

वह सत्य, तप, ब्रह्मचर्य तथा सम्यक् ज्ञान से इसी देह के अदर निर्मल, ज्योतिर्मय आत्मा को देखता है, जिससे उसके दोष नष्ट हो जाते हैं। इसकी सत्य की जय होती है, अनृत (मिथ्या) की नही, सत्य से ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग होता है। इसी से कर्म तत्त्व को जाननेवाले ऋषि उस परम निधान को प्राप्त करते हैं।

वह आत्मा तत्त्व वृहद, दिव्य और अचिंतनीय रूपवाला भी है और सूक्ष्मतम भी है। वह अत्यंत दूर भी है तथा इस देह के भीतर भी है। ज्ञानवान गुहा मे स्थित इसे देख सकते है।

इसे न आंखें देख सकती हैं और न वाणी इसके विषय में कुछ कह सकती है। अन्य इद्रियो से या कर्म से भी यह अप्राप्य है। इस विशुद्ध सत्त्व को जो इद्रियां रहित है, केवल ध्यान अर्थात् अनुमान से अनुभव किया जा सकता है।

प्राण, अपान आदि पाच प्रकार के प्राणों से युक्त शरीर में यह आत्मा सचेतन हो जाता है। प्राणों से पहले चित्त और फिर चित्त से आत्मा प्रकाशित होता है।

यह विशुद्ध आत्मा जिस-जिस लोक की इच्छा करता है, वह लोक उसे प्राप्त हो जाता है। इसीलिए ज्ञानी लोग यत्नपूर्वक कामना करते है।

द्वितीय खंड

वह आत्मज्ञानी उस सपूर्ण जगत को जान लेता है, जो ब्रह्मा की सृष्टि का आधार है, जो उस सर्वज्ञ पुरुष की निष्काम भाव से उपासना करता है वह जन्म मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

कामनाओ इच्छा करनेवाला अनेक बार जन्म लेकर उन कामनाओ को प्राप्त करता है, किंतु जो निष्काम भक्ति करता है, उसकी कामनाएं लीन हो जाती है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है।

ईश्वर की प्राप्ति प्रवचनो से, तप से या अधिक सुनने से नही होती। यह जिसकी इच्छा करता है, वही इसे प्राप्त कर लेता है। उसके अनुरूप ही यह अपनी आत्मा को बना लेता है।

दुर्बल इसे प्राप्त नही कर सकता और न ही प्रमादी या तप और संन्यास के गुणो से हीन कोई व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है। अत पूर्वकथित उपायो से यत्न करने पर विद्वान ब्रह्मधाम को प्राप्त करता है।

वह आत्मा जो ज्ञान प्राप्त कर चुका हो, जिसकी आसक्ति, राग आदि नष्ट हो गए हो और जो धीर और परम शाति प्राप्त कर चुका हो, वह सबमे प्रवेश कर सकता है।

जिन्होने वेदांत के ज्ञान को सही-सही अर्थो मे जान लिया हो, सन्यास का पालन करते हुए शुद्ध आत्मावाले ऐसे यती लोग अतकाल मे जन्म-मरण से मुक्त होकर उच्च स्थान को प्राप्त करते है।

उसकी दस इंद्रिया तथा पाच प्राणरूपी पंद्रह कलाए अपने-अपने अधिदैव के पास लौट जाती है। उसके कर्म विज्ञान मय हो जाते है तथा आत्मा परम अनश्वर परमात्मा से एकाकार हो जाता है।

यथा सभी नदिया अपने-अपने नाम एव आकार का परित्याग करके समुद्र मे विलीन हो जाती है, इसी प्रकार विद्वान नाम एव रूप से मुक्त होकर उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त कर लेता है।

जो परम ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। उसके कुल मे कोई भी ऐसा पैदा नही होता जो ब्रह्म को न जानता हो। वह शोक एव पाप से परे हो जाता है। गुहा ग्रथि से मुक्त होकर अमरता प्राप्त करता है।

जो क्रियावान हो, क्षोत्रिय हो, ब्रह्म निष्ठ हो, एक ऋषि यज्ञ को स्वय करनेवाला हो, श्रद्धावान हो अथवा जो शिरोव्रत करनेवाला हो, उसी को इस ब्रह्म विद्या का उपदेश देना चाहिए। इस सत्य का उपदेश प्राचीन काल में अगिरा ऋषि ने दिया था। जो शिरोव्रत का पालन नही करता वह इस विद्या का अधिकारी नही है। महान विद्वान ऋषियो को नमस्कार।

□

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभ्य शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमातक्षिर्यनत्रा
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति शांति. शाति ।

यह जो परमात्मा का ओम नामक ऐसा अक्षर नाम है, सब उसी का व्याख्यान है । भूत, भविष्य और वर्तमान, यह सब ओकार ही है तथा इन तीनो कालो से अन्य जो कुछ भी है, वह भी सब यह ओंकार परमात्मा ही का स्वरूप है ।

निश्चय ही यह सब ब्रह्म ही है । यह आत्मा महान है यह चार चरण (अवस्थाओ) वाला है । जागृतावस्था इसका प्रथम चरण है । परमात्मा, जीवात्मा, तीनो गुण, तेज और जीवो का कर्मफल, यह सात अग उन्नीस मुखोंवाली वैश्वानर अग्नि से खायी जा रही है । इसके सात अग तथा उन्नीस मुख है ।

स्वप्नावस्था ब्रह्म की अत· प्रज्ञ अवस्था होती है । यह भी सात अग तथा उन्नीस मुखोवाली होती है । इसमे सूक्ष्म अवस्था मे वैश्वानर अग्नि का तेज काम करता है । यह ब्रह्म की दूसरी अवस्था है । जब पुरुष सोया होता है, तो वह कोई कामना नही करता और स्वप्न भी नही देखता । इसे सुषुप्ति की अवस्था कहते है । यह अवस्था एकीभूत आ नदमय अवस्था होती है । आनद का उपभोग करता हुआ सकीर्ण प्रज्ञा रखता हुआ तथा भोग करता हुआ रहने पर यह विशेष ज्ञान की तृतीय अवस्था होती है । यह प्रज्ञानधन अवस्था, जिसे अत प्रज्ञ चेतना कहते हैं, ईश्वर है, सर्वज्ञ है और सब प्राणियों का उत्पत्ति का कारण है ।

चतुर्थ अवस्था अत और बाह्य दोनो ओर से अचेतन अवस्था होती है । यह संकीर्ण ज्ञानवाली भी नही होती है, दिखाई पडनेवाली भी नही होती । यह व्यवहार रहित अग्राह्य, लक्षण हीन विचारातीत, अवर्णनीय, एक सार रूप शांत तथा कार्य-जगत रूपी प्रपचवाली होती है । इसमे वह कल्याणमय अकेला होता है । यह परमात्मा का चौथा चरण (अवस्था) होता है । इस अवस्था मे आत्मतत्त्व विशेष जानने योग्य होता है ।

वह परम ब्रह्म और यह आत्मा, दोनो ही ओम अक्षर के समान है, जो मात्राओ से युक्त है । पाद ही मात्रा और मात्रा ही पाद (चरण) है । यह ओम् अ, उ और म से बना है ।

जागृत अवस्था वैश्वानर है, ओम् मे प्रथम अ ही अक्षर रूप है । जो उसे जान जाता है, वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।

स्वप्न की अवस्था में परमात्मा का वह तेज, ओम के मध्य मे जो 'उ' है, दोनो के ऊपर चढ जाता है। जो इस ज्ञान को जान जाता है, वह ज्ञान की राशि बन जाता है। उसके कुल मे कोई ब्रह्म ज्ञान से हीन नही होता।

सुषुप्तावस्था पूर्ण अज्ञानावस्था है। ओम में तीसरी मात्रा 'म' है। यह पिए हुए की अर्थात् ब्रह्म ज्ञान को इच्छानुसार पीकर उसमे लीन होने की अवस्था है। जो इसे जान जाता है (पिया हुआ) वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

चतुर्थ अवस्था मात्रा रहित है, यह अवस्था व्यवहार रहित एव शात प्रपच की अवस्था है। वह कल्याणकारक अकेला ओकार आत्मा ही है। जो इस तथ्य को जान जाता है, वह जीवात्मा आत्मा (परमात्मा) मे प्रवेश कर जाता है।

□

7. ऐतरेयोपनिषद्

शांतिपाठ :

> ॐ वाङमे मनसि प्रतिष्ठा मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्य एधि। वेस्य मे आणीस्थ। श्रुत मे प्रहासी। अनेनाधीतेताहोरात्रासध-धाम्यमृत वदिव्याज्ञि। सत्य तन्मामवत् तद्वक्तारभवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शाति शांति शाति ।

हे परमात्मा । मेरी वाणी और मन परस्पर स्थित हो । तुम मेरे लिए प्रत्यक्ष होओ और वेदो का ज्ञान लाओ । मै श्रुत ज्ञान को न भूलू श्रेष्ठ शब्द बोलू और रात-दिन एक कर दू । मै सदा सत्य बोलूगा । ब्रह्म मेरा और आचार्य का रक्षक हो ।

प्रथम अध्याय

प्रथम खंड

सृष्टि पूर्व केवल परमात्मा ही था । उसने लोकरचना का विचार किया तथा स्वर्ग आदि की रचना की । स्वर्ग के ऊपर उनका आश्रय स्थान द्यू लोक अम्म और अंतरिक्ष मरीचि है । यह पृथ्वी मर्त्यलोक तथा नीचे के लोक जल कहलाते है । लोक रचना के बाद उसने दिगपालो का विचार किया तथा जल से एक ज्योर्तिमय पुरुष प्रकट हुआ ॥3 ॥ उसे देखकर परमात्मा ने तप किया । तब तेजस्वी देह अडे के समान बनी । उसमे मुख,वाणी और अग्नि पैदा हुए,फिर नासिका और प्राण की उत्पत्ति हुई । प्राण से वायु,नेत्र से छिद्र तथा चक्षु उपजे । चक्षु से सूर्य जन्मा । फिर कर्ण छिद्र और श्रवण- शक्ति तथा इससे दिशाएं बनी । पुन त्वचा और रोम बने । रोमों से औषधिया,हृदय से मन, मन से चंद्र जन्मा । नाभि प्रकट हुई । इससे अपान और अपान से मृत्युदेव जन्मे फिर उपस्थ से रेतस और रेतस से जलोत्पत्ति हुई ।

द्वितीय खंड

परमात्मा से उत्पन्न देवता समुद्र में आए । उन्हें भूख का अनुभव हुआ । उन्होंने परमात्मा से अन्नादि खाने के लिए शरीर मागा ॥1 ॥ परमात्मा ने गाय और अश्व के शरीर दिखाए । उन्हे यह शरीर स्वीकार्य नही थे । मानव देह दिखाने पर वे संतुष्ट हुए ॥2 ॥ परमात्मा ने उन्हें इसमे प्रवेश की आज्ञा दी ॥3 ॥ अग्नि वाणी वना, वायु प्राण, सूर्य चक्षु, दिशाए कान, औषधिया रोम, चंद्रमा मन, मृत्यु अपान तथा जल रेत बना,सव शरीर के स्थानों में स्थित हो गए ॥4 ॥ भूख-प्यास ने भी स्थान मागा । परमात्मा ने उन्हें देवताओं की हवि में भाग दिया ॥5 ॥

तृतीय खंड

लोक-लोकपालों की रचना के वाद परमात्मा ने उनके लिए अन्न वनाने की सोची ॥1 ॥ ... जल को तपाया,उससे अन्न की मूर्ति निकली ॥2 ॥ अन्न पराङ्मुख ... लगा । वाणी इस

कर सकी। यदि ऐसा होता, तो अन्न के वर्णन मात्र से ही तृप्ति हो जाती ॥3 ॥ घ्राण भी इसे ग्रहण न कर पाया, ऐसा होने पर सूघने से ही तृप्ति हो जाती ॥4 ॥ आख, कान, त्वचा, मन और उपस्थ भी इसे ग्रहण न कर सके यदि ऐसा होता, तो देखने-सुनने आदि से ही तृप्ति हो जाती ॥5-9 ॥ अपान इसे ग्रहण करने में समर्थ हो गया। तब अपान वायु ही अन्न ग्रहण करने लगा। यही अन्न द्वारा देह की रक्षा करता है ॥10 ॥

अव परमात्मा ने सोचा अपनी विभिन्न इंद्रियो से मनुष्य भले ही कार्य कर ले, किंतु मै इसके देह में कहां से प्रवेश करू ॥11 ॥ तब उसने मनुष्य को मूर्धा अर्थात् विद्वति को चीरकर उसमे प्रवेश किया। यही आनंदप्राप्ति का द्वार है। परमेश्वर के हृदय, ब्रह्मधाम तथा ब्रह्माड तीन आश्रय है, तीन स्वप्न है ॥12 ॥ मानवरूप से प्रकट पुरुष ने पांच भूतों को देखकर कहा, यहां दूसरा कौन है ?' तब उसने परमब्रह्म को ही वह्रा देखा और उसके दर्शन से प्रसन्न हुआ ॥13 ॥ वह परमात्मा इद्र नाम से प्रसिद्ध है। वह इंद्र परोक्षभाव से इद्र कहलाता है। देवता परोक्षप्रिय कहे जाते है ॥14 ॥

द्वितीय अध्याय

प्रथम गर्भ बनता है। सभी अगो से व्यक्त होनेवाला तेज वीर्य है, जो पुरुष शरीर में रहता है तथा सिंचन द्वारा स्त्री गर्भ में स्थित होता है। वह इसका पहला जन्म है ॥1 ॥ स्थापित गर्भ स्त्री अग सदृश बनने से स्त्री को कष्ट नही होता। वह उसका पोषण करती है ॥2 ॥ उत्पन्न होने तक स्त्री फिर पुरुष बालक का आत्मवत् पालन करती है। सारा लोक ऐसा करता है। यह उसका द्वितीय जन्म है ॥3 ॥ पुण्य कर्मो से पिता का प्रतिनिधि रूप पुत्र होता है। कर्तव्य पूर्ण होने पर पिता मृत्यु को प्राप्त होता है। फिर जन्म लेकर लौटता है। यही तृतीय जन्म है ॥4 ॥ वात ऋषि का कथन है कि वह गर्भ में देवताओं के अनेक जन्मों को जान चुके है। ज्ञानप्राप्ति से पहले वह दृढ पिंजरे में बधे थे। वह बाज के समान उन्हें काटकर मुक्त हुए है। वामदेव ने उदरस्थ ही यह कहा ॥5 ॥ अत वामदेव देहांत पर स्वर्ग में पहुचे और अमर हो गए ॥6 ॥

तृतीय अध्याय

हमारा उपास्थ कौन है ? मनुष्य जिससे देखता, सुनता आदि है वह आत्मा कौन है ॥1 ॥ हृदय ही मन है। ज्ञान, आदेश, विज्ञान, प्रज्ञा, मेघ आदि सभी परमात्मा की सत्ता का बोध कराती है ॥2 ॥ ब्रह्म, इंद्र आदि देवता, पच महाभूत और अंडज, स्वदेज तथा डार्दभज प्राणी एव सभी स्थावर-जंगम सभी परमात्मा की सत्ता से कार्य करते है। सभी लोकों आदि का वही आश्रय है ॥3 ॥ ब्रह्म को जान लेने पर स्वर्ग के सव भोगों की प्राप्ति तथा अमरत्व प्राप्त होता है ॥4 ॥

□

8. तैत्तरीयोपनिषद्

शिक्षा वल्ली

प्रथम अनुवाक

मित्र, वरुण, अर्यमा, बृहस्पति और विष्णु हमारे लिए कल्याणकर हो। ब्रह्म और वायु तुम्हे नमस्कार हो। तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। मै तुम्हें प्रत्यक्ष ब्रह्म और ऋत कहूगा। वह मेरी तथा आचार्य की रक्षा करे। त्रिविध तप शांत हों।

द्वितीय अनुवाक

अब शिक्षा वर्णन होगा। वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और संधि—यह वेद-शिक्षा का अध्याय कहा गया है।

तृतीय अनुवाक

हम दोनों (गुरु-शिष्य) के यश की, ब्रह्म और तेज की बुद्धि हो। हम लोकों, ज्योतियो आदि का वर्णन करेंगे। यह सब महासहिता है। प्रथम लोक विषयक है। पृथ्वी पूर्व तथा स्वर्ग उत्तर दिशा रूपी है। इन दोनो की सधि वायु दोनो का संधान है। यह लोक विषयक वर्णन है।

अग्नि पूर्वरूप एवं आदित्य उत्तर रूप है। जल इनकी संधि है, विद्युत सयोजक है—यह ज्योति विषयक संहिता है।

गुरु पूर्वरूप, शिष्य उत्तररूप है और विद्या संधि है। प्रयत्न सधान है—यह विद्या संहिता है।

माता पूर्व रुप, पिता उत्तररूप, संतति संधि एवं प्रजननकर्म सधान है—यह संतति विषयक सहिता है।

अधो हनु पूर्व, अपरि हनु उत्तर, वाणी सधि एव जीभ संधान है—यह आत्मविषयक सहिता है।

यह महासंहिताए है, इन्हें जाननेवाला प्रजा, पशु आदि से स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है।

चतुर्थ अनुवाक

वेदों मे श्लाध्य 'ओम' विश्वरूप है, अमृतमय है। इद्र मुझे मेधावी बनाए। हे ईश्वर मैं अनश्वर ब्रह्म से युक्त होऊं। मेरी देह तेजोमय, वाणी मधुर एवं कर्णगत शब्द शुभ हों। तू मेधामय ब्रह्म की निधि सदृश है, अत मैं सुने उपदेश को न भूलूं।

रोमावली गाएं मुझे प्रदानकर, जो अन्न-वस्त्र आदि देती है।

कपटहीन ब्रह्मचारी मेरे पास आएं। वे प्रामाणिक व्रतों को करनेवाले इंद्रिय जयी तथा संयमी हों।

मैं अधिक यज्ञ करू, धनवानो मे श्रेष्ठ बनूं। हे ईश्वर मैं तेरा ध्यान करू तू मुझ मे प्रविष्ट हो। तुम सहस्त्र शाखावाले हो।

यथा जल निम्नगामी है, माह वर्षो मे लय हो जाते है, वैसे ही सभी ओर से ब्रह्मचारी मेरे समीप आएं। ईश्वर तू सवका आश्रय है। तू मुझमें आविष्ट हो।

पंचम अनुवाक

भू भुव स्व—यह तीन व्याहतिया है। यह चतुर्थ व्याहति महाचमस ने इसे सर्वप्रथम जाना। वही आत्मा है। सभी देवता उसके अंग है। 'भू' यह लोक है। 'भुव' अतरिक्ष है। 'स्व' स्वर्ग है। 'मह' आदित्य है। इसी से सब लोको की महिमा है।

भू भुव स्व और यह क्रमश अग्नि, वायु, सूर्य और चंद्र है चंद्रमा सब ज्योतियो का भूल है। भू भुव स्व· और मह क्रमश ऋक, साम, यजुर्वेद तथा ब्रह्म है। ब्रह्म से ही सब व्रेदों का महत्त्व है।

यह चारो क्रमश प्राण, अपान, व्यान तथा अन्न है। अन्न से ही प्राणशक्ति है। इन चारो चार-चार के भेद से सोलह व्याहतियो को जाननेवाला ब्रह्मवेत्ता तथा देवकृपा का भागी होता है।

षष्ठ अनुवाक

उस अंत हृदय के आकाश में यह हिरण्यमय पुरुष रहता है। तालुओं से लटकता मामपिड है। वह इद्र योनि है, जहा यह अवसान काल में 'भू' अग्नि मे रहता है। 'भुव' 'स्व' और 'मह' क्रमश वायु, आदित्य और ब्रह्म मे लीन हो जाते हैं।

इससे वह अपना राज्य प्राप्त करता है तथा वनस्पति प्राप्त करता है। वाणी, नेत्र चक्षु तथा विज्ञान का आधिपत्य भी उसे मिलता है।

ब्रह्म आकाश सदृश विस्तृत है। वह सत्यात्मक तथा प्राणों और मन को सुख देनेवाला अनश्वर है। अत उसकी उपासना करो।

सप्तम अनुवाक

पृथ्वी, अतरिक्ष, स्वर्ग, दिशाएं, अवांतर दिशाएं, अग्नि वायु, आदित्य इत्यादि मव आधिभौतिक है। प्राण, अपान, नेत्र आदि आध्यात्मिक है। इसे कहकर ऋपि वोले यह सव पाक्त है। पांक्त द्वारा पांक्त की आपूर्ति होती है।

अष्टम अनुवाक

ओम् ही ब्रह्म, विश्व तथा अनुकृति है। सामगान भी ओम है। इसी का उच्चारण करते हुए शास्त्राध्ययन होता है। इसी से प्रतिगर प्रारंभ करता है ब्रह्मा यज्ञानुमति देता है तथा इसी मे अग्निहोत्र की आज्ञा दी जाती है। 'ओम्' का उच्चारण करके अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त करने की वात करता है। इसके प्रभाव से ब्रह्म प्राप्ति सभव है।

नवम अनुवाक

सत्याचरण, स्वाध्याय सत्य के साथ ही तप, दमन (इद्रियो का), मन को वश मे करना, शमन, अग्निहोत्र, अतिथि सत्कार, मानवीय व्यवहार, संतान उसका प्रजनन आदि भी उचित है। इन्हें विधिपूर्वक करें। सत्य श्रेष्ठ है। राथीतर पुत्र सत्यवाचा का यही मत है। तपोनिष्ठ ऋषि के मन मे तप ही श्रेष्ठ है। नाक ऋषि स्वाध्याय को श्रेष्ठ तथा तप मानते है।

दशम अनुवाक

मै विश्व-वृक्ष का उच्छेदक हू। मेरी कीर्ति गिरि सदृश है। जिस प्रकार सूर्य मे शस्योत्पादक शक्ति है, उसी प्रकार मै भी अमृत, द्रव्य तथा मेघरूप हू। यह त्रिशकु के अनुभूत वचन है।

एकादश अनुवाक

वेदाध्ययन की समाप्ति पर आचार्य शिष्य को उपदेश देता है। सत्य बोलो, धर्माचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो। प्रिय गुरुदक्षिणा-संतति क्रम को मत तोड़ो। सत्य, धर्म, श्रेष्ठकर्म, स्वाध्याय, प्रवचन तथा देवपितृ कार्यो से प्रमाद मत करो।

माता, पिता, आचार्य तथा अतिथि को देवता समझो। श्रेष्ठ कर्मो का, चरितों का अनुसरण करो, अन्यो का नहीं। श्रेष्ठ जनो को उच्च आसन दो, श्रद्धा से दान दो, अश्रद्धा से नही। सौम्यता से दो, लज्जा से नही। भय से नही, विवेक से दो।

जिन कार्यो मे संशय हो, वहा श्रेष्ठ जनों का आचरण करना चाहिए। उचित-अनुचित की शका - आदि होने पर भी ऐसा ही करो। यही आदेश है, यही उपदेश है, उपनिषद है तथा अनुशासन है। इसी का पालन करो।

द्वादश अनुवाक

मित्र, वरुण, अर्यमा, इंद्र एव विष्णु हमारे लिए कल्याणकर हो। हे ब्रह्म और वायु! तुम्हे नमस्कार! तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, तुम्हे ऐसा कहा गया है। तुम्हे ऋत एवं सत्य कहा गया है। परमात्मा ने मेरी और आचार्य की रक्षा की है।

ब्रह्मानंद वल्ली

हम दोनों गुरु-शिष्य साथ-साथ रक्षा कर्म करे, उपभोग करे, पराक्रम करे तथा हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम विद्वेष न करें। त्रिविध तापो की शांति हो।

प्रथम अनुवाक

कहा गया है कि ब्रह्मवेत्ता परमात्मा को प्राप्त करता है। ब्रह्म सत्य, अनत और ज्ञानमय है। वह परम आकाश और हृदय गुहा मे स्थित है—यह जाननेवाला ब्रह्म के साथ ही भोगों का उपभोग करता है। परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ फिर वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, औषधिया, अन्न, रेतस और मनुष्य क्रमश. (अपने से पूर्व लिखित तत्त्व से) उत्पन्न हुए। पुरुष रसवाला है। मनुष्य का सिर पक्षरूप है। वाहु दक्षिण और वाम पंख, आत्मा मध्य अंग तथा पांव पूंछ है।

द्वितीय अनुवाक

प्राणी अन्न से उत्पन्न होते है, जीवित रहते है तथा लय हो जाते हैं। यह भूतो में श्रेष्ठ सर्व औषधि है। अन्न को ब्रह्म मानकर कामना करनेवाले इसे अवश्य पाते है। प्राणी अन्न से बढते है तथा इसे खाते हैं। अन्न भी भूतो को खा जाता है, अत वह अन्न है। प्राणमय आत्मा अन्न रसमय देह से भिन्न आकार नही है। उस आत्मा का प्राण सिर, व्यान दक्षिण और अपान वाम पख है। आकाश आत्मा, पृथ्वी पूंछ है।

तृतीय अनुवाक

देवता तथा मनुष्य, पशु आदि प्राणो के कारण ही क्रियाशील हैं। प्राण वस्तुत आयु है। प्राण रूपी ब्रह्म के उपासक पूर्ण आयु पाते है। यही शरीरस्थ आत्मा है। भीतर निवास करनेवाला आत्मा प्राणमय पुरुष से भिन्न है। देह उसी से व्याप्त एव उसी का आकार है। यजु, ऋक तथा सामवेद सिर और दक्षिण एवं वाम पक्ष है। आदेश आत्मा है। अथर्वा तथा अगरिस द्वारा प्रकाशित अथर्व मंत्र पूछ एव प्रतिष्ठा है।

चतुर्थ अनुवाक

मन सहित वाणी जिसे प्राप्त किए बिना लौट आती है, उस ब्रह्मानद का ज्ञाता कभी भयभीत नही होता। पूर्व कथित यह शरीर ही आत्मा है। पूर्वोक्त मनोमय पुरुष के अदर स्थित आत्मा विज्ञानमय है। यह देह आत्मा में व्याप्त है। वह पुरुपाकृति के समान है। श्रद्धा उसका सिर है। ऋत दक्षिण तथा सत्य वाम पक्ष है। योग आत्मा है, मह पूछ एवं प्रतिष्ठा है।

पंचम अनुवाक

विज्ञान यज्ञ एव कर्म का विस्तार करता है। देवता ब्रह्म रूप विज्ञान के उपासक है। विज्ञान को ब्रह्म रूप जानने में प्रमाद न करनेवाला सदेह पार्पो को त्यागकर सब भोगो को पाता है। शरीरस्थ आत्मा ही परमात्मा है। विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न देहस्थ परमात्मा है। यह उससे पूर्ण व्याप्त है। परमात्मा पुरुपाकृति है। इच्छा मोद-प्रमोद, आनंद एवं ब्रह्म क्रमश उसके सिर, दाए-बाए पख, मध्य देह तथा पूछ एवं आश्रय स्थान है।

षष्ठ अनुवाक

जो ब्रह्म के अस्तित्व में शका करता है, वह असत्य होता है। ब्रह्म के अस्तित्व को जाननेवाला सज्जन समझा जाता है। पूर्वोक्त विज्ञानमय देह उसकी आत्मा है। अव प्रश्न होता है कि अज्ञानी और ज्ञानी पुरुष मृत्यु के पश्चात् परलोक जाते हैं अथवा नही—परमेश्वर ने प्रकट होना चाहा। उसने तप किया इससे तेजस्वी होकर उसने जगत रचा और उसी में प्रविष्ट हुआ। फिर वह साकार एव निराकार वना। निरुक्त, अनिरुक्त, आश्रयरूप, चैतन्य, अचेतन और सत्य स्वरूप बना। विद्वानो के अनुसार देखा, सुना तथा अनुभूत ही सत्य होता है। अदृश्य होने के कारण उसके विषय में शका होती है, अत वह मिथ्या भी हुआ।

सप्तम अनुवाक

पहले विश्व असत् रूप था, फिर सत् रूप बना। स्वयं प्रकट होने के कारण यह सुकृत कहलाता है। सुकृत ही रस है। प्राणी इसी से आनंदित होते है परमात्मा गगन सदृश व्यापक, सबके प्राणों का आधार उन्हें सचेष्ट करनेवाला तथा सबको सुखदाता है। जब प्राणी अदृश्य निराकार और निराश्रय परमात्मा का आश्रय पाता है, तो उसे आश्रय पद मिल जाता है। परमात्मा से किंचित भेद रखने पर जीव भयमुक्त नही हो सकता। यही भय अहंकारी विद्वान को भी होता है।

अष्टम अनुवाक

भय से ही वायु गतिशील है, सूर्योदय होता है तथा इंद्र, अग्नि और यम क्रियाशील है। अब आनद विषयक वर्णन है—सदाचारी शिष्ट, अध्येता, बलिष्ठ युवक को सपन्न पृथ्वी मिल जाए तो यह एक सासारिक आनंद है। मानव के सौ आ नंद गधर्व के एक आनंद समान है। वे शुद्धचेता श्रोत्रिय को स्वभाव से प्राप्य हैं। मानव गंधर्व आनद देवगधर्व के आनंद समान है, नष्ट कामना श्रोत्रिय को यह स्वभाव से प्राप्य है। स्थायी पितृलोक प्राप्त पितरों के सौ आनद आजानज देवताओ का एक आनद है। कामना मुक्त वेदज्ञ को यह स्वभाव से प्राप्त है। आजानज देवों के सौ आ नंद कर्म देवों के एक आनंद तुल्य है। कामना मुक्त तथा देवत्व प्राप्त पुरुष को यह सहज प्राप्य है। कर्म देवों के सौ आनद देवताओं के एक आनंद के समान हैं। निष्काम वेदज्ञ को यह स्वभावत· प्राप्य है। देवों के सो आनंद इंद्र के एक आनंद के समान हैं। इद्र के सौ आनद बृहस्पति का एक आनंद है, बृहस्पति के सौ आनंद प्रजापति के एक आनंद के समान, प्रजापति के सौ आनद ब्रह्मा के एक आनद के समान है। निष्काम वेदज्ञ इसे स्वभावत: प्राप्त करता है।

मानव और सूर्य में निहित 'वह' एक ही है। इसका ज्ञाता लोक को त्याग कर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय आत्मा को पार कर लेता है।

नवम अनुवाक

जहा से मन सहित वाणी बिना उसे प्राप्त किए लौट आती है, उस ब्रह्मानद का ज्ञाता कभी भयभीत नहीं होता। विज्ञ इसका विचार नही करते कि उसने श्रेष्ठ कर्म अथवा पाप क्यो नहीं किए या करता रहा, अथवा पाप पुण्य पर विचार करके ज्ञानी अपनी रक्षा करता।

भृगुवल्ली

प्रथम अनुवाक

पिता वरुण के पास जाकर भृगु ने ब्रह्म ज्ञान की प्रार्थना की। वरुण ने कहा कि अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी सब ब्रह्म प्राप्ति के द्वार हैं। जिसे लेकर प्राणी जन्मते है, जीवित रहते है और देहात होने पर, जिसमें प्रवेश पाते हैं, वही ब्रह्म है। यह सुनकर भृगु तप करने लगे।

द्वितीय अनुवाक

अन्न ब्रह्म है, तप के बाद यह ज्ञान हुआ। वस्तुत. प्राणी अन्न से, उत्पन्न होते है, जीवित रहते है और मृत्यु होने पर उसी में प्रविष्ट हो जाते हैं। यह जान कर भृगु पुन. वरुण के पास गए और पूर्वोक्त प्रश्न किया। वरुण ने कहा, 'तप ही ब्रह्म है' इसे जानो। भृगु ने फिर तपस्या की।

तृतीय अनुवाक

प्राणों को ब्रह्म मानो। समस्त भूत प्राणो से ही जीवित रहते है, मृत्यु होने पर इन्ही मे मिल जाते हैं। यह विचार कर भृगु पुन पिता के पास गए और ब्रह्म ज्ञान की प्रार्थना की। वरुण बोले, 'ब्रह्म को तप से जानो। तप ही ब्रह्म है।' भृगु ने पुन तपस्या की।

चतुर्थ अनुवाक

मन ब्रह्म है। मन से ही प्राणी जन्म लेते हैं, जीवित रहते है और मृत्यु पर इसी में लीन हो जाते हैं। ऐसा विचार करके पुन वरुण के पास जाकर ब्रह्म ज्ञान मांगा। वरुण ने पुन तप को ब्रह्म बताया और जानने को कहा। भृगु पुन. तप करने चले गए।

पंचम अनुवाक

विज्ञान ब्रह्म है। इसी से प्राणी जन्मते तथा जीवित रहते हैं। मृत्यु पर इसी में लय हो जाते हैं। ऐसा मानकर वह वरुण के पास गए फिर पूर्वोक्त याचना की। वरुण ने पुन पूर्वोक्त उत्तर दिया और भृगु तप करने चल पड़े।

षष्ठ अनुवाक

आनद ही ब्रह्म है। इसी से प्राणी जन्म लेते है, जीवित रहते है तथा मृत्युपरात इसी मे लय हो जाते हैं। इसका निश्चय होने पर भृगु ब्रह्म ज्ञानी हो गए। भृगु की अनुभूत तथा वरुण द्वारा उपदिष्ट विद्या परम व्योम के रूप में स्थित है। इसका ज्ञाता ब्रह्म स्थित हो जाता है तथा अन्न, सतान, पशु, कीर्ति आदि से संपन्न बनता है।

सप्तम अनुवाक

अन्न की निदा नही करनी चाहिए। अन्न व्रत है, प्राण है शरीर इसका भोक्ता है। शरीर एव प्राण परस्पर आश्रित हैं। अन्न-अन्न में स्थित है। ऐसा जाननेवाला अन्न, सतान, पशु, ब्रह्मचर्य तथा कीर्ति से प्रतिष्ठित होता है।

अष्टम अनुवाक

अन्न की उपेक्षा न करें। जल ही अन्न है। तेज अन्न भोगी है। जल एवं तेज एक दूसरे में निहित है। इस प्रकार अन्न, अन्न में निहित है। इस तथ्य का ज्ञाता, महान ज्ञाता। अन्न संतान आदि से प्रतिष्ठित होता है।

नवम अनुवाक

अन्न वृद्धि करें, यह व्रत है। पृथ्वी ही अन्न है। पृथ्वी-आकाश एक-दूसरे पर आश्रित हैं। अन्न, अन्न में प्रतिष्ठित है। इस तथ्य का ज्ञाता अन्न कीर्ति आदि से युक्त होता है।

दशम अनुवाक

गृह मे आए को निराश न करे, यह व्रत है। बहुत अन्नवान बने, अतिथि सेवा तत्पर बने। उसका उत्तम श्रेणी का आदर करनेवाला स्वय भी उत्तम श्रेणी का, मध्यम श्रेणी का आदर करनेवाला मध्यम श्रेणी, निम्न श्रेणी का आदर करनेवाला भोजन कराने वाला निम्न श्रेणी का ही सत्कार या भोजन पाता है। उसका ज्ञाता अतिथि सत्कार करने वाला होता है।

परमेश्वर वाणी मे, प्राणापान मे, होम मे, पांवो-गुदा मे क्रमशः क्षेत्र, योगक्षेत्र, कर्म, गति तथा विसर्जन शक्ति के रूप मे है। यह आध्यात्मिक उपासना वर्णन है। वृष्टि मे, विद्युत मे पशुओं मे, नक्षत्रो मे, उपस्थ मे क्रमश· तृप्ति, शक्ति, तेज, ज्योति, प्रजनन शक्ति के रूप मे है। सहानुभूति एव आकाश सबका आश्रय है—यह परमात्मा की दैवी उपासना है।

परमेश्वर को सबका आश्रय रूप माननेवाला उपासक आश्रय युक्त हो जाता है उसे महान मानकर उपासना करनेवाला महान बन जाता है। उसे नम योग्य मानकर, मन रूप मानकर, ब्रह्म मानकर तथा दुष्ट नाशक मानकर उपासना करनेवाला क्रमश महान, मनस्वी, ब्रह्ममय तथा शत्रुओ और विद्वेषियो से हीन हो जाता है—जो इस पुरुष मे है, वह सूर्य ही है, वह एक ही है, ऐसा ज्ञाता परलोक मे पहले अन्नमय आत्मा को पाकर क्रमश· प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा अत मे आनदमय आत्मा को प्राप्त कर अभीष्ट रूप को प्राप्त होता है। सब लोको मे विचरण करता हुआ सामगान मे तल्लीन होता है।

आश्चर्य है कि मै अन्न हू और अन्न का उपभोग करता हूं। इनका सयोजक, सत्यरूप, देवों से भी पूर्व जन्मा, ब्रह्म में प्रतिष्ठित, अमृतनाभि रूप हू। जो मुझे दान देता है, मेरी रक्षा करता है, मै अन्न रूप मे अन्न भक्षण करता हू, मै निखिल जगत का तिरस्कारक हू, मेरा तेज सूर्य जैसा है। इस प्रकार का ज्ञानी भी वैसा ही सामर्थ्यवान बन जाता है।

□

शांतिपाठ :

अध्यायंतु ममांगनि वाक्प्राणचक्षुष क्षोत्रमथो बामिद्रियाणि सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषद माह ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरतेय उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु ।

ॐ शाति· शाति शांति. ।

मेरे अंगवाक, प्राण, चक्षु, कान, बल समस्त इंद्रियां वृद्धि को प्राप्त हों। उपनिषद् ब्रह्मरूप है, यह ब्रह्म मेरा तथा मै ब्रह्म का त्याग न करू। इस प्रकार ब्रह्मरत रहते यहा प्रतिपादित धर्म की प्राप्ति हो। त्रिविध ताप शांत हों।

प्रथम अध्याय

प्रथम खंड

'ओम्' इस अक्षर की उद्गाता उपासना करता है। वही परमात्मा प्रतीक है ॥1 ॥ समस्त भूतों का रस पृथ्वी तथा पृथ्वी का जल है। जल का रस औषधिया, औषधियों का मानवदेह, मानव का वाणी, वाणी का ऋचा, ऋचा का साम तथा साम का सार 'ओम्' है ॥2 ॥ इस गणना में आठवां यह 'ओम्' सब रसों के सार परमात्मा का प्रतीक है। अत इसे परमात्मा समझें ॥3 ॥ कौन ऋचा है ? कौन साम ? ॥4 ॥ उत्तर है—वाणी ऋचा, प्राण, साम तथा ओम् उद्गीथ है। ऋचा रूप और साम रूप प्राण का युगल प्रसिद्ध है ॥5 ॥

यथा—स्त्री-पुरुष युगल मिलना चाहते हैं, वैसे ही वाणी (ऋचा) तथा प्राण (साम) युगल 'ओम्' से मिलकर पूर्णकाम होते हैं ॥6 ॥ जो इस प्राप्ति के रहस्य को जानते है तथा जानकर 'ओम्' की उपासना करते हैं, वह कामनापूर्ण करानेवाला बन जाता है ॥7 ॥ यह 'ओम्' स्वीकृति रूपी भी है, क्योंकि अनुमति देने में भी 'ओम्' कहा जाता है। यह समृद्धि का मूल माना जाता है। इम तथ्य को जानकर 'ओम्' का उपासक समृद्धिशाली बनता है ॥8 ॥ इस 'ओम्' से ही तीनो वेदों की यज्ञविधिया प्रचलित हैं। अध्वर्य इसी का मंत्र सुनाता है, श्रोता प्रशसा करता है और उद्गाता ज्ञान करता है, यह सब कार्य इसी की पूजार्थ किए जाते हैं ॥9 ॥ जो इसे जानता है, समझता है वह इसी के लिए कर्मशील रहता है। विज्ञान एव कर्म पृथक्-पृथक् हैं। विज्ञान युक्त की गई उपासना ही अधिक शक्तिवती है, यह अक्षर यही कहता है ॥10 ॥

द्वितीय खंड

देव-असुर प्रजापति की दोनों सतानों में युद्ध होने लगा, तो देवों ने 'ओम्' की उपामना द्वारा ही असुरों को हराना चाहा ॥1 ॥ तब उन्होंने घ्राणशक्ति में स्थित 'ओम्' की उपामना की, किंतु अमुरों ने उमे पापभ्रष्ट कर दिया। इमीलिए वह सुगध-दुर्गंध दोनों को ग्रहण करती है ॥2 ॥ फिर

देवों ने वाणी रूपी ओम् की उपासना की ॥3 ॥ फिर नेत्र रूपी 'ओम्' की ॥4 ॥ इसके बाद क्षेत्ररूपी 'ओम्' की उपासना की ॥5 ॥ (असुरो ने हर बार उसे पाप से भ्रष्ट कर दिया इसीलिए वाणी सत्य-असत्य दोनो भाषण करती है, नेत्र उचितानुचित सब देखते है और कान भला-बुरा सब सुनते है ।)

तब देवो ने मन की 'ओम्' के रूप में उपासना की । असुरो द्वारा इसे भी पापी बना देने पर ही मन सत् और असत् दोनो का विचार करता है ॥6 ॥ अंत मे देवताओ ने प्राण को 'ओम्' मानकर उपासना की, असुरों ने इसे भी अपवित्र करना चाहा, किंतु उसके समीप जाते ही वे पत्थर से टकराए मिट्टी के टुकड़े सदृश टूट गए ॥7 ॥ असुर प्राणों को नही हरा पाए, अतः प्राण ही उपास्य है । जो अधम 'ओम्' को जाननेवाले का अहित करता है, वह मिट्टी के ढेले के समान नष्ट हो जाता है । इस मर्म का ज्ञाता अभेद्य पाषाण तुल्य होता है ॥8 ॥ शुद्ध होने से प्राण द्वारा मानव सुगध-दुर्गंध अनुभव नही करता है । इससे मनुष्य जो भी खाता-पीता है, यह सभी इंद्रियों की रक्षा करता है, अंतिम समय मे प्राण द्वारा अन्न त्यागने पर, इद्रियो की शक्ति भी देह से चली जाती है ॥9 ॥

पूर्व काल मे अंगिरा ने प्राण रूप 'ओम्' की उपासना की, अत प्राण आगरिस या समस्त अगो का रस कहलाए ॥10 ॥ बृहस्पति ने प्राण रूप 'ओम्' की उपासना की । अत प्राण बृहस्पति (बृहती-वाणी का पति) कहलाए ॥11 ॥ आयास्य ऋषि ने 'ओम्' की इसी रूप मे उपासना की । अत. प्राण आयास्य (आस्य—मुख से निकला) कहलाए ॥12 ॥ हालंबरा पुत्र बक ऋषि ने इसी रूप मे 'ओम्' की उपासना की। नैमिष वन में ऋषियों की कामना पूर्ति हेतु उद्गीथ गायन किया ॥13 ॥ इस तत्त्व का ज्ञाता निश्चय ही कामनाओ की पूर्ति करता है। यह प्राण की आध्यात्मिक उपासना है ।

तृतीय खंड

यह तपनेवाला आदित्य 'ओम्' की उपासना करता है । उदय होकर उद्गीथ गायन करता है । वह अधकार भय का भी विनाश करता है ॥1 ॥ सूर्य प्राणो के समान ही गुणोवाला है । दोनो मे उष्णता है । अस्त होते समय सूर्य स्वर कहलाता है, प्राण भी स्वर है । अत. दोनो की 'ओम्' रूप मे उपासना करनी चाहिए ॥2 ॥ 'व्यान' की भी उद्गीथ के रूप में उपासना की जाती है । श्वास ग्रहण प्राण है, वायु को मुक्त करना 'अपान' है । इन दोनो के बीच की अवस्था 'व्यान' है, यही वाणी है । इसी अवस्था में वाणी का स्पष्ट उच्चारण संभव है ॥3 ॥ वाणी ही ऋचा है । श्वास गति रोककर ऋचा का उच्चारण करता है । ऋचा ही साम है । श्वास गति रोककर सामगायन होता है । साम ही उद्गीथ है । अत मनुष्य श्वास गति को अवरुद्ध कर इसका गायन करता है ॥4 ॥ इसके अतिरिक्त शक्ति साध्य कर्म (अग्नि मथन, लक्ष्य विशेष तक दौड़ना, धनुष खीचना) भी व्यानावस्था मे ही किए जाते है । अत व्यानावस्था में उद्गीथ उपासना करे ॥5 ॥

उद्गीथ की उपासना इसके अक्षरो से भी की जाती है । प्रथम वर्ण प्राण रूप है, प्राण शक्ति से ही ऊपर उठ जाता है । दूसरा अक्षर 'गी' वाणी है, तीसरा 'थ' अन्न रूप है, जो सबका आधार है ॥6 ॥ या 'उद्' स्वर्ग, 'गी' अतरिक्ष एवं 'थ' पृथ्वी है, अथवा अग्नि आदि को ग्रहण करने से

आदित्य 'उत्' है, वायु 'गी' है तथा अग्नि 'थ' है या फिर 'उत' 'गी' तथा 'थ' क्रमश ऋक, साम एवं यजुर्वेद हैं। इस मर्म का ज्ञाता उपासक प्राणों के रहस्य को जानकर वेदों का ज्ञाता बनता है, बहुत से भोग और भोगने की शक्ति प्राप्त करता है ॥7॥ साम द्वारा उपासना करनेवाला तथा उसका चिंतन करनेवाला ऋचा के ऋषि देवता तथा छंद का भी चिंतन करे तथा स्तोत्र, दिशा एव देवता का भी चिंतन करे ॥8-11॥ साम, ऋचा आदि के ध्यान के साथ ही स्वनाम, पितृनाम, गोत्रादि कामना आदि का भी चिंतन करते हुए परमात्मा की स्तुति करनेवाला शीघ्र मनोवांछित फल प्राप्त करता है ॥12॥

चतुर्थ खंड

'ओम्', इस अक्षर को उद्गीथ रूप में उपासना करनेवाला और यज्ञ मे उसका उच्च स्वर से गायन करनेवाला सात्त्विक वृत्तिवाला है। इसी 'ओम्' की व्याख्या यहा है ॥1॥ सात्त्विक देवता तामसी मृत्यु से डरकर तीनो वेदों मे प्रविष्ट हुए, अत सब छंद आच्छादन करनेवाले कहलाए ॥2॥ जैसे मछली पकडनेवाला जल मे मछली की स्थिति जान लेता है, मृत्यु ने भी वैसे ही देवो को वेदो में प्रविष्ट हुआ जाना। देवता भी इस तथ्य को जान गए, अत· वे 'ओम् में प्रवेश कर गए ॥3॥ इस प्रकार ऋक, साम एवं यजुर्वेद को जानकर कोई भी 'ओम्' का उच्चारण करता है। स्वर होते हुए भी यह ब्रह्म का स्वरूप है, अत इसमे प्रविष्ट होने से देवता अमर-अभय हो गए ॥4॥ कोई भी व्यक्ति 'ओम्' के इस स्वरूप को जानकर इसमें प्रवेश करने से मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है ॥5॥

पंचम खंड

उद्गीथ ही प्रणव (ओम्) है और प्रणव ही उद्गीथ है, आदित्य भी प्रणव है ॥1॥ एक बार कौषीतकि ऋषि ने अपने पुत्र को बताया कि इसी आदित्य का ध्यान करने से तुम मेरे पुत्र हुए हो। तुम भी इसकी उपासना करोगे, तो तुम्हारे अनेक पुत्र होगे ॥2॥ आध्यात्मिक दृष्टि से सूर्योपासना का वर्णन इस प्रकार है—हमारा प्राण श्वास के रूप में 'ओम्' की ही उपासना करता है ॥3॥ कौषीतकि ऋषि ने पुन अपने पुत्र से पूर्वोक्त बात कही ॥4॥ प्रणव ही उद्गीथ और उद्गीथ ही प्रणव है, दोनों में अभेद है। इसे जानकर यज्ञकर्ता प्रणव के श्रेष्ठ विधान से उद्गाता की भूलों को सुधार देता है ॥6॥

षष्ठम् खंड

यह पृथ्वी ऋचारूप है, अग्नि समरूप है। यह अग्नि ऋचा पर सुव्यवस्थित है। पृथ्वी का 'स' और अग्नि के 'अम' से 'साम' गायन होता है ॥1॥ अंतरिक्ष ही ऋक है, वायु साम है और यह ऋक पर स्थित है ॥2॥ स्वर्ग ऋक और आदित्य साम है, जो ऋक पर स्थित है, जिसका गान किया जाता है ॥3॥ नक्षत्र ऋक तथा चद्रमा साम है। यह साम ऋक में स्थित है, जिसका गान किया जाता है। नक्षत्र 'सा' और चद्रमा 'म' है, दोनों मिलकर साम बनते हैं ॥4॥ आकाश में आदित्य की शुभ्र आभा है वह ऋक है, नील वर्ण साम है, जो ऋक पर स्थित है। इसी का गान किया जाता है ॥5॥ शुभ्र और नील आभा क्रमश 'सा' और 'म' है। दोनों मिलकर साम हैं। आदित्य के मध्य में दृश्मान स्वर्णिम दाढीवाला चमकीले केशोंवाला तेजस्वी देहवाला पुरु प्रकाश रूप है ॥6॥ इसके नेत्र कमल सदृश है। नाम उत् है। उसका उपासक पापमुक्त हो जाता है ॥7॥ ऋक और सामवेद तथा

उद्गाता इसी का गान करते है । यह ऊचे लोको का नियामक तथा इच्छित फलदाता है । 'ओम्' की आधिदैविक उपासना यही है ॥8 ॥

सप्तम खंड

आध्यात्मिक उपासना इस प्रकार है कि यह वाणी ही ऋक है और घ्राण 'साम' है । ।1 ॥ नेत्र ऋक है और आत्मा साम है ॥2 ॥ सोम ऋक है और मन साम ॥3 ॥ नेत्र का श्वेत प्रकाश ऋक तथा कृष्ण वर्ण साम है ॥4'॥ (प्रत्येक ऋचा के संदर्भ में ऋक स्थित है,तथा पूर्व तत्त्व सा और बाद का म है दोनो मिलकर साम होते है—अन्वय होगा) । नेत्र में दिखाई देनेवाला पुरुष ही ऋक, साम और यजुर्वेद । वही सबका कारण है । आदित्य पुरुष के समान ही नाम-गुणवाला है ॥5 ॥

यही परम पुरुष पृथ्वी के नीचे लोकों का नियता तथा इच्छित फलदाता है । वीणा मे इस परम पुरुष का गायन करनेवाले को धन प्राप्ति होती है । जो इस उद्गीथ तथा पूर्ववर्णित दोनो पुरुषों के लिए सामगान करनेवाला आदित्य लोक तथा उससे ऊपर के लोको को प्राप्त करता है । वह देवताओ, पृथ्वी लोक तथा नीचे के लोको के भोगो को भी प्राप्त करता है । यह सब जाननेवाला उदगाथा यजमान से कहता है, 'तेरी कौन-सी इच्छापूर्ति हेतु सामगान करू । वह गायन से इच्छापूर्ण कर लेता है ॥7-9 ॥

अष्टम खंड

शीलवान के पुत्र शिलक, चिकितायन पुत्र दालभ्य तथा जीबल पुत्र प्रवाहण—ये तीनों ऋषि उद्गीथ गान में कुशल थे । एक दिन मिलकर वे अपने ज्ञान की चर्चा करने लगे ॥1 ॥ वे एक स्थान पर बैठे । प्रवाहण ने कहा, 'आज्ञा हो तो मैं प्रश्न करू ?' दालभ्य ने स्वीकृति दे दी । ।3 ॥ शिलक ने पूछा, 'उद्गीथ का आश्रय क्या है ?' दालभ्य—'स्वर ।' शिलक—'स्वर का आश्रय' दालभ्ये—'प्राण' । शिलक ने फिर कहा, 'प्राण का आधार' दालभ्य—'अन्न का आश्रय ?' दालभ्य ने कहा—'अन्न का आश्रय जल है, जिसके बिना अन्नोत्पत्ति संभव नही है ॥4 ॥ 'जल का आश्रय' इस प्रश्न पर दालभ्य ने कहा— 'स्वर्ग, क्योकि जल स्वर्ग से बरसता है ।' शिलक द्वारा स्वर्ग का आधार पूछने पर दालभ्य ने कहा—'स्वर्ग अनतिक्रमणीय है । हम साम की स्थिति स्वर्ग से मानते है और स्वर्ग भाव से उसे पूजते हैं ॥5 ॥

फिर शिलक ने दालभ्य से पूछा, 'तुम्हारा साम उचित नही । यदि कोई अविवेकी शास्त्रार्थी तुम्हें कहे कि तुम्हारा मस्तक गिर जाए, तो यह अभी गिर जाए । दालभ्य ने कहा—'मै भी आपसे साम की स्थिति जानना चाहता हू ।' शिलक की स्वीकृति मिलने पर दालभ्य ने पूछा—'स्वर्ग का आधार क्या है ?' शिलक—'स्वर्ग लोक का पोषण होता है ।' दालभ्य—इस लोक का आश्रय कौन है ? शिलक—'पृथ्वी सबका आधार है । अतः इसका अतिक्रमण नही करना चाहिए । पृथ्वी की स्तुति की जाती है । साम पृथ्वी का आधारवाला है ॥6 ॥ प्रवाहण ने कहा—'तुम्हारा साम अतार्किक है । अत कोई तुमसे सिर गिरने को कहे, तो तुम्हारा सिर गिर जाए ।' शिलक द्वारा इस रहस्य पर पूछने की आज्ञा मांगी गई । प्रवाहण ने सहमति दी ।

नवम खंड

शिलक ने पूछा—'इस लोक का आश्रय कौन है ?' प्रवाहण ने कहा—'चराचर आकाश से ही पैदा होते है तथा उसी में विलीन हो जाते है, अत लोक का आश्रय आकाश है। परमात्मा जीवो से महान है। अत त्रिकाल में वही सबका आश्रय है ॥1 ॥ वही श्रेष्ठातिश्रेष्ठ और अनंत है। इस रूप मे इसे समझकर उद्‌गीथ के उपासक निरतर वृद्धि और श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होते है ॥2 ॥ एक समय अविधन्वा ऋषि ने उदर-शांडिल्य को यह रहस्य बताते हुए कहा था, 'जब तक तेरी सताने इस रहस्य को जानती रहेंगी, उनका यह लोक तथा परलोक श्रेष्ठ रहेगा ॥3 ॥ इस रहस्य का ज्ञाता दोनों ही लोकों मे क्रमश उन्नत स्थान पाता है ॥4 ॥

दशम खंड

कुरू देश मे ओलावृद्धि के परिणाम स्वरूप अकाल पड़ गया, तब उषस्ति ऋषि अपनी पत्नी के साथ दीनावस्था मे महावतो के गावो मे रहते थे ॥1 ॥एक महावत उडद खा रहा था। उषस्ति ने उससे भिक्षा मागी। महावत ने कहा, 'जिन उडदो को मै खा रहा हूं, इसके अलावा मेरे पास कुछ नही है।' ऋषि ने कहा, 'यही उडद दे दो।' महावत ने उड़द देते हुए कहा, 'इन्हे खाकर जल पी लो।' ऋषि बोले, 'जल पीने से जूठे का दोष लगेगा।' महावत ने कहा, 'उडद भी तो जूठे है।' ऋषि बोले, 'उडद न खाने से मैं मर सकता था, किंतु जल तो मुझे अन्यत्र भी मिल जाएगा।' उपस्ति ने आधे उडद खाकर आधे पत्नी को दिए। वह पहले ही अच्छा भोजन पा चुकी थी। उसने उडद को रख दिया ॥2-5 ॥

दूसरी प्रात· उठने पर ऋषि ने पत्नी से कहा, कुछ भोजन मिल जाए तो फिर कुछ काम करू। पास में एक राजा यज्ञ कर रहा है, वह मुझे यज्ञ मे ऋत्विज वना सकता है ॥6 ॥ पत्नी ने रखे हुए उडद दे दिए। उन्ही को खाकर ऋषि यज्ञ मे पहुचे। उन्होंने प्रस्तोता, उद्‌गाता तथा 'ऋत्विज से क्रमश (पृथक्-पृथक्) कहा—जिस देवता की तुम स्तुति तुम (उद्‌गान और प्रतिहरण) उसे जाने बिना करोगे, तो तुम्हारा सिर गिर पडेगा।' यह सुनकर सभी ने यज्ञ वद कर दिया ॥7-11 ॥

एकादश खंड

तव उपस्ति से राजा ने कहा, 'मै आपका, परिचय जानना चाहता हू।' ऋषि वोले, 'मै चक्र का पुत्र उपस्ति हू।' राजा वोला, 'मै आपके यश से परिचित हूं। पहले मैंने आपको खोजा, आप नही मिले, तब अन्यों का वरण करना पडा। कृपया अव मेरे यज्ञ को सपूर्ण करें।' ऋषि ने महमत होते हुए कहा, 'प्रस्तोता आदि कार्य करें। जितना धन सबको मिलाकर मिले उतना ही मुझे भी मिले।' राजा महमत हो गया ॥2-3 ॥ प्रस्तोता, उद्‌गाता तथा ऋत्विज तीनों उनके पास आए। उन तीनों ने क्रमश उनसे कहा, 'आपने मुझमे कहा कि जिस देवता की तुम स्तुति (उद्‌गान या प्रतिहरण) करते हो, यदि उमे नही जानते तो तुम्हारा मस्तक गिर जाएगा। कृपया वतलाइए वह देवता कौन है ?' ॥4 ॥ उन्होंने प्रस्तोता से कहा, 'वह देवता प्राण है। प्रलय के समय सव इसी में समा जाते है।' 'समस्त प्राणी आदित्य का गान करते है। वही उद्‌गीथ से सबधित आदि। तुम्हारा देवता है।

प्रतिहर्ता से कहा, 'प्रतिहरण विषयक देवता है । अन्न ग्रहण करने से ही जीवन सभव है ।' (अत तुम इसे न जानते हुए यदि स्तुति, उद्गान अथवा प्रतिहरण करते, तो तुम्हारा सिर गिर पडता) ॥5-9 ॥

द्वादश खंड

अन्न हेतु अलौकिक श्वानकृत उद्गान प्रारंभ होता है । एक समय बक और ग्लाव ऋषि स्वाध्याय हेतु गाव के बाहर पानी के पास बैठे । उनके स्वाध्याय से सतुष्ट एक अलौकिक कुत्ता प्रकट हुआ । फिर छोटे-छोटे अनेक कुत्तो ने आकर उस कुत्ते से कहा, 'हम भूखे है, अत अन्न के लिए आप उद्गीथ गायन कीजिए ।' सफेद कुत्ता बोला, 'कल प्रात यहा आना ।' इस विस्मयकारी घटना से आकृष्ट वक और ग्लाव भी दूसरे दिन प्रातः वहां पहुचे । जैसे बहिष्पवमान मे सम्मिलित स्तुति करते है, वैसे ही कुत्ते भी एक-दूसरे की पूछ को मुंह से पकड़कर घूमने लगे । फिर बैठकर हिकार गाने लगे—ॐ खाइए, ॐ पीजिए, ॐवरुण, प्रजापति हमे अन्न दो । हमारे लिए अन्न लाओ (1-5) ॥

त्रयोदश खंड

साम विषयक एक उपासना, इसमे 'हाउ', 'हाई', 'अथ', 'इह' और 'ई' को क्रमश पृथ्वीलोक, वायुलोक, चद्रमा, आत्मा और अग्नि के लिए प्रयुक्त समझकर यह उपासना करनी चाहिए ।

'ऊ', 'ए' 'औहोवि' 'हि' 'स्वर', 'या' और 'वाक' क्रमश. आदित्य, आ मत्रण बोधक, विश्वेदेवा, प्रजापति, प्राण, अन्न और विराट स्वरूप समझना चाहिए । नेरहवा 'हू' है, जिसे सबमे व्याप्त कारण रूप समझना चाहिए । इस स्त्रोत को समझकर उपासना करनेवाले की वाणी स्वयं अपना रहस्य प्रकट कर देती है । वह व्यक्ति बहुत अन्नवाला तथा भोगने की शक्तिवाला होता है ।

द्वितीय अध्याय

प्रथम खंड

मनीषियों का कथन है, अशेष श्रेष्ठ साम ही है । साम की सब उपासना श्रेष्ठ है । अश्र साम नही है । यदि कोई कहे कि वह साम द्वारा सम्राट के पास गया, तो इससे श्रेष्ठ भावना व्यक्त होती है । 'असाम' द्वारा जाना इसके विरुद्ध समझा जाता है । स्वय के अनुभव से साम प्राप्त हुआ खेदजनक है । साम की साधुता को जानकर इसकी उपासना करने से शीघ्र श्रेष्ठ कर्म की प्राप्ति होती है(1-4) ॥

द्वितीय खंड

लोक में पांच प्रकार की सामोपासना है । पृथ्वी, अग्नि, अंतरिक्ष, आदित्य एव स्वर्ग क्रमश हिकार, प्रस्ताव, उद्गीथ प्रतिहार एव निधन है । ऊर्ध्व लोकों में इसी प्रकार साम की दृष्टि है । अधोलोकों में भी पांच प्रकार की सामोपासना है । वहा हिकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार एव निधन क्रमश. स्वर्ग, आदित्य, अंतरिक्ष, अग्नि एवं पृथ्वी है । इस तत्त्व का जो ज्ञाता श्रेष्ठ साम की उपासना करता है, उसे ऊर्ध्व एवं अधो लोकों का उपभोग मिलता है (1-3) ॥

तृतीय खंड

वर्षा की पंचविध उपासना है। पुरोवायु हिकार है, जो मेघ पैदा करती है, यह प्रस्ताव है, जल वर्षण उद्गीथ है, बिजली चमकना प्रतिहार तथा वर्षा रुकना निधन है। इसका ज्ञाता पंचप्रकारक साम का उपासक इच्छानुसार जल वर्षा कर सकता है(1-2) ॥

चतुर्थ खंड

समस्त जलों में पंचविध सामोपासना करे। घनीभूत मेघ, वर्षा, पूर्व वाहिनी नदिया, पश्चिम वाहिनी नदिया और समुद्र क्रमश हिकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन है। इसकी जल मे उपासना करनेवाला ज्ञाता जल से नही मरता और निर्जल स्थानों मे भी जल प्राप्त करता है। (1-2)

पंचम खंड

ऋतुओं में भी पांच प्रकार की सामोपासना की जाए। बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद एव हेमत क्रमश हिकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार एवं निधन है। इस प्रकार पाच प्रकार से ऋतुओ मे सामोपासना करनेवाले को ऋतुएं उपयुक्त भोग देती है। (1-2)

षष्ठ खंड

पशु विषय सामोपासना भी पचविध है। बकरी, भेड, अश्व और पुरुष क्रमश हिकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन हैं। इसका ज्ञाता पचप्रकारक सामोपोषक पशुधन से समृद्ध रहता है।(1-2)

सप्तम खंड

इद्रियों में भी यही नियम है। प्राण, वाणी, नेत्र, कान तथा मन क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार तथा निधन है। इस श्रेष्ठ प्राणों के पचविधि साम का उपासक श्रेष्ठ जीवन तथा लोको को प्राप्त करता है। (1-2)

अष्टम खंड

साम की सप्तविधि उपासना—वाणी की सप्तविधि उपासना होती है। शब्द का 'हुम', 'प्र', 'अ', 'उत्', 'प्रति', 'उप' और निरूप क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, ओम्, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन हैं। इसके सम्यक् ज्ञाता उपासक को वाणी अपना सार देती है तथा वह बहुत अन्नवान बनता है।(1-3)

नवम खंड

प्रसिद्ध आदित्य की दृष्टि से समार्चन करें। सदा सम रहने से आदित्य साम है। वह सबमें सभावना देता है। इसमें सभी आश्रित हैं। इसका उदय से पूर्व का रूप हिंकार है। इस रूप से पशु अनुगत होते है। वे आदित्य साम को भजने के कारण ही उसके उदय पर हिंकार करते है। उदय के बाद का प्रथम रूप प्रस्ताव है। इससे मनुष्य उसका भजन करके अनुगत होते हैं। इसके बाद का संकटकाल का आदित्य 'ओम्' है। इसको भजते हुए पक्षी अतरिक्ष मे चले जाते हैं। वे ही इस रूप

से अनुगत होते है। मध्य दिन का सूर्य उद्‌गीथ है। इसे देवता भजते है, प्रजापति की श्रेष्ठ सतान है। (1-5)

इसके बाद अपराह्न से पूर्व का सूर्य प्रतिहार है। इसे इसके अनुगत गर्भस्थ भजते है। अपराह्न के बाद अस्त से पूर्व का सूर्य उपद्रव है। वन्य पशु इसी से अनुगत है। इसी को भजते है। इससे वे वन में जाकर निरातंक हो जाते है। अस्त होता हुआ सूर्य निधन है। इससे पितृगण अनुगत है, वे इसी का भजन करते है। इस प्रकार सात रूपोवाले आदित्य रूप साम की उपासना है।(6-8)

दशम खंड

अतिमृत्यु रूप साम की सप्तविध उपासना करे। हिंकार और प्रस्ताव दोनो तीन वर्णवाले है। आदि दो अक्षरोंवाला तथा प्रतिहार चार अक्षरोंवाला है, इसमे से एक वर्ण आदि मे डालने पर दोनो में बराबर हो जाएगे। उद्‌गीथ और उपद्रव क्रमश. तीन एवं चार वर्णो के है। बादवाले मे एक वर्ण अधिक है। यह भी वर्ण है। तीन वाला भी नाम है। निधन तीन अक्षरीय है। इन सात विभागो मे कुल बाईस अक्षर है। इक्कीस अक्षरो से साधक स्वर्गलोक जाता है। बारह माह, पाच ऋतुए और तीन लोक मिलकर बीस है। आदित्य इक्कीसवां है। बाईस अक्षरों से साधक को आदित्य से श्रेष्ठ लोक मिलता है। इक्कीस की सख्या से आदित्य प्राप्य है। इस प्रकार का आदित्य ममान ज्ञाता मृत्यु जय हेतु सामोपासना करता है। (1-6)

एकादश खंड

मन हिंकार है, वाणी प्रस्ताव, नेत्र उद्‌गीथ, कान प्रतिहार और नासिका निधन है। गायत्री साम प्राणो में प्रतिष्ठित है। इसकी उपासना करनेवाला प्राणवान बनता है, पूर्ण आयु, उज्ज्वल जीवन, सतान, पशु, कीर्ति तथा मनस्वितामय होता है।

द्वादश खंड

अभिमंथन हिंकार है, धुआ प्रस्ताव, जलना उद्‌गीथ, अहकार प्रतिहार और अग्निशांत होना निधन है। इस रथतर साम अग्नि का उपासक तेजस्वी, चिरायु धन-धान्य, सतान आदि संपन्न होता है। अग्नि की ओर मुखकर न सोए और न कुछ खाए यह व्रत है। (1-2)

त्रयोदश खंड

उपमत्रणा हिंकार है, ज्ञापन प्रस्ताव है, स्त्री उद्‌गीथ है, उसके साथ सोना प्रतिहार तथा समय बिताना निधन है। दांपत्य जीवन के नियमों का पालन करते हुए उपासना करने वाला गृहस्थ सुख, सतान, आयु आदि का भोग करता है। परस्त्री कामना न करे व्यभिचार से दूर रहे यह व्रत है।(1-2)

चतुर्दश खंड

उदय होता सूर्य हिंकार, उगा हुआ प्रस्ताव, मध्य दिन का उद्‌गीथ अपराह्न का प्रतिहार तथा अस्तकाल का निधन है। यह वृहत साम आदित्य में रहता है। जो इसकी उपामना करता है, वह कातियुक्त, दीर्घायु, यशस्वी तथा सपन्न होता है। आदित्य निदा न करे यह व्रत है। (1-2)

पंचदश खंड

वादलों का भागना,बिजली चमकना,वर्षा होना,गर्जन होना तथा वर्षा समाप्ति क्रमश हिकार प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार एवं निधन है। यह वैरूप साम पर्जन्य मे स्थित है। इसकी उपासना करनेवाला सतान,पशु कीर्ति से समृद्ध रहता है। मेघ निदा न करे यह व्रत है।

षोडश खंड

वसत,ग्रीष्म,वर्षा,शरद तथा हेमंत क्रमश हिकार प्रस्ताव,उद्‌गीथ,प्रतिहार तथा निधन हैं। वैराज नाम यह साम ऋतुओं में स्थित है। वैराज साम की ऋतुओ में उपासना करनेवाला पूर्वोक्त रूप में समृद्ध होता है। ऋतु निदा न करे,यह व्रत है।(1-2)

सप्तदश खंड

पृथ्वी,अंतरिक्ष,स्वर्ग,दिशा एव समुद्र क्रमश हिकार,प्रस्ताव,उद्‌गीथ,प्रतिहार एव निधन है। यह शक्वरी साम लोकों मे स्थित है। शक्वरी सामो को लोको में स्थित मानकर उपासना करनेवाला पूर्वोक्त विशिष्टताओं से समृद्ध होता है। लोकनिदा न करे,यह व्रत है। (1-2)

अष्टदश खंड

बकरी हिंकार है,भेड़ प्रस्ताव,गो उद्‌गीथ,घोडा प्रतिहार तथा मानव निधन है। यह खेती साम पशुओ मे स्थित है। इसे इस प्रकार जानकर ..(पूर्ववत्) पशु निदा न करे यह व्रत है(1-2)।

उनविंश खंड

लोभ हिंकार है, त्वचा प्रस्ताव है, मांस उद्‌गीथ अस्थि प्रतिहार तथा मज्जा निधन है। यह यज्ञायज्ञीय सामोपासना है। इसे अंगों सहित जानकर उपासना करनेवाला सपूर्ण अगों से युक्त संतान,पशुओं. (पूर्ववत्) मांसाहारी भी एक वर्ष तक निरामिष भोजी बने यह व्रत है(1-2)।

विंश खंड

अग्नि हिंकार,वायु प्रस्ताव,आदित्य,उद्‌गीथ,नक्षत्र प्रतिहार तथा चद्रमा निधन है। यह राजन साम देवों में स्थित है। इसे इसी प्रकार समझकर उपासना करनेवाला, देवलोक, ऋषिलोक तथा ईश्वर के सायुज्य को प्राप्त होता है। पूर्ण आयु, सतान (पूर्व के समान) ब्रह्म वेत्ताओं की निदा न करना इसमें व्रत है(1-2)।

एकविंश खंड

त्रयी विद्या (वेद विद्या) हिंकार है,तीनों लोक प्रस्ताव,अग्नि,वायु और आदित्य— ये उद्‌गीथ, नक्षत्र,किरण और पक्षी प्रतिहार तथा सर्व,गधर्व एवं पितृ निधन हैं। यह सब मे है। जो इस साम समूह को वेद विद्या स्थित जानकर इसकी उपासना करता है,वह ईश्वर रूप वनता है। यहा वताए गए पांचों में तीन-तीन के समूह मे वढकर विश्व में कुछ भी नही है। इस उपासना को करनेवाला सभी दिशाओं से भोग पाता है। मैं सब कुछ हूं,इस भाव की पूजा व्रत है।

द्वाविंश खंड

विनर्दि नामक साम,पशु धन में हितकारक है,ऐसा अग्नि गान है । प्रजापति का गायन अस्पष्ट, सोम का स्पष्ट,वायु का मधुर,इंद्र का बलवान मधुर,गुरु का क्रौंच पक्षी के शब्द के समान वरुण का भग्न कास्यपात्र जैसा । सबका उच्चारण करें,किंतु वरुण का न करे । देवों के लिए अमृत पान की व्यवस्था के विचार से उद्गान करें । मित्रो को स्वधा,मनुष्यों के लिए अभीष्ट,पशुओ,यजमान तथा स्वय के लिए क्रमश घास,स्वर्ग तथा अन्न साधन का ध्यान करना चाहिए । तब स्तुति करे । सपूर्ण स्वर इंद्र की आत्मा है,ऊष्म एव स्पर्श अक्षर क्रमश. प्रजापति एव मृत्यु के आत्मा है । स्वर मे दोष निकालने वाले से उद्गाता कहे कि वह तब इंद्र का आश्रित था अत इंद्र ही उत्तर देगा । यदि कोई ऊष्म या स्पर्श अक्षरों मे दोष निकाले,तो उनसे भी कहे कि मैं इनके देवताओ के आश्रय मे . . (पूर्ववत्) सभी स्वर सघोष बलपूर्वक उच्चरित हों । इंद्र के प्रयत्न की कल्पना करनी चाहिए । सभी ऊष्म स्वर अग्रस्त,अनिस्त तथा विवृत बोले जाएं । उच्चारण के समय प्रजापति को आत्मा देने की कल्पना करें । स्पर्शाक्षर धीरे स्पष्ट बोलें उस समय मृत्यु को'शरीर से बाहर निकालने का विचार करें ।(1-5) ।

त्रयोविंश खंड

यज्ञ, अध्ययन और दान कर्म के तीन भाग है । जो क्रमश ब्रह्मचर्य, गुरुकुल वास तथा वहा रहकर शरीर को कष्ट देना ही है । ये सभी पुण्यलोक तथा अमृत प्राप्त करानेवाले है । प्रजापति को लोकों के सार ऋक्, यजुष्, और साम की प्रतीति हुई । इन पर विशेष ध्यान देने पर उसे 'भू ', 'भुव ' और 'स्व ' की प्रतीति हुई । तीनो का सार ग्रहण करने पर 'ओम्' प्रतीत हुआ,यही ब्रह्म है । जैसे पत्ते के शकु से उसमें नसें व्याप्त रहती है,वैसे ही 'ओम्' समस्त वाणी में व्यापक होने से परमात्मा ही है,यही सब कुछ है । (1-3)

चतुर्विंश खंड

ब्रह्मवादी कहते है कि प्रातःकाल, मध्य दिन तथा साय का सवन क्रमश वसुओं, रुद्रो तथा आदित्यों का है । तब यदि यजमान के लोक के विषय में यज्ञकर्ता नहीं जानता तो वह अज्ञानी है । उसके ज्ञाता को ही यज्ञ करना चाहिए । प्रात ऋचा पाठ से पूर्व यजमान उत्तर को मुख करके 'वसु' देव का गायन करता है । 'हे अग्नि अंपने द्वार खोलो,जिससे राज्य प्राप्ति हेतु हम तुम्हे देख सकें' । अग्न को नमस्कार करके 'मै इस यजमान लोक को प्राप्त करूगा मृत्युपरांत यहा जाऊगा ।' कहकर हवन के बाद 'परिधि दूर करो' कहकर बैठता है । तब वसुदेव उसे प्रात स्तवन देते है ।1-6 ।

मध्य दिन के सवन मे यजमान उत्तराभिमुख,दक्षिणाग्नि के लिए पीछे बैठे । रुद्र का साम गान करे—'हे रुद्र अतरिक्ष प्राप्त के लिए मार्ग दो । वैराज प्राप्ति के लिए हम तेरा दर्शन करेंगे । फिर—'अंतरिक्षवासी लोक स्थित वायु को नमस्कार । मुझे लोक प्राप्ति कराओ । मै इस यजमान लोक में जाऊंगा . स्वाहा परिधि दूर करो' ऐसा करनेवाले को रुद्र मध्य दिवस सवन प्रदान करते है । (7-10)

तृतीय सवन के आदि में आह्वनीय के पीछे उत्तराभिमुख बैठें। आदित्य का नाम गान करे, 'हे अग्नि स्वराज्य प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा दर्शन करेंगे। स्वर्ग द्वार खोलो।', फिर विश्वेदेव का गायन करे 'स्वर्ग के निवासी विश्वेदेव तथा आदित्यो, नमस्कार मुझ यजमान को इस लोक की प्राप्ति कराओ। आयु पूर्ण होने पर यहा आऊगा—स्वाहा।' पुन उठकर 'परिधि दूर करो' कहे। ऐसे यजमान को ये देवता तृतीय सवन प्रदान करते है। इसके ज्ञाता को इसकी प्राप्ति सभव है। (11-16)

तृतीय अध्याय

प्रथम खंड

ओकार ही सूर्य का मधु, द्यौ एव अतरिक्ष क्रमश दड एव छत्र तथा किरणे मधुमक्खियो के बच्चों की तरह हैं। पूर्व दिशा की किरणें 'ऋचाए' ऋग्वेद तथा सोमादि क्रमश छतो के छिद्र, मधुमक्खी, पुष्प तथा अमृत रूपी जल है। ऋग्वेद की ऋचाएं प्रकाशक, यज्ञादि से कीर्ति प्रकाश आदि तथा भक्षणीय पदार्थो की उत्पत्ति हुई। विशेष रूप मे गतिशील वह रस आदित्य के पूर्व भाग में आश्रित है। सूर्य का लाल वर्ण यही रस है। (1-4)

द्वितीय खंड

सूर्य की दाहिनी किरणे, यजुर्वेद के मंत्र, यह वेद तथा सोम क्रमश छत्ते की दक्षिण मधु पर्क, मधुमक्खी, पुष्प तथा अमृत रूप जलादि है। इन्ही मत्रो ने यजुर्वेद को प्रभावी बनाया है, जिससे कीर्ति बल एवं भक्षणीय पदार्थ जन्मे। इन सबके रस ने आदित्य का आश्रय लिया, यही सूर्य का शुभ्र वर्ण है। (1-3)

तृतीय खंड

सूर्य की पश्चिमी किरणें, साममत्री, सामवेद तथा सोमादि क्रमश पश्चिमी मधुनलिकाए, मधुमक्खी पुष्प और अमृतादि जल है। साममंत्रों ने इस वेद को तप्त किया, जिससे कीर्ति आदि तथा भक्षणीय अन्न उपजे। इस रस ने सूर्य के चारों ओर आश्रय लिया, जो सूर्य के काले वर्ण के रूप में है। (1-3)

चतुर्थ खंड

इसकी उत्तरी किरणें, अग्नि रस, इतिहास, पुराण, सोमादि क्रमश उत्तरी मधुनलिकाएं, मधुमक्खी, पुण्य, अमृतादि जल है। मत्रों ने इतिहास आदि को अभितप्त करके कीर्ति तेजादि (पूर्ववत) उत्पन्न किए। यह रस सूर्य के चारों ओर आश्रित हुआ। सूर्य का गहन श्यामवर्ण यही है (1-3)

पंचम खंड

ऊर्ध्व किरणें, गुह्य आदेश, प्राण और सोम क्रमश ऊर्ध्व मधुनलिकाए आदि हैं। गुह्य आदेशों ने प्रणव को व्याप्त किया, जिससे कीर्ति आदि उत्पन्न हुए। इस रस ने (पूर्ववत) आदित्य का आश्रय

लिया। आदित्य के मध्य में गतिशील दृश्यमान यही मधु है। लाल आदि वर्ण रस है। रस रूप वेदो के यह रस है। ये वेद ही अमृतों के अमृत हैं (1-4)

षष्ठम खंड

इनके प्रथम अमृत से अग्नि द्वारा वसुगण जीवित रहते है। देवता बिना खाए-पिए इस अमृत के अनुभव से ही तृप्त रहते है। वसु इस रूप से ही शात हो जाते हैं तथा यथासमय क्रियाशील होते है। इस तथ्य का ज्ञाता वसु बनकर इस अमृत के अनुभव से ही तृप्त होता है। उन्ही के समान इस रूप से शात एव क्रियाशील होता है। वह सूर्य के उदय से अस्त तक के राज्य को वसुओं से प्राप्त करता है (1-4)

सप्तम खंड

अब द्वितीय अमृत द्वारा रुद्रादि इंद्र के सहयोग से जीवित रहते है। भूख-प्यास का अनुभव न होने से देवता इसके दर्शन मात्र से तृप्त होते है तथा उदासीन एवं सक्रिय होते है। इसे जानकर उपासना करनेवाला एक रुद्र बनकर इंद्र की प्रधानता से अमृत-दर्शन से ही तृप्त होता है, तथा सूर्य के उदय से...(पूर्ववत्) (1-4)

अष्टम खंड

अब तृतीय अमृत द्वारा आदित्यगण वरुण द्वारा जीवित रहते है। देवता न तो खाते हैं न पीते है। (शेष उपर्युक्त षष्ठम खड के समान अन्वय होगा। केवल यहा इंद्र के स्थान पर वरुण पढा जाएगा। अत मे वसुओं के स्थान पर आदित्य पढा जाएगा)।(1-4)

नवम खंड

अब चतुर्थ अमृत द्वारा मरुद्‌गण सोम की प्रधानता से उपजीवन करते हैं। (शेष षष्ठम खंड के समान केवल वसुगण के स्थान पर मरुद्‌गण, वसु के स्थान पर मरुद् आदि पढ़ा जाएगा। (1-4)

दशम खंड

पचम अमृत से साध्यगण ब्रह्म द्वारा जीवन धारण करते हैं। (शेष सप्तम खड के समान पढा जाए, केवल रुद्र के स्थान पर साध्य तथा इंद्र के स्थान पर ब्रह्म पढ़ें) ।(1-4)

एकादश खंड

इसके बाद प्राणी ब्रह्म मे मिलकर न तो उदय होते हैं न अस्त। वे अपनी अद्वितीय आशा में स्थित हो जाते हैं। ब्रह्मलोक में सूर्योदय या सूर्यास्त नही होता। देवो मै सत्य द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करूं। इस रहस्य के ज्ञाता के लिए सूर्योदय अथवा अस्त नही होता, सदा दिन ही रहता है। यह मधुविद्या हिरण्यगर्भ, विराट, मनु, प्रजा, अरुण तथा उद्दालक को (क्रमश. अपने पूर्व लिखित से) प्राप्त हुई। इस ज्ञान को पिता ज्येष्ठ पुत्र को तथा आचार्य शिष्य को दे, अन्य किसी को न दे। चाहे आचार्य को धन भरे समुद्र से युक्त पृथ्वी दे दे फिर भी यह ज्ञान बड़ा है।

द्वादश: खंड

गायत्री निरूपण—गायत्री सभी प्राणी रूप है। समस्त चराचर गायत्री ही है। वाणी गायत्री है। वाणी ही बोली जाती है तथा रक्षा करती है। यही गायत्री पृथ्वी है, जिसमे अखिल प्राणी रहते है, इसका कोई उल्लघन नही कर सकता। पृथ्वी रूप गायत्री ही शरीर है। इसमें प्राण स्थित है, जो इसे नही छोडते। शरीर ही अत हृदय है, जिसमें प्राण रहते है, इसे नही त्यागते। यह गायत्री चार चरणवाली और छ प्रकार की है। इसका मंत्र है—इस गायत्री रूप ब्रह्म की ऐसी ही महिमा है। पुरुष इससे भी महान है। इस ब्रह्म का एक चरण सभी प्राणी है। त्रिपाद पुरुष अमृत—त्रिपादमय आत्मा में स्थित है। यह प्रसिद्ध ब्रह्म, पुरुष के बाहर आकाश स्थित भीतर आकाश स्थित तथा हृदयकमल भीतर स्थित आकाश मे भी यही ब्रह्म है। इस पूर्ण अनश्वर ब्रह्म का उपासक पूर्ण अछेद्य विभूति को मिल जाता है (1-9)

त्रयोदश खंड

गायत्री उपासना के पच प्राण—शरीर मे देवों द्वारा रक्षा करने के लिए पाच छेद है। पूर्वी छिद्र प्राण, चक्षु प्राण तेज और अनाद्य है। यह जानकर इसकी उपासना करनेवाला तेजस्वी होता है। दक्षिण छिद्र व्यान, क्षोत्र, चद्रमा, विभूति और कीर्ति है। पश्चिम छिद्र अपान, वाणी और अग्नि है। उत्तरवाला छिद्र समान, अतकरण, मेद्य तथा कीर्ति एवं व्यष्टि है। ऊर्ध्व छिद्र उदान, वायु, मह है। इन चारों को जानकर उपासना करनेवाला क्रमश विभूति-कीर्तिवाला तेज प्रदीप्त जठराग्निवाला, यश-लावण्ययुक्त तथा बलयुक्त महानतावाला होता है। हृदय स्थित परमात्मा के ये पाच पुरुष स्वर्ग के द्वारपाल है, इनके उपासक के वश में वीर जन्म लेते है। इनका उपासक परमात्मा को पाता है। स्वर्ग से भी ऊपर प्रकाशित होनेवाली ख्याति इसी पुरुष की अत ज्योति है। स्पर्श से उष्णता होने पर इस ज्योति का ज्ञान होता है।

इसे सुनने के लिए दोनों कानों को अंगुलियो से बद करने पर शरीर मे रथ की, बैल की अथवा जलती अग्नि की ध्वनि सुनाई देती है। इसे पुष्ट एवं श्रुत जानकर उपासना करनेवाला दर्शनीय तथा यशस्वी बनता है (1-9)

चतुर्दश खंड

सगुणोपासना—निश्चय ही यह ब्रह्म है, क्योंकि जगत इसी से उत्पन्न, इसी में स्थित तथा लय होनेवाला है। इसकी उपासना राग-द्वेष से मुक्त होकर करें। इस देह में जैसे निश्चयवाला जीवन होता है, प्राण त्यागने पर वैसा ही बनता है। अत सत निश्चय करें। परमात्मा मनोमय, प्रशरीरवाला, आभा रूप, सत्य संकल्प, आकाश रूपी आत्मा वाला, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगध, मर्वरस तथा सर्वव्यापक, वाणी रहित, ससभ्रम है। यह मेरा आत्मा चावल, जौ, सरसों आदि से भी मृक्ष्म तथा अंतरिक्षादि मे भी विशाल है। यही ब्रह्म है। देह त्यागने पर भी यह मुझे प्राप्त होगा। शाडिल्य ने कहा है, इस प्रकार के दृढ़ निश्चयवाला ईश्वरत्व को प्राप्त होता है। (1-4)

पंचदश खंड

अतरिक्ष उदरवाला, पृथ्वी रूप मूल्यवाला कभी जीर्ण नही होता। दिशाएं इसके कोण, द्यौ द्वार हैं। यह कोश वसुधा है। सभी इसमे स्थित हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाए इसकी जुहू, राज्ञी, सुभु तथा सहमाना नामवाली है। इनका वायु वत्स है। अपने पुत्र हेतु जो इस वायु की उपासना करता है, वह पुत्र के लिए रोता नही है। मै इसी उद्देश्य से इसकी उपासना करता हू। अत. पुत्र के लिए दु.खी न होऊं। मै. इसके साथ अविनाशी कोण की शरण हू। मै इस . के साथ प्राण की शरण में हू (इसी प्रकार भू की शरण हू, भुव की शरण हू। 'इसके स्थान पर पुत्र का नाम लें) मैंने जो कहा प्राण की शरण हूं, तात्पर्य है सर्वभूत प्राण की शरण हूं। मै भू की शरण का अर्थ स्वर्ग, पृथ्वी और अतरिक्ष की शरण है। भुव· की शरण का अर्थ अग्नि और वायु की शरण है। फिर स्व· की शरण का अर्थ ऋक, साम एव यजुर्वेद की शरण हूं-है। (1-7)

षोडश खंड

स्वदीर्घ जीवन हेतु प्राणोपासना—पुरुष ही यज्ञ है। उसके चौबीस वर्ष प्रात सवन है। इसका सवध गायत्री से है। गायत्री के भी चौवीस अक्षर है। प्राण वसु है, क्योकि वे सबको बनाते है। इस वय मे दु खी लोग यह प्रार्थना करें 'प्राण रूप वसुओ, मेरे प्रात.सवन को माध्यांदिन यज्ञ से एक रूप कर दो, जिसमें वसुओं से विच्छेद न कर पाऊं। अतः वह दु.ख मुक्त हो जाता है। चवालीस वर्ष माध्यांदिन यज्ञ है, जो त्रिष्टुप से सबद्ध है। त्रिष्टुप के 44 अक्षर होते हैं। इसके अनुगत रुद्र हैं। प्राण रुद्र हैं, क्योंकि यह सबको रुलाते है। इस अवस्था में दु ख मुक्ति हेतु यह मंत्र जपें—'प्राणरूप रुद्रो, इसे तृतीय सवन से एकरूप कर दो जिससे मेरा तुमसे विच्छेद न हो। इससे वह दु.ख मुक्त हो जाता है। अडतालीस वर्ष सायकालीन तृतीय सवन है। यह अड़तालीस अक्षर के जगती छद से सबद्ध हे। इसके अनुगत आदित्य है। इस उम्र का दु ख निवारक मत्र यह है—'प्राणरूप आदित्यो, मेरे इस तृतीय सवन को 116 वर्ष की आयु से मिला दो। जिससे मै यज्ञरूपी आदित्यो से विच्छिन्न न होऊ।' इससे वह दु खमुक्त हो जाता है। इस उपासना के ज्ञाता महिदास ने कहा था, 'रोग तू मुझे क्यों कष्ट देता है ? इससे मै नही मर सकता।' इससे वह 116 वर्ष जीवित रहा। ऐसी उपासना करनेवाला नीरोग रहकर 116 वर्ष जीवित रहता है।

सप्तदश खंड

आत्म यज्ञ—खाने की, पीने की इच्छा करना और उसमें आसक्त न होना ही उसकी दीक्षा है। खाने-पीनेवाला, आसक्तिवाला 'उपसद' प्राप्त करता है। हंसने, भक्षण करने तथा मैथुन करनेवाले स्तुति के स्त्रोत्रों को पाते हैं। तप-दान दक्षिणा है। प्रसूत होना जन्म तथा यज्ञांतका अवमृत मरण है। आंगिरस ऋषि ने यह मंत्र देवकी पुत्र कृष्ण को दिया, जो मरणकाल में जय है (1) तू अतरिक्ष है (2) तू नाशरहित है (3) तू सूक्ष्म प्राण है। आचार्य के वचनों से कृष्ण अन्य उपासनाओ से निर्लिप्त हो गए। पूर्व कारण से हम अज्ञाननाशक श्रेष्ठ प्रकाश का अनुभव करते हैं। हृदय स्थित परम ज्योति का अनुभव करते हुए दैवीय प्रकाश को प्राप्त करते हैं। यह इस विषयक रचनाएं है।(1-7)

अष्टादश खंड

अंतःकरण को परमात्मा मानकर उपासना करें। आकाश की इस रूप मे उपासना करें। यह दोनों क्रमश आध्यात्मिक और अधिदैविक उपासनाएं है। इस चतुष्पाद ब्रह्म के वाणी, घ्राण, नेत्र और श्रोत्र पाद है। यह अध्यात्म है। आधिदैविक दृष्टि से आकाश ब्रह्म है, अग्नि, वायु, आदित्य और दिशा इसके चार चरण है। यह आध्यात्मिक एवं आधिदैविक दोनों उपदेश है। वाणी, मनरूप ब्रह्म का चतुर्थ पाद है, जो अग्नि रूप ज्योति से प्रकाशित और गतिमान होता है। घ्राण ब्रह्म का चौथा पाद है। चक्षु ब्रह्म का चौथा पाद है। श्रोत्र ब्रह्म का चौथा पाद है। (ये तीनों चतुर्थ पाद क्रमश वायु रूप ज्योति से, आदित्य रूप ज्योति से तथा दिशा रूप ज्योति से प्रकाशित होते है। इस प्रकार जो इनकी उपासना करता है, कीर्ति, यश और ब्रह्म तेज से प्रकाशमान होता है।

एकोनविंश खंड

आदित्य रूप में ब्रह्म उपासना—कहते है, ब्रह्म आदित्य है, वह सर्वज्ञ पहले असत् था फिर सत् हुआ फिर एकीभूत होकर अंडा रूप बना। अंडा फूटने पर उसके अवयव सोना-चादी बने। चादी से पृथ्वी स्वर्ण से द्यौ, स्थूल भाग से पर्वत, सूक्ष्म से मेघ-कुहरा, शिराओ से नदिया तथा मूत्राशय के जल से समुद्र हुआ। अडे का गर्भ आदित्य है। इसके जन्म से नाद शब्द तथा समस्त चराचर जगत बना। यह आदित्य है, इस भावना से उपासना करनेवाला श्रेष्ठ शब्द और सुखो को पाता है (1-4)

चतुर्थ अध्याय

प्रथम खंड

प्रसिद्ध राजा जनश्रुति का प्रपौत्र दानी था। उसके घर में अत्यधिक भोजन बनता था तथा राज्य में अनेक भोजनालय बनाए गए थे, जहा लोग भोजन कर सकें। एक रात्रि राजा ने दो हस उडते देखे। एक हस बोला, 'मूर्ख । जनश्रुति के पौत्र का तेज दिवस के समान है। इसे स्पर्श न कर, जला देगा।' दूसरा बोला, तू क्यों इस राजा का इतना बखान करता है ? क्या यह गाडीवाले रैक्व के सदृश्य है ? पहला हस बोला 'जैसे यज्ञ विजय से सब नीचे हो जाते है। वैसे ही प्रजा का समस्त पुण्य उसे मिलता है। मुझे बताया गया है कि अन्यों के अविदित को भी रैक्व जानता है।' राजा यह सब सुन रहा था। प्रात उसने चरणों से कहा कि गाडीवाले रैक्व को बुलाए। सेवकों ने पूछा कि 'रैक्व कौन है ?' राजा ने पूर्व वृत्तांत दोहरा दिया। बहुत ढूंढ़ने पर भी रैक्व को न पाकर सेवक लौट आए। राजा ने कहा, 'उसे ब्रह्म वेत्ताओं के जैसे एकात स्थानों में ढूंढें । "सेवकों को यह एक निर्जन स्थान पर गाड़ी के नीचे बैठा स्वय को खुजलाता हुआ मिला। सेवकों द्वारा पूछे जाने पर उसने स्वय को रैक्व बताया। सेवक वापस लौट आए। (1-8)

द्वितीय खंड

वह राजा छ सौ गाएं, हार तथा खच्चरी सहित रथ लेकर रैक्व के पास गया। उसने रैक्व से यह सब स्वीकार करने की प्रार्थना की, तथा उसके उपास्य का उपदेश देने को कहा। रैक्व ने उसे शूद्र शब्द से सबोधित करते हुए सारे उपहार ठुकरा दिए। राजा पुन एक हजार गाए, हार, खच्चरी

सहित रथ तथा अपनी पुत्री को लेकर वहां गया तथा पुनः राजा ने यह सब चीजे और वह गांव भी उसे देना चाहा और उपदेश देने की प्रार्थना की। राजकन्या को विद्याग्रहण का साधन समझकर राजा को पुन शूद्र कहा तथा उसकी प्रार्थना मान ली। यह गांव रैक्व पर्ण नाम से प्रसिद्ध हुआ। रैक्व ने कहना प्रारभ किया। (1-5)

तृतीय खंड

संवर्ग विद्या—वायु ही सवर्ग है। शात अग्नि वायु मे लीन हो जाती है। प्रलय काल में सूर्य भी वायु में मिल जाता है, चंद्र भी, और सूखने पर जल भी। वायु इन सबको लीन करनेवाला है। यह अधिदैवत उपासना और आध्यात्मिक दृष्टि से प्राण सवर्ग है। सोने पर वाणी, चक्षु श्रोत्र और मन सब प्राण मे ही लीन होते है। इस प्रकार दो, सवर्ग है, वायु देवताओं में तथा प्राण इंद्रियो में। एक बार कापेथ शौनक तथा कक्षतेन पुत्र अभिप्रतारी भोजन करने बैठे थे। उसी समय एक ब्रह्मचारी द्वारा भिक्षा मागने पर उन्होने मना कर दिया। चार महान लोगो को त्रिभुवन रक्षक प्रजापति लील जाता है। शौनक । अज्ञानी उसे नही देखते। अभिप्रतारी ! यह अन्न जिसके लिए आया है, उसे नही देते हो। शौनक ने कहा हम उस देवता को जानते है। अग्नि, वाणी आदि प्रजा का जनक, भक्षणस्वभावी तथा अन्य किसी द्वारा अभक्षणीय और अभक्ष्य को भी खा जाता है। हम इसी की उपासना करते हैं। तब भिखारी को भिक्षा की प्राप्ति हुई। ये अग्नि आदि पांच तत्त्व, वाणी आदि पांच इद्रिया कुल दस कृत समान होते है। यह विराट ही अन्न भक्षक है। इस प्रकार के ज्ञाता उपासक को सब ज्ञान होकर प्रदीप्त जठराग्नि मिलती है (1-7)

चतुर्थ खंड

सत्यकाम ने अपनी मा से कहा, 'मा, मै आचार्य के आश्रम मे ब्रह्मचर्याश्रम में रहना चाहता हू। मेरा क्या गोत्र है ?' मा बोली युवावस्था में मैंने अनेक अतिथियों की सेवा की थी, तभी तेरा जन्म हुआ। अत. मै तेरा गोत्र नही जानती। मेरा नाम जबाला है और तू सत्यकाम है। तू आचार्य को अपना नाम सत्यकाम जबाला बताना। वह गौतम के पास गया और बोला, 'हे आचार्य । मै आपके यहां ब्रह्मचर्या श्रम व्यतीत करना चाहता हूं।' ऋषि ने उससे नाम एवं गोत्र पूछा। उसने अपनी मा द्वारा बताया गया उत्तर दोहरा दिया। प्रसन्न होकर ऋषि बोले 'एक ब्रह्म ही इतना सत्य बोल सकता है। तुम सत्य से विचलित नही हुए। समिधा लाओ, मै तुम्हारा उपनयन सस्कार करूगा।' उसका सस्कार करने पर ऋषि ने उसे 400 दुबली गाएं चराने को दीं। सत्यकाम ने एक हजार गाए किए बिना न लौटाने की शपथ ली तथा घास-जलवाली जगह ले गया। बहुत समय बाद एक हजार गायो के होने तक वापस न आया।

पंचम खंड

एक बार एक वृषभ बोला, 'सत्यकाम अब हमारी सख्या एक हजार हो गई है, हमें आचार्य के पास ले चलो। मै तुम्हें ब्रह्म का एक पाद बताता हूं।' सत्यकाम की स्वीकृति पर वह आगे बोला, 'ब्रह्म का प्रथम पाद पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशा रूपी कलाओंवाला तथा प्रकाशमान है। ब्रह्म के

इस कलामय पद को जाननेवाला उपासक लोकविख्यात तथा मृत्यु पाने पर प्रकाशमय लोकों को प्राप्त होता है।'

षष्ठम खंड

वृषभ आगे बोला, 'ब्रह्म का द्वितीय चरण अग्नि द्वारा प्राप्त होगा।' गायो को ले जाता हुआ सत्यकाम सध्या के समय रुककर अग्नि के पास पूर्वाभिमुख बैठ गया। अग्नि ने सत्यकाम को ब्रह्म का पाद बताना प्रारंभ किया, 'पृथ्वी, अतरिक्ष, स्वर्ग तथा समुद्र की कलाओंवाला ब्रह्म का अनंत नामक पाद है। इस पाद को जानकर उपासना करनेवाला पृथ्वी पर आनंदमय तथा अक्षयलोक प्राप्त करता है।'

सप्तम खंड

अग्नि बोला, 'अन्य पाद हंस तुम्हें बताएगा।' दूसरी सध्या गायों के साथ ठहरकर अग्नि के समक्ष समिधा सहित पश्चिमाभिमुख बैठा। तभी एक हंस 'सौम्य, मै ब्रह्मपाद बताता हू। अग्नि, सूर्य, चंद्र तथा विद्युत की कलाओंवाला ब्रह्म का ज्योतिमान पाद है इसे सही-सही जानकर उपासना करनेवाला इस लोक में प्रकाशमान होता है तथा मृत्यु के बाद,प्रकाशमय लोकों को जाता है।

अष्टम खंड

'मद्गु नामक जलपक्षी तुम्हें अन्य पाठ का उपदेश देगा' यह कहकर हंस उड गया। दूसरी संध्या, पहले के अनुसार वह पूर्वाभिमुख बैठ गया। मद्गु ने आकर कहना आरभ किया, 'प्राण, पक्ष क्षेत्र, तथा मन रूपी कलावाले ब्रह्म का यह आयतन नामक पाद है। जो इस आयतन पाद की उपासना करता है, इस लोक में आश्रय तथा मृत्योपरात आयतन लोक को पाता है।

नवम खंड

आचार्य के पास पहुंचने पर सत्यकाम से वह बोले, सौम्य! तुम ब्रह्मवेत्ता जैसे दीखते हो, तुम्हें किसने उपदेश दिया?' सत्यकाम बोला, 'मुझे मनुष्येतर प्राणियों ने उपदेश दिया है। आप भी दें, क्योंकि मैंने सुना है कि आचार्य प्रदत्त ज्ञान ही श्रेष्ठ होता है।' इस पर आचार्य ने उसे सोलह कलावाली विद्या का पूर्ण उपदेश दिया।

दशम खंड

कमल पुत्र उपकोशल सत्यकाम के आश्रम का ब्रह्मचारी था। बारह वर्षो तक अग्नि-सेवा करने पर भी उसका समावर्तन नहीं हुआ जबकि अन्य ब्रह्मचारियों का समावर्तन हो चुका था। आचार्य पत्नी जया बोली 'सत्यकाम ने यथाविधि अग्नि-सेवा की है। अग्नि या अपनी निंदा करो अथवा इसे उपदेश दो 'सत्यकाम कही प्रवास में चला गया। दु:खी होकर उपकोशल अनशन करने लगा। गुरु पत्नी के भोजन का आग्रह करने पर उपकोशल बोला। मनुष्य को दु:खी करनेवाली अनेक कामनाएं होती हैं, इसीलिए मै भोजन नही करूंगा।' तब तीनों अग्नियों ने परस्पर कहा, 'इसने हमारी समुचित सेवा की है। अत: हमें इसे ब्रह्मोपदेश देना चाहिए।' अग्नि उससे बोली, 'प्राण, क तथा ख ब्रह्म हैं। कोशल ने कहा प्राण को तो मैं जानता हूं, किंतु क और ख क्या है?'

अग्नियों ने बताया' 'क (सुख) तथा ख (आकाश) दोनो एक ही है। इस प्रकार उपकोशल को यह उपदेश मिला।

एकादश खंड

गार्हपत्स अग्नि का उपदेश— 'पृथ्वी, अग्नि, अन्न तथा आदि, यह चार मेरे ही रूप हैं। सूर्य में दृश्यमान पुरुष मै ही हू। ऐसा जानकर उपासना करनेवाला, निष्पाप होता है, अग्निलोक, पूर्ण आयु एव यश प्राप्त करता है। हम उसका परलोक में भी पालन करते है।

द्वादश खंड

दक्षिणाग्नि ने कहा—जल, दिशाए, नक्षत्र एवं चंद्रमा ये मेरे ही शरीर है। विद्युत मे दृश्यमान पुरुष भी मै ही हू। इन रूपों को समझकर उपासना करनेवाला (शेष इससे पूर्व के समान)।

त्रयोदश खंड

आह्वनीय अग्नि ने कहा— प्राण, आकाश, स्वर्ग तथा विद्युत मेरे चार शरीर है। चद्र में दीखनेवाला पुरुष मै ही हूं। (शेष इससे पूर्व के समान)।

चतुर्दश खंड

अग्नियों ने कहा, 'उपकोशल' यह विद्या तेरे लिए आत्मविद्या तथा अग्नि विद्या है। इनकी फलप्राप्ति विद्या आचार्य तुम्हें बता ही चुके हैं।' आने पर आचार्य ने उसे ब्रह्मवेत्ता जैसे देखकर उपदेशक का नाम पूछा। उसने पूर्व वृत्तांत कहा। तब आचार्य ने कहा—यह लोक विद्या है। अब मैं तुम्हें वह ज्ञान देता हू, जिससे मानव पापों के कीचड से कमल के समान मुक्त हो जाता है।

पंचदश खंड

आचार्य कहने लगे—आंखों में दीखनेवाला पुरुष अविनाशी अभय ब्रह्म है। वहां घी अथवा पानी डालने पर पलकों में आ जाता है। यह समस्त शोभन वस्तुए तथा पुण्य फल प्राप्त करनेवाला है। यह प्रकाश रूप तथा लोकों में आदित्य रूप से प्रकाशित है। इसका उपासक शोभायुक्त होता है। इसके ज्ञाता की चाहे पत्येपिठ हो अथवा न हो, वह आर्चिदेव को प्राप्त होता है। आर्चिर्देव, दिवस, शुक्ल पक्ष, उत्तरायण, वर्ष, आदित्य, चद्र एव विद्युत को (पहले से क्रमश एक के बाद दूसरे को) प्राप्त होता है। वहा से कोई अमानव पुरुष इसे ब्रह्म के पास पहुचा देता है। यहां पहुचने पर पुरुप कभी भी इस लोक में वापस नही आता।

षोडश खंड

नित्यकर्म अनुष्ठान—चलती हुई वायु निश्चय यज्ञ ही है। यह चलामान जगत को पवित्र करती है। वाणी-मन इस यज्ञ को करते हैं। उनमें दो मार्गो के सस्कारक क्रमश ब्रह्म (मन द्वारा) तथा अध्वर्यु (वाणी द्वारा) हैं। प्रात अनुवाक की अंतिम ऋचापूर्व ही ब्रह्म के बोलने पर एक ही मार्ग सस्कार होता है। दूसरा नष्ट हो जाता है। यथा लंगडा या एक पहिया रथ नष्ट हो जाते है, वैसे ही यज्ञ तथा यजमान भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसे यज्ञ से पाप भी लगता है। यदि इस अनुवाक की

समाप्तिक ब्रह्मा न बोलो, तो ऋत्विज दोनो संस्कारो को प्राप्त करते है । दो पहियोंवालों रथ तथा दो पांववाले व्यक्ति के समान यह यज्ञ स्थिर रहता है, और यजमान भी । इस यज्ञ से वह श्रेष्ठ होता है ।

सप्तदश खंड

लोकों हेतु प्रजापति ने तप किया । इन लोकों में पृथ्वी से अग्नि, अतरिक्ष से वायु तथा स्वर्ग से आदित्य रूप रस ग्रहण किया । इन तीन देवताओ के लिए तप करके इनसे क्रमश. ऋक, यजुष एवं सामरूपी रस प्राप्त किया । फिर इन वेदों के लिए तप किया और इनसे क्रमश भू , भुव और स्व रूपी रस निकला । अब यदि ऋचा में छिद्र हो तो भू ,स्वाहा द्वारा गार्हपत्य हवन करे । यज्ञ ऋचा का छिद्र ऋचा के सार एव वीर्य से सुधरेगा । यजुषों में छिद्र होने पर भुव स्व कहकर दक्षिणाग्नि हवन करना चाहिए यह दोष यजुष के सार और वीर्य से सुधरेगा ।

साम में छिद्र होने पर 'स्व स्वाहा से आह्वनीय होम करे । यह साम के सार एवं शक्ति से ही सुधरेगा ।' जैसे सुहागे से स्वर्ण, स्वर्ण से चांदी, चांदी से रांगा, रागे से सीसा, सीसे से लोहा तथा लोहे या चमड़े से काष्ठ जोड़ा जाता है वैसे ही देवताओं तथा नई विद्या के रस से यज्ञ छिद्रव्य सशोधन होता है । इसके ज्ञाता ब्रह्मा से युक्त यज्ञ उत्तर दिशा प्राप्त कराता है । कहा गया है—यज्ञ में जहा-जहां छिद्र होता है, ब्रह्मा उसे सुधार देता है । योग्य ब्रह्मा रूप एक ही ऋत्विक समस्त यज्ञकर्ताओं का नेतृत्व करता है । घोडे द्वारा योद्धा की आज्ञा-पालन के समान ब्रह्मा समस्त ऋत्विको की त्रुटियों को संभाल लेता है । योग्य ज्ञाता को ही ब्रह्मा बनाएं, अयोग्य को कदा नही ।

पंचम अध्याय

प्रथम खंड

पचाग्नि विद्या—प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है । इसे जाननेवाला निश्चय ज्येष्ठ एव श्रेष्ठ होता है । जो वशिष्ठ (श्रेष्ठ धनी) को जानता है वह अपने वर्ग का श्रेष्ठ धनी वनता है । वाणी ही वशिष्ठ है । श्रोत्र संपत्ति है । इसका ज्ञाता अपने समुदाय में परम संपत्तिवान होता है । चक्षु ही प्रतिष्ठा है, इसका ज्ञाता लोक-परलोक में प्रतिष्ठित होता है । मन ही आयतन (आश्रय) है । इसे जाननेवाला अपने समुदाय का आश्रय वनता है ।

एक वार सभी इंद्रियां अपने को श्रेष्ठ वताती हुई विवाद करने लगी । तब उन्होंने ब्रह्मा से पूछा, 'हममें कौन श्रेष्ठ है ?' ब्रह्मा ने कहा, 'जिसके निकल जाने से शरीर सर्वाधिक शव जैसा दीखे वही श्रेष्ठ है ।' वाणी एक वर्ष तक शरीर से बाहर रही । उसने शरीर से कहा मेरे विना तुम कैसे जिए ?' अन्य इद्रियों ने कहा, 'जैसे गूंगा अन्य सभी काम करता है । वैसे ही हम जीवित रहे । फिर एक वर्ष प्रवास के वाद चक्षुओं ने वही प्रश्न किया । इंद्रियां बोली, 'जैसे अधा न देखने पर भी अन्य सभी क्रियाएं करता है । वैसे ही हम जीवित रही ।' तव नेत्र पुन· शरीगत हो गए । उसी प्रकार कान भी एक वर्ष तक वाहर हो गए । आकर उन्होंने भी वही प्रश्न किया और अन्य इद्रियो ने कहा, 'जैसे वहरा न सुनने पर भी वोलता आदि है, वैसे हम जीवित रही ।' कान वापस आ गए । अव मन भी एक साल वाहर रहा और वापस आकर इसी प्रकार पूछने लगा । इंद्रियों ने कहा, 'जैसे शिशु-विना

मन के सारी क्रियाए करता है वैसे ही हम जीवित रही ।' मन पुन शरीर में आ गया । अंत में प्राणों ने बाहर आना चाहा । तभी जैसे शक्तिशाली अश्व पैर से बधे खूटो को उखाड डालता है, वैसे ही प्राण वाणी आदि को उखाडने लगा । तब सभी इद्रियां उसके पास जाकर कहने लगीं, 'आप अपने स्थान पर रहिए, बाहर न जाइए, आप ही श्रेष्ठ हैं । तब वाणी ने प्राण से कहा, 'मै नहीं, वस्तुत. तुम्ही वरिष्ठ हो ।' चक्षु बोला, 'मै भले ही प्रतिष्ठा कहलाता हूं, वस्तुत तुम्ही प्रतिष्ठा हो ।' कान ने कहा, 'मै नही, तुम्ही सपत हो ।' मन बोला, 'आश्रय तुम्ही हो, मै नाममात्र का हूं ।' इसीलिए इद्रिया वाणी, चक्षु आदि न कहलाकर एक साथ प्राण कही जाती है । वस्तुतः प्राण ही सर्वस्व है ।

द्वितीय खंड

प्राणों का अन्न—मुख्य प्राण बोला, 'मेरा अन्न क्या है ?' इद्रियां बोलीं, 'कुत्ते पक्षियो आदि समस्त प्राणियों का अन्न सब तुम्हारा ही है ।' अतः प्राण अन्न भी कहलाता है । इसे जाननेवाला कभी भी अखाद्य नही बनता । प्राण बोला मेरा वस्त्र क्या है ?' वाणी आदि बोले जल, क्योकि भोजन से पूर्व और पश्चात आचमन रूप वस्त्र पहनाते है ।' इसे जाननेवाला वस्त्रहीन नही होता । इस उपासना को व्याघ्रपाद ने पुत्र गोश्रुति से कहा, 'यदि सूखे ठूंठ से भी इस उपासना को कहेगा तो वह हरा हो जाएगा ।' अभिलाषी अमावस्या को दीक्षा लेकर पूर्णिमा की रात्रि मे सभी औषधियों दही एव मधु का मथ बनाकर अवशेष घृत मथ में डालते हुए 'ज्येष्ठाय श्रेष्ठय स्वाहा' मत्र से आहुति दे । फिर 'वरिष्ठाय स्वाह' मत्र से आहुति दो, घी को मथ मे टपकाए । 'प्रतिष्ठाये स्वाहा' 'संपदे स्वाहा' तथा 'आयतनाय स्वाहा' से आहुतिया देकर घी मथ मे टपकाएं । फिर अग्नि के पास अंजलि बाधकर यह मत्र पढें 'तू ही प्राण है, ज्येष्ठ है, श्रेष्ठ है, प्रकाशमान और पालक' है । मुझे ज्येष्ठत्व, प्रकाशता तथा पालनकत्व दो । मै सब कुछ बनूं, 'फिर मत्र का प्रत्येक पद कहकर मथ का ग्रास खाए 'तत्सवितुवृणीमहे' 'वयं देवस्य भोजनम' 'श्रेष्ठं सर्वथातम्', 'तुर भागस्य धीमहि' अति मत्र मे कटोरा चम्मच धोकर के पी जाए । अब अग्नि के पश्चिम में मृगछाला अथवा भूमि पर वाणी सयम से सोए । स्वप्न मे स्त्री दर्शन हो तो, कार्य सफल समझे । ऐसा भी कथन है कि चाहे हुए कार्य मे स्वप्न में स्त्री दर्शन सफलता सूचक है ।

तृतीय खंड

अग्नि विद्या—प्रजाहरण ने उससे कहा, 'तुमने अपने पिता से शिक्षा पाई है ।' श्वेतकेतु के हां कहने पर प्रजाहरण पुन कहने लगे, 'बताओ मानव इस लोक से जाने पर कहां जाते है ?' श्वेतकेतु ने अनभिज्ञता प्रकट की । इसी प्रकार प्रवाहण ने मनुष्य किस प्रकार लौटकर आते हैं ? देवयान-पितृयान के पृथक् होने का स्थान कहां पर है ? पितृलोक कैसे नही मरता ? पाचवी आहुति में जल पुरुष नामवाला कैसे बनता है ? यह चार प्रश्न किए । श्वेतकेतु ने सभी में अनभिज्ञता व्यक्त की । प्रवाहण ने कहा, 'जो इन प्रश्नों का उत्तर न दे सके वह कैसा शिक्षित है ।' श्वेतकेतु पिता के समीप आया और बोला, 'आप कहते हैं कि आपने मुझे उपदेश दिया, यह झूठ है । मै प्रवाहण के पाच में से एक प्रश्न का भी उत्तर न दे सका' पिता ने स्पष्ट किया कि 'जैसे इनके उत्तर तुम्हारी तरह तो मैं भी नही जानता तव बताता कैसे ? एक प्रश्न को भी जानता, तो अवश्य बताता' ।

तब पिता आरुणि स्वय प्रवाहण के दरबार में गए, राजा ने उसकी सम्मान सहित पूजा की। दूसरे दिन पुन दरबार मे राजा ने कहा 'भगवन आप भौतिक संपत्ति का वर मांगिए।' आरुणि ने इसे अस्वीकार कर दिया और पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने चाहे। दुःखी होते हुए भी राजा ने ब्राह्मण को निराश करना उचित न समझा तथा दीर्घ अवधि तक वही रुकने को कहा। समय आने पर राजा ने बताना प्रारभ किया—तुमने जिस विद्या के विषय में पूछा है यह ब्राह्मणों के पास है ही नही। सर्वत्र क्षत्रिय ही इसके उपदेशक रहे है।' राजा ने उपदेश प्रारंभ किया—

चतुर्थ खंड

हे गौतम, स्वर्ग ही अग्नि, आदित्य समिधा, किरणे धुआ, दिवस ज्वाला, चद्र अगार तथा नक्षत्र चिनगारिया है। देवों द्वारा इस यज्ञ मे श्रद्धा का हवन होने पर राजा सोम पैदा होता है।

पंचम खंड

प्रसिद्ध पर्जन्य अग्नि है। वायु, बादल, विद्युत, वज्र और गर्जन क्रमश समिधा, धुआ, ज्वाला, अगार और चिनगारिया है। देवो द्वारा सोम हवन करने पर वृष्टि होती है।

षष्ठम खंड

पृथ्वी अग्नि, सवत्सर समिधा, आकाश धुआ, रात्रि ज्वाला, दिशाए, अगार तथा दिशा कोण चिनगारिया है। देवों द्वारा इसमें वृष्टिका हवन होने पर अन्न पैदा होता है।

सप्तम खंड

पुरुष अग्नि, वाणी समिधा, प्राण धुआं, जिह्वा ज्वाला, नेत्र अगार तथा क्षेत्र चिनगारिया है। देवो द्वारा इसमें अन्न हवन किए जाने पर वीर्य पैदा होता है।

अष्टम खंड

स्त्री अग्नि है, उपस्थ समिधा, उपमंत्रणा धूम, योनि आग, प्रवेश अगार और आनद चिनगारिया हैं। अग्नि (गर्भ) में देवो द्वारा शुक्र हवन से गर्भ उत्पन्न होता है।

नवम खंड

पाचवी आहुति में जल पुरुष होता है। दस अथवा नौ मास तक मातृ उदर में जरायु मे लिपटा सोता है। जन्मने पर प्राप्त आयु तक जीकर पुन मृत्यु पर परलोक जाते हुए अग्नि के पास पहुचाया जाता है, जो इसका उत्पत्ति अथवा कारण-स्थल है।

दशम खंड

पचाग्नि के इस प्रकार की तथा वनवासी होकर तप की उपासना करनेवाले अग्नि को प्राप्त होते हैं। (अग्नि से) यहां से अमानव पुरुष ब्रह्मलोक ले जाता है, वर्णन चतुर्थ अध्याय पचदश खड के इसी वर्णन जैसा है। यह देवयान मार्ग है। गृहस्थ जीवन में इष्ट, पूर्व एव दत्त अनुष्ठान करनेवाले धूम को प्राप्त होते हैं। फिर उत्तरोत्तर क्रमश रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, तृलोक, आकाश और चद्रमा को (एक से दूसरे को) प्राप्त होते हैं। अतरिक्ष में दिखनेवाला सोमरूप राजा देवों का भक्ष्य अन्न है।

कर्मफल् की समाप्ति तक यहा रहकर इसी मार्ग से लौटते हैं। वादल से मेघ तथा मेघ से वर्षा होती है। तव वे प्राणी वर्षा के साथ लौटकर चावल आदि अन्न बनते हैं। यह अत्यंत कष्टकर योनि है। अन्न खाकर बने वीर्य से सतान उत्पन्न होती है। वैसा ही जीव बनता है शुभकर्मा ब्राह्मण आदि तीन वर्णो में तथा अशुभ कर्मवाले कुत्ता, सुअर आदि निम्न योनियों मे जन्म लेते है। इन दोनों में किसी में न जानेवाला 'जन्म लेते रहो, मरते रहो—' ऐसी गति को प्राप्त होता है। अतः परलोक जीवो से नही भरता। ससार की गति बडी घृणास्पद है। चोर, शराबी, गुरुपत्नीगामी, ब्रह्मघातक और पाचवा इनके साथ रहनेवाला भी पतित है। इस पंचाग्नि विद्या का ज्ञाता पापी सगति मे मुक्त होकर शुद्ध एव पवित्र लोक को जाता है।

एकादश खंड

अधोगति से मुक्ति का उपाय—प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इद्रद्युम्न, जन और वुडिल चारों गृहस्थ महाश्रोत्रियों ने विचार किया, आत्मा और ब्रह्म क्या है ? किसी निष्कर्प पर न पहुंचने पर ये विद्वान आत्मारूप वेश्वानर के ज्ञाता उद्दालक के पास पहुचे। उद्दालक ने सोचा कि वह इन महान लोगों को यह विपय ठीक से नही वता सकेगा। अतः वह इस विषय के परम ज्ञाता राजा अश्वपति के पास उनके साथ गया। राजा ने प्रत्येक का सत्कार किया। दूसरी प्रात उनसे कहने लगा—मेरे राज्य में कोई कदर्य, मद्यप (शराबी) अग्निहोत्रहीन, विद्यारहित अथवा व्यभिचारी नही है। मै यज्ञ करता हू। प्रत्येक ऋत्विज को जितना धन देता हू, आपको भी दूंगा। यही रुक जाइए। अतिथियो ने कहा, 'हमारा यह उद्देश्य नही है। हमें आप आत्मारूपी वैश्वानर का उपदेश दीजिए।' इसके लिए राजा ने उन्हे दूसरी प्रात बुलाया, समय पर वे शिष्य बनकर राजा के पास गए। उन्हे उपनयन किए विना राजा ने कहना प्रारभ किया।

द्वादश खंड

'हे प्राचीनशाल, तुम्हारा उपास्य कौन है ?' 'वैश्वानर' प्राचीनशाल ने कहा। राजा वोला, तुम्हारा उपास्य श्रेष्ठ तेजस्वी वैश्वानर आत्मा है। तुममें सुत, प्रासुत, असुत, भक्षण क्रिया, इष्टदर्शन इसी का अश है। इस प्रकार जो इसे समझता है, उसका कुल ब्रह्मतेजोमय होता है। इस वैश्वानर का केवल मस्तक ही है। यदि तुम यहां न आए होते तो तुम्हारा मस्तक गिर जाता।

त्रयोदश खंड

राजा ने सत्ययज्ञ से कहा—तुम किस आत्मा के उपासक हो ? सत्ययज्ञ ने कहा, 'आदित्य की' राजा ने कहा—यह विश्वरूप वैश्वानर ही है। तुम्हारे शरीर में अथवा तुम्हारी समस्त सपत्तिया इसी के कारण है। ऐसा कुल व्रह्मतेजयुक्त होता है, किंतु इसके केवल चक्षु ही है। यदि तुम मेरे यहा न आते, तो अंधे हो जाते।

चतुर्दश खंड

इंद्रद्युम्न से भी पूर्वोक्त प्रश्न किया। इंद्रद्युम्न ने अपना उपास्य वायु को वताया। राजा ने कहा—तुम्हारा उपास्य आत्म वैश्वानर ही है। इमसे तुम मिलते रहते हो। तुम्हारी सारी क्रियाएं एव

सपत्ति इसी के कारण है। इसका उपासक ब्रह्मतेजोमय रहता है। यह आत्मा केवल प्राण ही है। यदि तुम यहां न आते, तो तुम्हारी देह से प्राण निकल जाते।

पंचदश खंड

राजा ने जन से भी वही प्रश्न किया, उत्तर मिला—'आकाश'। राजा ने फिर उसे वैश्वानर आत्मा बताया तथा इसका महत्त्व भी पूर्वोक्त बताते हुए कहा यह वैश्वानर केवल उदरवाला ही है। यदि तुम मेरे पास न पहुंचते, तो तुम्हारा उदर फट जाता।

षोडश खंड

बुडिस से भी यही प्रश्न पूछने पर उसने अपना उपास्य जल को बताया। इसे भी राजा ने पूर्वोक्त नाम एव गुणोवाला बताया, साथ ही कहा कि इस आत्मा का केवल मूत्राशय ही है। यदि तुम यहा न आते तो तुम्हारा मूत्राशय फट जाता।

सप्तदश खंड

उद्दालक से भी प्रश्न किए जाने पर उत्तर मिला— 'पृथ्वी'। राजा ने इसे भी पगरूप वैश्वानर बताते हुए इसी प्रकार उसकी महत्ता पूर्वोक्त रूप मे बताई। यह आत्मा का पग मत्र है। यदि तुम यहा न आते, तो तुम्हारे पग शिथिल पड़ जाते।

अष्टादश खंड

तुम सब वैश्वानर आत्मा को पृथक् मानकर भोजन करते हो। यदि 'यह मै ही हू—' इस सर्वात्म भाव से उपासना हो, तो वह सब लोकों, भूतो तथा आत्माओं मे भोजन करता है। इस वैश्वानर का मस्तक, नेत्र, प्राण, उदर, मूत्राशय और दोनों चरण क्रमश. स्वर्ग, सूर्य, वायु, आकाश, जल तथा पृथ्वी है। इसी भावना से उपासना करे। इसका वक्ष, लोभ, हृदय, मन एवं मुख क्रमश वेदी, दर्भ, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आह्वनीय अग्नि हैं।

एकोनविंश खंड

पके अन्न की पहले 'प्राणाय स्वाहा' कहकर आहुति दें। यह प्राणों को तृप्त करेगा तब नेत्र, आदित्य, स्वर्ग, द्यौ और स्वर्ग का आश्रय क्रमशः अपने बादवाले को तृप्त करेंगे। इनकी तृप्ति पर वह प्रजा, पशु, भोजन एव ब्रह्मतेज से तृप्त होगा।

विंश खंड

दूसरी आहुति 'व्यानाय स्वाहा' कहकर देने से व्यान तृप्त होता है। फिर व्यान, श्रोत्र, चद्र दिशा तथा वह स्वयं इस क्रम में पहलेवाला, बादवाले को तृप्त करेंगे। 'स्वयं' पर चद्रमा आश्रित है। स्वय (ब्रह्म) तृप्ति मे उपासक नाना सपत्ति, धनधान्य तथा ब्रह्मतेज मे युक्त होता है।

एकविंश खंड

तृतीय आहुति 'अपानाय स्वाहा' मंत्र से देने पर अपान तृप्त होता है। अपान से वाणी, वाणी से अग्नि, अग्नि से पृथ्वी तथा पृथ्वी से अग्नि एव पृथ्वी का आश्रय तृप्त होता है। इसके पश्चात् वह ... युक्त होता है (पूर्ववत्)।

द्वाविंश खंड

चौथी आहुति 'समानाय स्वाहा' मंत्र से देने पर 'समान' तृप्त होता है। फिर इससे मन, मन से पर्जन्य, पर्जन्य से विद्युत तथा विद्युत से पर्जन्य एवं विद्युत का आश्रय तृप्त होता है। इसकी तृप्ति होने पर भोक्ता नाना भोगों, सपत्तियों तथा ब्रह्मतेज से तृप्त होता है।

त्रयोविंश खंड

पंचम आहुति 'उदानाय स्वाहा' कहकर देने से उदान तृप्त होता है। फिर त्वचा, वायु, आकाश तथा उनका आश्रय पूर्वोक्त क्रम से तृप्त होते हैं। फिर पूर्ववत् भोक्ता तृप्त होता है।

चतुर्विंश खंड

इस वैश्वानर को जाने बिना दी गई आहुति राख मे दी गई आहुति के समान है। इसे भली-भांति जानकर किया गया अग्निहोत्र सब प्राणियों एवं आत्माओं में हो जाता है। जैसे तिनका आग में जल जाता है, उसके पाप भी जल जाते हैं। इसका ज्ञाता भोजन की जूठन चाडाल को दे तो यह भी वैश्वानर हवन के समान है। कहा गया है, 'जैसे भूखा बालक मां की अपेक्षा करता है, वैसे ही प्राणी इस प्रकार के अग्निहोत्र उपासना की अपेक्षा करते हैं।'

षष्ठ अध्याय

प्रथम खंड

उद्दालक ने अपने पुत्र से कहा—श्वेतकेतु, ब्रह्मचर्याश्रम में जाओ। हमारे कुल का कोई भी अध्ययनरहित ब्रह्मबंधु सदृश नही रहता। बारह वर्ष का श्वेतकेतु अगले बारह वर्ष तक आचार्य से अध्ययन करके अपने को अध्ययनशील समझने का गर्व करता हुआ घर आया। पिता ने उससे कहा—श्वेतकेतु तू विद्या का अभिमानी तथा अविनीति दिखाई पड़ता है। क्या तूने आचार्य से वह उपदेश नही पाया, जिससे अश्रुत श्रुत हो जाता है, तर्क किए समान और अविज्ञात ज्ञात हो जाता है। श्वेतकेतु ने कहा, 'भगवन यह कैसा उपदेश है?' उद्दालक ने कहा एक मिट्टी के पिड से मिट्टी के सभी बर्तनों का ज्ञान हो जाता है, एक स्वर्ण पिंड द्वारा इसके अन्य पदार्थों का, एक नाखून काटने के यंत्र से सभी लौह पदार्थो का ज्ञान हो जाता है। नाम केवल वाणी के विषय हैं। सत्य तो मिट्टी, सोना या लोहा ही है। पुत्र ने कहा, 'मेरे गुरु भी इस विषय को निश्चय ही नही जानते होंगे, अन्यथा वे मुझे अवश्य बताते। कृपया मुझे इसका उपदेश दें।

द्वितीय खंड

उद्दालक बोले, 'सौम्य। पहले केवल अद्वितीय सत था। कुछों के मत में अद्वितीय असत् ही था और उस जगत से सत जन्मा किंतु असत से सतोत्पत्ति कैसे हो सकती है? अत. पुत्र पहले

अद्वितीय सत ही था । इसने अनेक रूपों में उत्पन्न होना चाहा । उसने तेज रचा,तेज ने इसी सकल्प से जल रचा,इसलिए संताप होने पर पसीना आता है । जल के संकल्प से पृथ्वी रूप अन्नराशि पैदा हुई । जहां जल बरसता है,वहां बहुत अन्न पैदा होता है ।

तृतीय खंड

प्राणियों के तीन ही बीज होते हैं—अंडज,स्वेदज एवं उद्‌भज । सत रूप देव अपने संकल्प से इनमें प्रविष्ट हुआ । उसने इनमें नाम एवं रूप को स्पष्ट करते हुए प्रत्येक को तीन प्रकार का वनाया । सौम्य इस त्रिवृत्त को तुम्हें बताता हूं ।

चतुर्थ खंड

त्रिवृत्त अग्नि का लाल रूप तेज,श्वेत जल तथा काला पृथ्वी है । इसी से अग्नि में इसका गुण आया,अग्नि केवल शब्द है,तीन रूप ही सत्य है । चंद्रमा एवं विद्युत में भी तीनों वर्ण सूर्य के समान तेज आदि हैं । इन्ही से चंद्रमा में चंद्रत्व तथा विद्युत में विद्युत्व आया, अन्यथा ये शव्द वाणी के विकार ही हैं । तीन रूप ही सत्य हैं । प्राचीन काल के इस तत्त्व के ज्ञाताओं का कथन है कि हमारे कुल में कोई भी किसी विषय का अश्रुत अथवा बिना तर्क न था । कर्म द्रष्टांतों से वे सव रहस्य जान लेते थे । वे लाल,श्वेत तथा श्याम रंग की प्रतीति से कि क्रमश· तेज,जल एवं पृथ्वी रूप को जान लेते थे । अविज्ञात प्रतीति को वे तीनो का समुदाय समझ लेते थे । तीनों देवों के पुरुष रूप प्राप्ति पर त्रिवृत्त होने को मैं तुम्हें वताता हूं ।

पंचम खंड

खाया हुआ अन्न तीन प्रकार से वंटता है । स्थूल अंश विष्टा,मध्यम अंश मांस एवं सूक्ष्म अश मन बनता है । पिए हुए जल के स्थूल अंश से मूत्र,मध्यम से रक्त तथा सूक्ष्म से प्राण बनते हैं । तेज (घी,तेल) के स्थूल अंश से हड्डी,मध्यम से मज्जा तथा सूक्ष्म से वाणी बनती है । अन्न,जल और तेज का कारण क्रमशः मन प्राण और वाणी हैं । इसे पुन समझाने की प्रार्थना की । उद्दालक ने पुन वताया कि—

षष्ठम खंड

सौम्य मंथन से दही का सूक्ष्म अश घी (नवनीत) ऊपर आ जाता है । इसी प्रकार खाए अन्न का सूक्ष्म भाग ऊपर जाकर मन वनता है । जल का सूक्ष्म भाग प्राण तथा घृत, तैलादि का वाणी है । श्वेतकेतु ने उनसे पुन ममझाने की प्रार्थना की । उद्दालक पुन समझाने लगे ।

सप्तम खंड

सौम्य । पुरुष मन सोलह कला युक्त है । तू पंद्रह दिन भोजन न कर इच्छानुसार जल पी,प्राण जल से ही है । श्वेतकेतु ने ऐसा ही किया । सोलहवें दिन पिता के पास आकर बोला,पिता ने ऋक यजुष,साम एवं श्रुति गाने को कहा । श्वेतकेतु ने कहा,मैं इन्हें मन से भूल चुका हू । पिता ने कहा, 'जैसे अग्नि की छोटी-सी चिनगारी किसी भी वस्तु को नहीं जला मकती वैसे ही तेरी सोलह कलाओं में एक ही कला शेष रह गई है । तू वेदों को भूल गया है । पहले भोजन कर फिर मेरे पास

आ। भोजनोपरात पिता के पास आने पर उससे जो भी पूछा उसे याद आ गया। 'पिता ने कहा, 'जैसे चिनगारी को तिनके पर सुलगाए जाने पर वह पूर्ववत् जलाने योग्य हो जाती है, तेरी एक ही कला अन्न द्वारा प्रज्वलित हो गई। तुझे वेद याद आ गए। स्पष्ट है—मन अन्न का कार्य है, प्राण जल का तथा वाणी तेज का। पिता का आशय पुत्र समझने लगा।

अष्टम खंड

उद्दालक पुन. बोले, 'मैं स्वप्नांत मर्म बताता हूं—पुरुष सो जाने पर जीव भाव त्यागकर ब्रह्म भाव हो जाता है, और अपने स्वरूप को पा जाता है। डोरी से बंधा बाज कही आश्रय न पाकर वापस बधन पर आ जाता है, उसी प्रकार अनेक जगह घूमकर मन अपने बंधन प्राण के पास आ जाता है। भूख लगने पर खाए अन्न को जल ही ले जाता है, यथा गाय, घोड़ा, पुरुष आदि को ले जानेवाला क्रमश गोनाय, अश्वनाय पुरुषनाय आदि कहते हैं, वैसे ही भोजन (अशन) ले जानेवाले को अशनाय कहते है। शरीर रूप कार्य जल से उत्पन्न है। ऐसा समझो। इसी प्रकार अन्न रूप कार्य का मूल तेज को तथा तेज का सत को। प्राणी सत रूप मूलक है। यही आश्रय और प्रतिष्ठा है। पिए हुए जल को तेज ही ले जाता है। इसीलिए तेज जल ले जानेवाला कहलाता है। अत. शरीर को जल रूप जानो। जलोत्पन्न शरीर का मूल तेज मे, तेज का सत में होता है। अन्न जल एवं तेज... तीन देव शरीर में विविध हो जाते है । मृत व्यक्ति की वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में तथा तेज दैवत में लय हो जाता है। अणु रूप ही सब है। तू भी है और आत्मा भी। श्वेतकेतु ने पुन स्पष्ट जानना चाहा। पिता कहने लगे—

नवम खंड

जैसे मुधमक्खिया अनेक वृक्षों का रस एकत्र कर देती है और इकट्ठा रस यह नही कहता कि मै अमुक-अमुक वृक्ष का हूं, उसी प्रकार सत् को प्राप्त प्राणी यह नही जानते कि वे सत् को प्राप्त हो गए हैं, इस विश्व में व्याघ्र आदि पुन-पुन प्राप्त होते हैं। वह अणु रूपवाला आत्मा जगत सत्य है। श्वेतकेतु तुम भी वही हो। श्वेतकेतु ने फिर समझाने के लिए कहा। पिता समझाने लगे—

दशम खंड

नदिया पूर्व-पश्चिम की ओर अपनी-अपनी दिशा में बहती हैं। समुद्र से आकर पुन उसमें मिल जाती है और फिर यह नही जानती कि मैं अमुक नदी हूं। उसी प्रकार सत् से उत्पन्न प्रजा भी यह नही जानती है कि वह सत् से ही आई है। इस विश्व में व्याघ्र आदि ...(शेष इससे पूर्व के समान)

एकादश खंड

यदि इस बडे वृक्ष की जड़ में या ऊपरी भाग में चोट मारें, तो यह सूखता नही; जीवित रहकर रस टपकता रहता है। जीवरूप आत्मा से जल पीता हुआ आनद से स्थिर रहता है। यदि इसकी शाखाओं का या समस्त वृक्ष का रस या जीव निकल जाता है तो वे सूख जाते हैं। जीवरहित होकर

मर जाते हैं; जीव नही मरता । सूक्ष्म रूपवाला यह जगत सत्य है वैसे ही तू भी सत्य है । पुत्र ने पुन. समझाने को कहा, पिता पुन समझाने लगे—

द्वादश खंड

पिता ने श्वेतकेतु को वटवृक्ष का फल लाने को कहा । ले आने पर उसे तुडवाया फिर पूछा 'इसमें क्या है ?' पुत्र को अनेक बीज दिखे । एक बीज तोड़ने को कहा पुन पूछा कि 'इसमें क्या है ?' पुत्र ने कहा 'इसमें कुछ नही दिखता ।' पिता फिर बोले, 'इस बीज के जिस सूक्ष्म भाग को तू नही देख सकता, उसी में विशाल वटवृक्ष छिपा है । अत. सूक्ष्म जगत सत्य है; वैसे ही तू भी सत्य है । (शेष पूर्ववत्) ।

त्रयोदश खंड

उद्दालक ने कहा, 'इस लवण खंड को जल में डालकर कल मेरे पास लाना ।' ऐसा ही करके दूसरी प्रात श्वेतकेतु पिता के पास गया । पिता ने नमक के टुकड़े को ढूंढ़ने को कहा किंतु व न मिला । पिता बोले, 'तुम इस नमक को देख नही सकते । इसका आचमन करो ।' ऐसा करने पर उसने इसका स्वाद नमकीन बताया । तीन बार ऊपरी, मध्य तथा निम्न भाग से आचमन करने पर भी स्वाद नमकीन ही था । जल को फिंकवाकर पिता ने कहा यद्यपि जल में नमक के समान सर्वव्यापक सत् को तुम नही देख पाते, किंतु वह है । यह सूक्ष्म जगत इसी प्रकार के सूक्ष्मभाव युक्त आत्मामय है और सत्य है (शेष पूर्ववत्) ।

चतुर्दश खंड

आंखों पर पट्टी बंधा कोई व्यक्ति यदि गांधार से लाकर किसी वन में छोड़ दें, तो वह विभिन्न दिशाओं को मुंह करके चिल्लाता रहेगा कि उसे कहा से लाया गया है । उसके बंधन खोलकर यदि उसे कोई बता दे कि गांधार इस दिशा में है, चले जाओ । तब वह बुद्धिमान और उपदेश प्राप्त व्यक्ति गाधार पहुंच जाता है । इसी प्रकार आचार्य से उपदेश पाया सत् जाननेवाला व्यक्ति ब्रह्म तक पहुंचने में केवल देह बंधन से मुक्त पाया होने की देरी समझता है । देहांत पर वह अवश्य मोक्ष पाता है । यह जगत सूक्ष्म भाव सत्य है । (शेष पूर्ववत्) ।

पंचदश खंड

ज्वरादि पीड़ित मृतप्राय व्यक्ति को घेरकर बंधुजन पूछते हैं, 'तुम मुझे पहचान रहे हो, तो जब तक वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परदेवता में लीन नही होते, तब तक वह पहचानता है । इनके लीन हो जाने पर वह नहीं पहचानता । यह सूक्ष्म भाववाला जगत सत्य है (शेष पूर्ववत्) ।

षोडश खंड

'बांधकर लाया हुआ अपराधी झूठ बोलता है—तब उसे तप्त कुल्हाड़ा थमाया जाता है, तो वह झूठा होने के कारण जल जाता है और मारा जाता है । यदि सच्चा होने के कारण नही जलता, तो छोड दिया जाता है । यहां इसके न जलने के समान ही सत् को पा जाने वाला पुनर्जन्म से मुक्त हो जाना

है। अत इस ऐसे रूपवाले सत्य जगत को जानो, वही सत्य है, वही आत्मा है आ। श्वेतकेतु तू वही है।' इस पर श्वेतकेतु को ज्ञान हो गया कि 'मै वही सब हूं।'

सप्तम अध्याय

प्रथम खंड

एक समय नारद ने सनत्कुमार से कहा, 'भगवन मुझे उपदेश दीजिए।' सनत्कुमार द्वारा उनसे यह पूछे जाने पर कि 'तुम क्या-क्या जानते हो' ? नारद ने कहा, 'ऋक आदि वेदो, इतिहास, पुराण आदि विद्याओं के विषय मे जानता हूं, किंतु आत्मा के विषय मे नहीं जानता हू। आप जैसे महाज्ञानियों के बारे मे सुना है कि आत्मज्ञ परिताप से मुक्ति पा जाता है, मै इसके अभाव मे दु खी हू। मुझे इससे मुक्त कीजिए।' सनत्कुमार बोले, तुम वेदादि जो कुछ जानते हो, यह सब नाम है। तुम नाम की ही उपासना करो। ब्रह्म रूप में नाम की उपासना करनेवाले की इच्छानुसार, जहा तक नाम वहा तक गति होती है।' नारद ने पुन. नाम से अधिक विषय के बारे मे बतलाने का आग्रह किया।

द्वितीय खंड

वाणी नाम से अधिक है, क्योकि यही वेद, इतिहास आदि लौकिक एव पारलौकिक विषयो को प्रकट करती है। तुम वाणी की उपासना करो। वाणी न होती, तो उचितानुचित, धर्माधर्म आदि का ज्ञान न होता। वाणी रूपी ब्रह्म ऐसा ही है। वाणी के उपासक की जहां तक वाणी के विषय व्याप्त है, इच्छानुसार गति होती है। नारद ने पूछा कि क्या वाणी से भी कुछ महान् है ? तब सनत्कुमार बोले कि हा, वाणी से भी गुरुतर होता है। नारद ने इसे ही बताने का आग्रह किया। सनत्कुमार ने बताया—

तृतीय खंड

मन वाणी से महान् है। जैसे मुट्ठी में दो-दो आंवले, बेर एवं बहेडे रख लेने से उनका अनुभव होता है, वैसे ही मन भी वाणी और नाम का अनुभव करता है। मन के द्वारा ही 'मत्राध्ययन करू' 'कर्म करूं' इत्यादि विचार करने पर ही अन्य इंद्रियां इसमे प्रवृत्त होती है। अत· मन ही ब्रह्म है, तुम भी इसकी उपासना करो। मन रूप ब्रह्म की उपासना करने पर जहां तक मन है, वहां तक गति होती है। पूर्ववत् क्या मन से भी अधिक कुछ है ? नारद द्वारा पूछे जाने पर सनत्कुमार ने इसका उत्तर हा में दिया। नारद ने इसे भी बतलाने का अनुरोध किया।

चतुर्थ खंड

संकल्प मन से वढकर है। संकल्प के वाद ही मन वाणी को, वाणी नाम को प्रेरित करती है। नाम मे मत्र एक रूप होते हैं तथा मंत्रों में कर्मों का समावेश होता है। स्वर्ग, पृथ्वी, वायु एवं जल तेज सकल्पवाले हैं। इनके सकल्प से प्राण, वृष्टि के संकल्प से अन्न एवं अन्न, प्राण, मत्र, कर्म, फल एवं जगत के सकल्प से क्रमश प्राण, मंत्र, कर्म, फल एवं जगत समर्थ होता है। अत संकल्प श्रेष्ठ है।

तुम सकल्प की ही प्रार्थना करो । सकल्प की ब्रह्म के रूप में उपासना करने पर ध्रुवलोक एवं व्यथा रहित लोक की प्राप्ति होती है । इसके पश्चात् संकल्प से बढकर वस्तु के विषय में बताया ।

पंचम खंड

चित्त संकल्प से बढकर है । चैतन्य ही संकल्प एवं वाणी नाम की प्रेरणा करता है । नाम मत्र में एवं मत्र कर्मो मे एकाकार हो जाते हैं । यह सभी चित्त से उत्पन्न इसी में स्थित तथा इसी मे लय होनेवाले है । अचित्त विद्वान अनादरणीय तथा चित्त अल्पज्ञ भी आदरणीय होता है । चित्त संकल्प का उत्पत्ति स्थान है । तुम भी उसकी उपासना करो । इसकी ब्रह्म रूप में उपासना करनेवाला बुद्धि एव भोग युक्त तथा व्यथारहित लोको को प्राप्त करता है ।' नारद द्वारा चित्त से बढकर विषय के बारे मे आग्रह पर सनत्कुमार ने बताया—

षष्ठम् खंड

ध्यान चित्त से श्रेष्ठ है । पृथ्वी, अतरिक्ष, स्वर्ग, जल और पर्वत ध्यान करते हुए से जान पडते है । इसी प्रकार देवताओ के समान मनुष्य भी । ध्यान की शक्ति से ही लोक मे महत्त्व प्राप्त होता है । कलह, द्वेषकर्ता, दोषी, क्षुद्र हैं । ध्यानबल ही प्रभुता देता है । ध्यान की उपासना करो । ध्यान रूपी ब्रह्म का उपासक, ध्यान के अनुमार इच्छारूप गति को प्राप्त करता है । आगे ध्यान से बढ़कर विषय को बताया ।

सप्तम खंड

विज्ञान ध्यान से उच्च है । वेदादि समस्त विद्याए योनिया, उचितानुचित भोज्य पदार्थ, इहलोक तथा परलोक सब विज्ञान से ही प्राप्त होते है । विज्ञान की उपासना करो । विज्ञान की ब्रह्म के रूप मे उपासना करनेवाला प्रसिद्ध ज्ञान-विज्ञानमय लोकों को प्राप्त करता है और इच्छानुसार गति पाता है ।

अष्टम खंड

वल विज्ञान से बढ़कर है । एक बली सौ विज्ञानियो को कपा देता है । बली होने पर उठनेवाला, सेवा करनेवाला, समीप जानेवाला, दर्शन करनेवाला, श्रवण करनेवाला, मनन करनेवाला तथा अनुभव करनेवाला (क्रमश एक अवस्था से दूसरी अवस्था) होता है । वल से पृथ्वी, अतरिक्ष, स्वर्ग, पर्वत, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पतिया स्थिर रहते हैं । वल की उपासना करो । इसकी व्रह्म के रूप में उपासना करनेवाला वल के विषय और लोक के अनुसार गतिवान होता है । इसके वाद नारद के आग्रह पर सनत्कुमार वल से वढ़कर विषय का उपदेश देने लगे—

नवम खंड

अन्न वल से वडा है । दस दिन तक भोजन न करने पर व्यक्ति जीवित रहने पर भी देखने, सुनने, मनन करने आदि में असमर्थ हो जाता है । फिर भोजन करने पर देखने, सुनने आदि अनुभव करने लगता है । अन्न की उपासना करो । इसकी व्रह्म रूप में उपामना करनेवाला अन्न-जलवाले लोक को पाकर, उसके विषयों में इच्छा के अनुमार प्रवृत्त होता है ।

दशम खंड

जल अन्न से उच्चतर है । अत· अच्छी अथवा बुरी वृष्टि पर प्राण इसके अनुकूल ही अन्न होने के अनुमान से हर्षित अथवा दु.खी होता है । यही मूर्त पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्यौ, पर्वत, देव मनुष्य (पूर्व खड समान) आदि है । अत यही उपास्य है । इसकी ब्रह्म रूप में उपासना करने से समस्त मूर्त विषय तथा तृप्तियां प्राप्त होती है और जल के विषयानुसार गति मिलती है ।

एकादश खंड

तेज जल से श्रेष्ठ (बढ़कर) है । यह वायु को आकाश के चारों ओर तपाता है, तब लोग कहते है, जगत तप रहा है अथवा बारिश होगी । यही जल रचता है, बिजली के साथ ऊंचा-तिरछा होकर गरजता है । पहले यह स्वय प्रकट होता है, बाद मे ये कार्य होते है । अत. यही उपास्य है । ब्रह्म भाव से इसकी उपासना करने पर व्यक्ति तेजोमय, प्रकाशमान एव तमहीन लोको को प्राप्त करता है तथा तेज के विषय पर्यत इच्छानुसार गति प्राप्त करता है ।

द्वादश खंड

आकाश तेज से प्रशस्यतर है । सूर्य, चद्र, विद्युत, नक्षत्र, अग्नि ये समस्त आकाश मे ही स्थित है । इसी द्वारा बोलते, सुनते आदि है । इसी मे खेलते है, जन्मते और बढते हैं । अत यही उपासना करने योग्य है । इसकी ब्रह्म भाव से उपासना करने पर प्रसिद्ध, विस्तृत मार्गवाले लोको को तथा इसके विषय के अनुसार गति को प्राप्त करता है ।

त्रयोदश खंड

स्मर (स्मरण) आकाश से प्रशस्यतर है । स्मर न करने पर सुनना, मनन करना अथवा जानना नही हो सकता । ऐसा करने पर ही यह सब हो सकता है । इसी से पुरुष पुत्रों को तथा पशुओ को जानते है । अत इसकी उपासना करो । ब्रह्म भाव से इसकी उपासना करने पर इसके विषय के अनुसार ही उपासक की गति हो जाती है ।

चतुर्दश खंड

आशा स्मरण से बड़ी है । आशावान स्मर से मन्त्राध्ययन करता है, पुत्रो, पशुओं और लोक-परलोक की इच्छा करता है । अत आशा की उपासना करो । आशा को ब्रह्म समझकर उपासना करनेवाले के सब विषय समृद्धि को प्राप्त होते है, प्रार्थना सफल होती है तथा आशा के विषयों पर्यत इच्छानुसार गति होती है ।

पंचदश खंड

प्राण आशा से बढकर है । जैसे रथ के चक्र में अरे होते हैं, वैसे ही समस्त जगत प्राणो मे स्थित हैं । प्राण, प्राण द्वारा गमन करता है । प्राण ही प्राणो को प्राणों के लिए दान देता है । प्राण ही माता, पिता, भाई, वहिन, आचार्य और ब्राह्मण के प्रति उचित या अनुचित कहता है, तो श्रोता उसे धिक्कारते हुए उसे माता, पिता या भाई आदि का हत्यारा कहते है । और यदि शरीर से प्राण निकल

जाये,तो चाहे उन्हे काट दो या जला दो कोई भी उसे इनका हत्यारा नहीं कहता। अत प्राण ही पिता आदि होते है। प्राणो को इस प्रकार अनुभव करनेवाला अतिवादी (अच्छे अर्थ मे) कहता है। ऐसा कहे जाने पर उसे स्वय को अतिवादी (संपूर्ण तत्त्वो का ज्ञाता) कहना चाहिए।

षोडश खंड

जो सत्य के लिए अतिवादी है,वह अवश्य अतिवादी है। नारद ने कहा 'भगवन। मै भी सत्य का अतिवादी बनूगा।' सनत्कुमार बोले 'सत्य ही विशेष रूप मे जानने योग्य है।' नारद बोले,'मै इसे विशेष रूप में ही जानूंगा।'

सप्तदश खंड

सनत्कुमार बोले,सत्य को विशेष रूप मे जानने पर ही व्यक्ति सत्यवादी बनता है। विशेष जानने से सत्य नही कह सकता। सत्यवादी विज्ञान को विशेष रूप से जानते है।' नारद ने विज्ञान को जानना चाहा।

अष्टादश खंड

'मनन करने से ही विशेषज्ञता आती है। मनन न करने पर विशेष रूप से जान सकता है,परतु विशेष मनन द्वारा ही जाना जा सकता है। अत मनन ही जानने योग्य है।' नारद ने मनन को ही जानना चाहा।

उनविंश खंड

सनत्कुमार बोले,'श्रद्धा से ही मनन होता है,अश्रद्धा से नही। श्रद्धा से ही विशेष मनन हो सकता है,अत श्रद्धा ही उपास्य है।' नारद बोले,'भगवन मै श्रद्धा को ही जानना चाहता हू।'

विंश खंड

'निष्ठावान को ही श्रद्धा आती है,अनिष्ठा से श्रद्धा नही होती। अत निष्ठा विशेषरूपेण जानने योग्य है।' नारद की इच्छा निष्ठा को ही जानने की हुई

एकाविंश खंड

कर्म से ही निष्ठा उत्पन्न होती है,अकर्म से नही,कर्म न करनेवाला निष्ठावान नही होता। अतः कृति (कर्म) ही विशेष रूप में जानने योग्य है। नारद ने कृति को ही विशेष रूप से जानना चाहा।

द्वाविंश खंड

सनत्कुमार बोले,'सुख प्राप्ति से ही कृति सभव है। असुख पाकर कृति नही की जा सकती। अत सुख विशेषता के साथ जानने योग्य है। नारदजी ने सुख को जानना चाहा—

त्रयोविंश खंड

'भूमा (अत्यधिकता,निरतिशयता) ही सुख है,अल्पता में सुख नही है। अत· भूमा ही जानने योग्य है।' मनत्कुमार के इस कथन पर नारदजी ने भूमा को जानना चाहा।

चतुर्विंश खंड

सनत्कुमार बोले, 'जहां अन्य किसी को देखता, सुनता और जानता, वही भूमा है, जहा अन्य को देखता, सुनता अथवा जानता है, यही अल्प है। अल्प और भूमा क्रमश. विनाशयुक्त और अविनाशी है।' नारद बोले, 'भूमा कहां पर स्थित है ?' सनत्कुमार बोले, 'भूमा अपनी ही महिमा मे स्थित है, वस्तुत· यह आश्रयरहित है। लोक मे गाय, घोड़ा, हाथी, सोना आदि विभूति कहे जाते है। इस प्रकार अन्य अन्य मे स्थित है, मेरा ऐसा मत नही है।

पंचविंश खंड

भूमा ही नीचे-ऊपर, पश्चिम-पूर्व, उत्तर-दक्षिण मे है। उसी की सत्ता से अज्ञानवश लोग कहते है कि मै ऊपर हू, नीचे हू, पूर्व मे हू, पश्चिम मे हू इत्यादि। आत्मा की दृष्टि से भूमा ही ऊपर, नीचे तथा समस्त दिशाओ मे व्याप्त है। जो भूमा को इस रूप मे जानता है, वह आत्मा मे रमण करनेवाला, क्रीडा करनेवाला, आत्म मिथुन एव आत्म आनद होता है। वह अपने राज्य का स्वामी तथा लोको में इच्छानुसार गतिवाला होता है। विपरीत माननेवाले, दूसरे के राज्य मे रहनेवाले, विनाशशील होते है और उनकी गति इच्छानुसार नही होती है।

षड्विंश खंड

जो इस प्रकार देखता, सुनता और मनन करता है, उसके लिए आत्मा से ही प्राण, आशा, स्मरण, आकाश, अन्न, बल, विज्ञान, ध्यान, चित्त, संकल्प, मन, वाणी, नाम, मंत्र आदि सब कुछ आत्मा मे ही हो जाता है। इस विषय में कहा गया है कि ज्ञानी मृत्यु, रोग, दु ख आदि को प्राप्त नही होता, वह सबको आत्म रूप में देखता है और सब कुछ प्राप्त कर लेता है। एक ही होते हुए भी वह तीन, पाच, सात, नौ, ग्यारह, एक सौ दस या इकतीस हजार भी हो जाता है। यहा तीन, पाच, आदि सख्याएं क्रमशः तेज, शूल, पृथ्वी (तीन), रूप, रस, गंधस्पर्श शब्द (पाच विषय) आदि को सूचित करते है। आहार शुद्धि से, सत्त्व की शुद्धि होती है, इससे निश्चल स्मृति प्राप्त होती है। इसकी प्राप्ति से समस्त ग्रथियों का नाश हो जाता है। नारद इसी अवस्था में प्राप्त हो गए थे, ऐसे नारद को भगवान सनत्कुमार ने, जिन्हें स्कद भी कहते है, आत्मज्ञान का दर्शन कराया।

अष्टम अध्याय

प्रथम खंड

सगुण रूप में परमात्मा का बोध—इस ब्रह्मपुर (शरीर में) के पुंडरीक में सूक्ष्म अंतर आकाश है। इसमें जो कुछ भी स्थित है, उसका साक्षात्कार करना चाहिए। इस पर यदि शिष्य गुरु से पूछे यह कौन-सी चीज है ? तो आचार्य उत्तर दे— इस दिखाई पड़नेवाले भौतिक आकाश के समान ही, हृदय के भीतर भी स्वर्ग, पृथ्वी एवं आकाश है। इसमें अग्नि, वायु, सूर्य आदि सभी हैं। यदि शिष्य पुन पूछे कि यदि इस ब्रह्मपुर शरीर में सब कुछ स्थित है, तो शरीर की वृद्धावस्था अथवा समाप्ति पर शेष क्या रहता है ? तो गुरु कहे—शरीर के वृद्ध अथवा नष्ट हो जाने पर भी ब्रह्म वृद्ध अथवा नष्ट नही होता। यह सत्य, सबका आश्रय पाप, बुढ़ापा, मृत्यु मनोदु ख तथा भूख-प्यास से रहि

सत्यकाम एव सत्य सकल्प है । इस लोक मे जैसे प्रजा अनुशासन का व्यवहार करती है, देश-प्रदेश की इच्छा करती है, जिस प्रकार लोक मे कर्म प्राप्त भोग की समाप्ति होती है, वैसे ही परलोक के लिए पुण्य अर्जन किया जाता है और यह भी समाप्त होता है । बिना आत्म ज्ञान प्राप्त किए स्वर्ग जाने पर समस्त इच्छित लोक नही मिलते, किंतु आत्मदर्शन से मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति सत्यकामी बनकर समस्त लोको और भोगो को प्राप्त करते हैं ।

द्वितीय खंड

वह यदि पितृलोक की इच्छा करता है, तो इच्छा से ही उसके पितृगण उपस्थित हो जाते है । इसी प्रकार मातृलोक, भ्रातृलोक, भगिनीलोक या मित्रलोक की कामना करते ही उसके भ्रातृगण, भगिनीगण (बहिने) या मित्रगण समुख उपस्थित हो जाते हैं । गधलोक की इच्छा से गध पुष्प आदि से संपन्न होता है । अन्न-जल, गीत-वाद्य, स्त्रीलोक अथवा किसी के भी सकल्प से ही वह लोक प्राप्त हो जाता है और सुख देता है ।

तृतीय खंड

भोग सत्य होते हुए भी मिथ्या के आवरण से ढके है । अत मनुष्य अपने मृत सबधी को पुन. नही देख सकता, इस लोक मे जीवित (अन्य स्थानों के) सबधियों को तथा इच्छित पदार्थो को प्राप्त नही कर सकता । हृदयाकाश स्थित ब्रह्म की उपासना से ये सब प्राप्त हो जाते है । जैसे पृथ्वी पर चलने पर भी नीचे दबे सोने का पता नही लगता, ऐसे ही स्वप्नावस्था में ब्रह्मलोक को नही देखता, क्योंकि ये सब मिथ्या से ढके हुए है, आत्मा हृदय मे स्थित है, इसको जाननेवाला ब्रह्म को भी हृदय मे देखता है । संप्रसाद को प्राप्त व्यक्ति मृत्यु पर श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त करता है, अपने स्वरूप मे भली प्रकार स्थित होता है । यही आत्मा अविनाशी, अभय ब्रह्म है, इसी का नाम सत्य है । इसमें (सतोऽयम् = यह सत् है) से अविनाशी, तो, विनश्वर तथा 'यम' दोनों का सतुलित करनेवाला । इसका ज्ञाता सदा हृदयास्थित ब्रह्म को प्राप्त करता है ।

चतुर्थ खंड

इस प्रकार यह आत्मा पृथ्वी आदि लोकों के विनाश से बचाव के धारण का सेतु है । इसका, दिवस-रात्रि, जरा-मृत्यु-शोक, पुण्य-पाप आदि अतिक्रमण नही करते क्योकि यह निष्पाप ब्रह्मरूप है । इसे प्राप्त करके व्यक्ति अधा होते हुए भी दृष्टिवान, शोक होने पर भी नि शोक तथा रोगी होने पर भी नीरोग होता है । इसे प्राप्त करने पर रात भी दिन बन जाता है, क्योंकि यह सदा प्रकाशमान है । इसे ब्रह्मचर्य एव त्याग द्वारा जानकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति तथा इच्छानुसार गति प्राप्त होती है ।

पंचम खंड

ब्रह्मचर्य ही यज्ञ है । ब्रह्मचर्य आत्मज्ञाता ब्रह्मलोक प्राप्त करता है । ब्रह्मचर्य ही इष्ट है, अत इसी से इच्छानुसार आत्मा की प्राप्ति होती है । सत् द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है, अत इसे सत्यायण भी कहते हैं । ब्रह्मचर्य द्वारा आत्मज्ञान एव मननशक्ति प्राप्त होने से यह (ब्रह्मचर्य) मौन भी कहलाता है । इसी अनाशकायन की प्राप्ति होती है, अत यह अनाशक कहलाता है । इसी मे प्राप्य

तृतीय स्वर्ग मे 'अर' एव 'ण्य' नाम दो समुद्र है, अतः यह अरण्यायन कहलाता है। तीसरा समुद्र अन्न रस से युक्त है, वहां एक अमृतस्रावी पीपल है, अपराजितापुरी तथा ईशकृत स्वर्गमडल है। 'अर' एव 'ण्य' नामक समुद्र ब्रह्मचर्य द्वारा ही प्राप्य है। ब्रह्मचारी ही समस्त लोको मे यथाकाम गतिवाले होते है।

षष्ठम खंड

अब हृदय की नाड़िया, पिगल, सफेद, नीले, पीले और लाल रग की है। सूर्य की किरणें भी इसी प्रकार के वर्णोवाली है, लोक एव मनुष्यों तक पहुचती है और आदित्य मंडल से नाडियो मे प्रवेश करती है तथा लौटकर आदित्य में प्रवेश करती हैं। स्वप्न का अनुभव न करनेवाला सोया हुआ व्यक्ति नाडियों मे ही प्रविष्ट रहता है। उस समय तेज मे प्रविष्ट होने से वह निष्पाप होता है। बलहीन मरणासन्न व्यक्ति से उसके परिजन पूछते है कि क्या वह उसे पहचानता है ? तब यदि उसमें तेज होगा, तो वह पहचानेगा यदि नही होगा तो नही पहचानेगा। मरने पर वह सूर्य किरणो से ऊपर चला जाता है। उसका जीव मनोगति के अनुसार तुरत आदित्य मे पहुच जाता है। यह उपासको को उच्चलोक प्राप्त करानेवाला तथा उपासना न करनेवालों को रोकनेवाला है। कहा जाता है कि हृदय की एक सौ नाड़िया होती है, उनमे से एक मूर्धा को जाती है। उपासक जीव इसी से निकलकर अमरत्व प्राप्त करता है, शेष अन्य नाड़ियो से बाहर आते है, इन्हे, उच्चलोक नही मिलते।

सप्तम खंड

प्रजापति ने कहा था—आत्मा पाप, वृद्धावस्था, मृत्यु, कष्ट, भूख, प्यास आदि से रहित है। यही सत्ययुक्त तथा जानने योग्य है। इसका ज्ञाता एवं अनुभवी समस्त लोको एवं भोगो को प्राप्त करता है। इस कथन को सुर एव असुर सुनते आए थे। उन्होने इसे जानना चाहा। अत देवताओ की ओर से इद्र तथा असुरों की ओर से विरोचन एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या रखते हुए प्रजापति के पास गए। वहां दोनों 32 वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे, तब प्रजापति ने उनका उद्देश्य पूछा। उन्होने अपना प्रयोजन बताया। प्रजापति ने बताया कि आख में दीखनेवाला पुरुष अमृतमय, अभय ब्रह्म है। वे प्रतिबिंब को आत्मा समझकर पूछने लगे जल, दर्पण मे दीखनेवाला आत्मा कौन है ?' प्रजापति ने कहा—वही इन सब में है।

अष्टम खंड

प्रजापति ने कहा, 'जल से भरे पात्र में फिर आत्मा के विषय मे अपना अनुभव मुझे बताना।' दोनों ने ऐसा ही किया, फिर बताया, 'शरीर का रोम-रोम तथा नख आदि समस्त प्रतिबिब दीख रहा है।' फिर प्रजापति की आज्ञा से दोनों ने वस्त्र, आभूषण आदि पहनकर जलपात्र मे देखने पर अपने को इसी प्रकार का बताया। प्रजापति ने कहा, 'यही आत्मा अविनाशी अभय ब्रह्म है।' यह सुनकर दोनों सतुष्ट होकर चले गए। उनको जाते देख प्रजापति ने मन में सोचा—ये दोनों ही शरीर को आत्मा मानकर जा रहे है। देव हो या असुर—ऐसे अनुभववाले का पराभव ही होगा। विरोचन असुरों के पास जाकर बोला, 'आत्मा अर्थात् शरीर पूज्य तथा सेव्य है।' इसीलिए दान, श्रद्धा, भजन

आदि से हीन मनुष्य को सज्जन खेद से असुर कहते हैं इसी भावना से लोग मृत शरीर को वस्त्रादि से सुसज्जित करके समझते है कि वह इसी से स्वर्ग प्राप्त करेगा।

नवम खंड

इंद्र को मार्ग में संदेह हो गया कि जैसा शरीर होगा सुसज्जित, अधा, लूला, मृत वैसा ही प्रतिबिब भी दिखाई पड़ेगा। इसे ही जानने पर तो कोई लाभ नही मालूम होता। वह पुन समिधा लेकर प्रजापति के पास गया। प्रजापति ने पूछा, 'तुम तो विरोचन के साथ संतुष्ट होकर चले गए थे फिर कैसे आए हो ?' इंद्र ने अपनी शंका सामने रखी और कहा कि प्रतिबिब रूपी आत्मा के ज्ञान से कोई लाभ नही। प्रजापति बोले, 'तुम्हारा विचार ठीक है। अब तुम बत्तीस वर्ष तक यहा रहो। मै तुम्हें पुन. आत्मज्ञान दूंगा।' इंद्र ने ऐसा ही किया तब प्रजापति बताने लगे—

दशम खंड

'स्वप्न में महिमा को प्राप्त, विचरणशील आत्मा अनश्वर और अभय ब्रह्म है।' यह सुन सतुष्ट इद्र चला गया। मार्ग मे ही उसे शंका हुई कि शरीर के अंधा, श्राम या मृत होने पर आदि स्वप्न के शरीर में ये विकृतिया नही आती। स्वप्नो मे भी ऐसा प्रतीत होता है कि कोई इसे मार अथवा खदेड रहा है, अप्रिय प्रसंग से दुःखी होना आदि अनुभव होते है। अत· स्वप्न की आत्मा का कोई फल प्राप्त नही हुआ। वह पुन समिधा लेकर प्रजापति के पास गया। पुन· आने का प्रयोजन पूछे जाने पर उसने अपनी शका व्यक्त की। प्रजापति ने उसे फिर आत्मा का मर्म समझाने के लिए 32 वर्षों तक रोकने पर इस विषय को बताना प्रारभ किया—

एकादश खंड

'सुप्तावस्था में जब शात तथा स्वप्न आदि का अनुभव नही करने पर वह आत्मा होता है, वही अमृत अभय ब्रह्म है।' सतुष्ट होकर चले जाने पर मार्ग में ही इद्र ने पुन सोचा कि इस अवस्था में तो आत्मा स्वय को भी नही जानता और अन्य पदार्थों को भी। ऐसा लगता है, जैसे यह नष्ट हो गया हो। यह तो मेरा ज्ञान व्यर्थ ही रहा। वह पुन. समिधा लेकर लौट पड़ा। प्रजापति द्वारा लौटने का कारण पूछे जाने पर उसने अपनी शका बताई। प्रजापति ने कहा कि वह उसे आत्मा की अभिन्नता वताएगे अत वह पांच वर्ष तक वही रहे। इस प्रकार व 105 वर्ष ब्रह्मचर्य पूर्वक वहा रहा तब प्रजापति ने उन्हें पुन बताया—

द्वादश खंड

शरीर मरणशील है। मृत्यु से घिरा हुआ है। अनश्वर अदेह आत्मा इसमें रहता है। अत सशरीर होने पर यह सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय आदि से मुक्त है, किंतु शरीर से मुक्त होने पर, ये इसका स्पर्श नही कर सकते। जैसे वायु, विजली, मेघ और इसका गर्जन अशरीर है और आकाश में सूर्य की श्रेष्ठ ज्योति से स्वरूपवान हो जाते हैं, वैसे ही शरीर भी उड़कर परमज्योति ब्रह्म की प्राप्ति पर अपना स्वरूप प्राप्त करता है। यह उत्तम पुरुष होता है, तव वह हसी, स्त्री यान आदि से रमण करता है और शरीर को भूल जाता है। रथ में जुते घोडे के समान यह शरीर से वधा होता है।

आकाश में प्रविष्ट होने पर चक्षु चाषुष पुरुष है । इसका ज्ञान नेत्रो से होता है । गध का ज्ञान नसिका से तथा उच्चारण वाणी से । इसी प्रकार अन्य ज्ञान के लिए इद्रिया है । मनन करना आत्मा का कार्य है,इसके लिए मनरूपी दैवी नेत्र है । यह इसी से भोगों को देखता हुआ रमण करता है । इसी आत्मा की उपासना करने से देवों को लोको एव भोगो की प्राप्ति होती है । इसको जानकर अनुभव करने वाला इनको (लोकों एवं भोगो को) पाता है ।

त्रयोदश खंड

मैं श्याम (हदय स्थित ब्रह्म) से शबल (ब्रह्मलोक) को प्राप्त करू तथा शबल से श्याम को । जैसे अश्व अपने शरीर को फडफडाकर स्वच्छ होता है,वैसे ही मै पापमुक्त होकर राहु मुख से मुक्त चद्र के समान शरीर को त्यागकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हू ।

चतुर्दश खंड

आकाश रूप आत्मा ही नाम एव रूप (संज्ञा एव आकार) को स्पष्ट करता है । नाम एव रूप जिसमें है,वही ब्रह्म है,अविनाशी एवं आत्मा है । मैं (इद्र) प्रजापति की सभा से घर को जाता हूं । मै ब्राह्मणों,क्षत्रियों एव वैश्यों की आत्मा हू । मै स्निग्ध रोहितवर्ण,बिना दातों के,खानेवाली स्त्री की योनि को प्राप्त न होऊ (मेरा पुन गर्भ में जन्म न हो) ।

पंचदश खंड

यह ज्ञान ब्रह्म से प्रजापति को,प्रजापति से मनु को,मनु से प्रजा को हुआ । जो आचार्य कुल से वेद पढकर विधि से अध्ययन करके गृहस्थ में प्रविष्ट होता है,पवित्र स्थानों में रहकर स्वाध्याय करके शिष्यों और पुत्रों को शिक्षा देता है, इंद्रियों को ब्रह्म में लगाकर सभी प्राणियों को पीडा नही पहुचाता तथा जीवनपर्यत ऐसा करता है,वह देह त्यागने पर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है, उसका पुनर्जन्म नही होता ।

□

10. श्वेताश्वेतरोपनिषद्

प्रथम अध्याय

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ब्रह्मवादी कहते है—इस विश्व का आदि कारण कौन है ? तथा हम किससे उत्पन्न हुए है ? जीते है तथा स्थित है ? जीवित है, किसके आश्रित है और किसके कारण सुख-दु ख अनुभव करते है। काल, स्वभाव, भाग्य, सदृच्छा आदि क्या इसके कारण है ? ऐसा भी नही है, क्योकि यह सव कर्मो के अधीन है। यह विचारकर ध्यानयोग से उन्होने देखा कि सगुण ईश्वर जो आच्छादित है, वही काल आदि का एकमात्र कारण है। फिर उन्हे एक चक्र दिखाई पडा, जो तीन वृत्तो, सोलह सिरो, पचास अरों, बीस प्रत्यरो, छ अष्टको से युक्त तीन मार्गवाला था। एक नदी थी, जो पाच धाराओ से भयकर, पाच स्रोतोवाली, पाच-पाच जगह से उत्पन्न, पांच उर्मियोवाली, पाच दु खो से अधोवेगवाली, वक्र प्रवाहवाली तथा पांच प्रकार के ज्ञान रूपी मनवाली थी।

सवके आश्रय इस ब्रह्मचक्र में आत्मा भ्रमित होता है। अपने को तथा प्रेरक को पृथक् मानकर उसकी कृपा से ही अमृत्व प्राप्त करता है। यह परमब्रह्म प्रसिद्ध महिमा से युक्त है। इसी मे तीनों लोक स्थित है। ब्रह्मवेत्ता इसमें लीन होकर योनिमुक्त हो जाते है। नश्वर देह आदि एव अनश्वर (व्रह्म) के सयोग से निर्मित व्यक्त एवं अव्यक्त विश्व का वही भर्ता है। आत्मा विषय-भोगों मे वध जाता है और उसे (व्रह्म को) जानने पर मुक्त हो जाता है। ज्ञानी-अज्ञानी दोनों ही आत्माए जन्म रहित है। भोग्यों को प्रकृति निर्मित करती है। परमात्मा अनत, विश्वरूप और अकर्ता है। तीनो (जीव प्रकृति एव ईश्वर) ब्रह्म कहलाते हैं। नश्वर प्रकृति एव अनश्वर जीव दोनो परमेश्वर के अधीन है। इसके ध्यान से प्राणी प्रकृतिचक्र से मुक्त होकर इसी मे मिल जाता है।

इसके ध्यान से दु ख, जन्म-मरणादि वंधनो आदि से मुक्ति मिलती है। अत मे स्वर्ग के ऐश्वर्य प्राप्त होते है। अपने में स्थित व्रह्म को भोक्ता, भोग्य एव प्रेरक मानकर ध्यान करें। इस त्रिविध व्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी जानने योग्य नही है। जैसे लकडी के अदर अग्नि नही दिखती, कितु घिसने पर वह प्रकट हो जाती है, ऐसे ही आत्मा एव परमात्मा दोनों का ज्ञान प्रणव (ओम) से होता है। अपने शरीर तथा प्रणव दोनों को ऊपर-नीचे की अरणि के समान घिसने, ध्यान लगाने से अग्नि के समान परमात्मा का दर्शन होता है। जैसे तिलों मे तेल, दही में घी, स्रोतो में पानी तथा अरणि में अग्नि रहती है, ऐसे ही हृदय में परमात्मा अदृश्य होता है। सत्य एवं तप से यह दीखता है। दूध में व्याप्त घी के समान आत्मज्ञानी ब्रह्म को आत्म विद्या का तप आदि से जान लेता है। यज्ञ में दो लकडियों को घिसकर आग जलाते है, यही लकडिया अरणिया कहलाती है।

द्वितीय अध्याय

सविता हमारी बुद्धि को एवं मन को तत्त्व प्राप्ति हेतु अपने रूपो गे लगा कर अग्नि तेज को पृथ्वी से हममें स्थित करे। सविता मे लगे मन को हम यथाशक्ति स्वर्ग प्राप्ति हेतु प्रेरित करे। हमारे मन को सविता आकाशचारी देवताओ के प्रति प्रेरित करे। विद्वान विप्र अपने चित्त को एवं बुद्धि को जिसमें लगाकर यज्ञादि करते है, वह सविता हमारे द्वारा स्तुत हो। समस्त देवता जो दिव्य धामों में रहते हैं विद्वान के यश के समान मेरे श्लोको को सुनें। मै उन्हे नमस्कार करता हू। जहा अग्नि का मथन, प्राणो का वायु का अवरोध हो जाता है, सोम का प्राकट्य होता है, वहां मन उत्पन्न होता है। सविता की प्रेरणा से पहले ब्रह्म की प्रार्थना करें। उसमे मन लगाने पर पूर्वकर्म उसमे विघ्न नही करेंगे। सिर, गले और वक्ष को सीधा करते हुए, मन से हृदय एव इद्रियो को रोककर ब्रह्मरूपी नाव से विद्वान भयानक स्रोतो को तरे। विद्वान विविध योगक्रियाओं से प्राणो को रोककर नासिका द्वारा उन्हें बाहर छोड दो जैसे कुशल सारथी बिगड़े घोड़े को साधता है, वैसे ही मन को वश मे करे। ककड आदि रहित शुद्ध शांत, जल हीन, मनोनुकूल आखो को रमणीय लगनेवाली गुफा मे रहकर मन को ब्रह्म में लगाए। ब्रह्म प्राप्ति मे लगे योगी को कुहरा, धुआ, जुगनू, बिजली आदि अनेक दृश्य दीखते है। यह सूचित करते है कि योग सफल हो रहा है।

पृथ्वी, जल आदि पाच तत्त्वो के उत्थान तथा योग के गुणो के सिद्ध हो जाने पर योग से तेजस्वी देहवाला योगी रोग, जरा एव मृत्यु से मुक्त हो जाता है। शरीर का हलका होना, नीरोगता, भोगों के प्रति अरुचि, उज्ज्वल वर्ण, सुदर स्वर एव सुगध की अनुभूति तथा लघु एव दीर्घ शका की कमी—यह योग सिद्धि के प्रथम लक्षण है। मिट्टी मे सनने के बाद धोए हुए रत्न की तरह आत्म तत्त्व की प्राप्ति पर योगी दु खों से मुक्त हो जाता है। फिर वह इसी तत्त्व से दीपक सदृश प्रकाशमान ब्रह्म के दर्शन करके अत्र, ध्रुव पापमुक्त होकर बंधनमुक्त हो जाता है। प्रति दिशा में व्याप्त ईश्वर सर्वप्रथम उत्पन्न ब्रह्म गर्भवासी विश्व रूप मे प्रकट तथा भविष्य में भी प्रकट होनेवाला है। वह सर्वतोमुख एव सबमें स्थित है। जो ईश्वर अग्नि, जल, औषधि, वनस्पति आदि सभी मे स्थित है, उसे नमस्कार है।

तृतीय अध्याय

जो अपनी सत्ता से सभी लोकों एव विश्वजाल का स्वामी है, अकेला ही सृष्टि का कर्ता एव उसे चलाता है, उसे जाननेवाले अमरता प्राप्त करते हैं। इस लोक का स्वामी एक ही रुद्र है। वह सभी प्राणियों में रहता हुआ लोकनिर्माण करता है, रक्षा करता है तथा प्रलयकाल में सबको अपने में ही समेट लेता है। चारों ओर जिसके चक्षु, मुख, बाहु और पाद है, वह अपने हाथो मे आकाश एव पृथ्वी की रचना है। वह अकेला ही मनुष्य को पैरो तथा पक्षियों को पंखों से युक्त करता है। जो रुद्र समस्त देवो का स्वामी एव पिता है विश्व का अधिपति एवं महर्षि है, वह हमारी बुद्धि को शुभ कर्मों में जोडे। उसी ने सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ को बनाया। हे रुद्र तुम्हारी जो कल्याणकारक, अघोर, शुभ्र तपस्विनी मूर्ति है, उस शात मूर्ति मे हमें देखो।

जिस वाण को तुम हाथ में लिए हो, हे पर्वतों पर सोनेवाले रुद्र, उसे विश्व के लिए कल्याणकारी बनाओ। विश्व से परे, ब्रह्म से भी श्रेष्ठ, प्राणियों के शरीर के अनुसार उसमे व्याप्त, विश्व के रचयिता उस ईश्वर को जानकर अमृत प्राप्त होता है। अधकार से दूर आदित्यवर्ण उस पुरुष को मै जानता हू। इसका ज्ञाता मृत्यु से मुक्त हो जाता है। बधन मुक्ति के लिए इससे बढ़कर कोई मार्ग नही है। जिससे बढ़कर कोई अन्य वस्तु नही है, जिससे छोटा या बडा भी कुछ नही है। जो अकेला भी वृक्ष के समान आकाश मे स्थित है, उसी से यह विश्व पूर्ण है। जो उस हिरण्यगर्भ से श्रेष्ठ, निराकार एव निर्दोष है, उसे जाननेवाले अमृत्व को तथा न जाननेवाले दु खो को प्राप्त होते है। (6-10)।

ईश्वर सभी तरफ मुख, सिर एव कंठवाला है। यह सर्वव्यापक सर्वगत, सभी प्राणियो की गुहा मे स्थित और शिव है। यह महान प्रभु सभी प्राणियो का प्रवर्तक, निर्मल, मनुष्य को आत्मप्राप्ति का साधन तथा एक अनश्वर ज्योति है। यह अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला मनुष्यो के हृदय मे व्याप्त ईश्वर पवित्र-निर्मल मन एव हृदयवाला है। इसके ज्ञाता भी इसी के समान बन जाते हैं। वह पुरुष हजारों सिरो, नेत्रो एव पादोवाला है। वह भूमि को चारो ओर से व्याप्त करके हृदय मे रहता है। यह सब भूत, भविष्य एव अमृत्व का अधीनश्वर तथा अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त भी वही है। वही ससार को अपने चारो ओर निकले हाथो-पांवो, आंखों एव सिरो से व्याप्त करके खडा श्रुतिगत ही है। (11-16)।

सभी इद्रियो से परे होते हुए भी उनके विषयो को जाननेवाला, सभी का आश्रय तथा स्वामी है। चराचर का स्वामी वह परमेश्वर नौ द्वारोवाले मानव देह में स्थित है और बाह्य जगत मे भी वह क्रीडारत है। हाथ-पांव के बिना भी वह गतिमान है, बिना आखो के देखता तथा बिना कानो के सुनता है। जानने योग्य विषयो को वह जानता है, उसे कोई नही जानता। उसे ज्ञानी महान कहते है। यह अणु से भी सूक्ष्म तथा महान से भी महान है वह आत्मा मानवदेह में स्थित है। उस सकल्परहित को उनकी कृपा से जाननेवाला दु:खमुक्त हो जाता है। ज्ञानी इसे इसकी प्रभुता मे अजर, पुराण, सर्वात्मा, सर्वगत तथा अजन्मा कहते है। मै इसे जानता हू। (17-21)।

चतुर्थ अध्याय

वह एक परमेश्वर जो वर्णहीन, रहस्यमय तथा नाना शक्ति युक्त है और अनेक वर्णोवाले रूपों को धारण करता है। इसी में प्रलयकाल में समस्त जगत लीन हो जाता है। वही अग्नि, आदित्य, वायु, चद्रमा, शुक्र, ब्रह्म तथा प्रजापति है। हे ईश्वर। तू ही स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी लाठी से चलनेवाला वृद्ध तथा तू ही चारों मुखोंवाला है। तू ही नील पंतग, हरा एव लोहिताक्ष है। तू ही मेघ, ऋतु सातों समुद्र और लोकों का उत्पत्ति स्थल है। अपने समान रूपवाली अजन्मा प्रकृति का ज्ञानी त्याग कर देता है, किंतु अज्ञानी मोहमय रहता है। यह माया अपने समान लाल, सफेद, काले रंगोंवाली सृष्टि का निर्माण करती है। (1-5)

आत्मा-परमात्मा रूपी दो सदा साथ रहनेवाले मित्र पक्षी एक ही वृक्ष पर रहते हैं। उनमें एक (आत्मा) फलों का स्वाद लेता है, दूसरा इनका त्याग कर देता है। जीव मोह में पडा, अशक्त, असमर्थ

और दुःखी है। जब यह परमात्मा की महिमा को जानता है,तो शोकमुक्त हो जाता है,जिसमे समस्त देव स्थित है,उसी परम व्योम मे देवो का निवास है। जो उसे जानता है,उसे वह मिल जाता है। वेदो में वर्णित छद,यज्ञ,भूत,भविष्य आदि को विश्व का स्वामी पहले ही रच देता है,किंतु मोह में पडा जीवात्मा भ्रमित रहता है। प्रकृति को माया तथा महेश्वर को उसका स्वामी समझो उसी के अवयवो से यह जगत व्याप्त है। (6-10) जो अकेला योनियों का अधिष्ठाता है,प्रलय मे विश्व जिसमे मिल जाता है और सृष्टि के समय विभिन्न रूपो मे प्रकट हो जाता है। उसे तत्त्वत· जानकर मनुष्य शाति प्राप्त करता है। जो रूद्रादि का उद्रव कारण है,अत्यत ज्ञानी,सभी को रचनेवाला है,वह हिरण्य गर्भ सवका स्वामी हमें सद्बुद्धि दे। जो समस्त देवो का स्वामी,लोकों का आश्रय,दो या चार पावोवाले प्राणियों का प्रभु है,उस ईश्वर की हवि से उपासना करे। अतिसूक्ष्म हृदय में स्थित विश्व रचयिता तथा इसे चारों ओर से व्याप्त परमात्मा का ज्ञान चित्त को शाति देता है। भुवनो का रक्षक, विश्वाधिपति,सभी प्राणियो मे छिपा हुआ वह ईश्वर जिसमे सभी ऋषि तथा देवता तल्लीन रहते हैं,उसे जाननेवाले के मृत्यु बधन कट जाते है (11-15)।

घी के तत्त्व के समान सूक्ष्म सभी प्राणियो मे व्याप्त,विश्व व्यापक एकमात्र शिव को जानकर समस्त वधनो से प्राणी मुक्त होता है। अकेला महात्मा ईश्वर सदा लोगो के हृदय मे है,हृदय से ध्यान लगाकर उसका साक्षात्कार करनेवाला अमृत्व पाता है। अज्ञानाधकार नष्ट होने पर रात्रि दिन सत् एव असत् का बोध नही रहता,केवल अविनाशी शिव ही दीखता है, तब प्राचीन ज्ञान के प्रसारक सविता का वरण करना चाहिए। जिस महिमाशाली के नाम की कोई उपमा नही। उसका ऊपर मध्य या तिरछा कुछ भी नही है। उस रूप को कोई नेत्र नही देख सकते। हृदय मे स्थित उम परमेश्वर को मन से जाननेवाला अमर हो जाता है। रुद्र को अजन्मा जानकर जो भयभीत प्राणी उसकी शरण जाता है,रुद्र दक्षिण मुख से उसकी रक्षा करता है। हे रुद्र हम तुम्हे हवि देते है,तुम हमारे पुत्र,पौत्र,गौ आदि की आयु के प्रति क्रोध कभी न करो। हमारे वीरो को नष्ट न करो। (16-22)।

पंचम अध्याय

नश्वर जड़ जगत अविद्या तथा अनश्वर आत्मा विद्या है। इन दोनो का स्वामी,जिसमे यह दोनो स्थित है,इन दोनों से भिन्न श्रेष्ठ गूढ़ तथा असीम है। जो अकेला ही अनेक प्रकार की सृष्टि का कर्ता तथा जन्म लेते ही परमेश्वर को देखनेवाले कपिल ऋषि को भी जन्म देता है। परमेश्वर प्रत्येक जाल को अनेक बार रचकर नष्ट करता है। फिर वह लोकपालों को बनाकर उनका स्वामी बनता है। जैसे सूर्य अकेला ही अपनी सीधी,तिरछी आदि किरणो से विश्व को प्रकाशित करता है, वैसे ही एक ही परमात्मा सब शक्तियों का स्वामी है। जो विश्व का प्रथम कारण है, यही तप मे प्राकृतिक तत्त्वों का विभिन्न रूपों मे निर्माण करता है। सब गुणो को प्राणी मे युक्त करनेवाला ही ससार मे व्याप्त है। (1-5)

उस वेद-उपनिषदो के रहस्य परमात्मा को ब्रह्मयोनि ब्रह्मा जानता है। उसके ज्ञाता देव तथा ऋषि उनमें लीन होकर अमर हो गए। गुणों से आवद्ध प्राणी फलों की कामना तथा उपभोग करता

है। वह त्रिगुणात्मक त्रिमार्गी आत्मा अपने कर्मफलों से अनेक योनिया धारण करता है। अगुष्ठमात्र,सकल्प,बुद्धि तथा श्रेष्ठ कर्मों के कारण रूई के अग्रभाग समान आकारवाला बना हुआ सूर्य समान तेजस्वी जीवात्मा को भी ज्ञानियो ने देखा है। बाल के सिरे के दस हजारवें भाग जैसा प्राणो का स्वरूप है। यह अतिसूक्ष्म जीवात्मा अनत गुणयुक्त हो जाता है। न तो यह स्त्री होता,न पुरुष और नपुसक,जैसे शरीर मे जाता है,वैसा ही बन जाता है। (6-10)

सकल्प,स्पर्श,दृष्टि,मोह,भोजन,जल आदि द्वारा प्राणियो का जन्म एव उसकी वृद्धि होती है। कर्मफल के अनुसार ही यही जीवात्मा विभिन्न देहो और लोकों को प्राप्त करता है। यह अपने कर्मो के,शरीर के तथा अह के गुणो से स्थूल-सूक्ष्म अनेक रूपो को प्राप्त करता हैं। वस्तुत इन रूपो को ग्रहण कराने का कारण कोई अन्य ही देखा गया है। आदि अतरहित,ससार व्याप्त विश्वकर्ता, विधिरूप ससार को सभी ओर से व्याप्त किया हुआ है। इस परमेश्वर का ज्ञाता बधनो से मुक्त हो जाता है। भावो से ग्राह्य, भावरचयिता ससार की उत्पत्ति एव विनाश के कारण शिव स्वरूप को जाननेवाले साधक देहबधन से मुक्ति पा जाते है। (11-14)

षष्ठम् अध्याय

कविजन प्रकृति-पुरुष को तथा अन्य पुरुष-काल को विश्व की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। वस्तुत यह परमात्मा की ही महिमा है,जिससे यह ब्रह्म-चक्र घूमता है। समस्त जगत जिसमे व्याप्त है,वह परमात्मा काल का भी काल तथा सर्वज्ञ-सर्वगुणी है। विश्व मे सभी पृथ्वी,तेज,जल आदि उसी का कार्य है। उसी ने गुणो युक्त कर्मो तथा सभी भावों को विनियोजित किया। कर्मो के अभाव मे पूर्वकृत कर्म नष्ट हो जाते है और परमात्मा की प्राप्ति होती है,क्योकि जीवात्मा जड तत्त्वो से भिन्न है। परमेश्वर सर्वप्रथम है। वह तीनो कालों की सीमा से बाहर है। वह प्रकृति एव जीव का सयोजक,हृदय मे स्थित एव विश्वरूप स्तुति करने योग्य है। (1-5)

वह विश्व, काल एव आकार से परे होते हुए भी उसी के कारण यह जगत प्रपच है। वह धर्मधारक, पापनाशक, ऐश्वर्य स्वामी विश्वाश्रय है। उसे अपने हृदय मे समझनेवाला अमर हो जाता है। उसे ईश्वरो का भी ईश्वर,देवो का देव,स्वामियो का स्वामी,स्तुति योग्य तथा सर्वातीत मानते है। वह शरीर एव अत करण रहित है। उसके समा. तथा उससे बढकर कोई नही है। उसकी पराशक्ति एव स्वाभाविक ज्ञान तथा बल की क्रियाएं अनेक प्रकार से सुनी जाती है। उसका कोई स्वामी,कोई चिह्न भी नही है। वह कारणो का कारण है तथा उसका कोई भी ईश्वर या पिता नही है। जैसे मकडी जाला बनाकर उससे पुन स्वय को ही ढक लेती है,वैसे ही अकेला ईश्वर अपने कार्यो मे स्वय को आवृत्त कर लेता है। वह अपने ब्रह्मधाम मे हमें स्थान दे। (6-10)

अकेला ही एक ईश्वर सभी प्राणियो मे स्थित,सर्वव्यापक तथा सब मे निवास करने वाला है। वही सभी के कर्मो का नियता,आश्रय,साक्षी,चेतन,पवित्र तथा निर्गुण है। वह असख्य जीवो को वश में रखता है,एक ही जीव को अनेक रूपों में बनाता है,उसे जो धैर्यशाली अपने मे देखते है, वे शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं। जो नित्यो का नित्य, चेतनों का चेतन, अनेक कार्यों को करनेवाला है,उसे साख्य या योग द्वार समझकर सभी पाशों से मुक्ति मिल जाती है। उसके परमधाम में सूर्य,चद्र,तारे या विद्युत कोई भी प्रकाश नही कर सकते। ये सभी उसी मे प्रकाशमान

हैं तथा यह समस्त लोक उसी के प्रकाश से प्रकाशित है। इस लोक मे प्रकाश रूपी एक परमेश्वर ही अधिष्ठित है। वही अग्नि एवं सलिल मे व्याप्त है। उसकी प्राप्ति के लिए उसे जानने के अतिरिक्त अन्य मार्ग नही है। (11-15)

वह विश्व रचयिता सर्वज्ञ, काल का काल, गुणों का गुण, प्रकृति एवं प्रधान तथा आत्मा का स्वामी, सृष्टि एव मोक्ष का कारण है। वह अविनाशी, अधीश्वरो में स्थित पूर्ण सर्वज्ञ परमेश्वर इस लोक का भी स्वामी है। उसके सिवा इसका कोई दूसरा स्वामी नही है। जो सर्वप्रथम ब्रह्मा को प्रकट करके वेदों को देता है। मोक्ष की इच्छा से मै उसी की शरण मे जाता हूं। वह कला, कर्म एवं दोषों से रहित, शात अमृत सेतु तथा जलती अग्नि के समान तेजस्वी है। जब मानव चमडे के समान आकाश को लपेटने मे समर्थ हो जाएंगे, तब वे परमात्मा को जानकर दुःखों से मुक्त हो जाएंगे। (16-21)

तप के प्रभाव एव ईश्वर के प्रसाद से श्वेतावेतर ऋषि को ब्रह्म ज्ञान हुआ। उन्होने यह ऋषि ज्ञान, जो परम पवित्र है, अपने आश्रमवासियों को दिया। इससे पूर्व कल्प में गूढ वेदात मे यह कहा गया था। पुत्र या शिष्य के अतिरिक्त किसी अशांत चित्त व्यक्ति को यह ज्ञान नही देना चाहिए। परमेश्वर में असीम भक्तिवाले तथा गुरु मे भी ऐसी भक्ति वाले महान पुरुष के अंतःकरण मे यह ज्ञान प्रकाशित होता है।

□

11. गर्भोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

यह शरीर पंचात्मक, पाचो मे वर्तमान, छ आश्रयोवाला, छ गुणो एव सात धातुओ से बना द्विमल, दो योनिवाला, चार प्रकार के आहारवाला है। पृथ्वी, जल आदि पाच तत्त्वो के कारण इसे पचात्मक कहते है। शरीर में पृथ्वी आदि क्या है ? तो कहते है—ठोस पृथ्वी, तरल जल, उष्णता अग्नि, संचार करनेवाला वायु तथा छिद्रो को आकाश कहते है। इनके कार्य इस प्रकार है—पृथ्वी का धारण करना, जल का एकत्रित करना, तेज का धारण करना, वायु का अवयवो को उचित स्थान पर पहुंचाना तथा आकाश का अवकाश प्रदान करना है। इद्रियो के कार्य भी चखना, देखना, सुनना, स्पर्श करना एव सूघना आदि है। बुद्धि द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है। मधुर, अम्ल कटु, कषाय, लवण और तिक्त यह छ रस है। सा, रे, ग, म, प, ध, नी यह सात स्वर है। इनमे दृष्ट अनिष्ट एव प्रणिधान कारक मिला देने से दस प्रकार के शब्द बनते है। सफेद, लाल, काला, पीला, कपिल, पाडु तथा धूम्र यह सात रंग है।

जब किसी मनुष्य के भाग्य विषय का उदय होता है, तो उसे छ रस प्राप्त होते है। इनसे शरीर में रस बनता है। फिर रस से रुधिर, मास, मेदा, स्नायु, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र क्रमश एक से दूसरे बनते है। ये सात धातुए मानव शरीर को बनाती है। पुरुष शुक्र एव स्त्री-रज से गर्भ बनता है। धातुए हृदयस्थ रहकर अतराग्नि पैदा करती है। अग्नि के स्थान मे पित्त, पित्त के स्थान मे वायु ही हृदय बनती है।

ऋतु काल मे गर्भाधान के बाद एक रात मे कलल बनता है, सात रात्रि में बुद्‌बुद, एक पक्ष मे पिड वनकर माह भर में कठोर होता है। दो मास मे सिर, तीन मे पाव, चौथे मे घुटने, पेट और कमर, पांचवें में पृष्ठ रीढ, छठे में मुख, नाक, कान, नेत्र आदि, सातवें में जीवन, आठवे माह मे पूर्ण शरीर बनता है। शुक्र अधिक होने से पुत्र, रज की अधिकता से कन्या तथा दोनों की समानता मे नपुसक जन्मता है। आकुल मन गर्भाधान होने से सतान विकलाग होती है। वायु सपर्क से शुक्र के दो भागों में वटने पर जुडवां पैदा होते है। स्वस्थ पचात्मक शरीर में ज्ञानेंद्रिया और उसके विषय उत्पन्न होते हैं। जब वह अनश्वर प्रणव का चितन करता है, तव आठ प्रकृतिया तथा सोलह विकार पैदा होते है। फिर मा का खाया-पिया नाडियों से शिशु के शरीर में पहुचकर उसे तृप्त करता है। नवे मास में ज्ञानेंद्रियो आदि से पूर्ण हो जाता है। इस समय वह पूर्व जन्म को याद करता है। उसके शुभाशुभ कर्म उसके सामने आते हैं।

तव वह विचार करता है कि वह हजारों जन्म ले चुका है, अनेक प्रकार के भोजन कर चुका है तथा अनेक योनियों का दूध पी चुका है। अनेक वार जन्मा और मरा है। अनेक जन्मो के कर्मों को

देखकर अकेलेपन से दु:खी होता है। भोगनेवाले शरीर तो नष्ट हो गए पर वह दु खी हो रहा है। गर्भ से निकलने पर दुष्कर्म निवारक मुक्तिदाता महेश्वर की शरण में जाऊगा, नारायण का आश्रय लूंगा, साख्य-योग की साधना करूंगा और ब्रह्म का चिंतन करूगा, ऐसा सोचता हुआ कष्ट से जन्म लेता है। जन्म लेते ही माया के स्पर्श से वह सब कुछ भूल जाता है।

इसे शरीर क्यो कहते है ? क्योंकि इसमें भोजन पाचक जठराग्नि, दिखानेवाली दर्शनाग्नि तथा शुभाशुभ को प्रकट करनेवाली ज्ञानाग्नि है। इनके स्थान नियत है। आह्वानीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि क्रमश मुख, उदर तथा हृदय में रहती है। देह, आत्मा, मन, लोभ, धैर्य, ज्ञानेद्रियां, सिर-कपाल-केश-दम-मुख क्रमश. यज्ञ, यजमान, ब्रह्मा, पशु, संतोष-रूपी दीक्षाए, हवि और अतर्वेदी है। सिर चतुष्कपाल तथा दतपक्तिया सोलह कपाल माने जाते है

सधिया, मर्म स्थान, स्नायु एव शिराएं क्रमशः एक सौ अस्सी, एक सौ सात, एक सौ नौ तथा सात सौ है। मज्जाए, हड्डिया तथा रोम क्रमश. पांच सौ, तीन सौ सात तथा चार करोड है। हृदय आठ पल, जिह्वा बारह पल, पित्त प्रस्थभर है। शुक्र कुडक एव भेद भी इतने ही है। यह एक परिमाण नियमित नही है, क्योंकि आहार परिणाम के अनुसार ही मूत्र पुरीष परिमाण भी है, जो सबमे समान नही है। पिप्पलाद ऋषि द्वारा प्रकट इस शास्त्र को मोक्ष शास्त्र कहा गया है।

☐

12. मुद्गलोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठा मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्य एधि। वेस्य मे आणीस्थ। श्रुत मे प्रहासी। अनेनाधीतेताहोरात्रासघ-धाम्यमृतं वदिव्याज्ञि। सत्य तन्मामवत् तद्वक्तारभवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शाति शांति शाति ।

प्रथम खंड

पुरुष सूक्त अर्थ निर्णय की व्याख्या पुरुष संहिता में की गई है—

पुरुष सूक्त मे 'सहस्र शीषी' शब्द का अर्थ अनत सिरोंवाला है। 'दशागुलम्' भी अनत अर्थ का सूचक है। ऋचा में विष्णु को सर्वकालव्यापी कहा गया है। द्वितीय मे भी काल से यही व्याप्ति है। तृतीय मे उन्हे मोक्ष देनेवाला कहा है। इन सबमे विष्णु का वैभव वर्णित है तथा चतुर्व्यूह से संबंधित भगवान का स्वरूप वर्णन है। 'त्रिपाद' मत्र मे अनिरुद्ध का वैभव, 'तस्माद्विराड' से नारायण से प्रकृति की तथा पुरुष की उत्पत्ति दिखाई है। 'यत्पुरुषेण' से सृष्टि रूप यज्ञ को बढाकर 'सप्तास्या' में सृष्टियज्ञ की समिधा का वर्णन है, 'त यज्ञम्' इसी यज्ञ की पुष्टि तथा मुक्ति का, 'तस्माद्' से सात मंत्रों तक विश्व रचना वर्णित है। 'वेदाहम्' इन दो मत्रों से हरि का वैभव, 'यज्ञेन' से उपसहार और सृष्टि का मोक्ष कहा गया है। इसे जाननेवाला भी मुक्त हो जाता है।

द्वितीय खंड

मुद्गलोपनिषद् में पुरुष सूक्त का वैभव विस्तार से प्रतिपादित है। भगवान वासुदेव ने यह उपदेश शरणागत इंद्र को सूक्ष्म तत्त्व समझाने के लिए यहा दो खडों में दिया है।

इन दोनों मे वर्णित नाम रूप से परे वह पुरुष विश्व के प्राणियों के समझने से बाहर है। अत यह अगम्य ईश्वर यहां देवता आदि प्राणियों के कल्याण के लिए अनत कलामय रूप में वर्णित है। इसके दर्शनो से ही मुक्ति मिलती है। अत त्रिकालात्मक नारायण पुरुष रूप में स्थित है। वे सभी महिमाशालियों में श्रेष्ठ और सभी प्राणियो के मुक्तिदाता हैं।

वह स्वयं को चतुर्विध करके तीन पादों से आकाश में स्थित होते है। चौथे अनिरुद्ध नारायण नामक अश से जगत की सृष्टि हुई।

इस चौथे चरण से जगत रचना में सर्वप्रथम प्रकृति को उत्पन्न किया। प्रकृतिरूपी ब्रह्मा देहयुक्त होकर भी सृष्टिकार्य न जान पाए तब अनिरुद्ध नारायण ने उन्हें इसका उपदेश दिया— हे ब्रह्मा यज्ञकर्ता के रूप में अपनी इंद्रियों का चिंतन करते हुए कमलकोश से उत्पन्न स्वदेह को हवि, मुझे अग्नि, वसत ऋतु को घृत, ग्रीष्म को समिधा और शरद को रस मानो इसमे तुम्हारी देह वज्र से भी कठोर हो जाएगी और समस्त प्राणी तथा चराचर सृष्टि दीखेगी। इसी प्रकार जीव एव आत्मा के योग से मोक्ष भी कहा गया है। यह सब जाननेवाला पूर्णायु होता है।

तृतीय खंड

एक ही देव अनेकों में प्रविष्ट होकर बहुधा उत्पन्न होता है।

अग्नि रूप में अध्वर्य तथा यजुर्वेदीय उसे यजुषु मानते हुए क्रमश. उपासना एव यज्ञ करते है। सामगायक उसे साम मानते है। यह सब विश्व उसी मे स्थित है। सर्प, सर्पविद, देवता, अप्सराए, उपासक एवं पितर उसे क्रमश विष, प्राण, अमृत, गधर्व, देवता एवं स्वधा मानकर नाना रूपो मे ग्रहण करते है। यह उपासना करने पर भावना के अनुरूप ही प्राप्त होता है। अत ब्रह्मवेत्ता अपने पुरुष रूप में इसे मानते है। यह भावना उसे ऐसा ही बना देती है। इस रहस्य का ज्ञाता भी तद्रूप उसी के समान हो जाता है।

चतुर्थ खंड

ब्रह्म तीनों तापों से परे, छ. कोष रहित, छ. उर्मियों, छ विकारो तथा पांच कोशो से बाहर है। आत्मिक, भौतिक तथा दैविक, ये तीन ताप हैं चर्म, मांस, हड्डी, नाड़ी एव मज्जा, ये षडकोष है, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह तथा मात्सर्य यह छ. शत्रु है। प्राण, मन, अन्न, आनंद तथा विज्ञानमय, यह छ कोश हैं। प्रियता, कटुता, वृद्धि, परिवर्तन, विकास एवं घटना, ये छः विकार है तथा कुल, गोत्र, जाति, वर्ण, आश्रम एव रूप ये छ भ्रम है। इनसे युक्त होकर परम पुरुष जीव बनता है।

इस उपनिषद् का नित्य अध्ययनकर्ता अग्नि, वायु तथा सूर्य से पवित्र हो जाता है। वह नीरोग तथा पुत्र, धन आदि से युक्त होकर पापो से छूटकर इसी जन्म मे पुरुष रूप हो जाता है।

अत· यह पुरुष सूक्त अति गोपनीय तथा रहस्यमय अर्थवाला है। अदीक्षित, अजिज्ञासु विद्वान, यज्ञहीन, अवैष्णव, अयोगी, कटुभाषी, बहुभाषी, वर्ष मे एक बार भी वेद न पढनेवाला एवं असतोषी, इनको इसका उपदेश न दें।

विद्वान गुरु पवित्र स्थान पर बैठकर प्राणायाम करते हुए पुण्य नक्षत्र मे परमेश्वर का ध्यान करते हुए, विनम्रता से आए हुए शिष्य के दाहिने कान में इसका उपदेश दे, अधिक बोलकर उपदेश दूषित हो जाता है। वार-वार कान मे ही बोले। इस प्रकार गुरु-शिष्य दोनो ही पुरुष रूपी बनते है।

□

13. अक्ष्युपनिषद्

प्रथम खंड

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

एक बार भगवान संस्कृति ने आदित्य लोक जाकर सूर्य की स्तुति की— 'ॐ' भगवान सूर्य जो नेत्रो के तेज है, गगनचर है, महान सेनावाले है, तमोरूप, रजोरूप, सत्त्वरूप आदि है, उन्हे मेरा नमस्कार है। मुझे असत् से सत् की ओर, तम से ज्योति की ओर तथा मृत्यु से अमृत्व की ओर ले जाओ। सूर्य भगवान पवित्र रूप, शुचि रूप एवं प्रतिरूप है। विश्वरूप, राशि मालाओ से शोभित, स्वर्ण सदृश, ज्योतिरूप एवं तापरूप सूर्य का हम स्मरण करते है। उस सब प्राणियो मे उदीयमान, सहस्रांशु बहुविध विद्यमान, नेत्रज्योति अदिति पुत्र को नमस्कार है। उस विश्व को वहन करनेवाले को हमारा सब कुछ समर्पित है।' इस चाक्षुष्यती स्तुति से सूर्य अति प्रसन्न होकर बोले, 'इसका नित्य पाठकर्ता ब्राह्मण आंखो का रोगी नही होता तथा उसके वंश में कोई अधा नही होता। आठ ब्राह्मणों को दीक्षा देने से इस विद्या की सिद्धि होती है। इसे जाननेवाला महानता को प्राप्त होता है।'

द्वितीय खंड

तब सांस्कृति ने सूर्य से ब्रह्मविद्या की याचना की। सूर्य बोले, 'सांस्कृति । मै तुम्हें दुर्लभ तत्त्वज्ञान देता हूं। इससे तुम जीवन-मुक्त हो जाओगे। सभी प्राणियो को एक अजन्मा, शात, अनश्वर, अनंत, ध्रुव तथा चैतन्य मानकर शाति एव सुख से रहते हुए आत्मा एव परमात्मा के अलावा किसी वस्तु को न देखना योग है। अत योगानुरूप कर्म करो। इससे अंतकरण दिन-प्रतिदिन वासनाओं से दूर होता है। गवारों के कर्मो से इसका कोई संवध नही है। वह किसी की गुप्त वातों को सुनकर किसी से नही कहता तथा श्रेष्ठ कर्म ही करता है। (1-5)

उत्तेजक वचन न बोलनेवाला, सौम्यकर्मी, पापभीरु निर्व्यसनी, मधुरभापी, वाणी-कर्म से सज्जनों का अनुगामी, सद्ग्रथों का अध्येता एव तदनुकूल आचरणवाला, मोक्ष का इच्छुक व्यक्ति भूमिकावान् कहा जाता है। विचार योग-भूमिकावाले के लक्षण इस प्रकार है। (6-10)

वह श्रुति, स्मृति, सदाचार, धारणा, ध्यान, कर्म के श्रेष्ठ व्याख्याकारों का आश्रय ग्रहण करता है, उचित शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-अकर्तव्य को जानकर, पद-पदार्थों के विभाग को समझकर, मद, मोह आदि से दूर चित्तवाला (कितु वाह्य रूप में इनकी तनिक उपस्थिति रहती है) सर्प की केंचुल के समान वाह्य दोषों को त्याग देनेवाला साधक शास्त्र, गुरु एव सज्जनों की सेवा से यथार्थ ज्ञान पाता है। (11-13)

तब योग की असंसर्गा नामक तृतीय भूमिका मे प्रविष्ट होता है। अपनी निश्चल मति को शास्त्रों के वास्तविक अर्थ में लगाकर तपस्वियो के आश्रमों में रहकर, अध्यात्म चर्चा करता हुआ शिलाओं के आसन पर स्थित होकर आयु के अंतिम भाग को बिताता है। सुखों से दूर रहकर सत्शास्त्रो के अध्ययन और पुण्य कार्यो से यथार्थज्ञान प्राप्त होता है। इस भूमिका की प्राप्ति पर साधक प्रवुद्ध हो जाता है। (14-19)

सामान्य एव श्रेष्ठ,अससर्ग के ये दो भेद होते है। कर्ता,भोक्ता,बाध्य,बाधक भावो से मुक्ति सामान्य अससर्ग है। जो कुछ भी सामने है, सभी पूर्व जन्म के कर्मफल है, सुख-दु ख समान है, भोगादि रोगों के समान आपत्ति देनेवाले है,नश्वर है,मानसिक चिंताएं अज्ञान का लक्षण है, सभी पदार्थ कालग्रास बनेंगे,समझने पर भी शास्त्रोपदेश के प्रति अनास्था मन मे उनका अभाव बताता है,यह सब सामान्य अससर्ग है। मेरे कर्म ही कर्ता है,मै नही; अथवा परमात्मा ही कर्ता है,इस प्रकार के विचारो से चितामुक्त होने पर मौन,आसन तथा शांत भाव की प्राप्ति श्रेष्ठ अससर्ग है।(20-26)

सतोष, आमोद तथा मधुरता रूपी प्रथम भूमिका के प्रकट होने पर अंतःकरण से अमृत के अकुर फूटने की अनुभूति होती है। इसके बाद अंतःकरण अन्य भूमिकाओ की जन्मभूमि बनता है। तब साधक द्वितीय एव तृतीय भूमिका प्राप्त करता है। तीनो मे तीसरी भूमिका उत्कृष्ट है। इसके उदय से इच्छारूप वृत्तिया नष्ट हो जाती हैं। तीनो भूमिकाओं का साधक चौथी में प्रवेश करने पर समदर्शी हो जाता है। अद्वैत भावना के दृढ होने पर द्वैत भाव स्वत नष्ट हो जाता है। इस भूमिका को प्राप्त साधक इस लोक को स्वप्न समान मिथ्या मानता है, अत. प्रथम तीन भूमिकाएं जागृत तथा यह चतुर्थ भूमिका स्वप्न कहलाती है। (26-32)

पाचवी भूमिका में साधक का चित्त बादलहीन शरद कालीन आकाश के समान निर्मल हो जाता है। तब सत्य ही शेष रह जाता है। सांसारिक विषय उत्पन्न नही होते। सभी भेद शांत हो जाते हैं तथा अद्वैत अवस्था रहती है। सुषुप्तिपद नामक पचम भूमिका साधक को आत्मरूप बना लेती है। बाह्य व्यवहारों के रहने पर भी वह सदा थका और सोया-सा दीखता है। इसकी सिद्धि पर वह छठी भूमिका में आता है। तब सत्-असत् 'मै हूं, 'नही हूं' इत्यादि मननहीन बुद्धि होती है। इस विशुद्ध अद्वैत अवस्था मे वह निर्भय होकर हृदयग्रंथि खुलने पर संदेहहीन तथा भावशून्य हो जाता है। यह बिना निर्वाण के (मोक्ष के) भी निर्वाण जैसी जीवनमुक्त अवस्था है। यह निश्चल दीपक जैसी अवस्था है। इसके बाद 'विदेह मुक्त' नामक सातवीं योग भूमिका आती है। (33-40)

विदेह मुक्ति नामक सातवी अवस्था अवर्णनीय शांत तथा अंतिम योग भूमिका है। इसमें शरीर,लोक तथा शास्त्र के आचार-विचार नष्ट हो जाते है। विश्व,प्राज्ञ आदि रूप यह सब ओंकार ही है,इसमे वाच्य-वाचक-भेद नष्ट हो जाता है। इस भाव के रहते यह अवस्था नही आती। ओम (अ + उ + म) की प्रथम मात्र 'अ' विश्व, 'उ' तेजस् तथा 'म्' प्राज्ञ है। समाधि पूर्व प्रयत्न से इसे विचारे तथा स्थूल एवं सूक्ष्म को क्रमश· आत्मलीन करे। चिदात्मक को आत्मरूप मानते हुए 'मै नित्य,शुद्ध,बुद्ध,मुक्त,सत्,असत्,अद्वितीय,परम आनंदमय,वासुदेव तथा ओम् हूं। सपूर्ण सृष्टि आदि, मध्य तथा अत में दु खद है। मैं आनंदमय, निर्मल, विशुद्ध, अविद्या अधकार रहित, आभासहीन, वाणी एव मन की पहुच से दूर, प्रज्ञानघन ब्रह्म हू।' ऐसा मानते हुए स्थित रहे। (41-48)

☐

14. अध्यात्मोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

शरीरस्थ गुहा में एक अजन्म 'नित्य' रहता है । इसका शरीर पृथ्वी है । पृथ्वी के भीतर रहते हुए भी पृथ्वी इसे नही जानती । इसी प्रकार जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहकार, चित्त, अव्यक्त, अक्षर और मृत्यु इसके शरीर है, यह इन सबके अंत मे रहता है, किंतु यह सब इसे नही जानते है । वह सब भूतों (प्राणियों) का अतरात्मा है, वह नष्ट पाप एक दिव्य देह नारायण है । देह तथा नेत्र आदि इंद्रिया सब आत्मक पदार्थ है । इन सबमें 'मै और मेरा' ऐसी भावना केवल भ्रम है । विद्वान जन ब्रह्मनिष्ठा से इस भ्रम को दूर करे (1) ।

स्वयं को बुद्धि तथा उसकी वृत्तियों को साक्षी समझकर 'मै वही हू' इस वृत्ति से अपने अतिरिक्त सब पदार्थो के प्रति अपना भाव (आत्मबुद्धि) त्याग दें । क्रमश लोक, देह और शास्त्र का अनुसरण छोडकर अत में आत्मा का अभ्यास भी छोड़ दे । युक्ति, श्रुति एव स्वानुभूति से सभी को आत्मा में जानकर स्थित योगी का मन नष्ट होता है । निद्रा, लोकवार्ता, शब्द आदि से अपने को भूलना, इन्हें अवसर न देकर स्वयं आत्मा का चितन करो । (2-5)

यह देह मा-बाप के मल से उत्पन्न तथा मल-मांस से भरा हुआ है, अत इसको चाडाल के समान त्यागकर ब्रह्म बनकर कृतार्थ होओ । परमात्मा रूप महाकाश मे आत्मारूप घडे को एक रूप करके, हे मुनि सदा मौन रहो । स्वयं प्रकाशित स्वयंजन्मा परम ब्रह्म बनकर देह, अडकोश तथा ब्रह्मांडका भी मलपात्र के समान त्याग कर दो । देह, में आरूढ अहंकार को सदा आनंद रूप चिदात्मा में लगाकर शरीर को त्यागकर 'केवल' भाव बनो । दर्पण में दिखनेवाले शहर के समान जिसमे यह जगत दिखाई देता है, 'मै वही ब्रह्म हूं', ऐसा जानकर कृतार्थ बनो । (6-10)

अहंकार रूपी ग्रह से छूटा व्यक्ति अपने रूप को प्राप्त करके पूर्णद्र के समान निर्मल होकर सदा आनंद एव स्वयंप्रभ बनता है । क्रिया, चिंता एवं वासना का एक के बाद एक क्रम से नाश होता है । यही मोक्ष एवं जीवन मुक्ति कहलाती है । सर्वत्र सब में ब्रह्म को देखना—इस भावना के दृढ होने पर वासना नष्ट हो जाती है । ब्रह्मवादियों का कथन है कि विद्या में तथा ब्रह्मनिष्ठा मे प्रमाद कदापि नही करना चाहिए, क्योंकि यही मृत्यु है । जैसे थोड़ा शैवाल हटा देने पर भी वह पानी को ढंक लेता है, इसी प्रकार ब्रह्मविमुख प्राज्ञ को भी माया पुन ढंक लेती है । (11-15)

जिसे जीते जी 'केवल' ब्रह्मनिष्ठा प्राप्त हो गई, वह देहात पर भी ब्रह्मरूप बनेगा, अत हे निर्दोष । निर्विकल्प समाधिवाले बनो । निर्विकल्प समाधि में अद्वैत आत्मा के दर्शन होने पर अज्ञान ग्रथि नष्ट हो जाती है । आत्म तत्त्व को दृढ करते हुए, 'मैं' 'मेरा' इन भावों को त्यागते हुए घडे तम्र आदि के समान उदासीन रहें । ब्रह्मा से कीड़े तक सारी उपाधिया मिथ्या हैं । अत एकात्मा स्थित

होकर सर्वत्र अपनी आत्मा का दर्शन करना चाहिए । ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, शिव तथा यह समस्त जगत वह 'स्वय' है, इससे भिन्न कुछ भी नही । (16-20)

स्वय की आत्मा मे समस्त वस्तुओं का आभास केवल आरोपित है, अत इसे दूर करके ही पूर्ण अद्वैत परमब्रह्म बना जा सकता है । एक ही आत्मारूप वस्तु में प्रतीयमान विकल्प भेद मिथ्या है, क्योंकि निराकार, निर्विका (परमात्मा) दर्शन, दर्शद आदि गुणो से शून्य है । वह निर्दोष तथा प्रलय कालीन समुद्र सदृश पूर्ण है । परम तत्त्व के दर्शनो पर भ्रांति, प्रकाश मे अंधकार के समान लुप्त हो जाती है । अद्वितीय परम तत्त्व मे भेद कैसे हो सकते है । वह एक स्वसूप तथा सुखरूप ही है । (21-25)

इस वैकल्य का मूल चित्त है, चित्त के अभाव में विकल्य नही रहता । अत प्रत्यग रूप परमात्मा में चित्त को लगाओ । अखड आनदमय आत्मा को अपना ही स्वरूप समझते हुए इस आत्मा के अदर बाहर आनंद-रस का आस्वाद ले । वैराग्य का फल ज्ञान, ज्ञान का उपरति, उपरति का आत्मानद के अनुभव की शांति है । उनकी उत्तरोत्तर प्राप्ति न होने पर पूर्व फल व्यर्थ है । विषय निवृत्ति परम तृप्ति है । आत्मा का आ नंद स्वयं में अनुपम है । जगत का कारण माया, उपाधिवाला सर्वज्ञाता आदि मुक्त है । परोक्षता सत्य आदि स्वरूप आत्मा ही सत् है । (26-30)

'मै' इस शब्द का अनुभव तथा शब्द का आश्रय प्रतीत होनेवाला, जिसका ज्ञान अतःकरण से अलग है, ऐसा जीव 'तुम' कहा जाता है । माया एव जीव इन दो उपाधियो के परित्याग पर केवल परम ब्रह्म ही दिखाई पडता है । इस प्रकार 'वह तू ही है, इस प्रकार के महावाक्यो से जीव एव ब्रह्म की एकता को विचार कर अनुसधान श्रवण है, श्रवण पर विचार करना मनन है । इन दोनो से निकले निष्कर्ष मे चित्त को लगाना निदिध्यासन है । फिर ध्याता-ध्येय में अभेद करके चित्त को केवल ध्येय में लगाकर वायु हीन स्थान पर रखे दीपक के समान निश्चल बन जाना ही समाधि है । (31-35)

इस समाधि मे वृत्तिया अज्ञात तथा आत्मागोचर होती है । समाधि के बाद उठने पर उत्पन्न वृत्तियों का अनुमान किया जाता है । इस अनादि संसार में करोड़ कर्मो का सचय होता है, समाधि से इनका विलय होकर शुद्ध धर्म वढता है । समाधि योग को जाननेवाले इसे धर्म मेघ कहते है । इसमे हजारों धाराओं मे धर्मामृत बहता है । इससे वासना का जाल समूल नष्ट होता है, पाप-पुण्य भी नही रहते । तव प्रथम महावाक्य 'तुम वही हो' (तत्त्वमरसि) का परोक्ष आभास होता है, फिर हाथ मे रखे आवले के समान अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है (36-40) ।

भोग्य पदार्थो के प्रति वासना का न होना वैराग्य का तथा 'अह' का उदय न होना ज्ञान का लक्ष्य है । लीन हुई वृत्तियों का पुन उदय न होना उपरति है । इस प्रकार स्थितप्रज्ञ यति सदा आनदित रहता है । ब्रह्म में लीन मनवाला निर्विकार एव निष्क्रिय रहता है । शोधित ब्रह्म एवं आत्मा-एकत्ववाली निर्विकल्प वृत्ति प्रज्ञा है । इससे युक्त साधक जीवन मुक्त कहा जाता है । देह, इद्रियों अथवा अन्य पदार्थो के प्रति निर्ममत्व भी जीवनमुक्तता है । (41-45)

जीव-ब्रह्म में, ब्रह्म-सृष्टि में जिसकी वुद्धि अभेद समझती है, वह तथा सज्जनों द्वारा सम्मानित और दुष्टों द्वारा दुःखी किए जाने पर जो दोनों को समान समझनेवाला जीवन मुक्त है । ब्रह्म तत्त्व को

जानने पर संसार पूर्ववत् नही प्रतीत होता । यदि यह पूर्ववत प्रतीत हो, तो वह अभी तक ब्रह्म को नहीं जानता, वह केवल बहिर्मुखी है । प्रारब्ध कर्म तक सुखादिका अनुभव होता है; यही मान्यता है, क्योंकि क्रिया होने पर ही फल का उदय होता है, इसके बिना कदापि नही, मैं ब्रह्म हू (अहं ब्रह्मास्मि), के ज्ञान से अरबों कल्पों के जन्म से अर्जित कर्मो का वैसे ही नाश हो जाता है, जैसे उठने पर स्वप्न का ।(46-50)

स्वयं की आकाश के समान असंग और उदासीन समझकर योगी कर्म मे बिलकुल लिप्त नही होता । जैसे मदिरा के घडे के ऊपर का आकाश उसकी गध से युक्त नही होता, वैसे ही आत्मा उपाधि के गुणों से लिप्त नही होता । जैसे लक्ष्य पर छोडा गया तीर उसे बिना बेधे नही छोडता, वैसे ही ज्ञान-प्राप्ति से पूर्व किया कर्म बाद में फल देता ही है । व्याघ्र के उद्देश्य से छोडा गया तीर जैसे यह व्याघ्र नही गाय है ऐसा जानकार भी उसे नही छोड़ता, ऐसे ही कृतकर्म ज्ञान-प्राप्ति के बाद भी फल देता ही है । मै अजर-अमर हूं जिसे यह ज्ञान हो जाता है, उसे प्रारब्ध कर्मो की कल्पना कैसे होगी ? (51-60)

देह के ऊपर आत्मबुद्धि होने पर ही प्रारब्ध कर्म सिद्ध होता है । देह के प्रति आत्मभाव रखना इष्ट नही है, अत इसे त्यागकर प्रारब्ध का त्याग करे । देह भ्रांति प्राणी के प्रारब्ध के कारण है । अत यह कल्पित है, सत्य नही । असत्य का जन्म कैसे ? अजन्म का नाम कहा से आया ? अत जो है नही उसे प्रारब्ध कैसे ? देह अज्ञान का कर्म है । यदि ज्ञान से अज्ञान समूल नष्ट हो जाए, तो देह कैसे ? ऐसी शंका का समाधान यह है कि वेदो ने प्रारब्ध को बाह्य दृष्टि से कहा है, न कि विद्वानो के उद्देश्य से 'देह सत्य है' यह जानने के लिए । (56-60)

वस्तुत ब्रह्म परिपूर्ण, अनादि, अनत, अप्रमेय, अविकारी, सत, धन, चिन्मय नित्य, आनदधन अव्यय, प्रत्येक मे व्यापक, सर्वतोमुख, त्याग एव ग्रहण में असमर्थ, निराधार, निराश्रय, निष्क्रिय, सूक्ष्म, निर्विकल्प स्वयं सिद्धि, शुद्ध, बुद्ध स्वय जैसा, मन-वाणी से अगम्य, एक अद्वैत है । उसके अतिरिक्त कोई भी नही है । इस प्रकार स्वयं के अनुभव से अपनी आत्मा को अखडित मानकर निर्विकल्पक आत्मा में सुख से स्थित । (यह सुनकर ज्ञान प्राप्त शिष्य बोला— मेरे द्वारा अभी देखा गया जगत कहां गया ? किसने ले लिया ? कहा लीन हो गया ? क्या यह महान् आश्चर्य नही है ? (61-66)

अखड आनंदरूपी ब्रह्म सागर में अब क्या छोडना या क्या लेना है ? न कुछ देखता हू, न सुनता हूं और न जानता हू । मै आत्मस्वरूप सदा आनंदरूप अपना लक्षण स्वयं हू । मैं असग हू, अनंग (देहरहित) हूं, चिह्नहीन हू, श्री हरि हू, प्रशात हू, अनंत हूं, परिपूर्ण हू और प्राचीनतम हू । मैं अकर्ता, अभोक्ता, अविकारी, अनश्वर, शुद्ध बोधस्वरूप, केवल और शिव हू(67-70) ।

यह विद्या गुरु ने अपांतरतम को, इसने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने घोरागिरस को घोरांगिरस ने रैक्य को, रैक्य ने राम को तथा राम ने सभी को दी । यह निर्वाण का उपदेश वेद की आज्ञा है ।

□

15. मैत्रायणी उपनिषद्

शांतिपाठ :

अध्यायतु ममागनि वाक्प्राणचक्षुष क्षोत्रमथो बामिद्रियाणि सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषद माह ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्व-निराकरण मेऽस्तु तदात्मनि निरतेय उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु ।

ॐ शाति. शाति शाति

प्रथम प्रपाठक

शरीर की अनित्यता का ज्ञान होने पर वृहद्रथ राजा राज्यभार ज्येष्ठ पुत्र को सौपकर वैराग्य धारण कर वन में चला गया । वहा वह हाथ ऊपर करके सूर्य की ओर आंखे करके कठिन तप करने लगा । एक हजार वर्ष की तपस्या के फलस्वरूप अतितेजस्वी आत्मवेत्ता शाकायन्य ऋषि उसके पास आए । उन्होने राजा से वर मागने को कहा । राजा ने आत्मज्ञान का वरदान मांगा । ऋषि ने कहा कि वह प्राचीनकाल से ही कठिन माने जानेवाले इस वर को छोडकर कोई और वर मागे । यह सुनकर राजा शाकायन्य के चरणों में गिरकर बोले (1) —

भगवन यह शरीर अस्थि, चर्म, स्नायु, मज्जा आदि से युक्त और दुर्गंधयुक्त नि सार है, तब विषय-भोग व्यर्थ है । वह काम, क्रोध, भय, दु ख, भूख, बुढापा, मरण आदि से पीडित है, नाशवान है । अनेक लोग मरते है । मच्छर आदि तुरत मर जाते है । इनकी तो गणना ही क्या है, बडे-बडे वीर सुद्युम्न, भूरघुम्न, इद्रद्युम्न आदि चक्रवर्ती सम्राट भी अपने बांधवों और लोको के ऐश्वर्य को त्यागकर परलोक चले गए । मानव ही नही, गधर्व, असुर यक्ष आदि भी नाशवान हैं । यही नही, समुद्र सूख जाते हैं, पर्वत टूट जाते है, ध्रुव, पृथ्वी, देवगण आदि भी स्थिर नही रहते । तब 'अह' भरे जगत के विषयों से क्या लाभ ? इनमें आसक्त बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र मे फंसा रहता है । मै भी कुएं के मेढक के समान जगत के अधकार में पड़ा हू । मै आपका शरणागत हू, मेरे आधार बनकर रक्षा कीजिए । (2-7)

द्वितीय प्रपाठक

यह सुन अत्यंत प्रसन्न हो ऋषि बोले, 'वृहद्रथ, तुम इक्ष्वाकु वंशीय ध्वजशीर्ष राजा के मरुत नाम मे प्रसिद्ध पुत्र हो । तुम धन्य हो । मैं यह आत्मविषय तुम्हें समझाता हूं । बाह्य इद्रियो को रोधने मे प्राणरूपी आत्मा ऊपरिगामी वनता है । दु खी प्रतीत होने पर भी यह दुःखरहित एव अंधकार नाशक होता है । देह से वाहर निकलने पर यह ज्योतिरूप ब्रह्म को प्राप्त करके अपना स्वरूप पाकर स्थिर बनता है । यह आत्मा अमृतरूप, अभय और ब्रह्म है । (1-2)

समस्त उपनिषदों की इस ब्रह्मविद्या को मुझे भगवान मैत्रेय ने दिया, मै तुम्हें देता हू । नष्टपाप, अतितेजस्वी, ब्रह्मचारी वालखिल्य नामक मुनि ने एक वार ब्रह्मा से पूछा, 'गांडी के समान यह

अचेतन शरीर किस अतींद्रिय पदार्थ की महिमा से चेतन जैसा हो जाता है । किसकी प्रेरणा से यह सब होता है ।' ब्रह्मा बोले, 'जो वाणी से परे है, वह शुद्ध, पवित्र, शून्य, शांत, अप्राण, जीवनदाता इत्यादि गुणोवाले आत्मा की ही यह महिमा है । वही इसका प्रतिष्ठाता और प्रेरक है ।' (3-4)

इस पर बालखिल्य ने फिर पूछा, 'इच्छारहित होने पर भी यह आत्मा शरीर मे चैतन्य रूप मे कैसे रहता है ? क्यों इसकी प्रेरणा देता है ? इसकी महिमा कैसी है ? ब्रह्मा बोले, 'आत्मा सूक्ष्म, अग्राह्य एव अदृश्य है, पुरुष संज्ञक है । सोते हुए को वह अपने एक अंश की क्रिया से जगाता है । यही अंश प्राणियो मे जीवात्मा बनता है । प्रत्येक शरीर में वही क्षेत्रज्ञ है, तेज, सकल्प प्रज्ञान, अहकार और प्रजापति रूप मे सबको देखता है । उसी से यह शरीर सचेतन है तथा प्रेरणा पाता है ।' बालखिल्य ने फिर पूछा, 'अखड होने पर यह अश रूप में कैसे रहता है ?' ब्रह्मा बोले, 'सर्वप्रथम प्रजापति ही था । एकात से ऊबकर उन्होंने आत्मा का ध्यान किया । अनेक प्रकार की प्रजा बनाई । यह अचेतन प्रजा उन्हे स्तभ जैसी लगी । यह अच्छा न लगने पर इसे सचेतन करने के लिए उनमे प्रवेश किया । अत. एक ही प्राण के (प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान यह) पांच भेद हो गए । (5-6)

उर्ध्वगामी प्राण है, अधोगामी (मलद्वार से पहुचनेवाली वायु) अपान है, समस्त नाडियो मे व्याप्त है, वह व्यान है । खाने-पीने मे ऊपर-नीचे गतिवाला समान है जिससे ये समस्त व्याप्त है, वह व्यान है । बीच की अत्यंत मद उष्णता पुरुष है । यही वैश्वानर अग्नि है । अन्यत्र भी इसे वैश्वानर अग्निपुरुष कहा है । यह भोजन पचाता है । शरीर में कान बद करने पर सुनाई देनेवाली ध्वनि, जो प्राणात पर नही प्रतीत होती इसी की ध्वनि है । (7-8)

यह आत्मा पाच रूपो से हृदय गुहा मे स्थित है । यही सत्य सकल्पवाला मन, प्राण आदि रूप भी है । इस प्रकार यह वहां रहकर अपने को कृतार्थ करने हेतु पांच द्वारो से प्रकट हुआ । ये द्वार पाच इद्रिया बनी । यह पाच कर्मेद्रिया लगाम, शरीर रथ, मन सारथी और स्वभाव चाबुक है । इस चाबुक से शरीर चक्र की तरह घूमता है । अत आत्मा ही शरीर का प्रेरक है । लगता है शरीर का वशीभूत आत्मा शुभाशुभ कर्मो के बधनों से अनेक देहो में घूमता है । किंतु वस्तुत वह अव्यक्त सूक्ष्म, अदृश्य, अग्राह्य तथा ममत्वहीन है, कर्ता जैसा प्रतीत होता है । यह शुद्ध, स्थिर, आसक्ति-दु ख, इच्छारहित दर्शक की तरह कर्मफलों का भोक्ता जान पडता है और उसने अपने रूप को त्रिगुणात्मक वस्त्र से आवृत्त किया है । (9-11)

तृतीय प्रपाठक

इस पर बालखिल्य ने पूछा, 'यदि आत्मा ऐसी महिमायुक्त है, तो शुभाशुभ कर्मो मे अच्छी-बुरी योनियों में भ्रमण करनेवाला आत्मा क्या कोई अन्य ही है ? सुख-दुःख के वशीभूत कौन आत्मा अच्छी और कौन बुरी गति को प्राप्त होता है ?' इस पर ब्रह्मा बोले, 'शुभाशुभ कर्मो मे दबा वह भूतात्मा कहलाता है । इन भूतों का समुदाय ही शरीर है, अत शरीर भूतात्मा कहलाता है । इसमें स्थित आत्मा कमलपत्र में स्थित जलबिंदु की तरह है । प्राकृतिक गुणों से अभिभूत होकर यह मूर्खता से अपने प्रेरक को नही देख पाता । इन गुणों मे यह पापी अस्थिपजर लोलुप विषयो की

इच्छावाला अहंकारयुक्त हो जाता है। 'मै' और 'मेरा' ऐसा मानने से यह पक्षी की तरह जाल मे फस जाता है। अपने कर्मफलों से फसा घूमता रहता है। (9-12)

अन्यत्र कहा गया है कि कर्ता तो भूतात्मा ही है। अतःस्थ शुद्ध आत्मा केवल प्रेरक है। जैसे लोहार अग्नि से लोहे को अनेक रूपो में बना देता है, इसी प्रकार आत्मा भूतात्मा को अनेक प्रकार से वनाता है, चौरासी लाख योनियों में घुमाता है। यही अनेकता है। जैसे चक्र घुमानेवाला कुम्हार चक्र से अलग रहता है। वैसे ही पुरुष भी अन्य है। गर्म लोहे को पीटने से अग्नि मे कुछ नही होता, इसी तरह भूतात्मा के सपर्क से आत्मा दोषी नही है। कहा भी गया है कि स्त्री-पुरुष ससर्गजन्य यह देह चेतना रहित तथा नरक का द्वार है। यह मूत्र मार्ग से जन्मा हड्डियो का ढाचा सास से पिया, चर्म से गढा, मल-मूत्र आदि से भरा है, अन्य अनेक मलोवाली वस्तुओ का कोश है। (3-4)

दूसरी जगह कहा गया है कि दु ख, क्रोध, दीनता आदि विकारो से भरा हुआ, तृष्णा, स्नेह राग, लोभ आदि का आश्रय है। विषयासक्ति आदि रजोगुण के विकारो से भी यह युक्त है। इन्ही सबसे यह पराभूत होकर अनेक रूपो को प्राप्त होता है। (5)

चतुर्थ प्रपाठक

यह सुन अत्यत विस्मित बालखिल्य बोले, 'भगवन नमस्कार हो। आप ही हमारी शरण है, कोई अन्य नही। अत बतलाइए कि इस भूतात्मा की स्थिति क्या है, जिससे यह सबको छोडकर आत्मा में ही सायुज्य पाता है ? ब्रह्मा बोले, 'जैसे नदियो मे तरगें होती है, तट पर वं समाप्त होती है, वैसे ही इसे पूर्वकर्मो का फल भोगना होता है, इसके लिए मृत्यु आवश्यक है। यह कर्मबंधनो से पशु जैसा वधा है। अत यह सदा भयभीत रहता है। विषय सुखो की मदिरा से उन्मत्त बनता है। पाप के भूत से यह भटकता रहता है, साप के कोटर समान दु खी, विषय इच्छा से अधा, माया रूपी जादू से मिथ्या, केले के वृक्ष के अदर की तरह खाली, नट की तरह नितक्ये वेशधारी, चित्र की तरह वाहर से ही सुदर होते हुए भी रूप, रस आदि विषयो में डूबे भूतात्मा को अपना रूप याद नही आता। इसकी मुक्ति के लिए ज्ञान प्राप्ति हेतु धर्माचरण एव आश्रम धर्म का पालन हो, क्योंकि अपना धर्म ही सर्वस्व है। इसी से यह उन्नति प्राप्त करता है, वेदो के अनुसार स्वधर्म त्यागी अधर्मी है। आश्रम धर्म का पालक तपस्वी है। जो तपस्वी नही है, उसका ध्यान आत्मा मे नही लगता। अत वह कर्म शुद्ध नही होता। तप से क्रमश ज्ञान, मन पर सयम तथा आत्मा की प्राप्ति होती है। अंतत ससार से मुक्ति मिलती है।(1)

जैसे ईधन की समाप्ति पर अग्नि स्वयं शात हो जाती है, वैसे ही वृत्ति नाश पर चित्त उत्पत्ति स्थान पर शात हो जाता है। फिर ज्ञान प्राप्ति पर सत्याभिमुख होने पर कर्म के वशीभूत इद्रिय विषय इसे मिथ्या लगते है। चित्त ही ससार है, अत. इसे प्रयत्न से शुद्ध करे, इसके अनुरूप ही गति मिलती है। चित्त की शाति पर कर्मनाश के वाद आत्मा में लय होने पर अनश्वर आनद मिलता है। चित्त विषयों के स्थान पर यदि उतना व्रह्म में लगे, तो वधनमुक्ति अवश्यंभावी है। (2-5)

मन शुद्ध और अशुद्ध द्विविध है, जो क्रमश निष्काम और सकाम होता है। लय, विक्षेपरहित स्थिर मन परमपद रूप है। मन का नाश न होने पर इसे हृदय मे रोकें। यही ज्ञान का सार है। समाधि

द्वारा निर्मल और आत्मा में जुड़ा मन आनंदित होता है। यह अवर्णनीय एव अंतःकरण द्वारा अनुमानयोग्य होता है। जैसे अग्नि मे अग्नि, आकाश में आकाश तथा जल में जल मिलने पर वह एक रूप हो जाते है, वैसे ही चित्त लीन होने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है। विषयो मे आसक्त मन बधन है, विषयहीन मन मोक्ष है। (6-11)

कोत्सायन कृत स्तुति—तुम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इद्र, चद्र, मनु, यम, पृथ्वी तथा अच्युत हो। तुम्ही स्वाभाविक अर्थ में तथा स्वर्ग मे हो। हे विश्वेश्वर, विश्वात्मा, विश्वकर्मा, विश्वभोक्ता, विश्वमाया, विश्वक्रीड़क, विश्वप्रेमी तथा प्रभु तुम्हे नमस्कार। हे शात आत्मा, गुह्यतम, अचितनीय, अप्रमेय, अनादिधन तुम्हे नमस्कार। (12-15)

सृष्टिपूर्व केवल अधकार ही था। फिर प्रेरित होकर परमात्मा से प्रेरित इद्रिय विषय बने! इसमे से प्रेरित रजोगुण बना। यह विपमता को प्राप्त हुआ। फिर तमोगुण एव सत्त्वगुण मानो स्वय से ही प्रेरित होकर निकले। जीव मे स्थित चेतन सत्ता परमात्मा ही अश है। वह सकल्प, निश्चय, अहकार रूपी और प्रजापति है। ब्रह्मा, विष्णु इसके श्रेष्ठ शरीर कहे गए है। ये क्रमश रजोगुण, सत्त्वगुण एव तमोगुण के अश है। इस प्रकार एक ही परमात्मा इन तीन रूपों, आठ रूपो, ग्यारह रूपो आदि मे प्रकट हुआ है, अनत होकर भूतो मे स्थित है। यह सबका अधिपति है। सबके बाहर और भीतर स्थित है।

पंचम प्रपाठक

पहले यह आत्मा प्राण एव सूर्य इन दो स्वरूपो को धारण करता है, जो क्रमश अतरात्मा और बहिरात्मा है। प्राण की गति से ही इसकी बहिरात्मा का अनुमान होता है। वेदानुसार यह गतिरूप है। नष्टपाप विद्वान सबका अध्यक्ष होता है। वह शुद्ध मन परमात्मा मे निष्ठावाला, खुले ज्ञानचक्षुवाला अतरात्मा में स्थित रहता है। वह गति से बाहर जाने मे समर्थ है। आत्मा की गति अनुमान योग्य है, यह वेदमत है। सूर्य में दृश्यमान स्वर्णमय पुरुष ही हदय कमल स्थित है और अन्न खाता है। यही सूर्य की अग्नि के रूप मे आकाश-स्थित है, यही काल है, जो अदृश्य रहकर भूतरूपी अन्न खाता है। यह कमल क्या है? क्या जानता है? उत्तर है—आकाश कमल है। इन चार-चार दिशाओं उपदिशाओं मे रहनेवाला वही है। सबसे परे है। प्राण एव आदित्य की ओम व्याहतियों और गायत्री से उपासना करनी चाहिए। (9-2)

मूर्त एव अमूर्त ब्रह्म के दो स्वरूप है, जो क्रमश असत्य एव सत्य है। ब्रह्म ही ज्योति है और ज्योति आदित्य है। ओम आत्मा है, जिसने स्वरूप त्रिविध बनाया है। ओम् की तीन मात्राओ से यह सब ओतप्रोत है। यही सर्वत्र है। यह वेदवचन है। या आदित्य ही ओम है, ऐसा ध्यान करके अपने को उसमे जोडे। अन्यत्र कहा गया है कि उदगीध ही प्रणव है, प्रणव ही उदगीथ। वही नाम-रूप है निद्रा, वृद्धावस्था एव मृत्यु रहित है। वह पांच प्रकार का, गुहास्थित, ऊपर ब्रह्म तक शाखाओंवाला है। आकाश आदि पाच तत्त्व ही शाखाए है। एक ही तत्त्व से यह सब ग्राह्य है। वही ब्रह्म है। जगत उसका स्वरूप ही है। सूर्य ओम् अक्षर का स्वरूप है, अत इसी अक्षर मे उसकी उपासना करें। इसी मे उसके अजस्र रस शोध्य है। वेद कहते है—इसी पवित्र अक्षर को जानकर हर इच्छा पूर्ण होती

है। दूसरी जगह कहा गया है—ब्रह्म का यह शरीर शब्द करता है, जो ओम है। यह स्त्री-पुरुष नपुंसक, त्रिलिंगी, अग्नि, वायु, आदित्यरूप में प्रकाशवान एवं रुद्र, विष्णु रूप मे अधिपति है। गार्हपत्य आदि अग्नियां इसके मुख हैं। ऋक, यजु एवं साम का वह ज्ञाता है। भू· भुव और स्व ये तीन लोक है। भूत, भविष्य एव वर्तमान ये उसके तीन काल प्राण, अग्नि और आदित्य प्रताप अन्न, जल एव चद्रमा पोषक, मन, बुद्धि एवं अहकार चेतन, प्राण, अपान आदि इसके प्राण है। मैं त्यागता हू, ऐसा कहा गया है। स्तुतिकर्ता अर्पणकर्ता है, यह वेदकथन है। सत्यकाम । यही '[illegible] पर' और 'अपर' ब्रह्म है यह 'ओम' ऐसा ही अक्षर है। (3-5)

तब इसने विस्तार किया। तप करके प्रजापति ने 'भू. [illegible] स्वः' कहा। उसका स्थूल शरीर लोकों द्वारा बना है। भू., भुव और स्व उसके क्रमश [illegible] पर, नाभि एव मस्तक है। आदित्य नेत्र है, यह उनके अधीन और महापुरुषों की मात्रा [illegible], नेत्रस्थ पुरुष ही पदार्थ ज्ञान करता है, अत भू., भुव और स्व विधिवत उपास्य है [illegible] प्रजापति भी सबका आत्मा तथा उसी तरह पूज्य है, यह वेदकथन है। यह जगत [illegible]रक शरीर है। यह सबमें और सब इसमें स्थित है, अत यह उपास्य है। सूर्य के भर्ग का ध्यान योग्य है, क्योंकि यह सम्मुख उपस्थित रहता है। यह बुद्धि द्वारा प्राप्य है। कौन चिंतनीय है? इसका उत्तर है—हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है। सन्मार्ग पर लाता है। 'भर्ग' सूर्य मे स्थापित है। आख की पुतली में भी यही इसी नाम से रहता है। इससे मनुष्य गतिवान है अथवा यह सबको तपाता है या प्राणियों का रंजन करता है या उनमें जाता है या जगत में आता है या जगत इसी की प्रजा है या यह सबका पोषण करता है, इन सब कारणो से यह भर्ग है। फिर सूर्य-शत्रुनाशक होने से, सबको उत्पन्न करने से, प्रकाश देने मे यह सूर्य, सविता या आदित्य है। पवित्र करने से पवयान, सब ओर जाने मे अग्नन है। यह स्वयं आत्मा, अमृत, सर्वज्ञ, विचारक, गतिशील, सर्जक आदि है, वही सुनता, देखता, सूघता आदि है। यह सब आत्मा ही है, ऐसा समझो। जहा यह अद्वैत कार्य-कारण-उपमारहित, अवर्णनीय हो जाता है, उसके विषय में क्या कहा जा सकता है। (6-7)

यही आत्मा नियत्रक, शभु, भव, रुद्र आदि है, जो अग्नि रूप में तपनेवाला हजारो नेत्रो मे प्रकाशमान आनदमय और जानने योग्य है। सब जीवों को अभय करके वन में जाकर उसका अन्वेषण करना चाहिए। इद्रियों के विषयों पर विजय से वह सशरीर मिल जाता है। वह विश्वरूप, तेजस्वी, जातवेदा, परम आश्रय और तपती ज्योति है। सूर्य रूप में वह प्रजाओं को प्राणवान करता हुआ सैकडों रश्मियों से उदय होता है। (8)

□

16. शिवसंकल्प उपनिषद्

हे ईश्वर। जो हमारा मन जागते या सोते भी दूर पहुंच जाता है, जो तारों की ज्योति सदृश चमकता है, उसे शिवसंकल्पयुक्त करो। जिस मन से योगी मनीषी यज्ञ और शुभ कर्म करते हैं, जो उच्च ज्ञान का साधन है, जो दीपक के समान स्वयं को तथा अन्य वस्तुओ को प्रकाशित करता है, जो स्मरणशक्ति युक्त है, जिससे भूत, भविष्य एवं वर्तमान का ज्ञान होता है, जो ब्रह्मारूपी यज्ञकर्ता के समान सभी इंद्रियों द्वारा आत्मा से इस शरीरयज्ञ को जलाता है, जो मन, ऋक, साम एव यजुर्वेद के मध्य इनका स्मरण करता हुआ रथचक्र के अरों के समान स्थित है, जैसे अच्छा सारथी बल-वेगवान अश्वो को नियन्त्रित करता है, वैसे ही जो मन विद्वानों आदि का पथप्रदर्शक है, जो हृदय स्थित है, जरा (बुढ़ापा) रहित तथा अत्यंत शक्तिशाली है, ऐसे अनेक प्रकार की विशेषताओवाले मेरे मन को शिव सकल्प (शुभ इच्छा) युक्त बनाओ।

□

17. आश्रम उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्य श्रृणुयाम. देवा भद्रं पश्येमातक्षिर्मिवजत्रा. ।
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमदेवहित यदायु ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न. पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांति शाति. ।

हरिः ॐ चार आश्रमों के सोलह भेद होते हैं । गायत्री, ब्राह्मण, प्रजापत्य तथा वृहन चार भेद ब्रह्मचारी के हैं । जनेऊ होने पर तीन रात तक नमकहीन भोजन तथा गायत्री जपने से गायत्र, प्रतिवेद बारह, कुल अडतालीस वर्ष ब्रह्मचर्य से पूर्ण वेदज्ञान प्राप्त करनेवाला ब्राह्मण, परस्त्री से विमुख अपनी पत्नी के साथ भी केवल ऋतुकाल में संभोग करनेवाला अथवा अडतालस वर्ष गुरुकुल में रहनेवाला प्रजापत्य और चौबीस वर्ष तक गुरु के आश्रम में रहनेवाला ब्राह्मण है मृत्युपर्यत गुरुकुल में रहनेवाला ब्रह्मचारी वृहन कहलाता है ।

वार्ताकवृत्ति, शालीनवृत्ति, यायावर एव घोर संन्यासिक—ये चार प्रकार के गृहस्थ है । खेती, पशुपालन, सच्चा व्यापार करते हुए सैकड़ों वर्ष यज्ञ करके आत्मा की प्रार्थना करने वाला वार्ताकवृत्ति है । जो यज्ञ करते हैं, करवाते नही; पढ़ते हैं, पढ़ाते नही; दान देते हैं; लेते नही, वह शालीनवृत्ति होते हैं । यायावर यज्ञ करता-करवाता है, पढ़ता-पढ़ाता है तथा दान देता है और लेता भी है । घोर सन्यासी तपस्या में लगा रहता है । सौ वर्ष तक यज्ञ एवं आत्मा की प्रार्थना हर प्रकार का गृहस्थ करता है ।

वानप्रस्थ भी चार प्रकार के हैं । वैरवानस, उदुंबर, वालखिल्या और फेनप । ग्रामीणों द्वारा उपेक्षित स्वय पकी वनस्पतियों द्वारा जो अग्नि परिचर्या एव पंच महायज्ञ करते हैं, वह वैरवानस हैं । उदुब्र प्रात उठकर कही से बेर आदि लाकर यह काम करते हैं । वालखिल्या, जटा, जीर्ण वस्त्र, वृक्षछाला धारण करता है । कार्तिक पूर्णिमा को फूल-फलों से तथा अन्य दिनों वृत्ति का अर्जन करके पूर्व कर्म करता है । फेनप कठोर स्थानों पर सोनेवाने पत्ते-फल आदि रूखा-सूखा खानेवाले पागल जैसे होते हैं तथा पूर्वकर्म करते हैं । प्रार्थना और आत्मचिंतन हर वानप्रस्थ करता है ।

सन्यासी भी चतुर्विध होते हैं—कुटीचर, बहूदक, हंस और परमहंस । कुटीचर अपने पुत्रादि के घर से भिक्षा लेते हैं । बहूदक त्रिदड, कमंडलु, कौपीन, भगवा वस्त्रादि धारण कर सच्चरित्र ब्राह्मणों के ही घर से भिक्षा लेते हैं । हंस एक दडधारी, शिखाहीन, जनेऊ, शिक्य, कमडलुधर गांव में एक रात्रि, नगर या तीर्थ में पांच रात्रि ठहरनेवाले, एक से तीन रात्रि तक 'कृच्छ्र चाद्रायण' व्रत करनेवाले होते हैं । परमहंस दडहीन, मुडित, कोपनीधारी, अव्यक्त, धीर, शात, त्रिदंड आदि युक्त छोड़े हुए घरों या मंदिरों में रहनेवाले मूर्ख जैसे दीखनेवाले होते हैं । वे धर्माधर्म, सत्यासत्य सब सहनेवाले समदर्शी, निर्लिप्त किसी भी वर्ण की भिक्षा लेनेवाले आत्मबंधनमुक्त होते हैं । प्रथम तीन आत्मचिंतनरत होते हैं ।

श्रीमद् द्वय की उत्पत्ति। वाक्य द्वितीय है। षट्पद् अठारह है। पद्रह पहले, दस बाद में—पच्चीस अक्षर हैं। सदाचार मूल अनादिसिद्ध मंत्ररत्न नारायण पूर्व निरूपित है। वेद सपन्न विष्णुभक्त, ईर्ष्यारहित मत्रज्ञ, मंत्र-श्रद्धावान, सत मंत्रणा देनेवाला, पवित्र, गुरुभक्त, पुराणो का विशेषज्ञ इस प्रकार के लक्षणो से युक्त आचार्य गुरु कहलाता है। शास्त्रो के अर्थ को सही-सही समझना, सदाचार की स्थापना एव तदनुकूल आचरण आचार्य का लक्षण है। 'गुरु' शब्द मे 'गु' अंधकार तथा 'रु' उसका निवारक है, अत· गुरु का अर्थ अज्ञानांधकार का निवारण करनेवाला है। गुरु ही परमब्रह्म है, परम गति है, परम विद्या, परम धन, परम इच्छा तथा परम आश्रय है क्योकि वह उस परम ज्ञान का उपदेशक है, अत गुरु उससे भी महान है। जो इसका एक बार भी उच्चारण करता है, ससार से मुक्त हो जाता है। उसे सभी पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं। इसका ज्ञाता कदापि इस ससार मे पुन नही आता। यही उपनिषद (ज्ञान का सार) है।

□

19. वज्रसूचिका उपनिषद

शांतिपाठ ·

अप्यायतु ममगानि वाक्प्राणचक्षुष क्षोत्रमथो बलमिद्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मोपनिषद माहं ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरण मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि सतु ।

ॐ शाति शाति शाति ।

अज्ञान नाशक, अज्ञानी के लिए दूषक एवं ज्ञानियों के भूषण वज्रसूची शास्त्र के विषय मे बताता हू । वेदों एव स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र, ये चार वर्ण है । इनमे ब्राह्मण प्रधान है । तब प्रश्न उठता है कि ब्राह्मण है क्या—प्राणी ? जाति ? देह ? ज्ञान ? कर्म ? अथवा धार्मिकता ब्राह्मणत्व के निर्धारक तत्त्व है ?

जीव ब्राह्मण नही है । हो चुके तथा होनेवाले जीव समान ही है । जीव एक ही है, कर्मानुसार अनेक देह धारण करता है । तब देह—यह भी ब्राह्मण नहीं हो सकता । सभी मान देहे पचभूतमय, जरा तथा मरनेवाले होते हैं । साथ ही ब्राह्मण गोरा ही हो अथवा क्षत्रिय लाल, वैश्य पीला या शूद्र काला ही, यह भी अनिश्चित है । पिता के शव को जलाने पर किसी को ब्रह्म-हत्या नही लगती । अत शरीर ब्राह्मण नही है । तब जाति-विभिन्न जातियों से अनेक ऋपियों का जन्म हुआ, जैसे मृगी मे शृगी ऋपि, कुश से कौशिक आदि । इसलिए जाति को ब्राह्मण नही कहा जा सकता । (4-5)

ज्ञान भी ब्राह्मण नहीं है, क्योंकि बहुत से क्षत्रिय आदि भी परम तत्त्वज्ञ हुए है । तब कर्म ? सभी प्राणियों के प्रारब्ध संचित तथा आगामी कर्मो से समानता है और इसी से प्रेरित जीव कार्य करता है, अत कर्म ब्राह्मण नही है । धार्मिकता बहुत से क्षत्रिय आदि भी स्वर्णदान करते आए है, अत धर्म भी ब्राह्मण नही है । (6-7)

तब ब्राह्मण कौन है ?—अद्वैत भावनावाला, जाति-गुण-क्रिया रहित, छ ऊमि-छ भाव दोपरहित, सत्य, ज्ञान, आनद आदि युक्त, काम, राग आदि रहित, परम तत्त्वज्ञ तथा अहंकार आदि का त्यागी ब्राह्मण कहलाता है । आत्मा की सच्चिदानदात्मकता का अनुभव करनेवाले को ही ब्राह्मण मानना चाहिए, अन्य को नही । यही साराश में ब्राह्मण के लक्षण है ।

□

20. अथर्वशिरोपनिषद्

शांतिपाठ ·

ॐ भद्र कर्णेभ्य शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमार्ताक्षिभिर्यजत्रा.

स्थिरेरंगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु ।

स्वस्ति न इद्रो वृद्धाश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा ।

स्वस्ति नरताक्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति शाति शांति. ।

रुद्रलोक जाकर देवताओ ने रुद्र से पूछा—'आप कौन हैं ?' रुद्र वोले, 'मैं ही एक हूं । भूत, भविष्य, वर्तमान मे मै ही हूं । मेरे सिवा कुछ भी नही है । भीतर से भी भीतर, सव दिशाओं में व्याप्त, नित्यानित्य, व्रह्म-अव्रह्म, प्रत्येक दिशा, स्त्री-पुरुष, गायत्री आदि छंद, गार्हपत्य आदि अग्नि, सत्य, गौ, चारों वेद, श्रेष्ठ जप, तेज, ज्योति आदि में मै ही हूं । मेरा ज्ञाता सब वेदों एवं देवों जानता है । मैं ही गौ को गौ से, व्राह्मण आदि को ब्राह्मण आदि से तृप्त करता हूं ।' शंकित से देवता रुद्र को देखकर हाथ उठाकर कहने लगे, 'हे रुद्र आप व्रह्मा हैं, विष्णु है, इंद्र है, स्कद हैं, अग्नि, वायु, सोम, ग्रह, उपग्रह, पृथ्वी, अतरिक्ष स्वर्ग आदि हैं । आपको नमस्कार है । भू, भुव, स्व क्रमश आपके निम्न, मध्य एव सिर हैं । आप ही अकेले विश्वरूप है भ्रमवश अनेक जान पड़ते है । आप वृद्धि, पुष्टि, शाति आदि रूपो में है । आप ही ने सोम रूप अमृत पिलाकर हमें अमर किया । ज्योतिरूप तथा ज्ञानी वनाया, हमें अब शत्रु कुछ हानि नही पहुचा सकता । आप मानव के लिए अमृत स्वरूप हैं । मर्वत्र और सब कुछ आप ही हैं । (1-2)

'ओम' क्या है—इसके उच्चारण में प्राणों को ऊपर खीचना पडता है, अत आप ओम कहलाते है । प्रणव कहने से चारो वेदों, अगिरस, व्रह्म एवं ब्राह्मण को प्रणाम किया जाता है, अत आप प्रणव है, तिलो में तेल के समान आप सृष्टि भर मे व्याप्त हैं, आप अनत हैं । आप गर्भ, जन्म, मरण आदि से मुक्त करने के कारण तारक कहे जाते हैं । आप शुक्ल (इसके उच्चारण में श्रम होता है), सूक्ष्म (के उच्चारण में सूक्ष्म कंप से), भैद्युत (उच्चारण से तमावस्था में प्रकाश होता है), परव्रह्म, (भारी पीडाओ का ज्ञान कराते हो) आदि कहलाते है (इत्यादि नाम आपके किसी गुणो के कारण है)। जैसे दूध हेतु गाय को प्रसन्न करते हैं, वैसे ही हम आपकी स्तुति करते हैं । आप इद्र रूप में विश्व के ईश्वर, दिव्यद्रष्टा हो अत ईशान हो । ज्ञान के लिए आपका भजन करने से वाणी का प्रादुर्भाव होने से आप महेश्वर हो, यही रुद्र का चरित है । (4)

एक ही देव सर्व दिशा व्याप्त है । वही आदिजन्मा, मध्य और अत है । केवल वह रुद्र ही हर व्यक्ति में व्याप्त है । लोक नियंता है । सव उसी में स्थित तथा अत में उसी में मिल जाते हैं । वही रचयिता-रक्षक है । उसका ध्यान परम शातिप्रद है । अज्ञान नाश हेतु उसी में मन लगाओ । वह

शाश्वत-पुराण, पुरुष अन्नादि देनेवाला तथा मृत्यु से रक्षक है। शांति एव बंधन मुक्ति प्रदाता है। उसकी प्रथम मात्रा ब्रह्मा (रक्त वर्णवाले), द्वितीय विष्णु (श्याम वर्ण), तृतीय इद्र (पीत वर्ण) और चतुर्थ अर्धमात्रा वेद रूप हैं। इनका ध्यान करने से इनके लोकों की प्राप्ति एव कर्मबधन मुक्ति मिलती है। इसी उत्तर मार्ग से देव-पितर-ऋषि आते है। इसके सूक्ष्म रूप को ज्ञानी हृदय मे देखते हैं। क्रोधादि त्यागकर रुद्र मे मन लगाने से रुद्र से एकता होती है। वही नियता है। अग्नि, वायु, जल आदि में वही भस्म रूप में है। पशुपति की भस्म का स्पर्श न करनेवाला भस्मवत है। यह ब्रह्मरूप भस्म बधन काटनेवाली है। (5)

अग्नि एव जल में स्थित रुद्र औषधियों एवं वनस्पतियो मे प्रविष्ट हुआ। विश्व के उत्पत्तिकर्ता अग्निरूप रुद्र, औषधियो, लोको आदि के रचयिता, इन्हे धारण करनेवाले शिवशक्ति एव त्रिगुणात्मक एव नागों को अतरिक्ष में स्थित करानेवाले रुद्र को नमस्कार है। इसकी प्रणवरूपी मूर्धा की उपासना से उच्च स्थिति प्राप्त होती है। रुद्र सब देवो का सामूहिक रूप एव मस्तक है, उसका प्राण, मन और मस्तक रक्षक है। देवता रुद्र के लोकों की रक्षा कर सकते है, अन्यथा नही। इसके पहले तथा अलावा कुछ नही है। हजार पावों और एक सिरवाला यह सर्वव्याप्त है। अक्षर से काल की उत्पत्ति है, काल होने से यह व्यापक है। इसके सोने पर प्राणियो का अंत होता है। उसकी श्वास से तम, तम से जल तथा इसके अगुलिमथन से शरद की ओस होती है। फिर इसी प्रकार इसके मथन से क्रमश फेन, अडा, ब्रह्मा, वायु, ओम, सावित्री, लोक (अपने-अपने पहले से) पैदा होते है। लोक मे तप से सत्य फिर अगुल प्रवाह से शाश्वत (परम तप) पैदा होता है, वही जल ज्योति, रस, अमृत, ब्रह्म, भू, भुव, स्व और नम है। (6)

इस अथर्वशिर उपनिषद् का पाठक अश्रोत्रिय ब्राह्मण, श्रोत्रिय और अनुपवीत, उपवीत होकर अग्नि, वायु, सूर्य, सोम एव सत्य के समान पवित्र, सब देवों एवं वेदों का ज्ञाता, सब तीर्थो मे स्नान किया जैसा हो जाता है। उसे सब यज्ञों और साठ हजार गायत्री जप का, पुराणो के अध्यापन का, एक लाख रुद्र जाप का तथा दस हजार 'ओम' जप का फल मिलता है। उसके दर्शन पवित्र करनेवाले होते हैं। वह अपनी सात पूर्व पीढ़ियो का तारक होता है। भगवान ने कहा, 'इसका एक, दो तथा तीन बार जप करने से क्रमश पवित्र कर्म का अधिकार, गणपति पद तथा 'ओम' मे प्रवेश होता है।

□

21. स्कंद उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

हे महादेव! तुम्हारी थोडी-सी करुणा से मै अच्युत, विज्ञान, धन और शिव ही हो गया हू। इससे अधिक क्या होता है? अतःकरण के होने पर व्यक्ति अपना पार्थिव रूप भूल जाता है, तब केवल हरि ही दीखते है। ज्ञान स्वरूप मे स्थित होकर, मै अपने को अजन्मा अनुभव कर रहा हू। अन्य सब स्वप्न के समान जड एवं नश्वर है। इससे अधिक क्या होता है? जो चित्त एव जडो को देखनेवाला अच्युत एव ज्ञान रूप है, वही महादेव एव महा हरि है। वही ज्योतियों की ज्योति, परमेश्वर और परम ब्रह्म है। मै भी ब्रह्म ही हू, इसमे सशय नही है। (1-5)

जीव ही शिव है, शिव ही जीव है, केवल जीव शिव नही है। छिलके से ढका चावल छिलका उतरने पर ही चावल बनता है। इसी प्रकार बंधन ग्रस्त जीव कर्मनाश पर या पाशबद्ध पाशमुक्ति पर सदाशिव ही है। शिव ही विष्णु तथा विष्णु ही शिव है, ये परस्पर एक-दूसरे के हृदय मे रहते है। शिव विष्णुमय एव विष्णु शिवमय है। इसमे कोई अतर न दीखने से मै सशरीर कल्याणमय हो गया हू। शिव एव केशव मे अभेद है। देह, मंदिर और जीव केवल शिव है। अज्ञान दूर होने पर निर्मलता आती है। तब 'सोऽह' (मै वही हू) भाव से उसे पूजे। (6-10)

अभेद देखना ज्ञान है और निर्विषयी मन ध्यान का लक्षण है। मन का मैल हटना स्नान तथा इद्रिय निग्रह पवित्रता है। ब्रह्मज्ञान का अमृत पीकर देह-रक्षा के लिए भिक्षा मागे। द्वैत भावना को त्यागकर एकात मे रहे। इसी आवरण से मुक्ति मिलती है। श्री परमधाम, कल्याणमय अविनाशी को नमस्कार। हे नृसिह देव आपकी कृपा से ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप को अचित्य, अव्यक्त, वेदात्मक ब्रह्म रूप में मानते है। ज्ञानी ब्रह्म ज्ञान पर ब्रह्मलीन हो जाते है। वही विष्णु का परमपद है। यही निर्वाण ज्ञान, वेदो का उपदेश तथा उपनिषद् है। (11-15)

□

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

वधन क्या है ? मोक्ष क्या है ? विद्या और अविद्या क्या है ? जागृत, स्वप्न एव तुरीया अवस्थाए, अग्निमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय और आनदमय कोश, कर्ता;जीव-पंचवर्ग-क्षेत्र;साक्षी, कुटुव और अतर्यामी तथा जीवात्मा, परमात्मा एव माया, ये सब क्या है ? आत्मा ही ईश्वर एव जीव है। शरीर में जीव को होनेवाला अहंभाव वधन है,इससे मुक्ति मोक्ष है। अहभाव का कारण अविद्या तथा इसका नाश विद्या है। (1-3)

सूर्य आदि की शक्तियों द्वारा मन, वुद्धि, चित्त, अहकार और दस इद्रियो द्वारा शव्द आदि का ग्रहण जागृत अवस्था है। शव्द आदि स्थूल विषय न रहने पर भी जागृतावस्था का रहना, स्वप्नावस्था है। मन आदि चौदह तत्त्वों के शात होने पर विशेष ज्ञान का अभाव तथा शव्दादिका ग्रहण न होना मुपुप्ति अवस्था है। इन तीनों अवस्थाओ की उत्पत्ति एव लय का ज्ञाता, जो इनका चितक करता है, यह तुरीया अवस्था है। अन्न से वननेवाला शरीर अन्नमय कोश है, चौदह वायु का इनमें विचरना प्राणमय कोश, इन दोनों के अदर मन आदि द्वारा आत्मा आदि का विचार मनोमय कोश, इन तीनो के साथ वुद्धि द्वारा होनेवाला ज्ञान स्वरूप विज्ञानमय कोश तथा इन चारों कोशो के साथ आत्मा का वीज मे वट-वृक्ष की तरह अपने कारण का अज्ञान आनदमय कोश है। (4-5)

सुख-दुःख की दृष्टि से कर्ता जव अभीष्ट (सुख) चाहता है तव सुख वुद्धि तथा जव अनिष्ट की कल्पना करे, तो दुःख वुद्धि है। सुख प्राप्ति एव दुःख त्याग हेतु कार्य करने से वह कर्ता कहलाता है। शव्द आदि पाच विषय सुख-दुःख के कारण है। शुभाशुभ कर्मों से प्राप्त शरीर को समझने पर वह उपाधियुक्त जीव कहलाता है मन, प्राण, इच्छा, सत्त्व और पिड इनके प्रत्येक के पाच-पाच भेदो को पचक कहते है। इनसे युक्त जीवात्मा छुटकारा नही पाता। मन आदि सूक्ष्म तत्त्वों की उपाधि सदा आत्मा में होती है, इसे लिग शरीर कहते है, यही हृदय ग्रथि है। इसमें स्थित चैतन्य क्षेत्रज्ञ है। (6-8)

ज्ञान, ज्ञाता एव ज्ञेय को जानने पर भी स्वय उत्पत्ति-लयहीन आत्मा साक्षी कहलाता है। व्रह्मा से चीटी तक की वुद्धि मे स्थित सूक्ष्म-स्थूल आदि का नाश होने पर भी शेष रहनेवाला 'कूटस्थ' है। इन सबसे अपने स्वरूप प्राप्ति हेतु सारे शरीर में गुथा हुआ तत्त्व अतर्यामी कहलाता है। सत्य, ज्ञान, आभूषण आदि से रहित चैतन्य रूप आत्मा आभास होने पर 'त्वम्' कहलाता है। व्रह्म, सत्य, आनद, ज्ञान स्वरूप है। अविनाशी सत्य कहलाता है। देश, काल आदि का नाश होने पर भी वह अविनाशी है। उत्पत्ति-विनाश रहित नित्य चैतन्य 'ज्ञान' है। वह मृतिका पात्रो एव स्वर्णाभूषणो में क्रमश मिट्टी एव सोने के समान सृष्टि भर मे व्याप्त है। अत वह अनेक कहलाता है। वह सुखमय चैतन्य असीम आनद का सागर है। शेष सुखो का स्वरूप है। वह आनद कहलाता है। (9-11)

यह सत्य, ज्ञान, अनत और आनद लक्षणवाले में देश, काल, वस्तु आदि से कोई परिवर्तन नही होता, अत. वह तत् या परमात्मा कहलाता है। 'त्वं' और तत् से पृथक आकाश जैसा शून्य, केवल 'सतरूप तत्त्व परमब्रह्म है। जो अनादि होते हुए भी अनंत नही है और 'सत्' 'असत्' से भिन्न सर्वाधिक विकार रहित दीखनेवाली सत्ता ही माया है। इसके अतिरिक्त किसी रूप मे उसका वर्णन नही हो सकता। वह अज्ञान रूप तुच्छ एवं मिथ्या है, कितु अज्ञानियो को वह सदा वास्तविक जान पडती है। अत उसका यथार्थ रूप अवर्णनीय है। (13-15)

मै जन्म नही लेता, मै दस इंद्रियां, बुद्धि, मन या शाश्वत अहकार नही हू। मै अप्राण, अमन शुद्ध स्वरूप, बिना बुद्धि, का साक्षी तथा सदा चित्त मात्र हूं, इसमें कोई संदेह नही। न मै कर्ता हू न भोक्ता ही, केवल प्रकृतिक साक्षी हू। मेरे सपर्क से देह आदि सचेतन जैसे लगते हैं। मै स्थिर, नित्य, सदानंद; शुद्ध ज्ञानमय और निर्मल हू। मैं सभी प्राणियो का आत्मा, प्रभु और साक्षी हूं। यह नि सदेह सत्य है। समस्त वेदात दर्शन का ब्रह्म मै ही हूं, आकाश वायु आदि जान पडनेवाली वस्तु मै नही हूं। मै रूप नाम या कर्म नही हूं, अपितु सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म हूं। मै देह नही हूं अत. जन्म-मृत्यु का प्रश्न ही नही उठता, मै प्राण नही हूं, अत· मुझे भूख-प्यास कैसे लगेगी ? मै मन नही हू, अत· मुझे शोक-मोह कैसे होगा ? कर्ता नही हू, तो बधन-मोक्ष कैसे होगा ? यही उपनिषद् है।

□

23. शुकरहस्योपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

रहस्योपनिषद की व्याख्या करते हैं। देवर्षियों ने ब्रह्मा को पूजकर नमस्कार करके पूछा कि वह रहस्योपनिषद कहें, तब ब्रह्मा बोले—'प्राचीनकाल मे तेजस्वी वेदवेत्ता तपोनिधि व्यास पार्वती सहित शिव को प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले, 'देवाधिदेव महाप्राज्ञ लोगो को बधनमुक्त करनेवाले ईश्वर, मेरे पुत्र शुकदेव के वेदसंस्कार कर्म मे ब्रह्मोपदेश देने का समय आ गया है।' शिव बोले, 'यदि मैं केवल रूप शाश्वत साक्षात ब्रह्म का उपदेश दूंगा, तो तुम्हारा पुत्र वैराग्य के कारण सब कुछ छोडकर स्वय प्रकाश स्वरूप हो जाएगा। वेदव्यास ने कहा, 'चाहे कुछ भी हो, इसी संस्कार में आपसे ब्रह्मज्ञान पाकर वह शीघ्र सर्वज्ञ बने तथा आपकी कृपा से उसे चारो प्रकार की मोक्ष प्राप्ति हो। (1-6)'

व्यास के शब्दों से शिव अत्यत प्रसन्न हुए और पार्वती सहित देवर्षियो की सभा मे उपदेश देने गए और एक दिव्य आसन पर बैठे कृतकृत्य होकर भक्तिपूर्वक वहां आकर शुक ने शिव से प्रणवज्ञान पाया। तब शुक बोले, 'देवों के देव सर्वज्ञ सच्चिदानद उमारमण भूतेश करुणानिधि प्रसन्न हो गए। आपने मुझे प्रणव एव परमब्रह्म का उपदेश दिया है' किंतु मै तत्त्वमसि 'प्रज्ञानब्रह्म' आदि महावाक्यों को यथा क्रम उनके षडगंयास सहित सुनना चाहता हू।' (7-11)

शिव ने कहा, 'बहुत सुंदर महाप्राज्ञ, ज्ञाननिधि मुनि शुक तुमने वास्तव में पूछने योग्य वेदो का रहस्य ही पूछा है अत मैं षडंगन्यास सहित रहस्योपनिषद समझाता हू, जिसके ज्ञान मात्र से निःसदेह मोक्ष मिलता है। गुरु द्वारा अगहीन वाक्योपदेश नही होना चाहिए। उपदेश षडगन्यास सहित ही करना चाहिए। वेदों में उपनिषद के समान उपनिषदों में रहस्योपनिषद श्रेष्ठ है। जिस विद्वान ने यह उपनिषद कहा, उसे पुण्य के कारण तीर्थ, वेद, मंत्र पाठ तथा जप आदि से कुछ प्रयोजन नही था। सौ वर्ष तक महावाक्यों के अर्थ का विचार करने से एक बार इनके ऋषि आदि के ध्यान सहित जाप का फल अधिक होता है। (12-16)

(इसके अनतर महावाक्यों का अंगन्यास विनियोग आदि है, जो उपासकों के लिए मूलरूप मे ही होता है। यह एक क्रियात्मक कार्य है, अत इसका अर्थ यहा देना अनावश्यक विस्तार ही होगा। जिज्ञासु पाठक मूलपाठ देखें)।

जिसकी सहायता से प्राणी देखता, सुनता, कहता, सूंघता एवं स्वाद ग्रहण करता है, उसे प्रज्ञान कहते हैं। ब्रह्मादि देवों तथा मनुष्य, अश्व आदि पशुओं तथा सभी प्राणियों में एक ही तत्त्व ब्रह्म है। वही प्रज्ञान ब्रह्म मुझमें भी है। मानव देह को ही ब्रह्म प्राप्ति का अधिकार है। इसमें स्थित ब्रह्म बुद्धि प्रस्फुरित होने पर 'अह' है। पूर्ण परमात्मा यहां 'ब्रह्म' है तथा 'अस्मि' अपनी और ब्रह्म की एकता का बोधक है। सृष्टि से पूर्व नाम-रूप रहित एक अद्वितीय ब्रह्म ही था और अब भी वैसा ही है। यहा

ब्रह्म को 'तत' इद्रियहीन शिष्य 'त्व' तथा असि दोनो की एकता का बोधक है, यही अनुभव करना चाहिए। अह से शरीर तक 'प्रत्यमात्मा' कहलाते है, 'अह' स्वप्रकाश रूप है। दृश्य जगत मे व्यापक तत्त्व ही 'ब्रह्म', 'स्वयप्रकाश' एव आत्मारूप है। (1-7)

अज्ञान के कारण मै अनात्म पदार्थो को 'आत्मा' समझने लगा। गुरु कृपा से महावाक्यो के उपदेश आत्मा रूप सूर्य के दर्शन से मेरा मोहभग हुआ। इनका अर्थ वाच्य एव लक्ष्य दोनो प्रकार का होता है। 'त्व' आदि वाचार्थ है। विशुद्ध चेतन लक्ष्यार्थ है। इसी प्रकार तत एव परमात्मा क्रमश वाच्य एव लक्ष्यार्थ है। 'असि' दोनो से एकता सूचक है। कार्य-कारण उपाधि द्वारा ही 'त्व' एव 'तत' मे भेद है। इसके न रहने पर दोनों सच्चिदानद ही है। जैसे यह और वह शब्द निकाल देने पर केवल 'अमुक' बचता है 'जीव' कार्य रूप उपाधि तथा ब्रह्म 'कारण' रूप उपाधि है, इन उपाधियो को त्याग देने पर ज्ञानस्वरूप ही बचता है। गुरु से सुनकर मनन और निदिध्यासन करने पर ही ज्ञान होता है। ब्रह्म प्राप्त करानेवाला तथा अन्य का ज्ञान नश्वर है। ब्रह्माजी का आदेश है कि शिष्य को षडगन्यास सहित ही महावाक्यो का उपदेश दिया जाए, केवल वाक्यो का नही। (9-15)

भगवान शिव बोले, 'तुम्हारे ब्रह्मज्ञानी पिता के आग्रह पर ही मैने यह रहस्योपनिषद तुम्हे दिया है। इसमे सच्चिदानंद ब्रह्म का वर्णन है, जिसके चितन से तुम जीवन मुक्त बनोगे। वेद के आदि तथा अंत मे प्रष्ठित स्वर 'ओम' की प्रकृति मे लीन होने से व्यक्ति ईश्वर बनता है।' यह उपदेश सुनकर तमय बने शुक ने शिव को प्रणाम किया और सर्वस्व त्यागकर ब्रह्म के आनद मे डूबकर वहा से चले गए। पुत्र वियोग से दु खी व्यास उन्हे पुकारते रहे, इसका उत्तर समस्त जड-चेतन ने दिया। इस उत्तर से अपने पुत्र को विश्वमय देखकर व्यास को परमानद की प्राप्ति हुई। गुरु से इस उपनिषद् को समझनेवाला पाप मुक्त होकर कैवल्य प्राप्त करता है। (16-23)

□

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

आठ पावोवाला उज्ज्वल, त्रिसूत्र, सूक्ष्म, अनश्वम, त्रिमार्गवाला मै वही हू, ज्ञानी सर्वत्र एसो अनुभव करने पर भी उसे नहीं देख पाते। मोहकारक घोर अज्ञान के अधकार का नाश होने पर सत्त्वगुण स्थित पुरुष ही गुणों को गुफा में स्थित निर्गुण ब्रह्म को देखते है। अन्य स्थिति मे ध्यान से वह नही दीखता, ऐसा ध्यान विकारक, अज्ञानमय, अजन्मा, अविचल मात्रा का ही ध्यान करता है। यह मात्रा अभ्यास के कारण ही जान पड़ती है, उसी से विस्तृत और प्रेरित होती है। जगत का अधिष्ठाता हस ही पुरुपार्थ को उत्पन्न करता है। यह माया परमात्मा की कामधेनु, आदि-अतहीन सभी की जननी, पोषक, श्वेत-श्याम रक्तवर्ण तथा समस्त कामना पूर्ण करनेवाली है। अज्ञानी इस अविपय एव अज्ञान को दूहते है। केवल स्वतत्र एवं सबको वश मे रखनेवाला परमात्मा ही इसे पीता है। सर्व साधारण द्वारा दुही जानेवाली यज्ञ कर्ताओ द्वारा जिसे पीया जाता है, माया रूपी ऐसी गाय को भगवान ध्यान क्रिया से भोगता है। परमात्मा सुंदर पत्तोवाले विश्वरूपी पीपल फलो को खाते हुए उदासीन-अविनाशी की माया को देखते हैं! स्नातक एवं अध्वर्यु इसका गान करते हैं। अनेक शास्त्रज्ञ ऋगवेदी इसकी स्तुति करते है और रथतर नाम का 'वृहत समा' सात प्रकारक गायन करते हे। मत्र रहस्य ही ब्रह्म है, अथर्ववेदी भार्गव पदक्रम से पढते है। (1-10)

परमात्मा ब्रह्मचर्य वृत्तिवाला, स्तभ समान ससार रूप में इसकी गाडी चलाता हुआ तथा अतिविस्तृत है। यही काल, प्राण, मृत्यु, शर्व महेश्वर आदि देवो और असुरो मे स्थित है। यही प्रजापति, विराट और जल रूपों में अथर्ववेद से स्तुति योग्य है। कुछ उसे 26 वा तथा कुछ 27 वा तत्त्व कहते हैं। अथर्ववेद का उपनिषद इसे निर्गुण कहता है। साख्य पुरुष कहता है। कुछ चौबीसवी सख्यावाला, कुछ व्यक्त-अव्यक्त, द्वैत, अद्वैत आदि कहते है। कुछ तीन प्रकार का, कुछ अन्य प्रकार का कहते हैं। कुछ ज्ञानी ब्रह्मा से जड पदार्थ तक समस्त जगत को एक ही शुभ्र रूप प्रभु के रूप में देखते है। जिस ब्रह्म में वह स्थावर जंगम पिरोया गया है, उसमे यह सब सागर मे नदियों के समान लीन हो जाता है। जल में बने बुलबुले के समान समस्त पदार्थ उसी से उत्पन्न होकर उसी में मिल जाते हैं। उस ब्रह्म को ज्ञानी ही देखते हैं। क्षेत्रज्ञ रूप में सभी में स्थित, कारणो से देखे जानेवाले इस ब्रह्म को ज्ञानी बार-बार देखते हैं। ब्रह्मज्ञाता ब्राह्मण उसी को पाकर उसी में लीन होकर शोभा पाते है। यही रहस्य है। (11-20)

☐

25. प्रणव उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

उस विलक्षण कर्मवाले परमब्रह्म विष्णु की ब्रह्मविद्या निरूपित की जाती है। ब्रह्म वादियों द्वारा कथित एकाक्षर ब्रह्म 'ओम' का निरूपण किया जाता है। इसमें तीन वेद, तीन वेद, तीन लोक, तीन अग्नियों के साथ ही तीनों मात्रा एवं अर्धमात्रा भी स्थित हैं। यह परम शिव का स्वरूप हैं। ऋग्वेद, गर्हण्त्य अग्नि तथा पृथ्वी-ब्रह्म तीनों को ब्रह्मवेत्ताओं ने ओम (अ+उ+म) के प्रथम अक्षर 'अ' में माना है। यजुर्वेद, आकाश, दक्षिणाग्नि एव विष्णु को 'उ' में माना है। सामवेद स्वर्ग, आह्वनीय अग्नि तथा शंकर का स्वरूप 'म' में माना है। (1-6)

'अ' को चंद्रमंडल के समीपवर्ती सूर्य मंडल भी माना है, चंद्र को 'उ' में तथा धुएं रहित विद्युत सदृश अग्नि को 'म' माना है। सूर्य, चंद्र एवं अग्नि की तीनों मात्राएं भी इसमें समझनी चाहिए। दिए की लौ के समान ऊपर की शिखा अर्धचंद्र समझनी चाहिए। दूसरी कमल नाल के समान पतली शिखा नासिका से जानेवाले सूर्य के समान 72 हजार नाड़ियों के ऊपर प्राणियों को वरदान देनेवाली सर्वव्याप्त है। मोक्ष के समीप पहुंचने पर कास्यघंटे का-सा शब्द होता है। वेद स्वरूप 'ओम' को ऐसा समझना चाहिए, जिसे सभी सुनना चाहते हैं। यह 'ओम' जिसमें लीन हो जाता है, वह ब्रह्म कहलाता है। और अमृत्व का अधिकारी वनता है। यह सत्य है। (7-13)

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

सच्चिदानद मूर्ति, निष्प्रपच शाति निरालव तेजस्वी गुरु शिव को नमस्कार। इस निरालव का आश्रय लेकर सालव वस्तुओं को छोडनेवाला संन्यासी और योग कैवल्य (मोक्ष) पद पाता है। इन अज्ञानी प्राणियों के दु:खों की शाति के लिए जानने योग्य सब कुछ को यहा शका रूप में कहा जा रहा है—ब्रह्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति, परमात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, इंद्र, मय, चद्र, सुर, असुर, पिशाच, मनुष्य, स्त्रिया, पशु, स्थावर ब्राह्मण, जाति, कर्म, ज्ञान, अज्ञान, सुख, दु:ख, स्वर्ग; नरक, बधन, मोक्ष, उपास्य, शिष्य, विद्वान, मूर्ख, असुर, तप, परम पद, ग्राहय, अग्राहय और संन्यासी कौन है? इन शकाओं के बाद ब्रह्मस्वरूप समझाया गया है। (1-3)

महत्, अहकार, पृथ्वी जल आदि तथा ब्रह्मांड, कर्म, ज्ञान रूप में भास होने पर भी इन सबसे रहित अद्वैत (केवल ब्रह्म ही है, भावना अद्वैतवाद है) समस्त शक्तियुक्त आदि-अत हीन, शुद्ध पवित्र आदि चैतन्य परमब्रह्म है। यही जब अपनी माया से सृष्टि करता है और अंतर्यामी रूप मे उसमें प्रवेश करके ब्रह्मा आदि जीवों की बुद्धि आदि का नियमन करता है, तब यह ईश्वर कहलाता है। ब्रह्म, विष्णु आदि के रूप में नाम-रूप का मिथ्या अभिमान होने पर स्थूल आदि की अनुभूति जीव कहलाती है। भिन्न-भिन्न देह धारण करने से चैतन्य जीव बन जाता है। ब्रह्म की सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति माया (प्रकृति) है। देह आदि से दूर रहनेवाला ब्रह्म परमात्मा है। यही ब्रह्म विष्णु, रुद्र आदि पूर्वकथित रूपों में प्रकट हुआ है। यही स्थावर जगम (चराचर) है। समस्त जगत ही ब्रह्म है। (4-9)

जाति चमडे, खून, मांस, हड्डी या आत्मा की नहीं होती, यह केवल व्यावहारिक कल्पना है। कर्म इंद्रियों द्वारा की जानेवाली क्रियाएं हैं। कर्ता और भोक्ता का होने का अभिमान बधन है। नित्य नैमित्तिक (फल इच्छा से) किए जानेवाले तप, यज्ञ आदि अकर्म हैं। सृष्टि की समस्त परिवर्तनशील वस्तुओं में एक ही चैतन्य को देखना ज्ञान है और द्रष्टा चैतन्य है। यह सर्व में है, यह अनुभव ज्ञान है। यह अनुभव इंद्रिय संयम और सदगुरु की उपासना श्रवण, मनन आदि से होता है। रस्सी में सर्प के भ्रम के समान एकमात्र ब्रह्म में देव, पशु, पक्षी, मानव आदि का भ्रम अज्ञान है। सच्चिदानद परमात्मा के ज्ञान से प्राप्त आनद ही सुख है। इससे भिन्न रूप विषयों का विचार दु:ख है। सत्पुरुषों की संगति स्वर्ग और सांसारिक विषयों तथा लोगों की संगति नरक है। (10-17)

अज्ञान द्वारा 'मैं जन्म लेता हूं', 'मरता हूं', यह मानना बधन है। मेरे मां-बाप, मेरी धन-संपत्ति आदि विचार भी बधन है। कर्तापन, अणिमा आदि सिद्धियों की इच्छा, यम-नियम आदि, वर्णाश्रम

कर्म इच्छा, आज्ञा, भय यज्ञव्रत आदि का ज्ञान भी बंधन है। नित्य-अनित्य पर विचार द्वारा अनित्य संसार से ममता का दूर होना ही मोक्ष है। (18-29)

वही एकमात्र सत्य है या सभी देहों में स्थित चैतन्य ब्रह्म का ज्ञान कराने वाला गुरू ही उपास्य है। संसार रूप अज्ञान का नाश होने पर गम्भीर ज्ञान रूप शेष ब्रह्म ही शिष्य है। सभी मे स्थित ज्ञानरूपी आत्मा का ज्ञाता विद्वान है। कर्ता आदि होने का अहंकार करनेवाला मूर्ख है। ब्रह्मा, विष्णु आदि के ऐश्वर्य की इच्छा से जप आदि द्वारा अंतरात्मा को दुःख देनेवाला तथा उग्रता आदि दुर्गुणोंवाला यदि तप करें, तो वह आसुरी है। 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' इस भाव से ब्रह्मा आदि के ऐश्वर्य को प्राप्ति हेतु किया गया कार्य तप है। प्राण इंद्रिय आदि से भिन्न परम ब्रह्म का स्थान ही परमपद है। देश, काल आदि की सीमा से रहित चिन्मात्र स्वरूप ग्राह्य है। माया रचित बुद्धि, मन आदि द्वारा ग्राह्य जगत को सत्य मानना अग्राह्य है। सब कर्मो को छोड़कर ब्रह्म की शरण में जाना 'मै ब्रह्म हूं', 'यह सब ब्रह्म ही है', इस विचार से निर्विकल्पक समाधि मे रहना और यती सदृश व्यवहारवाला पुरुष ही सन्यासी है, 'मुक्त है। वही पूज्य, योगी, परमहंस, अवधूत है। वही ब्राह्मण है। ऐसे व्यक्ति गुरु कृपा से अग्नि समान पवित्र होकर फिर जन्म लेकर ससार मे नही जाता, यही रहस्य है। (30-40)

□

27. गायत्री उपनिषद्

प्रथम कंडिका

एकादशाक्ष मौद्गल्य के पास ग्लाव और मैत्रेय पहुचे । मौद्गल्य के एक ब्रह्मचारी को देखकर उपहास में ग्लाव बोले, 'मौद्गल्य अपने इस ब्रह्मचारी को क्या पढ़ाता है ?' इस बात को सुनकर ब्रह्मचारी ने अपने आचार्य के पास जाकर कहा, 'आज आए अतिथि ने आपको मूर्ख कहा है ।' मौद्गल्य बोले, 'क्या वह विद्वान है ?' शिष्य बोला, 'हां, वे तीनों वेदों के प्रवाचक है ।' आचार्य ने कहा, 'उनका जो विद्वान सूक्ष्मदर्शी विजय इच्छुक शिष्य हो, उसे बुला लाओ ।' शिष्य ने ऐसा ही किया । उस शिष्य से मौद्गल्य ने पूछा कि उसके गुरु उसे क्या पढाते हैं ?' शिष्य ने उत्तर मे बताया कि आचार्य तीनों वेद पढ़ाते है । तब मौद्गल्य बोले, 'तब तो वे यह जानते होंगे कि आचार्य शिष्य को गायत्री का ही उपदेश देते है और वे इसके मूल अर्थ को बता देंगे । उनसे कहना कि आपने मौद्गल्य को मूर्ख तो कहा, यदि उनके प्रश्न का उत्तर आप न दे पाए, तो एक वर्ष के भीतर आपको कोई कष्ट होगा । मैंने भी सभी वेद पढे हैं । वे मुझे मूर्ख क्यों कहते है ? क्या उस आचार्य का मुझसे ऐसा कहना उचित है ? मेरे इस प्रश्न का उत्तर न देने का अर्थ होगा, वे इसे पढाते भी नही होंगे ।' फिर आचार्य अपने शिष्य से बोले, 'साम्य । ग्लाव एव मैत्रेय के पास जाओ तथा उनसे कहो कि वे तुम्हें बारह मिथुन एव चौबीस योनिवाली, भृगु-अगिरा नेत्रोंवाली, सबकी आश्रय गायत्री तुम्हें पढाए ।

द्वितीय कंडिका

शिष्य मैत्रेय के पास गया, किंतु मैत्रेय उसे उत्तर न दे सके । तब शिष्य ने कहा कि उसने (मैत्रेय ने) मौद्गल्य को मूर्ख कहा था, किंतु उनके प्रश्न का उत्तर वह न दे पाए । अत एक वर्ष में उन्हें कोई कष्ट होगा । 'इससे दुखी होकर मैत्रेय ने अपने शिष्यों को उनके घरों को लौटा दिया तथा स्वय मौद्गल्य को प्रसन्न करने के लिए दूसरी प्रात. हाथ में समिधा लेकर उनके पास जाकर कहा कि वह उनकी सेवा में आया है । मौद्गल्य द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर बताया कि वह उन्हें मूर्ख बताने पर भी उनके प्रश्न का उत्तर न दे पाया अत उन्हें प्रसन्न करने आया है । तब मौद्गल्य बोले, 'लोगों का कहना है कि यहां आने पर भी आपकी भावना शुद्ध नहीं हुई है, तथापि मैं तुम्हें कल्याणकारी भावना देकर विदा करता हूं ।' आभार मानते हुए मैत्रेय उनकी सेवा में शिष्य रूप मे रहने लगे । तब उन्होंने पूछा, 'यदि आप जानते हैं, तो कृपया बतलाइए कि सविता का वरण 'करने योग्य 'भर्ग' क्या है ? 'धी' तथा इसका प्रेरक क्या है ?' आचार्य ने उत्तर दिया, 'वेद एव छंद सविता के 'वरेण्य' (वरण करने योग्य) हैं, विद्वानों ने अन्न को देव का 'भर्ग' कहा है । कर्म ही 'धी' है, जिससे प्रेरणा दाता सविता विचारशील है ।

तृतीय कंडिका

मन सविता, वाक सावित्री है और जहां एक रहता है, वही दूसरा भी रहता है। दोनो दो योनि-एक मिथुन है। अग्नि सविता एवं पृथ्वी सावित्री है। वायु सविता और अंतरिक्ष सावित्री है। आदित्य सविता एवं द्यौ सावित्री है। चंद्रमा सविता तथा नक्षत्र सावित्री है। दिन सविता, रात्रि सावित्री है। उष्ण सविता, शीत सावित्री है। बादल-वर्षा, विद्युत-तड़क, प्राण-अन्न, वेद-छद, यज्ञ-दक्षिणा, यह प्रत्येक जोडा क्रमश सविता एवं सावित्री है। जहां एक रहता है, वही दूसरा भी रहता है। दोनों दो योनि एवं एक मिथुन है। 'हे विद्वान एवं परोपकारी यह ब्रह्मचारी आपकी सेवा में आया है और ज्ञान से पूर्ण हो गया है।' यह कहकर आचार्य चले गए। तब मैत्रेय ने अनुभव किया कि वह इसे जान गया है। इन योनियों में अथवा मिथुनों मे आया हुआ उनका कोई शिष्य अल्पायु नही होगा।

चतुर्थ कंडिका

प्रतिष्ठा और आयतन को देखकर ब्रह्म ने कहा कि यदि तप-व्रत किया जाए, तो सत्य मे प्रतिष्ठा होती है। सविता ने सावित्री से ब्राह्मण की सृष्टि की। उसने सावित्री को घेर लिया। सावित्री का प्रथम चरण 'तत्सवितुर्वरेण्यं' है। पृथ्वी से ऋक को ऋक से अग्नि को फिर अग्नि से श्री, स्त्री, मिथुन, प्रजा कर्म, तप, सत्य, ब्रह्मा— एक से एक युक्त हुए। ब्रह्मा से ब्राह्मण और ब्राह्मण से व्रत जुडा। व्रत से ही ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण एवं अविच्छिन्न होता है। इसे जानकर इसी प्रकार व्याख्या करनेवाले विद्वान का वश तथा जीवन अविछिन्न होता है।

पंचम कंडिका

'भर्गो देवस्य धीमहि' गायत्री का दूसरा चरण है। अंतरिक्ष से यजुष को, यजुप से वायु, व.यु से मेघ, वर्षा, औषधिया, पशु, कर्म, तप, सत्य, ब्रह्म, ब्राह्मण और व्रत परस्पर एक-दूसरे से युक्त करता है। व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण और अविछिन्न होता है। इस प्रकार की व्याख्या इस द्वितीय चरण की करने पर वंश तथा जीवन अविछिन्न होता है।

षष्ठ कंडिका

'धियो या न· प्रचोदयात्' यह गायत्री का तृतीय पाद है। द्यु लोक, साम, आदित्य, रश्मियां, वर्पा, औपधिया, पशु, कर्म, तप, सत्य, ब्रह्म, ब्राह्मण और व्रत को क्रमश अपने वादवाले मे युक्त किया। व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण एव अविच्छिन्न वंशवाला होता है।

सप्तम कंडिका

सावित्री के इन तीनों पादों का ज्ञाता ब्राह्मण अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ठ होता है। आकाश गी ब्रह्म से अभिपन्न आदि है। आकाश से वायु, वायु से ज्योति, ज्योति मे जल, जल मे भूमि, भूमि

से अन्न, अन्न से प्राण, प्राणों से मन, मन से वाणी, वाणी से वेद तथा वेदों से यज्ञ अभिपन्न (प्राप्त), ग्रसित तथा परामृष्ट है। इस प्रकार ये वारह महाभूत प्रतिष्ठित है। इनमें यज्ञ श्रेष्ठ है। अपने को इसका मर्मज्ञ समझनेवाला वस्तुत इसे जानता ही नही।

यज्ञ वेदों में, वेद वाणी में, वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अन्न में, अन्न भूमि में, भूमि जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश ब्रह्म में और ब्रह्मज्ञान ब्राह्मण मे प्रतिष्ठित है। इसका व्रह्मज्ञानी पुण्य, कीर्ति, सुगध को प्राप्त करके निष्पाप बनकर अनत ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

□

28. अमृतनादोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ज्ञानी मनुष्य शास्त्राध्ययन कर बार-बार अभ्यास करे। परम ब्रह्म को जानकर सासारिक नश्वर मोहों से दूर रहे। 'ओम' रूपी रथ में बैठकर, विष्णु को सारथी बनाकर रुद्र की आराधना मे तत्पर ब्रह्मलोक का इच्छुक मार्ग समाप्त होने तक रथ को चलाता जाए। तब मनुष्य इस रथ को छोडकर आगे बढ जाता है। 'ओम' की मात्राओ, पद विश्व, विराट ध्यान एवं त्याग के बाद 'म' के वाचक ईश्वर के ध्यान से तुरीय तत्त्व मे प्रवेश होता है। यह समस्त प्रपचों से दूर है। शब्दादि विषय तथा चंचल मन इन्हें सूर्य के समान अपने आत्मा मे देखें, आत्मचितन करे। इसे प्रत्याहार कहते है। प्राण, याम, धारणा, ध्यान, तर्क एवं समाधि, योग, के इन छ अगों के बाद प्रत्याहार की गणना होती है। (1-6)

तपाने से जैसे सोना शुद्ध होता है, वैसे ही इंद्रियो से मिले दोष प्राणायाम से नष्ट होते है। प्राणायाम से दोषों तथा धारणा से पापो को दूर करते हुए आराध्य का ध्यान करते हुए पूरक, रेचक एवं कुभक करते हुए प्राणायाम का अभ्यास करे। व्याह ति एव ओम के साथ तीन बार गायत्री मत्र पढते हुए पूरक । कुंभक रेचक करना ही प्राणायाम है। वायु को मुह से बाहर निकालकर हृदय को वायु एवं विचारों से रिक्त करना रेचक है। कमल नाल के समान मुंह से वायु को धीरे-धीरे अदर खीचना पूरक है। श्वांस को हिले डुले बिना अदर ही रोकना कुभक है। सब कुछ देखते हुए भी अंधे के समान न देखना, बहरे के समान न सुनना और देह को काष्ठ जैसा समझना प्रशात स्थिति है। सकल्पात्मक मानते हुए मन को परमात्मा में लगाना और उसी का चितन करना 'धारणा' है। शास्त्रानुकूल विचार तर्क है। जिसकी प्राप्ति पर अन्य प्राप्तियां हीन लगने लगे यही समाधि है। (7-16)

निर्दोष सुदर भूमि में कुशासन पर पद्मासन आदि लगाकर उत्तराभिमुख बैठकर प्रथमडल का मानसिक जप करें। फिर एक अंगुली से एक नाकछिद्र को बंद करके दूसरे से सास खीचे फिर दोनो छिद्रों को बद करके वायु को रोकें। तेजोमय ब्रह्म के एकाक्षर रूप ओम का चितन करते हुए रेचक करें। इसी प्रकार अनेक बार करें, किंतु एक समय में स्थूलादि मात्रा से अधिक न करें। दृष्टि को तिरछी, ऊपर या नीचे न करते हुए, अचल एवं कंपनहीन होकर सदा योगाभ्यास करें अभ्यास नियमित हो। यह अभ्यास ताल, मात्रा, निष्कंप, धारणा योजन तथा द्वादश मात्राओं के नियमवाला है। यह अक्षर अघोष अव्यजन, अनासिक, ओष्ठयहीन एव 'र' वर्णहीन है। यह कभी नष्ट नही होता। जिससे योगी प्राणों के जानेवाले मार्ग को देखता है, उस मार्ग के प्राप्ति के लिए उसका नित्य अभ्यास करें। वायु का प्रवेश-द्वार हृदय है तथा इसके ऊपर मूर्धाद्वार और इसके भी ऊपर मोक्षद्वार है। यही सुषिर मंडल कहलाता है (17-26)।

योगी के लिए आलस्य, भय और निद्रा-भोजन-जागरण की अधिकता, निराहार रहना तथा क्रोध वर्जित है। इस विधि से नित्य सही अभ्यास करने से योगी तीन मास मे नि.सदेह ज्ञान, चार में देव-दर्शन, पाच या छ मास में कैवल्य प्राप्त कर लेता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एव आकाश—इन पांचो तत्त्वों की धारणा के समय क्रमश· प्रवण की पाच, चार, तीन, दो और एक मात्रा का तथा प्रणव का चितन करते समय उसकी आधी मात्रा का चितन करना चाहिए। पचभूतो की सिद्धि एव चिंतन मानसिक धारणा द्वारा करना चाहिए। इससे ये वश मे होते है। तीन अंगुली लबा श्वास प्राण वायु का आधार है। वस्तुत· यही प्राणा कहा जाता है। दिखाई पड़नेवाले बाहरी प्राण मे एक लाख, तेरह हजार, छ सौ अस्सी नि श्वास एक दिन-रात मे होते है। प्राण, अपान, उदान, व्यान तथा समान क्रमश हृदय मे, गुदा मे, कठ मे, सारे शरीर में तथा नाभि मे रहते है। इनका वर्ण क्रमश· लाल मणि के समान, इद्रगोप मणि के समान, धूसर, आग की लौ जैसा तथा गाय के दूध जैसा होता है। जिस साधक का प्राण इस मडल का भेदन करके मस्तिष्क में प्रवेश कर ले, वह कही भी क्यों न मरे, उसका पुनर्जन्म नही होता। (27-38)

□

29. एकाक्षरोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

हे ईश्वर । तुम एक अक्षर (अनश्वर) सोम में सुषुम्ना से प्रविष्ट हो, तुम विश्वगर्भ पुराण पर्जन्य तथा भुवनो के एकमात्र रक्षक हो । तुम कण-कण में व्याप्त, कवियों के आश्रय, अग्नि, विश्वपिता, सर्वप्रथम उत्पन्न, हिरण्यरेता, यज्ञ और विभु हो । विश्व के प्राण, जन्म और योनियां तुम्हारे कारण ही है । तुमने एक चरण से विश्व को व्याप्त किया है । तुम विश्व की उत्पत्ति के कारण और प्राण हो । उसके धनुष-बाणवाले रक्षक कुमार भी तुम हो । सूर्य तुम्हीं से प्रकाशमान है । कार्तिकेय रूप मे देव सेनापति तुम्ही हो । अरिष्टनेमि भी तुम्ही हो । वज्र धारण करनेवाले इद्र, प्राणियों के स्वामी रुद्र, प्रजा की इच्छा करनेवाले, स्वाहा, स्वधा और वषट् भी तुम हो तथा प्राणियों की गुहा में रहनेवाले भी तुम्हीं हो । तुम्ही धाता, विधाता, पवन गरुड़, विष्णु, बाराह, रात, दिन, भूत, भविष्य, वर्तमान, क्रिया, काल तथा परम अक्षर भी तुम हो । तुम्हारे मुह से ही वेद निकलते हैं, तुम्ही सम्राट, वसु, अतरिक्ष, यज्ञनेता, यज्ञाग्नि तथा पैत्यगण हो । (1-7)

यह अधकार नाशक सूर्य तथा हृदयाकाश में ब्रह्मांड रूपी गर्भ वाली सुनाभि भी तुम हो । सर्ववेद्य, भुवन रक्षक, प्रजाओं की आधारनाभि, सबमें ओत-प्रोत, विविध गतियोवाला प्रजापति, छंदमय विगर्व है । तुम रजोगुण से परे हो । चारों वेदों से तुम्हारी स्तुति होती है । तुम्ही स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी, धाता, वरुण, राजा, वर्षा, सूर्य आदि सभी हो । सूर्य, गरुड़, चद्र, वरुण आदि भी तुम हो, भू, भुव, स्वः तुम हो । इस हृदयस्थित पुराण पुरुष को, जो सब मे विद्यमान है, समझता है, वह ज्ञानियों की परम गति को प्राप्त करके अविद्या का नाश करके जीवनमुक्त हो जाता है । (8-13)

□

30. नादविंदूपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङमे मनसि प्रतिष्ठा मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्य एधिवेस्य मे आपीस्थ । श्रुतं मे प्रहासी । अनेनाधीतेताहोरात्रांसदधा म्यगृतं वदिव्याज्ञि । सत्यं तन्मामवत् तद्वक्तात्म्वत, अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् । ॐ शांति· शाति शाति. ।

ओम (ॐ) को हस मानने पर (ओम = अ + उ + म) अ,उ तथा म क्रमशः इसके दाहिना,बायां पख और पूछ हैं । अर्ध मात्रा सिर है । तो सत्त्व, रजस एवं तमोगुण क्रमशः शरीर एवं दो पांव कहलाएगे । भू:,भुव ,स्व· और महालोक क्रमश· पैरों,जांघों,कमर तथा नाभि में होंगे । हृदय,कंठ, ललाट में,भौंहों के मध्य में क्रमश. जनलोक,तपोलोक तथा सत्यलोक होंगे । इस प्रणरूप हंस में आरूढ होकर यथाविधि अनुष्ठान आदि करने से पापमुक्ति एवं मोक्ष प्राप्त होता है । आग्नेयी इसकी प्रथम तथा वायव्य द्वितीय मात्रा है । तृतीय उत्तर मात्रा भानुमंडल है तथा चौथी अर्धमात्रा वारुणी है । मात्राओं में तीन-तीन मुख हैं । यह प्रणव धारणा आदि द्वारा जाना जाता है । इसकी बारह कलाए क्रमश· इस प्रकार है घोषिणी, विद्युन्माला, पतंगी, वायुवेगिनी, नामधेया, ऐंद्री, वैष्णवी, शाकरी,महत्ती,नामधृति,नारी और ब्रह्मी । (1-11)

इन मात्राओं में पहली से बारहवी मात्रा तक साधक के प्राण छूटने पर क्रमश. भारत का चक्रवर्ती सम्राट्,यशस्वी यक्ष,विद्या धर,गंधर्व,तुषित देवताओं के साथ ऐश्वर्य,इद्र का सायुज्य, विष्णु पद,रूद्र की सीवापता,महलोक,जनलोक,तपोलोक तथा शाश्वत ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । ब्रह्मज्ञान हेतु उससे उच्च,शुद्ध आदि कल्याणकारी तत्त्व है,जिससे सब ज्योतियों का उदय होता है । तव मन के अतींद्रिय गुणातीत, अनुपम शांत शिव में लीन हो जाने पर अद्वितीय योगमार्ग के पथिक ईश्वर-श्रद्धा से सभी आकर्षणों को त्यागकर धीरे-धीरे शरीरस्थ अहं को भी त्याग देता है । तव वधनों के मुक्त होने पर कैवल्य प्राप्त करके साधक साक्षात परमब्रह्म होकर परमानंद प्राप्त करता है । अत सतत आत्मा ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए,पूर्वजन्म के कर्मफलों के दुख से उद्विग्न नही होना चाहिए । आत्मज्ञान होने पर भी प्रारब्ध साथ नही छोड़ते । (12-22)

जिस प्रकार नींद से उठने पर स्वप्न की असत्यता होती है,वैसे ही आत्मज्ञान होने पर प्रारब्ध का भी नाश होता है । पूर्व जन्म के सांचित कर्म प्रारब्ध कहलाते हैं, आत्मज्ञानी पूर्व जन्म को ही मिथ्या समझता है,अत प्रारब्ध कैसा ? जैसे स्वप्न की वस्तुएं आभास मात्र होती हैं,वैसे ही ज्ञानी के लिए यह देह होती है । आभासी वस्तु का जन्म ही नही होता । जैसे मिट्टी अपने बर्तनों के उत्पादन का कारण होती है,वैसे ही आत्मा ही सारे सृष्टि प्रपंच का कारण है । वेदांत के अनुसार अज्ञान ही इसका कारण है,अज्ञान नाश पर संसार भी नही रहता । यह सब रस्सी में सांप के भ्रम जैसा है । रस्सी को जानने पर भ्रम नष्ट होने के समान ही आत्मज्ञान से सांसारिक भ्रम भी दूर हो जाता है । इस स्थिति में पहुचकर साधक प्रारब्ध को नही देखता, प्रारब्ध की बातें अज्ञानियोंके लिए हैं । इसका

नाश होने पर आत्मा एवं ब्रह्म के चितन से ज्योति रूप परमात्मा का नाद रूप में साक्षात्कार होता है। योगी सिद्धासन में बैठे, वैष्णवी मुद्रा धारण करे, अनाहत ध्वनि दाहिने कान से सुने। यह नादका *अभ्यास बाह्य ध्वनियो को रोक लेता है*, इस प्रकार प्रणव के दो पक्षो के बाद सपूर्ण प्रणव को जीतकर तुर्य पद प्राप्त करे। प्रारंभ में नाद नानाविध होता है किंतु अभ्यास से फिर यह सूक्ष्म सुनाई देता है। (23-33)

प्रारंभ में नाद-ध्वनि समुद्र, मेघ, भेरी और झरने की तरह, मध्य में सर्दल, घंटा तथा काहल वाद्यो की ध्वनि के समान तथा अंत में घूंघरू, वंशी, वीणा एवं भ्रमर की आवाज के समान धीमे से सुनाई देती है। प्रारंभ की ध्वनि सुनाई पड़ने पर धीमे नाद की कल्पना करनी चाहिए। तृतीय प्रकार के नाद मे आने पर मन को भटकने न दे। जिस नाद में मन लगे वह उसी में स्थिर और लीन हो जाता है। सासारिकता भूलकर फिर वह दूध में पानी की तरह मिल जाता है। नाद के साथ चिदाकाश मे लय हो जाता है। उदासीन होकर रुचिकार नाद का चितन करते हुए, चेष्टाओ को त्यागकर चित्तकोलय करनेवाले नाद का अनुसंधान करे। जैसे भ्रमर रस ही लेता है, गंध नही, वैसे ही साधक नाद में ही आनंदित होता है; विषयों मे नही। नाद ध्वनि से विस्मृत सर्प के समान चित्त भी नाद में सासारिकता भूल जाता है। विषयी हाथी के समान मन भी अंकुश रूपी नाद से वश मे हो जाता है। मन रूपी हिरन या लहरो को रोकने के लिए नाद जाल या बांध के समान है। (34-45)

नाद के प्रणव से सलग्न होने पर वह ज्योतिर्मय हो जाता है और लीन हो जाता है। यही विष्णु का परम पद है। शब्दों के सुनाई देने तक ही मन मे आकाश का संकल्प रहता है। नाद मद पडने पर मन भी नही रहता। नाद मे अक्षर की समाप्ति को परम पद समझें। नादानुसधान वासना को नष्ट करता है और मन को परमब्रह्म में लीन करता है, अर्थात् असंख्य नाद और विंदुका इसमे लीन हो जाते है। तब यह योगी की मुख्यावस्था है। तब योगी सभी चिताओं से हीन मृत के समान हो जाता है। उसे शंख दुंदुभियो का नाद भी नही सुनाई देता। मन से रहित अवस्था में देह काष्ठ जैसी जड हो जाती है। उसे शीत-उष्ण की भी प्रतीति नहीं होती और सुख-दुःख की और न मान-अपमान की ही। उदासीन योगी को अब स्वप्न, जागृत एव सुषुप्त से भी मुक्ति हो जाती है। न दिखाई पड़नेवाली वस्तु के अभाव में उसकी दृष्टि, प्रत्येक अभाव में वायु और अवलंब के अभाव मे उसका चित्त स्थिर हो जाता है, ऐसा योगी ब्रह्म प्रणव नाद की तुरीय अवस्था में पहुचा हुआ होता है। (35-56)

□

31. तुरीयातीतोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

पितामह ब्रह्म पिता आदिनारायण के पास जाकर बोले कि तुरीयातीत अवधूत का कौन-सा मार्ग है ? इसपर नारायण बोले, 'अवधूत मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति विरले ही होते है । विद्वानो का मत है कि यदि एक भी ऐसा व्यक्ति होता है, तो उसका चित्त मुझमें तथा मै उसके अतः मे रहता हू । कुटीचक्र, बहूदक, हस एव परमहस, उसकी ये चार अवस्थाएं क्रमश होती है । आत्मानुसधान से समस्त प्रपच को जान लेने पर वह दंड, कमंडलु, कटिसूत्र, कौपीन वस्त्र तथा अन्य क्रियाओ को भी जल में त्याग देते हैं । दिगवर बनकर छालों के वस्त्र आदि को त्यागकर नियम हीन बन जाते है । बाल काटना, तिलक करना, लौकिक-वैदिक कर्मकांड, पुण्य-अपुण्य, ज्ञान-अज्ञान आदि सभी कुछ का परित्याग कर देते हैं । उन्हें शीत-उष्ण, मान-अपमान, निंदा-स्तुति, गर्व, मोह, लोभ, द्वेष काम, क्रोध, सुख-दुःख आदि सभी को आग में झोंककर अपने शरीर को मुर्दा समझ लेते है । गाय की तरह जो भी सुलभ हो उसी से प्राण धारण करते हुए लालच, पाडित्य, ऊच-नीच भावना को धूल समझने लगते हैं । वे राग-विराग शुभाशुभ से ऊपर होते है । उनकी इंद्रिया शात हो जाती है । पूर्व जीवन के आश्रम, धर्म आदि को भूलने के साथ ही वर्णाश्रम को त्याग देने है । सदा सावधान रहते हुए रात दिन विचरण, उमत्तता रही होने पर भी बालक, पागल या पिशाच के समान अकेले रहना, न बोलना, आत्मस्वरूप का चिंतन करते रहना आदि लक्षणोंवाला अवधूत 'ओम' के भाव में डूबर शरीर त्यागता है । ऐसा अवधूत कृतार्थ हो जाता है । यही इसका सार है ।

☐

32. योगराजोपनिषद्

योगियो की योगसिद्धि के लिए योगराज उपनिषद कहा जाता है। योगचतुर्विध होता है—मंत्रयोग,लययोग,राजयोग तथा हठ योग,योग के तत्त्व-द्रष्टाओं ने इसकी चार अवस्थाए मानी है। आसन,प्राणसंरोध,ध्यान और समाधि प्रत्येक योग मे इनकी उपस्थिति है। विद्वान,ब्रह्मा,विष्णु, शिव आदि का जप करें। वत्सराज आदि ने मत्रयोग और व्यास आदि द्वारा लययोग की सिद्धि की गई। महात्मा नौ चक्रों में लय से सिद्धि प्राप्त करते है। भगाकृति ब्रह्मचक्र प्रथम है,जो तीन घेरो का होता है। मूलकद अपान स्थल मे है, इसे कामरूप, वह्निकुंड और तत्त्वकुडलिनी कहा जाता है। मुक्ति हेतु ज्योतिरूप जीव का ध्यान करे। दूसरा स्वाधीष्ठान चक्र बीच में बताया गया है। प्रवाल के अंकुर के समान पश्चिमा भिमुख एक लिग है,जिसका उड्डीयाण पीठ मे ध्यान करते हुए जगत को आकर्षित करे। तृतीय नाभि चक्र के मध्य में जगत स्थित है। विद्युत के समान पाच चक्रवाली मध्य शक्ति का चितन करे। इसके ध्यान से विद्वान सभी सिद्धिया प्राप्त करता है। चौथा हृदय-चक्र है,यह अधोमुख है। उसके मध्य में प्रकाश स्वरूप हंस का प्रयत्नपूर्वक चितन करना चाहिए,इसके ध्यान से नि सदेह सारा जगत वश में हो जाता है।(1-11)

पांचवां कंठ-चक्र है। बाए इडा, दाहिने पिगला तथा मध्य सुषुम्ना स्थित है। उसमे पवित्र ज्योति का ध्यान करने से सिद्धियां मिलती है। छठा तारका चक्र है,इसे घंटिका स्थान भी कहते है। दशम द्वार मार्ग है,इसे राज दंत भी कहा जाता है,वहा शून्य में मन को लीन करने पर निश्चय मुक्ति होती है। सातवा भ्रू-चक्र बिदु-स्थान भी कहलाता है। भौहो के मध्य में वतुर्लाकार ज्योति का ध्यान करने से मुक्ति होती है। आठवा निर्वाण सूचक ब्रह्मरंध्र नामक चक्र है। धुए के समान सूचिका समूह का ध्यान करने से योगी मुक्त होता है। इसे मोक्षप्रद नीलचेतस जालधर समझना चाहिए। नवा सोलह दलवाला व्योम चक्र है। पराशक्तिवाले इस चक्र को संविद कहते है। इस पूर्ण गिरि शक्ति पीठ ध्यान से मुक्ति मिलती है। इन नौ चक्रों में प्रत्येक के ध्यान से सिद्धि-मुक्ति हाथ में आ जाती है। ज्ञानरूपी आखों से जो मध्य में दो दडों को देखते है,वे ब्रह्मलोक जाते हैं। ऊर्ध्व शक्ति के निपात अद्य. शक्ति के सकोच तथा मध्यशक्ति के प्रबोध से नि:सदेह परमसुख मिलता है। (12-21)

□

33. आत्मपूजोपनिषद्

आत्मा का अनवरत चिंतन ही ध्यान है। समस्त कर्मों का निराकरण आह्वान है। निश्चल ज्ञान आसन है उसके प्रति उन्मुख रहना पाद्य है, मन लगाए रखना नमस्कार है। आत्मा का दीप्त रहना आचमन है। वरप्राप्ति स्नान और सभी आत्माओं के दृश्य का विलय ही गंध है। विशेष दृष्टि अक्षत है। परिपूर्ण चद्ररूप अमृत का एकीकरण नैवेद्य है। चित्त की दीप्ति पुष्प है। सूर्यात्मक बनना दीप है। निश्चलता प्रदक्षिणा। मैं वही हूं यह भाव नमस्कार है। परमेश्वर की स्तुति मौन है। सदा सतोष विसर्जन है। इस प्रकार परिपूर्ण राजयोगी का सर्वात्मिक पूजोपचार होता है। सर्वात्मकता ही आत्मा का आधार है। मैं सभी दुःखों से हीन परिपूर्ण ब्रह्म हूं, यही भावना मोक्ष के इच्छुकों की मोक्ष सिद्धि है। यही सार है।

☐

34. ब्रह्म उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शांति शांति शाति।

परमात्मा हम दोनों गुरु-शिष्यो की साथ-साथ रक्षा करे। साथ-साथ ही हमें भोज्य पदार्थ प्रदान करे। हम दोनों मिलकर वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो और हम परस्पर विद्वेष न करे। शारीरिक, भौतिक और दैविक त्रिविद्य ताप (दु:ख) शांत हो।

इस देह मे परम पुरुष के नाभि, हदय, कंठ एवं मूर्धा, ये चार स्थान है, जहा वह चतुष्पाद (चार चरणोंवाला) ब्रह्म सुशोभित है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय, इन चारों अवस्थाओ मे क्रमश ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और परम अक्षर ब्रह्म प्रकाशयुक्त रहते हैं। वह आदित्य, विष्णु, इद्र आदि नामवाला परमात्मा मन, कान, हाथ, पांव आदि से रहित ज्योति स्वरूप है। जहा लोक, वेद, देवता, यज्ञ, माता, पिता, बहिन, चाडाल, भील, श्रमण, तापस आदि सभी अपने रूपों मे नही रहते, अपितु एक निर्वाणरूप परम ब्रह्म ही रहता है, वही उसका रूप है। देवता, ऋषि, पितर इसे नही बता सकते समस्त विद्यामय वह ब्रह्म केवल ज्ञान से ही जाना जा सकता है। देवता, प्राण और ज्योति हदय मे रहते है, ज्ञानी उसे इसी प्रकार जानते है। ये ज्ञानी त्रिवृत्त सूत्र को (जनेऊ) जाननेवाले है। यह यज्ञोपवीत परम पवित्र है। यह प्रजापति के साथ ही उत्पन्न हुआ। आयु देनेवाला समझते हुए इस परम् पवित्र यज्ञोपवीत को धारण करने से बल एवं तेज से युक्त बनो।(1-5)

ज्ञान शिखा सहित मुडन करके बाह्य यज्ञोपवीत को त्यागकर अक्षर (अविनाशी) परम ब्रह्म रूपी सूत्र को धारण करे। परम ब्रह्म की सूचना देने के कारण ही इसे सूत्र कहते है। अत इस सूत्र को जाननेवाला विप्र वेदों में पारगत हो जाता है। जैसे सूत में माला के मोती पिरोए जाते है, वैसे ही इस सूत्र (जनेऊ) रूपी ब्रह्म में यह समस्त विश्व गुथा हुआ है। इसलिए इसे सूत्र कहा जाता है। योगवेत्ता एवं तत्त्वद्रष्टा व्यक्ति को इसे धारण करना चाहिए। उत्तम योग में स्थित योगी बाह्य सूत्र का परित्याग करके ब्रह्म के स्वरूप के ज्ञानरूपी सूत्र को धारण करे, इसको धारण करनेवाला चैतन्य हो जाता है तथा उसे पवित्रता प्राप्त होती है। ज्ञानरूपी इस यज्ञोपवीत को धारण करनेवाले ही इसके वास्तविक ज्ञाता तथा इसे धारण करनेवाले हैं। (6-10)

जो ज्ञानरूपी शिखा एवं यज्ञोपवीत धारण करते हैं और जिनकी ज्ञान में निष्ठा है, उन्हें ज्ञान परम पवित्र बना देता है। अग्नि के समान ज्ञानरूपी शिखावाले वास्तविक शिखावाले हैं, न कि केशों की शिखा रखनेवाले। वैदिक कर्मों में अधिकृत ब्राह्मण आदि ही इसे धारण करें, क्योंकि यह इन क्रियाओं का अग है। ब्रह्मवेत्ताओं का मत है कि जिसकी शिखा ज्ञानमय तथा सूत्र (जनेऊ) ब्रह्ममय है, वही सच्चे अर्थों में ब्राह्मण है। यह यज्ञोपवीत श्रेष्ठ परायण है, अत विद्वान यज्ञोपवीत

धारण करनेवाले यज्ञरूप एव यज्वा कहे जाते हैं। परमात्मा अकेला सबका आत्मा सर्वव्यापक साक्षी चेतन केवल है। एक ही परमात्मा सभी प्राणियों में स्थित है,जो उन्हें अनेक रूपों में बनाता है। उसे आत्मा में स्थित देखनेवाले धैर्यशाली ही शाश्वत सुख प्राप्त करते है। आत्मा एव प्रणव को क्रमश नीचे और ऊपर की अरणी बनाकर ध्यानरूपी मंथन से इस निगूढ़ आत्मा का दर्शन करें। तिलों में तेल,दही में घी,स्रोतों में जल,लकड़ी में अग्नि के समान आत्मा में स्थित इस परमात्मा को विद्वान सत्य एव तप से देखता है। (11-19)

जैसे मकड़ी जाले को बनाती और समेट लेती है,वैसे ही जीवात्मा जागृत एवं स्वप्नावस्था मे आता-जाता है। जागृत,स्वप्न,सुपुप्त एव तुरीय—इन चारों अवस्थाओं का आत्मा क्रमश नेत्र,कंठ, हृदय और मूर्धा में रहता है। जहा मन के साथ वाणी भी उसे प्राप्त किए बिना ही लौटकर वापस आ जाती है,उसे जाननेवाला मुक्त हो जाता है। सर्वत्र व्यापक आत्मा दूध मे घी के समान स्थित हैं। उसे आत्मज्ञान एवं तप से ही प्राप्त किया जा सकता है। यही ब्रह्म उपनिषदो का परम वर्णनीय विषय है। (20-23)

□

35. ब्रह्मविद्या उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शांति शांति शांति.।

परमात्मा हम दोनों गुरु-शिष्यों की साथ-साथ रक्षा करे। साथ-साथ ही हमें भोज्य पदार्थ प्रदान करे। हम दोनों मिलकर वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो और हम परस्पर विद्वेष न करें। शारीरिक, भौतिक और दैविक त्रिविद्य ताप (दु:ख) शांत हों।

ब्रह्मविद्या उपनिषद् का वर्णन किया जाता है। अद्भुत कर्मोंवाले विष्णु-रूपी ब्रह्म के प्रसाद से ध्रुव अग्नि रूपी ब्रह्मविद्या का रहस्य कहा जाता है। ब्रह्म वेत्ताओं द्वारा जिसे एकाक्षर ब्रह्म कहा गया है,उसके स्वरूप तथा तीनो कालों के विषय में वताता हूं। उस प्रणव में तीन देवता, तीन वेद, तीन अग्निया तीन अक्षरवाले शिव को तीन मात्राओं तथा अर्ध मात्रा के समान है। इस ओम (अ+उ+म) में विद्वानों ने ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी तत्त्व तथा ब्रह्मा को 'अ' का शरीर, यजुर्वेद, दक्षिणाग्नि, आकाश तत्त्व एवं विष्णु को 'उ' का शरीर तथा सामवेद, आह्वनीय अग्नि, द्यौ तत्त्व तथा परमेश्वर को 'म' का शरीर वताया है। इसके शंख के समान मध्य भाग का 'अ' सूर्य मंडल में, 'उ' चंद्र मंडल में तथा धुएं से रहित अग्नि और विद्युत 'म' में रहनेवाली दीपक की शिखा के समान इसकी अर्धमात्रा होती है। कमल की नाल के समान सूक्ष्म दूसरी शिखा वहत्तर हजार नाड़ियों को भेदकर मूर्धा में सभी प्राणियों को वरदान देनेवाली सर्व व्याप्त जैसी स्थिति मे रहती है। (1-11)

जैसे कांसे के घंटे का शब्द शांति के लिए लीन करता है, वैसे ही सव प्रकार की शांति चाहने के लिए ओंकार का प्रयोग करना चाहिए। जिसमें शब्द लीन हो जाते हैं, उसे ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म में लीन वुद्धि को अमृतकल्पा (अमरत्व देनेवाली) कहा गया है। वाल की नोक के सौवें भाग के समान सूक्ष्म माना गया जीव प्राण कहलाता है, इसे वायु, तेज तथा आकाश, ऐसे तीन प्रकारों का माना गया है। वह सूर्य के समान समस्त विश्व को प्रकाशित करनेवाला शिव स्वरूप शुद्ध एव निर्मल तत्त्व नाभि के स्थान पर स्थित है। जीव सर्वदा सकार एव हकार का जप करता है। नाभि में निकला हुआ यह जप विषयों से रहित होता है। दूध से निकले हुए घी के समान इस कलाहीन तत्त्व को पांचों प्राणायामों द्वारा समझें, जैसे मथानी से दूध मथा जाता है, वैसे ही चार कलाओंवाले हृदय मे स्थित का देहभ्रमण होता है। इसमें महाखग शीघ्रता से निवास करता है। श्वास की समाप्ति पर जीव भी कलारहित हो जाता है। (12-19)

नभ में स्थित कलाहीन तत्त्व का चिंतन भवबंधन से मुक्ति देनेवाला है। हृदय मे स्थित अनाहत ध्वनि से युक्त स्वय प्रकाशित चिदानद को, जो जानता है, वह हंस कहलाता है। जो मूर्धा

(सद्‌बुद्धिवाला) रेचक एवं पूरक को त्याग कर कुंभक की अवस्था मे प्राण तथा अपान को समाहित करके मस्तक में स्थित अमृत को पीकर आदर सहित ध्यान से नाभि मध्य में दीपक के समान जगमगाते महादेव का 'हस-हंस', इस प्रकार जपते हुए अभिषेक करता है, वह पृथ्वी मे जरा, मरण एव रोग के दु खों से मुक्त हो जाता है। अतः अणिमा आदि विभूतियो की प्राप्ति हेतु प्रतिदिन ऐसा करें। इमसे ईश्वर-प्राप्ति होती है। अनेक इसी मार्ग से परम पद प्राप्त कर चुके है। इस अमृत हस विद्या के समान लोक में कोई चिर साधन नही है। जो हंस नाम की इस परम पावन विद्या को देता है, उसकी सदा दत्त-चित्त होकर सेवा करनी चाहिए। उस गुरु के शुभाशुभ हर आदेश का पालन करें। गुरु सेवा से प्राप्त इस हंस-विद्या से आत्मा का साक्षात्कार और निश्चल ब्रह्म ज्ञान के पश्चात् देह, जाति आदि के सबध वर्णाश्रम एवं वेद शास्त्र आदि को पग चिह्नों की तरह त्याग दे और श्रेय प्राप्ति के लिए गुरु-सेवा करे। (20-30)

(श्रुतिवेद) मत है कि गुरु ही साक्षात हरि हैं। यह सबसे बड़ा सत्य है, क्योकि श्रुति श्रेष्ठ प्रमाण है, इसका विरोध नहीं किया जा सकता। बिना प्रमाण के वस्तु अनर्थकारक होती है। देह मे स्थित और देह वर्जित क्रमशः सकल एव निष्कल है। आप्त पुरुष से (गुरु आदि) मिलनेवाला यह उपदेश सर्वत्र समान रूप से स्थित है। 'हस-हस' ऐसा बोलनेवाला ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप है। अत गुरु के मुख से सर्वतोमुख ब्रह्म को जानो। तिलों में तेल तथा पुष्प मे सुगंध के समान ब्रह्म पुरुष के शरीर के भीतर एव बाहर स्थित है। जैसे उलका के प्रकाश को देखकर उसे त्याग देते है, वैसे ही ज्ञेय (ब्रह्म) की प्राप्ति पर ज्ञान त्याग दिया जाता है। पुष्प एव उसकी गध क्रमशः सकल एव निष्कल के समान है अथवा वृक्ष और उसकी छाया क्रमश· सकल और निष्कल की तरह है। इस तरह सकल तथा निष्कल का भाव सर्वत्र स्थित है, इनमें सकल साधन तथा निष्कल साध्य है। सकल तथा निष्कल क्रमश भावयुक्त एव भावहीन होते है। एक मात्रा, दो मात्रा, तीन मात्रा और अर्धमात्रा को भी (एक मानने पर) तथा इसके ऊपर परात्पर सहित सकल (जीव) को पांच देवताओंवाला मानना चाहिए। (31-40)

हृदय, कंठ, तालु, ललाट, नाक के अग्रभाग तथा उसके अत मे क्रमश· ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, अच्युत और परम पद का स्थान है। परम से आगे कुछ भी नही है, ऐसा शास्त्र निर्णय है। नासाग्र से बारह अंगुल पर देहातीत को मानें। चाहे मन या नेत्र कही पर रहें, तब भी योगियो का योग अविछिन्न गति से चलता रहता है। यह परम गुह्य (गोपनीय) एव परम शुद्ध रहस्य है। इससे बढकर अथवा शुभ कुछ भी नही है। परम अक्षर का शुद्ध ज्ञानामृत पाकर इस परम गुह्य को यत्नपूर्वक धारण करे। गुरु-भक्त शिष्य तथा पुत्र के अतिरिक्त यह विद्या किसी को नही देनी चाहिए। इनके अतिरिक्त किसी को देने पर यह सफल नही होती है और देनेवाला नरक में जाता है। चाहे गृहस्थ हो, ब्रह्मचारी-सन्यासी हो अथवा भिक्षुक हो, साथ ही वह कही भी रहे, इसे जाननेवाला ज्ञानी ही होता है। विषयी अथवा कोई भी मनुष्य इस शास्त्र के ज्ञान से दूसरे जन्म मे शुभ गति पाता है। (41-50)

ब्रह्म हत्या के पाप और अश्वमेध के पुण्य से निर्लिप्त प्रेरक ज्ञान देनेवाला और मोक्ष देनेवाला [illegible] आचार्य पृथ्वी पर श्रेष्ठ माना जाता है। प्रेरक मार्गदर्शक, बोधक आचरण सिखानेवाला

तथा मोक्ष देनेवाला परम तत्त्व का ज्ञानामृत प्रदान करता है। गौतम । अब देह-में भजन आदि के विषय में सुनो, जिससे मानव शाश्वत अव्यय पद प्राप्ति के साथ ही अपनी ही देह में कला रहित विंदु के दर्शन करता है। प्राणायम करके इस मार्ग का ज्ञाता दो अयनों के विषय को देखता है। पहले इन दोनों को प्रणाम करे, फिर नमस्कार योग तथा मुद्रा से अर्चना करे। सूर्य ग्रहण प्रत्यक्ष पूजन है। जल में व्याप्त जल के समान सायुज्य प्राप्ति ज्ञान से ही संभव है। ये सब गुण योग मार्ग के श्रम से ही प्रवर्तित होते हैं। अत. प्रत्यनपूर्वक सब दु:खों को दूर करें। ज्ञानस्वरूप परम हंस मत्र का उच्चारण करे। योगध्यान करते हुए ज्ञान की तन्मयता के प्रति प्रयाण करें। इसी से परम पद प्राप्त होता है। प्राणियों की देह के मध्य में अच्युत हंस सदा स्थित रहता है। हंस ही परम सत्य है। (51-60)

हस ही परम वाक्य, वेदो का सार, परम रुद्र, परम ब्रह्म, सभी देवों में स्थित महेश्वर पृथ्वी आदि से शिव तक है एवं अकार आदि वर्णो तक मात्राओं की तरह व्यवस्थित है। मातृका रहित मत्र का उपदेश नही दिया जाता। देवताओं मे अनुपम हंस ज्योति रहती है। दक्षिण दिशा को मुख करके ज्ञान-मुद्रा का प्रदर्शन करे। निर्मल स्फटिक के समान दिव्य रूप का ध्यान करते हुए तथा हंस मत्र का स्मरण करते हुए समाधि ले। मध्य देश में ज्ञान मुद्राकार परम हंस का ध्यान करे। प्राण, अपान आदि पांच वायु से क्रियाशक्ति तथा नाग, कर्म, कुकर, देवदत्त, धनंजय और पांच ज्ञानेद्रिय युक्त ज्ञान शक्ति बल से तीव्र होता है। शरीर के मध्य और नाभि में रवि रहता है। नाक के सामने दृष्टि रखते हुए बंध मुद्रा का प्रदर्शन करे। अकार में अग्नि तथा उंकार में हृदय स्थित है, भौंहो के बीच 'म' वर्ण में प्राण शक्ति को समझे। (ओम के) 'अ' कार में ब्रह्म ग्रंथि और हृदय 'उ' कार मे विष्णु ग्रंथ है। भौंहों के बीच में रुद्र ग्रंथि है, जिसे अक्षर वायु भेदती है। 'अ' कार में, 'उ' कार मे 'म' कार में क्रमश ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं। इसके बाद परात्पर है। कठ को सकुचित करके नाडियों की शक्ति को स्तभित करना चाहिए। जीभ को दबाकर कुडलिनी को चलाए, जो सोलह आधारोंवाली ऊर्ध्वगामिनी, तीन कुटोंवाली, तीन प्रकार की है और ब्रह्मरध्र की ओर जानेवाली अत्यंत सूक्ष्म नाडी को तथा त्रिशंख, वज्र, ओंकार, ऊर्ध्वनाल तथा भृकुटियों की ओर जानेवाली है। इस कुंडलिनी से प्राणों का भेदन करे। वज्रकुंभ की साधना करे तथा प्रसन्नतापूर्वक मन को निर्गुण ईश्वर रूपी पवन पर आरूढ करें। (61-75)

इसके पश्चात् ब्रह्म स्थान में नाद सुनाई देने लगता है। शांति नाड़ी से अमृतवर्षा होती है। इतना होने पर षटचक्र मंडल के भेदन से ज्ञान-दीप को प्रकाशित करे। इसके प्रकाशित होने पर सभी प्राणियों में स्थित परमेश्वर का पूजन करे। वह परमेश्वर आत्मरूप, अंधकार नाशक, ज्ञानमय तथा व्याधिनाशक हैं। सर्वव्यापक, निरंजन दिव्य रूप के दर्शन होने पर 'हंस-हस' का जप करे। शरीर की प्राण एवं अपान ग्रंथि को अजपा कहा जाता है। इससे नित्य इक्कीस हजार छ सौ जप करने से हंस 'सोऽहं' (मैं वही ब्रह्म हूं) में परिवर्तित हो जाता है। साधक सदा कुडलिनी के पूर्व मे, शिखा मे तथा भृकुटि के मध्य में क्रमश अधोलिग, पश्चिम लिंग तथा ज्योतिलिग का ध्यान करे।(76-80)

मैं अच्युत हू, अचिंत्य हू, अतर्क्य हू, अजन्मा हूं, अपर्ण हूं, काया रहित हू, अंगों से रहित हू, शब्द से, रूप से तथा स्पर्श से परे हू, मैं अद्वैत हू, रस एवं गंध से रहित हू, अनादि अमृत रूप हू, अक्षय हू,

मेरा कोई लिंग नही है, मैं निष्कल-निष्प्राण हूं, निर्मुख, निष्क्रिय और अचिंतनीय हूं, अंतर्यामी हू, अग्राह्य हूं, देश एवं लक्षणों से रहित हू, अदृश्य, अवर्ण, अखंड अद्भुत, अदृष्ट, अन्वेषण योग तथा अमर हू। (81-85)

मैं वायु रहित हूं, आकाश रहित हूं, तेज रहित हूं, अव्यभिचारी, अज्ञेय, अजन्मा, अतिसूक्ष्म एवं विकार रहित हू। मै सत्त्व, रजस और तमस—तीनों गुणों से रहित हूं। स्वय को पूर्ण, गुणातीत तथा माया रहित अनुभव करता हू। मैं अनन्य और अविषय हूं। मैं अद्वैत हूं, पूर्ण ब्रह्म हू और न बाहर न भीतर हू। मैं कानों से रहित हू, अदीर्घ हूं अव्यक्त हू, अनामय हूं, अदृश्य आनंद रूप हूं, विज्ञान घन हू, अविकारी हू, इच्छा रहित हूं, अकर्ता हूं, अद्वैत हूं, मायाजन्य विकारों से हीन, न दीखनेवाला, अविकल्प तथा अग्निहीन हू।(86-90)

मैं आदि, मध्य तथा अंत से रहित हूं, मैं आकाश के समान हूं, आत्म-चैतन्य हूं, आनदघन हू, मै आनद और अमृत रूप हू, आत्म स्थित हूं, अत हूं, अकाम हूं, आकाश में परमात्मास्वरूप हू, मै ईशान हू, पृज्य हू, उत्तम और उत्कृष्ट पुरुष हूं। मै उपदेष्टा हू तथा परे से भी परे हू। मैं केवल हू, मैं कवि हू, कर्मो का स्वामी हू और कारण का अधिपति हूं, मैं गुप्त आशय हूं, गुप्त रखनेवाला हू, नेत्रों का नेत्र हू, चिदानद हू, चेतना प्रदान करनेवाला हू, चिद्घन तथा चित्तमय हूं। मैं स्वय ज्योतिमय हूं तथा ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति हू। (9-95)

मैं तमस (अंधकार) हू, साक्षी हू, तुर्य का भी तुर्य हूं, तमस से परे हू, दिव्य हूं, देव हू, दुर्दर्श हू, दृष्ट का आधार हू, ध्रुव हू, नित्य हू, निर्दोष हूं, निःविक्रय हूं, निरंजन हूं, निर्मल हू, निर्विकल्प हूं, अकथित हू, निश्चल, निर्विकार हू, नित्य पावन हूं, निर्गुण हूं, निस्पृह हूं, निरिंद्रिय हू, नियता हू, निरपेक्ष हू, निष्फल हू, पुरुष हू, परमात्मा हू, पुराण हू, परम ब्रह्म हूं, पारावर हू, प्राज्ञ हू, जगत प्रपच को शात करनेवाला हू, परम अमृत, पूर्णानंद, पुरातन प्रभु, एक ज्ञान तथा एक रस रूप हूं। (96-100)

मै प्रज्ञाता हू, प्रशात, प्रकाश स्वरूप परमेश्वर हूं, द्वैत एव अद्वैत से विलक्षण चितनीय हू, बुद्ध, भूतपाल, भावरूप तथा भगवान हू। महादेव हूं, महान हूं, महाज्ञेय हू, महेश्वर हू, विमुक्त हू, विभु हू, वरण करने योग्य हू, व्यापक हू, वैश्वादर हूं, वासदेव हू, चारों ओर आंखोंवाला हूं, विश्वाधिदेव हूं, विशद हू, विष्णु हूं, विश्वनिर्माता हू, शुद्ध हूं, शात हू, शुक्र हूं, शाश्वत हूं, शिव हूं, सभी प्राणियों का अतरात्मा हू, नित्य एव सनातन हूं तथा मैं ही अपनी महिमा से स्थित होकर सदा प्रकाशमान हू। (101-105)

मैं ही सबके अदर की ज्योति हू, मैं स्वयं ज्योति हूं, मैं सबका अधिपति हू, सभी प्राणियों में रहनेवाला हू, सर्वव्यापक हू, सबका सम्राट हूं, समस्त जगत का साक्षी हूं, सर्वात्मा हूं, सभी प्राणियों के गुण में रहनेवाला हू, सभी इद्रियों के गुणों का आभास करानेवाला हू, तथा सभी इंद्रियों से रहित हू। तीनों से परे हू सभी पर अनुग्रह करने वाला हू, सच्चिदानद पूर्ण आत्मा हू, सबके प्रेम का पात्र हू सच्चिदानद मात्र हू, स्वयं प्रकाशवान हू, चिद्घन हूं, सत्त्वस्वरूप, सबका आधार, सबका अधिष्ठान, सभी बधनों को हरनेवाला, सर्वग्रास, सर्वद्रष्टा तथा सर्वानुभव हू।—इस प्रकार का तत्त्व ज्ञाता ही पुरुष कहलाता है। (106-110)

□

36. क्षुरिकोपेनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शांति शाति. शाति.।

उस योग सिद्धि हेतु क्षुरिका को बताता हूं,जिसे प्राप्त करके योगी का पुनर्जन्म नही होता। यह वेदों के तत्त्वों का सार है। अत इसके विषय में साक्षात भगवान स्वयंभू ने कहा कि कछुवे के अगो के समान मन को हृदय मे रोककर नीरव स्थान में आसन लगाकर शनै-शनै बारह मात्राओ वाले प्रणव से सभी द्वारों को विरुद्ध कर पूरक से शरीर को भरे। मुह,कमर और गर्दन सीधा रखे। नाक के अंदर रहनेवाली प्राण वायु को उसमें धारण करें। प्राण वायु के इस प्रकार होने पर फिर शनै-शनै रेचक करें। इस अभ्यास के स्थिर एवं दृढ़ होने पर सावधानी से अंगूठे से गुल्फों मे,घुटनो मे,उरु मे तथा गुदा में दो-दो और जांघों एव शिश्न में तीन-तीन प्राणायाम के बाद वायु के स्थान नाभि का आश्रय लें। वहां दस नाडियो से घिरी सुषुम्ना होती है। इन लाल,पीली,काली,ताबई और लोहित अतिसूक्ष्म,सफेद पतली नाड़ियों का आश्रय ले। उसमें मकडी द्वारा तंतु निर्माण के समान प्राण-वायु का संचार करें। वहां लाल कमल के समान प्रकाशमान महत का घर है,जिसे वेदात में दहर पुडरीक कहा गया है। उसे भेदकर नाड़ी को भरता हुआ वायु कंठ मे आता है। मन से परमगुह्य तीक्ष्ण निर्मल बुद्धि उस रूप का जो पांवों के ऊपरी भाग में नाम रूप है,चिंतन करे। तीक्ष्ण योग का आश्रय लेकर धारणा,ध्यान और मन की धार से इद्रवज्रा नामक जंघा में स्थित मर्म को नष्ट करे। तब उरुओ के मध्य में प्राणों को स्थापित मर्म में मुक्त करे। इस प्रकार चार अभ्यासों से नि शंक होकर मर्म को काट दे। तव योगी कंठ मध्य मे नाडियों का संचय करता है। इनमें एक सौ एक नाडिया उत्तम कही गई है। (1-15)

सुषुम्ना परम तत्त्व में लीन है,विरजा ब्रह्म रूप है,पिंगला दाहिने तथा इडा बायी ओर है। इन दोनों के मध्य के स्थान का ज्ञाता ब्रह्मवेत्ता है। बहत्तर हजार में प्रत्येक नाडी में तैतिल है। ध्यान योग से सुषुम्ना के अलावा सभी कट जाते हैं। योग की निर्मल धार की छुरी की अग्नि से धीर जन सौ नाड़ियों को काट डालें। जब योगी तैतिल को जातीपुष्प के समान देखने लगता है,तब इस प्रकार नाडियों के शुभाशुभ भावयुक्त योगी का पुनर्जन्म नही होता। तप से मन को जीतकर शब्दहीन स्थान में अंगों सहित योग को जाननेवाला निःसंग योगी धीरे-धीरे बधनों को काटकर नि शक उड़नेवाले हंस के समान ससार से मुक्त हो जाता है। जैसे समस्त तेल को जलाकर दीपक बुझ जाता है,वैसे ही योगी भी समस्त कर्मों को जलाकर लय को प्राप्त होता है। प्राणायाम से तीक्ष्ण धारवाले 'ओम' को वैराग्य फलक पर घिसने से कामनाएं आदि बधन कटने पर मुक्त योगी अमृत्व प्राप्त करता है। यही उपनिषद् है (रहस्य है) ।(16-25)

37. योगतत्त्वोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्वापावहै ॥

ॐ शांति शाति शाति ।

योगियों के कल्याण के लिए योगतत्त्व कहा जा रहा है,जिसे सुनकर या पढकर सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है । विष्णु ही महान् योगी,महान् प्राणी तथा महान् तपस्वी हैं । तत्त्वमार्ग के लिए वह पुरुषोत्तम भगवान दीपक के समान हैं । पितामह व्रह्म ने उस जगन्नाथ भगवान विष्णु की आराधना करके उनसे निवेदन किया, 'कृपया मुझे आप आठ अंगों से युक्त योग तत्त्व को वतलाए ।' तव भगवान हृषीकेश उनसे वोले,'इस तत्त्व को मैं तुम्हें वताता हू,अत ध्यान से सुनो । सभी प्राणी माया के सुख-दु:ख के जाल से वंधे हुए है । माया के जाल को काटकर,जन्म,मृत्यु, वृद्धावस्था और रोगों के नाशक मुक्ति दाता और भव-सागर से तारनेवाले इस मार्ग का वर्णन इस प्रकार है । कैंवल्य परम पद है । यह अनेक प्रकार से कहे गए नाना प्रकार के मार्गो से सर्वथा दुष्प्राप्य है । शास्त्रों के जालों में उलझने से ये बुद्धि को मोहित कर देते हैं । देवत्ता भी उस अनिर्वचनीय परम पद के विषय में कुछ भी वता पाने में असमर्थ हैं;तव स्वात्म प्रकाश रूपी इसी पद के विषय में शास्त्र क्या वता पाएगे ? निष्कल,निर्मल,शाति,सर्वातीत और दु:ख रहित वही जीव पुण्य और पाप के फलों से आवृत्त होकर इस प्रकार का वन जाता है । वह परम आत्मा रूपी पद,जो सभी भावों मे अतीत,ज्ञान रूप तथा माया मुक्त है,जीव रूप को कैसे प्राप्त हो जाता है ? यह एक चितनीय प्रश्न है । इसका समाधान इस प्रकार है । (1-9)

सर्वप्रधम जल मे स्फुरण हुआ और उसमें कृति (अहंकार) की उत्पत्ति हुई । फिर उसमें जल, पृथ्वी,आकाश,अग्नि और वायु युक्त पंचमहाभूतों के धातुओं से वधे गुणात्मक पिड की उत्पत्ति हुई । उस विशुद्ध परमात्मा स्वरूप में सुख-दु:खमय जीव भावना की उत्पत्ति हुई अत उसे जीव नाम दिया गया । काम,क्रोध,मोह,लोभ,मद,रजस,जन्म,मृत्यु,कृपणता,शोक,तंद्रा,भूख,प्यास,इच्छा, लज्जा,भय,दु:ख,विपाद एव हर्प,ये सव दोप जीव में रहते हैं । इन दोपों से मुक्त हो जाने पर यह जीव केवल परमात्मा स्वरूप हो जाता है । अत इन सव दोषों के विनाश का उपाय तुम्हें वताता हूं । योग से हीन ज्ञान कैसे मोक्ष देनेवाला हो सकता है और साथ ही योग भी विना ज्ञान के मोक्ष देने में समर्थ नहीं है । अत यह आवश्यक हो जाता है कि मुमुक्षु (मोक्ष का इच्छुक) ज्ञान और योग दोनों का दृढ़ता से अभ्यास करे । अज्ञान से ही संसार में जन्म लेना पडता है तथा ज्ञान मे ही जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिलकर मोक्ष की प्राप्ति होती है । अत सर्वप्रथम ज्ञान स्वरूप महत्त्वपूर्ण है । ज्ञेय (जानने योग्य अर्थात् परमात्मा) को प्राप्त करने का एकमात्र साधन ज्ञान ही है । ज्ञान क्या है ? इस विषय मे इस प्रकार मैं तुम्हें वताता हू । जिससे अपना वास्तविक स्वरूप,कैंवल्य (मोक्ष) रूप

परम पद, कलाओं से हीन (निर्गुण), निर्मल, साक्षात सच्चिदानंद (सत्-चित्-आनंद) स्वरूप, जगत की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाले तथा स्फूर्ति ज्ञान से रहित परमात्मा का ज्ञान होता है, यही ज्ञान कहलाता है। इसी योग के ज्ञान को मैं तुम्हें वताता हूं। हे व्रह्मा व्यावहारिक दृष्टि से योग के अनेक भेद हैं। किंतु मंत्रयोग, हठ योग, लय और राज योग, यह चार भेद प्रमुख है। यही चार भेद सर्वत्र वताए जाते हैं। योग की आरंभ, घट, परिचय एवं निष्पत्ति, ये चार अवस्थाए होती हैं। (10-20)

हे व्रह्मा इनके लक्षण संक्षेप में वताता हूं। सुनो—मातृका आदि से मुक्त मंत्र का वारह सौ जप करनेवाला क्रम से अणिमा आदि गुणों से युक्त ज्ञान को प्राप्त करता है। वस्तुत इस ज्ञान की साधना कोई अल्पवुद्धिवाला अधम साधक ही करता है। लय योग में चित्त का लय हो जाता हैं। यह लय करोड़ों प्रकार का कहा जाता है। चलते हुए, रुककर, स्वप्न देखते हुए अथवा खाना खाते हुए निष्कल ईश्वर का ध्यान करने से लय योग होता है और हठ योग इससे भिन्न प्रकार का होता है। अव इसके विषय में सुनो। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा भ्रूमध्य (भवो के बीच में) श्री हरि भगवान का ध्यान करते हुए समानता की अवस्थामय समाधि से युक्त यह योग आठ अंगोंवाला होता है। महायुद्रा, महावध, महावेध, खेचरी, जालंधर, उड्डियान, मूलवध, दीर्घ प्रणव सधान तथा सिद्धांत श्रवण। वज्रोली, आमरोली और सहजोली, ये तीन प्रकार की मुद्राए हैं। हे व्रह्मा इन सभी के लक्षणो को तत्त्वत सुनो। यमों के पालन में आहार की अल्पता सर्व प्रमुख है, कुछ अन्य नही। नियमों में अहिसा सवसे प्रधान गुण है। सिद्धासन, पद्मासन सिहासन तथा भद्रासन, ये चार मुख्य आसन हैं। हे व्रह्मा। अभ्यास की प्रथम अवस्था में विघ्न भी आते हैं। आलस्य, आत्म प्रशंसा, धूर्ततापूर्ण विचार आदि इसी प्रकार के विघ्न है (21-30)।

सुवुद्धिवाला साधक धन, स्त्री-संग का लोभ आदि समस्त विघ्नों को अपने पुण्यों के प्रभाव से इन्हें मृगतृष्णा के समान समझकर इनका परित्याग कर दे। तव पदमासन लगाकर प्राणायाम का अभ्यास करे। इसके लिए पहले ही एक छोटे दरवाजेवाली सुंदर कुटिया वना ले जो गोवर अथवा चूने से लिपी-पुती हो। इस वात पर विशेष ध्यान दिया जाए कि उसमें खटमल मच्छर, मकडी आदि व्यवधान पहुचानेवाले कीट न हो। दिन-प्रतिदिन उसकी सफाई समुचित रूप से होती रहे। उसे गुग्गल आदि सुगंधित पदार्थो से सुवासित रखा जाए। वस्त्र आदि न तो अधिक तग हों और न अधिक ढीले-ढाले ही। इस प्रकार की कुटिया में मृगचर्म अथवा कुश के आसन पर वैठकर आसन (पद्मासन) लगाएं। शरीर को सीधा रखते हुए हाथ जोड़कर इष्ट देवता को प्रणाम करे। फिर दाहिने हाथ के अंगूठे से पिंगला (नाक के दाहिने स्वर) को दवाकर धीरे-धीरे (नाक के वाए स्वर) से वायु को खीचकर अदर भरे और जितनी देर हो सके इसे अंदर ही रोके रखे। इसे कुंभक करना कहा जाता है। फिर पिगला से शनै-शनै (न कि वेग से) वायु को वाहर निकाल दे। इसे रेचक करना कहा जाता है। इसके पश्चात् फिर धीरे से पिंगला से वायु को खीचते हुए उदर को भरे, अर्थात् पूरक करे और यथाशक्ति कुंभक करते हुए इडा से पूर्ववत् शनै-शनै रेचक करें, कहने का तात्पर्य यह है कि एक वार वाएं से पूरक करके दाहिने से रेचक करे और दूसरी वार दाहिने से पूरक करे तथा वाए से रेचक करे। जिस स्वर से सांस वाहर निकाली है, उसी से दूसरी वार सांस ऊपर खींचे। (यही क्रम प्राणायाम के लिए उचित है)। फिर न तो द्रुत गति से और न ही विलवित गति से जानुकी हाथ से

प्रदक्षिणा करते हुए एक चुटकी बजाए। योग शास्त्र में इतने समय को एक मात्रा ‐ ‐ल कहा जाता है। (31-40)

पहले इडा स्वर अर्थात् नासिका के बाएं छिद्र से वायु को खीचें। ध्यान् रहे कि यह वायु सोलह मात्राओं के समय तक खीचनी है। इसके बाद चौंसठ मात्राओं के समय तक इसे अदर ही रोकना है, कुभक करना है। तब पिंगला स्वर (दाहिने छिद्र) बत्तीस मात्राओं के समय के अदर रेचक करना होना है। तब पिंगला से पूरक तथा इड़ा से रेचक पूर्ववत् समय से करें। प्रातःकाल, मध्य दिन, सायकाल तथा अर्धरात्रि इन चार समयों में धीरे-धीरे अस्सी तक कुभों की सख्या बढाए। इस अभ्यास को तीन मास तक करने पर ही नाडी शुद्ध हो जाती है, और नाड़ी शुद्ध होने पर योग-साधक के शरीर में योग के चिह्न भी स्पष्ट रूप में दिखाई पडने लगते है, जो इस प्रकार के होते हैं—शरीर में लघुता (हल्कापन) आ जाता है और देहकृश (पतली) हो जाती है। जठराग्नि (भूख) प्रदीप्त हो जाती है। योग को भली प्रकार से जानने वाले इसमें विघ्न पहुंचानेवाले आहार परित्याग कर दो। लवण (नमक), तैलीय पदार्थ, खटाई, गर्म प्रकृति के खाद्य, रूखे और तीखे पक्वान, शाक-सब्जिया, हींग इत्यादि भोज्य पदार्थ, आग तापना, स्त्री सहवास, अधिक पैदल चलना, प्रातःकाल का स्नान, उपवास आदि सभी शरीर को कष्ट देनेवाले क्रिया-कलापों का परित्याग कर दे। अभ्यास की प्राथमिक अवस्था में दूध, घी आदि से बना भोजन ही उचित रहता है। गेहू, मूग की दाल, चावल आदि का भोजन योग अभ्यास मे वृद्धि करनेवाला होता है, अर्थात् योग-साधना के लिए ये श्रेष्ठ खाद्य पदार्थ है। इस प्रकार के निरतन अभ्यास मे इच्छा के अनुसार देरी तक वायु को अदर धारण किया जा सकता है। यथेष्ट वायु को धारण करने की शक्ति प्राप्त हो जाने पर केवल (लक्ष्य) कुभक को सिद्ध करे। इसके सिद्ध हो जाने पर रेचक एवं पूरक की कोई आवश्यकता ही नही रहती (क्योंकि वास्तविक प्राणायाम वायु को अदर रोक देना ही है) अत. रेचक-पूरक का परित्याग कर दे। (41-50)

परम पद, कलाओं से हीन (निर्गुण), निर्मल, साक्षात सच्चिदानंद (सत्-चित्-आनद) स्वरूप, जगत की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाले तथा स्फूर्ति ज्ञान से रहित परमात्मा का ज्ञान होता है, यही ज्ञान कहलाता है। इसी योग के ज्ञान को मै तुम्हें बताता हू। हे ब्रह्मा व्यावहारिक दृष्टि से योग के अनेक भेद है। किंतु मत्रयोग, हठ योग, लय और राज योग, यह चार भेद प्रमुख है। यही चार भेद सर्वत्र बताए जाते हैं। योग की आरभ, घट, परिचय एवं निष्पत्ति, ये चार अवस्थाएं होती है। (10-20)

हे ब्रह्मा इनके लक्षण संक्षेप मे बताता हूं। सुनो—मातृका आदि से मुक्त मंत्र का बारह सौ जप करनेवाला क्रम से अणिमा आदि गुणो से युक्त ज्ञान को प्राप्त करता है। वस्तुत इस ज्ञान की साधना कोई अल्पबुद्धिवाला अधम साधक ही करता है। लय योग मे चित्त का लय हो जाता है। यह लय करोड़ों प्रकार का कहा जाता है। चलते हुए, रुककर, स्वप्न देखते हुए अथवा खाना खाते हुए निष्कल ईश्वर का ध्यान करने से लय योग होता है और हठ योग इससे भिन्न प्रकार का होता है। अब इसके विषय मे सुनो। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा भ्रूमध्य (भवो के बीच मे) श्री हरि भगवान का ध्यान करते हुए समानता की अवस्थामय समाधि से युक्त यह योग आठ अंगोवाला होता है। महायुद्रा, महाबध, महावेध, खेचरी, जालधर, उड्डियान, मूलबध, दीर्घ प्रणव सधान तथा सिद्धात श्रवण। वज्रोली, आमरोली और सहजोली, ये तीन प्रकार की मुद्राए हैं। हे ब्रह्मा इन सभी के लक्षणो को तत्त्वत सुनो। यमों के पालन मे आहार की अल्पता सर्व प्रमुख है, कुछ अन्य नही। नियमो मे अहिसा सबसे प्रधान गुण है। सिद्धासन, पद्मासन सिहासन तथा भद्रासन, ये चार मुख्य आसन है। हे ब्रह्मा। अभ्यास की प्रथम अवस्था मे विघ्न भी आते है। आलस्य, आत्म प्रशंसा, धूर्ततापूर्ण विचार आदि इसी प्रकार के विघ्न है (21-30)।

सुबुद्धिवाला साधक धन, स्त्री-सग का लोभ आदि समस्त विघ्नो को अपने पुण्यों के प्रभाव से इन्हें मृगतृष्णा के समान समझकर इनका परित्याग कर दे। तब पदमासन लगाकर प्राणायाम का अभ्यास करे। इसके लिए पहले ही एक छोटे दरवाजेवाली सुदर कुटिया बना ले जो गोबर अथवा चूने से लिपी-पुती हो। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाए कि उसमें खटमल मच्छर, मकडी आदि व्यवधान पहुचानेवाले कीट न हो। दिन-प्रतिदिन उसकी सफाई समुचित रूप से होती रहे। उसे गुग्गल आदि सुगंधित पदार्थों से सुवासित रखा जाए। वस्त्र आदि न तो अधिक तग हो और न अधिक ढीले-ढाले ही। इस प्रकार की कुटिया में मृगचर्म अथवा कुश के आसन पर बैठकर आसन (पद्मासन) लगाएं। शरीर को सीधा रखते हुए हाथ जोडकर इष्ट देवता को प्रणाम करे। फिर दाहिने हाथ के अगूठे से पिंगला (नाक के दाहिने स्वर) को दबाकर धीरे-धीरे (नाक के बाए स्वर) से वायु को खीचकर अदर भरे और जितनी देर हो सके इसे अदर ही रोके रखे। इसे कुभक करना कहा जाता है। फिर पिगला से शनै-शनै (न कि वेग से) वायु को बाहर निकाल दे। इसे रेचक करना कहा जाता है। इसके पश्चात् फिर धीरे से पिंगला से वायु को खीचते हुए उदर को भरे, अर्थात् पूरक करे और यथाशक्ति कुंभक करते हुए इड़ा से पूर्ववत् शनैः शनै रेचक करें, कहने का तात्पर्य यह है कि एक बार बाएं से पूरक करके दाहिने से रेचक करे और दूसरी बार दाहिने से पूरक करे तथा बाए मे रेचक करे। जिस स्वर से सांस बाहर निकाली है, उसी से दूसरी बार सास ऊपर खींचे। (यही क्रम प्राणायाम के लिए उचित है)। फिर न तो द्रुत गति से और न ही विलबित गति से जानुकी हाथ मे

प्रदक्षिणा करते हुए एक चुटकी बजाए। योग शास्त्र में इतने समय को एक मात्रा ~ ाल कहा जाता है। (31-40)

पहले इड़ा स्वर अर्थात् नासिका के बाए छिद्र से वायु को खीचें। ध्यान रहे कि यह वायु सोलह मात्राओं के समय तक खीचनी है। इसके बाद चोंसठ मात्राओं के समय तक इसे अदर ही रोकना है, कुभक करना है। तब पिंगला स्वर (दाहिने छिद्र) बत्तीस मात्राओं के समय के अदर रोचक करना होता है। तब पिगला से पूरक तथा इडा से रेचक पूर्ववत् समय से करें। प्रातःकाल, मध्य दिन, सायकाल तथा अर्धरात्रि इन चार समयों में धीरे-धीरे अस्सी तक कुभों की सख्या बढाए। इस अभ्यास को तीन मास तक करने पर ही नाडी शुद्ध हो जाती है, और नाडी शुद्ध होने पर योग-साधक के शरीर में योग के चिह्न भी स्पष्ट रूप में दिखाई पडने लगते है, जो इस प्रकार के होते है—शरीर में लघुता (हल्कापन) आ जाता है और देहकृश (पतली) हो जाती है। जठराग्नि (भूख) प्रदीप्त हो जाती है। योग को भली प्रकार से जानने वाले इसमें विघ्न पहुचानेवाले आहार परित्याग कर दो। लवण (नमक), तैलीय पदार्थ, खटाई, गर्म प्रकृति के खाद्य, रूखे और तीखे पकवान, शाक-सब्जियां, हीग इत्यादि भोज्य पदार्थ, आग तापना, स्त्री सहवास, अधिक पैदल चलना, प्रातःकाल का स्नान, उपवास आदि सभी शरीर को कष्ट देनेवाले क्रिया-कलापों का परित्याग कर दे। अभ्यास की प्राथमिक अवस्था में दूध, घी आदि से बना भोजन ही उचित रहता है। गेहू, मूग की दाल, चावल आदि का भोजन योग अभ्यास में वृद्धि करनेवाला होता है, अर्थात् योग-साधना के लिए ये श्रेष्ठ खाद्य पदार्थ हैं। इस प्रकार के निरतन अभ्यास से इच्छा के अनुसार देरी तक वायु को अंदर धारण किया जा सकता है। यथेष्ट वायु को धारण करने की शक्ति प्राप्त हो जाने पर केवल (लक्ष्य) कुभक को सिद्ध करे। इसके सिद्ध हो जाने पर रेचक एवं पूरक की कोई आवश्यकता ही नही रहती (क्योंकि वास्तविक प्राणायाम वायु को अदर रोक देना ही है) अत. रेचक-पूरक का परित्याग कर दे। (41-50)

इस प्रकार के योग के साधक के लिए फिर तीनों ही लोकों मे कुछ भी दुर्लभ नही रहता है। साधना करते समय साधक के शरीर से जो पसीना निकले, वह उससे शरीर मे ही मालिश कर ले। तब भी वायु के धारण से शनै-शनै. एक क्रम से ही आसन में स्थिय साधक के शरीर मे कपन होने लगता है। अभ्यास के इससे भी अधिक बढने पर शरीर मे मेढक की जैसी चेष्टाए होने लगती है। इन चेष्टाओ के होने पर पद्मासन लगाकर बैठा हुआ होने पर भी योगी मेढक की तरह ऊपर की ओर उछलकर पुन. भूमि से टकरा पडता है। अभ्यास के इससे भी अधिक बढने पर योगी भूमि से भी उठने लगता है। पद्मासन में बैठे-बैठे योगी भूमि को छोड़कर शून्य मे उठ जाता है। (यहा स्मरणीय है कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति प्रत्येक पदार्थ को अपनी ओर खीचती है, किंतु योगी इन समस्त शक्तियों पर विजय प्राप्त कर लेता है।) इस प्रकार योगाभ्यास द्वारा साधक अतिमानवीय कृत्य करने में भी सफल हो जाता है। अपनी इस सामर्थ्य एव शक्ति का योगी द्वारा प्रदर्शन नही किया जाना चाहिए, अपितु अपनी सफलता से उत्साहित होकर और भी अधिक प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार के योगी को छोटा या बड़ा कोई भी दु:ख व्यथित नही कर सकता। उसका मूत्र एव पुरीष (लघुशका एव दीर्घशंका) अल्प हो जाता है। नीद भी कम हो जाती है। आखो की कीच, नाक, थूक,

पसीना, श्वास की दुर्गंध आदि से योगी को सदा-सर्वदा के लिए मुक्ति मिल जाती है। इससे अधिक अभ्यास करने पर उसमें अत्यधिक शक्ति का समावेश हो जाता है। परिणामस्वरूप इस भूचर सिद्धि से पृथ्वी पर विचरण करनेवाले समस्त जीवों पर विजय प्राप्त करने की समर्थता प्राप्त हो जाती है। व्याघ्र, शरभ, हाथी, गवय (नील गाय), या सिह आदि जो भी वन्य पशु उस पर आक्रमण करने की चेष्टा करे, योगी के एक ही साथ मारने पर वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। उसका सौंदर्य भी कदप के (कामदेव के) समान हो जाता है (51-60)।

उस योगी के इस अनुपम रूप को देखकर स्त्रियां उस पर मोहित हो जाती है तथा उसके साथ संभोग करने की इच्छा करने लगती है। यहां पर योगी को अपने अपूर्व आत्मसयम का परिचय देना पडता है। यदि वह स्त्रियों की आकांक्षा की पूर्ति करेगा, तो उसका वीर्य-नाश होगा। अत योगी स्त्रियो पर ध्यान न देकर दृढ़ता के साथ योगाभ्यास को बढाता जाए। वीर्य की दत्तचित्त होकर रक्षा करने से योगी को देह से सुगध आने लगती है। तब एकांत स्थान में बैठकर योगी प्लुत मात्रा (ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वर तीन प्रकार के होते हैं। अ, इ, उ, ऋ एव लृ ह्रस्व स्वर है, आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ एव औ दीर्घ स्वर है, जिन्हे क्रमश एक मात्रा और दो मात्राओ के समय में उच्चारित किया जाता है। तीन मात्राओ के बराबर समय मे उच्चारण किए जानेवाले स्वर को प्लुत कहते है। इसे सूचित करने के लिए स्वर के आगे ऽ लिखा जाता है। जैसे ओऽम् यहा ओ प्लुत है। इसके उच्चारण मे तिगुना समय लगेगा। यहा प्लुत मात्रा मे ओम् (प्रणव) जप से यही तात्पर्य है।) मे प्रणव का जप करे। इससे योगी के पूर्व अर्जित पापो का नाश हो जाता है। यह प्रणव मत्र समस्त विघ्नो का तथा दोषो का नाश करता है। इसका अत्यत अल्प सख्या मे जप करने पर भी सिद्धि मिल सकती है। इस प्रकार वायु धारण का अभ्यास करते रहने से घटावस्था की प्राप्ति होने लगती है। प्राण, अपान, मन, बुद्धि, जीवात्मा तथा परमात्मा इन सबमें परस्पर अविरोध स्वरूप जब एकता उत्पन्न होती है, तो इसे घटावस्था कहते है। इस अवस्था के चिह्नो का उल्लेख इस प्रकार है। अभी तक जितना अभ्यास किया जाता था, अब उसका एक चौथाई भाग ही करे। दिन में हो अथवा रात्रि मे केवल एक ही बार एक प्रहर तक अभ्यास करे, अर्थात् प्रतिदिन केवल एक ही बार कुभक का अभ्यास करे और इस कुंभक की ही अवस्था में इद्रियों को अनेक विषयों से विमुख करे। यही इद्रियो का उनके विषयो से आहरण योगशास्त्र में प्रत्याहरण नाम से पुकारा जाता है। कुभक करते हुए प्रत्याहार की अवस्था में योगी को अपनी आखों से जो कुछ भी दिखाई पडे, उसे आत्मा के समान ही समझे। इस प्रकार कानो से जो कुछ भी सुने अथवा नासिका से जो कुछ भी सूंघे उस सभी कुछ को आत्मवत् ही समझे और इसे इसी भावना से ग्रहण करे। (61-70)

जिह्वा जो रस ग्रहण करे अथवा त्वचा को जो भी स्पर्श का अनुभव हो इस सबको आत्मस्वरूप समझते हुए ग्रहण करे। इस प्रकार कर्मेंद्रियों के समान ही ज्ञानेंद्रियों के विषयों के प्रति भी ऐसी ही भावना रखे। इसके लिए योगी प्रतिदिन एक प्रहर उस क्रिया का अभ्यास करे और इस अभ्यास के करते समय तद्रा बिलकुल भी न आने पाए। इस प्रकार जैसे-जैसे योगी के चित्त की सामर्थ्य-शक्ति का विकास होता जाएगा, योगी में मानवातीत शक्तियों का भी आगमन होता जाएगा। वह दूर से सुनने लगेगा, देखने लगेगा, क्षण भर में ही कही-से-कही चला जाएगा, उसे वाक् सिद्धि प्राप्त हो

जाएगी (वह जो कुछ भी कह देगा वह सत्य हो जाएगा),वह इच्छा के अनुसार रूप धारण करने में समर्थ हो जाएगा,वह आकाश में भी चलने लगेगा तथा उसके मूत्र एव पुरीष के स्पर्श मात्र से ही लोहा आदि निकृष्ट धातुएं स्वर्ण में परिवर्तित हो जाएंगी । इन सबके लिए निरतर योग का अभ्यास अनिवार्य है,अत·योगसिद्धि के लिए योगी सदा इसके प्रति सचेष्ट होकर बुद्धिमानी का परिचय दे । योगी इस तथ्य को सदा याद रखे कि यह सब सिद्धिया सदा गोपनीय रखी जाए । अन्यथा ये परम सिद्धि के मार्ग में बाधा स्वरूप भी है । अत.समझदार योगी सदा इनके विषय में सचेष्ट रहे । अपनी सिद्धियों की इस प्रकार की शक्ति एव सामर्थ्य का कभी भी भूलकर भी प्रदर्शन न करे। जन सामान्य के सामने उसे महामूर्ख या बहरे के समान बनकर रहना चाहिए और सिद्धि का प्रदर्शन नही करना चाहिए। यद्यपि यह सत्य है कि उसके शिष्यगण अपने-अपने कार्यों के लिए उससे प्रार्थना करेंगे,किंतु योगी उनके कार्यों से अधिक लक्ष्य अपने अभ्यास के प्रति प्रमाद (लापरवाही) कदापि न करे। योगी समस्त कार्य-व्यापारों को भूलकर उनका परित्याग करके योग के प्रति निष्ठावान बना रहे तथा गुरु के वाक्यों को सदा स्मरण करता हुआ रात-दिन अभ्यास करता रहे। इस प्रकार के अनवरत अभ्यास से ही घटावस्था की प्राप्ति होती है । बिना अभ्यास किए व्यर्थ की गोष्ठियो के आयोजन से सिद्धि कदापि सभव नही है । (71-80)

अत सभी प्रयत्नों से सदा योग का ही अभ्यास करे। इस योगाभ्यास से इसके पश्चात् परिचयावस्था उत्पन्न होती है । बडे ही प्रयत्न के साथ वायु का अग्नि तत्त्व के साथ कुडली को जीतकर सुषुम्ना में प्रवेश कराया जाता है,तभी यह अवस्था सभव हो पाती है । और अवरोध के साथ ही वायु के साथ चित्त को महापथ अर्थात् प्रभु में प्रवेश कराए। जिस साधक का चित्त वायु के साथ इसी लोक में सुषुम्ना में प्रवेश पा जाता है,उसके लिए भूमि,जल,अग्नि,वायु तथा आकाश इन पाच महाभूत रूपी देवताओं की पांच प्रकार की धारणा भी हो जाती है । पावों से लेकर जानु पर्यत पृथ्वी तत्त्व का स्थान कहा जाता है । यह पृथ्वी तत्त्व चतुष्कोणवाली, अर्थात् चार कोनोवाला होता है । इसका रंग पीला तथा वर्ण 'ल' माना जाता है । इस पृथ्वी तत्त्व मे वायु का आरोप करके इसके साथ 'ल' वर्ण को समन्वित करके स्वर्ण के रगवाले चार भुजाओंवाले चतुर्मुख ब्रह्मा का ध्यान करना चाहिए। यहां बतलाई गई इस विधि से चार घड़ी (एक घड़ी में 24 मिनट होते है, अत. कुल मिलाकर एक घटा छत्तीस मिनट) तक ध्यान करने मात्र से पृथ्वी-तत्त्व पर विजय प्राप्त हो जाती है । इस तत्त्व पर विजय प्राप्त कर लेने पर योगी की फिर मृत्यु नही होती है । जानुओ से वायु पर्यत जल-तत्त्व का स्थान कहा गया है । जल-तत्त्व को अर्ध चद्र के आकार का एव शुक्ल वर्ण का कहा गया है, और इसका बीजाक्षर 'व' माना जाता है । वारुण अर्थात् जल तत्त्व मे वायु-तत्त्व का आरोप करके (तात्पर्य यह है कि जल तत्त्व के स्थान पर वायु तत्त्व को मानकर) वकार बीजाक्षर से समन्वित चार भुजाओंवाले किरीट (मुकुट) धारण किए हुए भगवान नारायण का स्मरण करना चाहिए। इस कल्पना मे भगवान को शुद्ध स्फटिक के समान तथा पीताबर धारण किया हुआ चितन करना चाहिए। पांच घड़ी (दो घंटे) तक इस प्रकार का ध्यान करने से सभी पापो से मुक्ति मिल जाती है । इस प्रकार जल-तत्त्व पर विजय पा लेने के पश्चात् इस तत्त्व से साधक को किसी प्रकार का भय नही रहता । उसकी जल में मृत्यु नही हो सकती । (80-91)

जल-तत्त्व के स्थान से हृदय के स्थान पर्यंत अग्नि-तत्त्व का स्थान कहा गया है। अग्नि-तत्त्व त्रिकोण के आकार का है। इसका वर्ण लाल होता है और बीजाक्षर 'र' माना जाता है। अग्नि-तत्त्व में वायु-तत्त्व का आरोप करते हुए उज्ज्वल 'र' वर्ण से युक्त तीन अक्षरोंवाले 'वरद' (वरदान देनेवाले) चमकते हुए तरुण सूर्य के समान जाजवल्यमान अगों पर भस्म रमाए हुए भगवान रुद्र का प्रसन्न मन से स्मरण करना चाहिए। पांच घड़ी तक इस प्रकार का ध्यान करने से साधक को अग्नि नही जला सकती। जलते हुए अग्नि कुड में प्रवेश करने पर भी उसका शरीर नही जलता। अब हृदय से लेकर दोनों भौंहों के बीच के स्थान तक वायु का स्थान माना जाता है। वायु षट्‌कोण के आकार का माना जाता है। इसका वर्ण काला है और बीजाक्षर 'य' है, जिसकी आभा अत्यत चमकती हुई जैसी है। वायु-तत्त्व का मारुत स्थान पर देदीप्यमान 'य' अक्षर के साथ सभी दिशाओं की ओर मुखवाले सर्वज्ञ ईश्वर के रूप में ध्यान करे। केवल पाच घड़ी तक ऐसा करने पर ही साधक वायु के वेग के समान आकाश मे चलने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस पर योगी को वायु से कोई भय नहीं रहता और उसकी मृत्यु भी वायु से नही हो सकती। भ्रूमध्य मे वायु-तत्त्व की सीमा से प्रारंभ होकर मूर्धा तक आकाश-तत्त्व का स्थान है। यह वृत्त के आकार का तथा धूम्र के वर्णवाला होता है। देदीप्यमान 'ह' अक्षर इसका बीज अक्षर है। आकाश-तत्त्व मे वायु का आरोप करके बीज 'ह' के ऊपर आकाश के आकारवाले बिंदु रूपी महादेव भगवान सदाशिव को शुद्ध स्फटिक के समान तथा माथे पर अर्धचद्र धारण किए हुए रूप में स्मरण करते हुए ध्यान लगाना चाहिए, साथ ही यह भी कल्पना करें कि भगवान शिव पांच सौम्य मुखोवाले, दस बाहुओंवाले, तीन आखोंवाले, सभी आयुधों (अस्त्र-शस्त्रो)वाले, सभी आभूषणो से युक्त, सभी कारणों के कारण वरदान देनेवाले तथा उनका आधा शरीर पार्वती का और आधा शिव का अर्धनारीश्वर है। (91-101)

इस प्रकार आकाश-तत्त्व की धारणा से वह योगी आकाश में चलने में समर्थ हो जाता है और वह चाहे कही भी रहे अत्यधिक सुखी रहता है। उसके समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। विलक्षण योगी इसी प्रकार पांच प्रकार की धारणाएं करता है, इससे उसका शरीर अत्यंत दृढ़ हो जाता है और मृत्यु उससे दूर भाग जाती है। ब्रह्म प्रलय होने पर भी ऐसा योगी दु खी नहीं हो [illegible] त्र वह योगी, जो इस प्रकार की धारणाएं कर चुका हो, छ घडी तक इसी प्रकार वायु को [illegible]
करे। इस अभ्यास मे वह आकाश मे अभीष्ट सिद्धि देनेवाले देवता [illegible]
प्रकार का होता है—सगुण ध्यान तथा निर्गुण ध्यान। सगुण ध्या[illegible]
की प्राप्ति होती है और निर्गुण ध्यान करने से योगी को स[illegible]
बारह दिनों मे ही वायु को रोककर समाधि को सिद्ध कर[illegible]
समाधि की अवस्था में जीवात्मा और परमात्मा में [illegible]
देह को छोड़ देना चाहे, तो वह ऐसा भी कर सकता है। [illegible]
देता है, तो परम ब्रह्म में मिल जाता है फिर उसका [illegible]
और वह इसे छोड़ना नही चाहे, तो उसके पास [illegible]
जब और जहां चाहे समस्त लोकों में विहार कर [illegible]
स्वर्ग में देवता बनकर वहां की महिमाओं को भी [illegible]
वह योगी पुन मनुष्य, यक्ष, गंधर्व या किसी भी [illegible]

सकता है। इसी प्रकार से वह सिह,व्याघ्र या हाथी आदि पशुओं के रूप में भी स्वय को परिवर्तित कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाधि सिद्ध हो जाने पर योगी ब्रह्म के समान ही सभी प्रकार की शक्तियों से समन्वित हो जाता है। (102-110)

समाधि की सिद्धि मिल जाने पर योगी जैसा चाहे, वैसा ही व्यवहार कर सकता है। वह पूर्णरूप से महेश्वर ही बन जाता है। दोनों में (योगी तथा महेश्वर में) कोई भेद नही रह जाता है। भेद रहता है,तो केवल योगाभ्यास का ही रहता है। योगी को योगाभ्यास करने पर ही यह शक्ति प्राप्त हो सकती है,जबकि महेश्वर स्वय शक्तिमान है। यह भेद रहने पर भी फल की दृष्टि से दोनो समान बन जाते हैं। इस सिद्धि के प्राप्त हो जाने पर योगी को अब आगे इस प्रकार का अभ्यास करना चाहिए—बाए पाव की एडी को योनि के साथ सलग्न करे और दाएं पाव को फैलाकर दोनों हाथों से दृढता से पकड ले,तब चिबुक (ठोड़ी) को वक्षस्थल से लगाकर उदर को वायु से भर ले। अब जितनी देर तक संभव हो वायु को अदर ही रोके रहे; अर्थात कुभक करे। इसके बाद रेचक करे। इस अभ्यास को एक बार बाएं पैर से करने के बाद फिर दाहिने पैर से करे। जो पाव पूर्व अभ्यास में फैलाया था,उसे योनि से लगाकर दूसरे पाव को फैलाकर अभ्यास करे। इस प्रक्रिया को महाबध कहा जाता है। इसका इन दोनों ही प्रकारों से अभ्यास करना चाहिए। इस महाबध को योगी दत्तचित्त भाव से करे। वायु की गति को रोककर पूर्णतया एकाग्र होकर वायु-मुद्रा करते हुए नाक के छिद्रों को सकुचित करने से वायु शीघ्रता से प्रविष्ट हो जाती है। इसी को योग शास्त्र मे महावेध कहा जाता है। सिद्ध लोग रात-दिन सदा इसका अभ्यास करते है। अब कपाल के कुहरे मे जिह्वा को मोडकर लगाए और दृष्टि को दोनो भौहों के बीच में रखे—इस स्थिति को खेचरी मुद्रा कहा जाता है। कठ को सकुचित करके हृदय (वक्षस्थल) से लगाए, ऐसा करना जालंधरबध कहलाता है,जो मृत्युरूपी हाथी के लिए सिह के समान है, अर्थात् जालधरबध के अभ्यास से मृत्यु पास भी नही फटकने पाती है। इससे बधा हुआ प्राण सुषुम्ना मे उठ जाता है,अत योगी लोग इस प्राण के उठने की स्थिति को उड्डियान बंध कहते है। एड़ी से योनि भाग को मिलाकर दृढतापूर्वक दबाया जाता है और अपान वायु को भीतर की ओर खींचा जाता है। यह क्रिया योनिबध कहलाती है। (111-121)

इन समस्त यौगिक प्रक्रियाओं से प्राण, अपान, नाद और बिदु मे मूलबध से एकता उत्पन्न हो जाती है। इससे योगी की समुचित सिद्धि प्राप्त होती है, इसमे कोई भी सदेह नही करना चाहिए। विपरीत मुद्रा, अर्थात् करणी मुद्रा सभी प्रकार के दु:खो एव रोगों की नाश करनेवाली मुद्रा है। इस मुद्रा का सतत् अभ्यास करने से जठराग्नि (भूख) प्रबल हो जाती है, जिससे साधक अधिक-से-अधिक भोजन को पचा सकता है। इस मुद्रा को कर लेने पर साधक यदि कम आहार करेगा,तो यह साधक के शरीर का ही नाश करने लगेगी। इस मुद्रा को करने के लिए अभ्यास के प्रथम दिन एक क्षण के लिए सिर को नीचे तथा पांवों को ऊपर करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन एक-एक क्षण अभ्यास को बढाते जाना चाहिए। ऐसा करते रहने से केवल छ. मास के अल्प समय में ही देह से झुर्रिया तथा सफेद बाल पूर्णतया लुप्त हो जाते है। प्रतिदिन इस करणी अथवा विपरीत नामवाली मुद्रा को एक प्रहर तक करने से व्यक्ति कालजयी; अर्थात् मृत्यु को भी जीतनेवाला बन

जल-तत्त्व के स्थान से हृदय के स्थान पर्यंत अग्नि-तत्त्व का स्थान कहा गया है। अग्नि-तत्त्व त्रिकोण के आकार का है। इसका वर्ण लाल होता है और बीजाक्षर 'र' माना जाता है। अग्नि-तत्त्व में वायु-तत्त्व का आरोप करते हुए उज्ज्वल 'र' वर्ण से युक्त तीन अक्षरोंवाले 'वरद' (वरदान देनेवाले) चमकते हुए तरुण सूर्य के समान जाजवल्यमान अंगों पर भस्म रमाए हुए भगवान रुद्र का प्रसन्न मन से स्मरण करना चाहिए। पांच घड़ी तक इस प्रकार का ध्यान करने से साधक को अग्नि नही जला सकती। जलते हुए अग्नि कुंड में प्रवेश करने पर भी उसका शरीर नही जलता। अव हृदय से लेकर दोनो भौहों के बीच के स्थान तक वायु का स्थान माना जाता है। वायु षट्‌कोण के आकार का माना जाता है। इसका वर्ण काला है और बीजाक्षर 'य' है, जिसकी आभा अत्यत चमकती हुई जैसी है। वायु-तत्त्व का मारुत स्थान पर देदीप्यमान 'य' अक्षर के साथ सभी दिशाओ की ओर मुखवाले सर्वज्ञ ईश्वर के रूप में ध्यान करे। केवल पाच घड़ी तक ऐसा करने पर ही साधक वायु के वेग के समान आकाश मे चलने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस पर योगी को वायु से कोई भय नही रहता और उसकी मृत्यु भी वायु से नही हो सकती। भूमध्य मे वायु-तत्त्व की सीमा से प्रारंभ होकर मूर्धा तक आकाश-तत्त्व का स्थान है। यह वृत्त के आकार का तथा धूम्र के वर्णवाला होता है। देदीप्यमान 'ह' अक्षर इसका बीज अक्षर है। आकाश-तत्त्व मे वायु का आरोप करके बीज 'ह' के ऊपर आकाश के आकारवाले बिदु रूपी महादेव भगवान सदाशिव को शुद्ध स्फटिक के समान तथा माथे पर अर्धचद्र धारण किए हुए रूप में स्मरण करते हुए ध्यान लगाना चाहिए, साथ ही यह भी कल्पना करें कि भगवान शिव पांच सौम्य मुखोंवाले, दस बाहुओवाले, तीन आखोवाले, सभी आयुधों (अस्त्र-शस्त्रों)वाले, सभी आभूषणों से युक्त, सभी कारणो के कारण वरदान देनेवाले तथा उनका आधा शरीर पार्वती का और आधा शिव का अर्धनारीश्वर है। (91-101)

इस प्रकार आकाश-तत्त्व की धारणा से वह योगी आकाश में चलने में समर्थ हो जाता है और वह चाहे कही भी रहे अत्यधिक सुखी रहता है। उसके समस्त दु:ख दूर हो जाते है। विलक्षण योगी इसी प्रकार पांच प्रकार की धारणाए करता है, इससे उसका शरीर अत्यंत दृढ हो जाता है और मृत्यु उससे दूर भाग जाती है। ब्रह्म प्रलय होने पर भी ऐसा योगी दु:खी नही होता। अब वह योगी, जो इस प्रकार की धारणाए कर चुका हो, छ घडी तक इसी प्रकार वायु को रोककर ध्यान का अभ्यास करे। इस अभ्यास में वह आकाश मे अभीष्ट सिद्धि देनेवाले देवताओं का चिंतन करे। ध्यान दो प्रकार का होता है—सगुण ध्यान तथा निर्गुण ध्यान। सगुण ध्यान करने से अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है और निर्गुण ध्यान करने से योगी को समाधि मिलती है। मेधावी योगी केवल बारह दिनों में ही वायु को रोककर समाधि को सिद्ध कर लेता है तथा जीवन-मुक्त हो जाता है। समाधि की अवस्था में जीवात्मा और परमात्मा में समानता हो जाती है। इसमे यदि योगी अपनी देह को छोड़ देना चाहे, तो वह ऐसा भी कर सकता है। इस प्रकार यदि वह अपने शरीर को छोड देता है, तो परम ब्रह्म में मिल जाता है फिर उसका पुनर्जन्म नही होता। यदि उसे शरीर ही प्रिय हो और वह इसे छोडना नही चाहे, तो उसके पास अणिमा, लघिमा आदि सिद्धिया आ जाती हैं। वह जब और जहां चाहे समस्त लोकों में विहार कर सकता है, यही नही, वह कभी भी अपनी इच्छा से स्वर्ग में देवता बनकर वहां की महिमाओं को भी प्राप्त कर सकता है। इच्छा होने पर क्षण भर में ही वह योगी पुन मनुष्य, यक्ष, गधर्व या किसी भी मानवीय या मानवेतर योनि के शरीर को धारण कर

सकता है। इसी प्रकार से वह सिंह, व्याघ्र या हाथी आदि पशुओं के रूप में भी स्वय को परिवर्तित कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाधि सिद्ध हो जाने पर योगी ब्रह्म के समान ही सभी प्रकार की शक्तियों से समन्वित हो जाता है। (102-110)

समाधि की सिद्धि मिल जाने पर योगी जैसा चाहे, वैसा ही व्यवहार कर सकता है। वह पूर्णरूप से महेश्वर ही बन जाता है। दोनों में (योगी तथा महेश्वर में) कोई भेद नही रह जाता है। भेद रहता है, तो केवल योगाभ्यास का ही रहता है। योगी को योगाभ्यास करने पर ही यह शक्ति प्राप्त हो सकती है, जबकि महेश्वर स्वय शक्तिमान है। यह भेद रहने पर भी फल की दृष्टि से दोनो समान बन जाते है। इस सिद्धि के प्राप्त हो जाने पर योगी को अब आगे इस प्रकार का अभ्यास करना चाहिए—बाए पाव की एडी को योनि के साथ संलग्न करे और दाए पाव को फैलाकर दोनों हाथों से दृढ़ता से पकड ले, तब चिबुक (ठोडी) को वक्षस्थल से लगाकर उदर को वायु से भर ले। अब जितनी देर तक संभव हो वायु को अंदर ही रोके रहे; अर्थात कुभक करे। इसके बाद रेचक करे। इस अभ्यास को एक बार बाएं पैर से करने के बाद फिर दाहिने पैर से करे। जो पाव पूर्व अभ्यास में फैलाया था, उसे योनि से लगाकर दूसरे पांव को फैलाकर अभ्यास करे। इस प्रक्रिया को महाबंध कहा जाता है। इसका इन दोनों ही प्रकारों से अभ्यास करना चाहिए। इस महाबध को योगी दत्तचित्त भाव से करे। वायु की गति को रोककर पूर्णतया एकाग्र होकर वायु-मुद्रा करते हुए नाक के छिद्रो को सकुचित करने से वायु शीघ्रता से प्रविष्ट हो जाती है। इसी को योग शास्त्र मे महावेध कहा जाता है। सिद्ध लोग रात-दिन सदा इसका अभ्यास करते है। अब कपाल के कुहरे मे जिह्वा को मोडकर लगाए और दृष्टि को दोनों भौहों के बीच में रखे—इस स्थिति को खेचरी मुद्रा कहा जाता है। कठ को सकुचित करके हृदय (वक्षस्थल) से लगाए, ऐसा करना जालधरबध कहलाता है, जो मृत्युरूपी हाथी के लिए सिह के समान है, अर्थात् जालधरबध के अभ्यास से मृत्यु पास भी नही फटकने पाती है। इससे बधा हुआ प्राण सुषुम्ना मे उठ जाता है, अत. योगी लोग इस प्राण के उठने की स्थिति को उड्डियान बंध कहते है। एडी से योनि भाग को मिलाकर दृढतापूर्वक दबाया जाता है और अपान वायु को भीतर की ओर खीचा जाता है। यह क्रिया योनिबध कहलाती है। (111-121)

इन समस्त यौगिक प्रक्रियाओं से प्राण, अपान, नाद और बिदु में मूलबध से एकता उत्पन्न हो जाती है। इससे योगी की समुचित सिद्धि प्राप्त होती है, इसमे कोई भी सदेह नही करना चाहिए। विपरीत मुद्रा, अर्थात् करणी मुद्रा सभी प्रकार के दु:खो एवं रोगों की नाश करनेवाली मुद्रा है। इस मुद्रा का सतत् अभ्यास करने से जठराग्नि (भूख) प्रबल हो जाती है, जिससे साधक अधिक-से-अधिक भोजन को पचा सकता है। इस मुद्रा को कर लेने पर साधक यदि कम आहार करेगा, तो यह साधक के शरीर का ही नाश करने लगेगी। इस मुद्रा को करने के लिए अभ्यास के प्रथम दिन एक क्षण के लिए सिर को नीचे तथा पावो को ऊपर करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन एक-एक क्षण अभ्यास को बढाते जाना चाहिए। ऐसा करते रहने से केवल छ. मास के अल्प समय में ही देह से झुर्रिया तथा सफेद बाल पूर्णतया लुप्त हो जाते है। प्रतिदिन इस करणी अथवा विपरीत नामवाली मुद्रा को एक प्रहर तक करने से व्यक्ति कालजयी, अर्थात् मृत्यु को भी जीतनेवाला बन

जाता है। इसके बाद वज्रोली मुद्रा को करनेवाला योगी सिद्धियों का पात्र बन जाता है। यदि वह इस मुद्रा को सिद्ध कर ले तो समस्त सिद्धियों को उसकी हस्तगत ही समझना चाहिए। वह भूतकाल एवं भविष्य का ज्ञाता हो जाता है। विश्वास करने की बात है कि आकाश में चलने में भी समर्थ हो जाता है। जो साधक नित्य अमरी का पान करता है और नासिका से इसका नस्य लेता है—इन दोनों कार्यों को करने के साथ-ही-साथ सदा वज्रोली का अभ्यास करता है,वह अमरोली साधक कहलाता है। इसके बाद वह निःसंदेह राजयोगी कहलाने लगता है। राजयोगी बन जाने पर साधक के लिए हठ योग की शारीरिक साधनाओं की आवश्यकता नहीं रहती है। तब उसे एक निश्चित विवेक की प्राप्ति होने वर वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। अत·उसे किसी भी सांसारिक वस्तु के प्रति मोह नही रह जाता। (121-130)

भगवान विष्णु ही महान् योगी,महान् भूत (प्राणी) और महान् तपस्वी है। तत्त्व मार्ग के पथिक योगी को यह भगवान पुरुषोत्तम दीपक के समान साक्षात दिखाई पडते है। नाना प्रकार की योनियो मे उत्पन्न होनेवाला जीव अतत· मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। पूर्व योनि मे यह जिस स्तन से दूध पीता है,दूसरी योनि मे उसी स्तन का मर्दन करता हुआ आनदित होता है। पूर्व योनि मे जिस भग से जन्म लेता है,दूसरी मे उसी भग से सभोग करता है। जो पूर्व जन्म मे माता थी,वही इस जन्म मे भार्या बन जाती है। जो उस योनि मे भार्या थी,वह इस योनि में माता बन जाती है। जो पहले पुत्र था वह अब पिता बन जाता है तथा जो उस जन्म में पिता था,वही इस जन्म मे पुत्र बन जाता है। इस प्रकार यह सासारिक जन्म चक्र ठीक उस कुए के चक्र (रहट) के सदृश है,जो ऊपर-नीचे घूमता हुआ भरता और खाली होता रहता है। प्राणी अनेको जन्मो को धारण करता हुआ भ्रमित होता रहता है। तीन लोक है,तीन वेद है (ऋग्वेद,सामवेद एव यजुर्वेद) वैदिक साहित्य मे यत्र-तत्र 'तीन वेद' ऐसा उल्लेख मिलता है,अत कुछ विद्वानों की मान्यता है कि वस्तुत वेद ये ही तीन है, अथर्ववेद को बाद मे वेदों मे सम्मिलित किया गया),तीन सध्याए है (प्रात मध्य दिन तथा साय),तीन स्वर है (ह्रस्व, दीर्घ एव प्लुत),तीन ही अग्निया (गार्हपत्य,दक्षिणाग्नि तथा आह्वानीय अग्नि) है तथा गुण भी तीन ही है (सत्त्व,रजस एवं तमस)। ये सभी त्रयाक्षर (ओम = अ + उ + म्) में स्थित है। इन तीनों अक्षरो के साथ ही आधे अक्षर का भी योगी द्वारा अध्ययन किया जाना चाहिए। सभी कुछ उसी में पिरोया हुआ है,वही सत्य है तथा वही परम पद है। जैसे तिलों मे तेल होता है,पुष्पों में गध होती है,दूध में घी होता है तथा पत्थरों में सोना होता है,उसी प्रकार यह भी सभी मे व्याप्त है। हदय स्थान मे कमल व्याप्त है,उसका नीचे की ओर वक्र मुख है। उसकी नाल ऊपर को है तथा बिंदु नीचे की ओर है। इसके बीच मे मन स्थित है,'अ' अक्षर से रेचित होने पर इस पद्म (कमल) को 'उ' अक्षर से भेदा जाता है। 'म' वर्ण से नाद की प्राप्ति होती है तथा अर्धमात्रा निश्चल अवस्था मे रहती है। योग मे लगा हुआ साधक इस प्रकार शुद्ध स्फटिक के समान,कलारहित, पाप नाशक परम पद रूपी उस पुरुष को प्राप्त करता है। अपने हाथ,पावं,सिर आदि को जैसे कछुआ अपने अदर समेट लेता है, उसी प्रकार शरीर के समस्त द्वारों में भरा हुआ वायु दबाने पर इन नौ द्वारो मे ऊपर चला जाता है। घड़े के मध्य में रखे हुए दीपक के समान ही कुभक को भी माना जाता है। नौ द्वारों के निरुद्ध कर दिए जाने पर नीरव उपद्रव रहित स्थान में केवल आत्मा ही शेष रहता है, जो योग-साधना से ही संभव है। यही इसका सार है। (130-142)

☐

38. सुबालोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शाति शांति शांति. ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, उस पूर्ण ब्रह्म से ही इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अत. पूर्ण ब्रह्म में से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक भी कर दें तो पूर्ण ही शेष रहता है। आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के तापों, अर्थात दु खों की शाति हो।

प्रथम खंड

'सृष्टि से पूर्व क्या था ?' यह प्रश्न पूछे जाने पर घोरागिरस ऋषि बरेले, 'सृष्टि से पूर्व न तो सत था, न ही असत था और सदसद (सत असत) भी नही था। इस स्थिति मे सर्वप्रथम तमस (अज्ञान) उत्पन्न हुआ। तब इस तमस से भूत आदि की उत्पत्ति हुई, भूतों से आकाश की, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। (1-2)

यह ब्रह्माड रूप अंडे में परिवर्तित हो गया। इसमें एक वर्ष बिताने पर ब्रह्म ने इसके दो भाग कर दिए, जिसमें अधोभाग से पृथ्वी तथा ऊपरवाले भाग से आकाश बन गया। इन दोनो के मध्य में एक दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसके हजारों सिर थे, हजारों नेत्र थे, हजारों पांव थे तथा हजारो भुजाए थी। (3)

इस प्रकार के दिव्य पुरुष ने सर्वप्रथम प्राणियों के लिए मृत्यु की सर्जना की। मृत्यु तीन नेत्रोंवाला, तीन सिरोंवाला तथा तीन ही पावोवाला था। उसके हाथों में एक छोटा-सा फरसा था।(4)

वह दिव्य पुरुष ब्रह्म था। उसने ब्रह्मा में प्रवेश किया, अर्थात् फिर उसी पुरुष से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। तब उस ब्रह्मा ने अपने मानस से सात पुत्रों को जन्म दिया। ये सातों ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाए। ये ही प्रजापति बने। (5)

इसके पश्चात इस विराट स्वरूप से चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई। ब्राह्मण इस विराट का मुख था, राजन्य, अर्थात क्षत्रिय बाहु थे, वैश्य इसके उरु थे तथा दोनो पैरो से शूद्र हुए। —कानो से वायु की उत्पत्ति हुई तथा हृदय से प्राणों का जन्म हुआ। यह समस्त चराचर जगत इसी से उत्पन्न हुआ।(6)

द्वितीय खंड

उस विराट पुरुष के अपान से निषाद, यक्ष, गंधर्व तथा राक्षस उत्पन्न हुए, अस्थियों से पर्वतों का, लोमो से औषधियों-वनस्पतियों का तथा ललाट के क्रोध से रुद्र का जन्म हुआ। (1)

उसी महान प्राणी विराट के नि श्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र, मीमांसा, व्याख्यान तथा उपाख्यान आदि सभी प्रादुर्भूत हुए। (2)

उस हिरण्यमय (स्वर्णिम तेजोमय) स्वरूप में ही समस्त लोक एव आत्माएं स्थित है। उसने स्वय को आधे पुरुष और आधी स्त्री— इन दो भागों में विभक्त किया। स्वय देव होकर उसने देवताओं को तथा ऋषि होकर ऋषियो को बनाया तथा इसी प्रकार यक्ष, राक्षस, गधर्व आदि सामाजिक भावना से रहनेवाले प्राणियों को तथा वन में रहने वाले गाय-बैल, घोडा-घोडी, गधी-गधा आदि सबके भरण-पोषण करनेवाले तथा करने वालियो को बनाया। (3)

अंत में वह पुरुष वैश्वानर (अग्नि) बनकर सबको दग्ध कर देता है।

समस्त पृथ्वी जल मे लय हो जाती है, जल तेज में लय हो जाता है, तेज वायु में, वायु आकाश मे तथा आकाश इद्रियों मे लीन हो जाता है। इंद्रिया तन्मात्राओं में और तन्मात्राए भूत आदि मे लीन हो जाती है। भूत आदि महत में, महत अव्यक्त में, अव्यक्त अक्षर में एव अक्षर अज्ञान मे लीन हो जाता है। तमस अर्थात अज्ञान परमेश्वर मे एकाकार हो जाता है। तव पुन सर्वप्रथमवाली अवस्था आ जाती है—न 'सत' रहता है, न 'असत' और न 'सत-असत' ही। यही निर्वाण का उपदेश है; यही वेदों की शिक्षा है, और यही वेदो का अनुशासन है। (4)

तृतीय खंड

'असत' ही सर्वप्रथम था। तव किसी का जन्म नही हुआ था, अर्थात् यह एक अजात, अभूत (प्राणहीन), अप्रतिष्ठित, शव्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, रस रहित, गध रहित, व्यय (नाश) रहित, अमहान, अवृहद और अजन्मावाली स्थिति थी। आत्मा को इस प्रकार मानकर धीर जन दु खी नही होते है। (1)

वह आत्मा प्राण रहित है, मुख रहित है, श्रोत्र रहित है, कर्ण रहित, वाणी रहित, गति रहित, तेज रहित, नेत्र रहित, नाम रहित, गोत्र रहित, सिर रहित, हाथ रहित, पाव रहित, वसा एव रक्त रहित है। वह अप्रमेय (जो सिद्ध नही किया जा सकता), अहस्व, अदीर्घ एवं अस्थूल है। मन उसका पार नही पा सकता, वह अनल्प, अपार अनिर्देश्य, अनावृत, अप्रकाश्य (जिस पर कोई प्रकाश नही डाला जा सकता), असंवृत्त (असकीर्ण), अनतर (जो भीतर न हो) तथा अवाह्य (जो वाहर न हो) है। वह कुछ भी नही खाता और कोई उसे भी नही खाता। (2)

इस प्रकार के अनिर्वचनीय व्रह्म को सत्य से, तप से, दान से, उपवास से, व्रह्मचर्य से तथा अखंड वैराग्य से—इन छ अंगोंवाली साधना से ही जाना जा सकता है, इन्ही के समान इंद्रिय दमन,

दान एवं दया,इन तीनों का पालन भी होना चाहिए। इन सब गुणों एव साधनों के द्वारा जो इसे जान लेता है,उसके प्राण भटकते नही हैं, वह इसी ब्रह्म में लीन हो जाता है और वह ब्रह्म ही बन जाता है। इस ज्ञान के विषय को जाननेवाला भी ब्रह्म ही बन जाता है। (3)

चतुर्थ खंड

हृदय के मध्य में एक लोहित वर्ण मांसपिड है,जिसमें वह सूक्ष्म तत्त्व दहर पुडरीक कुमुद के (चंद्र कमल) के समान अनेक प्रकार से विकसित होता है। हृदय के दस छिद्र होते हैं। जिनमे प्राण प्रतिष्ठित रहते हैं। (11)

जब वह प्राण के साथ सयुक्त होता है,तो नदी,नगर आदि अनेक दृश्यो को देखता है। जब व्यान के साथ सयुक्त होता है,तो देवताओं और ऋषियों को देखता है। अपान के साथ सयुक्त होने पर यक्ष,गंधर्व और राक्षसों को देखता है। उदान के साथ संयुक्त होने पर देव लोक को तथा स्कद जयत आदि देवताओं को देखता है। समान के साथ संयुक्त होने पर देवताओं और धनों को देखता है और जब यह वैरंभ के साथ संयुक्त होता है,तब अतीत के दृष्ट को,सुने हुए को,भुक्त को, अभुक्त को,'सत' तथा 'असत' सभी को देखता है। (2)

हृदय में दसों (अनेक) नाड़िया होती है। इनमें प्रत्येक नाड़ी की बहत्तर-बहत्तर शाखाए होती है, इस प्रकार हजारों नाड़ियां हो जाती हैं,जिनमें यह आत्मा सोता है तथा शब्दों का कार्य करता है। जब यह द्वितीय कोश में सोता है तो इस लोक को,परलोक को तथा सभी छदो को देखता तथा जानता है। तब वह सप्रसाद कहलाता है। हृदय की श्वेत नाडियां रुधिर से पूर्ण होती है। (3)

इस प्रकार जहां यह दहर पुडरीक कुमुद के समान अनेक प्रकार से विकसित होता है,उसमे बाल के हजारवें भाग के समान पतली नाड़ियां होती हैं। हृदयाकाश के परम कोश मे दिव्य आत्मा शयन करता है। इसके सुप्त अवस्था में होने पर इसे किसी प्रकार की कोई कामना नही रहती और यह किसी प्रकार का स्वप्न भी नही देखता। तब वहा न देवता होते है; न देव लोक होता है। न यज्ञादि होते हैं और न वहा माता-पिता,बंधु-बाधव अथवा चोर-ब्रह्म हत्यारे आदि ही होते है। यह तेजोमय-अमतमय रूप है। यह सपूर्ण जलमय अथवा वनमय मार्ग है। इसी मार्ग से आत्मा जागृत अवस्था की ओर दौड़ता है। ऐसा सम्राट (जनक) ने कहा था। (4)

पचंम खंड

आत्मा उस स्थान मे रहनेवालों को स्थान देता है। नाड़ियां उसका निबंधन हैं,चक्षु अध्यात्म है,देखी जानेवाली वस्तुएं अधिभूत हैं और आदित्य अधिदैवत है। जो नाड़ी मे,प्राण में,विज्ञान में, आनद में,हृदयाकाश में तथा समस्त जगत के अदर विचरण करता है,वह यही आत्मा है। अत इसकी उपासना करनी चाहिए। वह अजर (कभी वृद्ध न होनेवाला) अमर (कभी न मरनेवाला), अभय,शोक रहित तथा अनत है। (1)

श्रोत्र (कान) अध्यात्म है, श्रोतव्य (सुनने योग्य) अधिभूत है और दिशाएं अधिदैवत है। नाडी उनका निबधन (मूल स्थान) है। कानों मे सुने जानेवाले शब्दों में, दिशाओं में, प्राण मे आनद मे, हृदयाकाश में तथा इस सबके अंदर विचरण करनेवाला वह यही आत्मा है। अत यह उपासना करने योग्य है। यह जरा, मृत्यु, भय तथा शोक से रहित और अनंत है। (2)

नासिका अध्यात्म है, सूघने योग्य पदार्थ अधिभूत हैं और पृथ्वी अधिदैवत है। नाडी इनका निबंधन है। नासिका में, घ्रातव्य (सूघने योग्य पदार्थो में) में, पृथ्वी में, नाडियो मे, वही अनत आत्मा का संचार करता है। (3)

जिह्वा अध्यात्म है, आस्वाद्य (स्वाद लेने योग्य पदार्थ) अधिभूत है तथा देवता वरुण अधिदैवत है। नाडी उनका निबंधन है। जो जिह्वा में, अस्वाद्य मे, वरुण मे तथा नाडियो मे संचरण करता है, वह उपासना करने योग्य यही आत्मा है। (4)

त्वचा अध्यात्म है, स्पर्श करने योग्य पदार्थ अधिभूत है और वायु इसका अधिदैवत है। नाडी इनका निबंधन है। जो त्वचा में, स्पर्श करने योग्य पदार्थों में तथा वायु मे संचरणशील है, वही आत्मा है। (5)

मन अधिभूत है, विचार करने योग्य (मंतव्य) अधिभूत है तथा चद्रमा अधिदैवत है। नाडी उनका निबंधन है तथा मन, मतव्य और नाड़ी में संचरण करनेवाला यह वही आत्मा है। (6)

बुद्धि अध्यात्म है, बोध्य अधिभूत है और ब्रह्म अधिदैवत्र है। नाडी उनका निबधन है। बुद्धि, बोधव्य एवं ब्रह्मा में संचरणशील वही उपास्य आत्मा है। (7)

अहकार अध्यात्म है, अहकर्तव्य (अहकार करने योग्य विषय) अधिभूत है और रुद्र अधिदैवत है। नाडी उनका निबंधन है। अहंकार, अहंकर्तव्य तथा रुद्र में विचरण करनेवाला वही आत्मा है। (8)

चित्त अध्यात्म है, चितन अधिभूत है और क्षेत्रज्ञ अधिदैवत है। नाडी उनका निबधन है। चित्त में, चितन में, क्षेत्रज्ञ में तथा नाडी में संचरणशील वही उपास्य आत्मा है। (9)

वाणी अध्यात्म है, बोलना अधिभूत है तथा अग्नि अधिदैवत है। नाडी उसका निबधन है। वाणी में, बोलने में, अग्नि मे तथा नाडी में विचरणशील वही उपास्य आत्मा है। (10)

हाथ अध्यात्म है, लेना अधिभूत है और इद्र अधिदैवत है। नाडी उनका निबधन है। हाथ मे, लेने में, इंद्र में तथा नाडी में संचार करनेवाला वही आत्मा है। (11)

पाव अध्यात्म है, गतव्य अधिभूत है और विष्णु अधिदैवत है। नाड़ी उनका निबधन है। जो पाव में, गंतव्य में, विष्णु में तथा नाडी में सचार करता है, वही उपास्य है। वही आत्मा है। (12)

पायु अध्यात्म है, विसर्जन अधिभूत है, मृत्यु अधिदैवत है और नाडी उनका निबधन है। पायु में, विसर्जन में, मृत्यु में तथा नाडी में संचरण करनेवाला उपास्य आत्मा है। (13)

उपस्थ अध्यात्म है, आनदित करने योग्य कर्म अधिभूत हैं, प्रजापति अधिदैवत है तथा नाडी उनका निबंधन है। जो उपस्थ में आनंदितव्य में, प्रजापति में, नाडी मे, प्राण में, विज्ञान में, आनद मे,

हृदयरूपी आकाश में तथा इस समस्त चराचर में सचरण करता है, उस अजर, अमर, अशोक एव अनत आत्मा की उपासना करनी चाहिए। (14)

यही सर्व है, सर्वेश्वर है, सर्वाधिपति है, अतर्यामी है, सबकी योनि है, सब सुखों द्वारा उपास्य है, न कि सब सुखों की उपासना करनेवाला है, वेद-शास्त्रो द्वारा उपास्य है, न कि वेद-शास्त्रो का उपासक, इसी से यह सब उत्पन्न हुआ है, न कि यह सब इसे उत्पन्न करता है। यह सबका नयन रूप है, प्रशास्ता है, अन्नमय है, भूतात्मा है, प्राण, मन तथा इंद्रियों का आत्मा है। मन्त्रोमय है, सकल्पात्मा है, विज्ञानमय है, कालात्मा है, आनदमय है एवं लयात्मा है। उसमे एकत्व ही नही है, तब द्वैतभाव कैसे हो सकता है? वह मर्त्य (मरनेवाला) नही है, तब उसकी अमरता कैसे हो सकती है? न वह अत प्रज्ञ है, न वहिप्रज्ञ है और न उभयप्रज्ञ ही है। न वह प्रज्ञान धन है, न प्रज्ञ है और न अप्रज्ञ ही है। न वह विदित है न वेद्य ही है। यही निर्वाण का अनुशासन है और यही वेदो की शिक्षा है। (15)

षष्ठ खंड

सृष्टि से पूर्व कुछ भी नही था। विना मूल और बिना आधार के यह प्रजा उत्पन्न हुई। (1)

चक्षु एव देखने योग्य, कान और सुनने योग्य सब नारायण ही हैं। वही नाक और सूघने योग्य है, जिह्वा और आस्वाद्य (स्वाद योग्य) है, त्वचा और स्पर्श योग्य है, मन और मतव्य, चित्त और चितनीय है, वाणी और वक्तव्य है, हाथ और ग्रहण करने योग्य है, पाव और गतव्य है, पायु और त्याज्य है, उपस्थ और आनदनीय हैं, धाता और विधाता है तथा वही एक देव भगवान नारायण ही कर्ता और विकर्ता भी है। (2)

आदित्य, रुद्र, मरुत, वसु, अश्विनी कुमार, ऋक, यजुष तथा सामवेद, मत्र अग्नि, घी की आहुति वही एक नारायण भगवान है। (3)

माता, पिता, भाई, निवास, शरण, मित्र तथा गति भी वही नारायण हैं। (4)

वही विराजा, चारुदर्शन, अजिता, सौम्या, माधा, कुमारा, अमृता, सत्या, मध्या आदि दिव्य नाडिया है। (5)

गरजनेवाला, गानेवाला, वहनेवाला, वरसनेवाला, वरुण, अर्यमा, चद्रमा, काल, कवि, धाता, ब्रह्मा, इद्र, अर्ध दिवस, दिवस, कला, कल्प, ऊपर, नीचे तथा सभी दिशाए वही है। (6)

यह सव कुछ भूत एव भविष्य में होनेवाला, परम पुरुष ही है। वह स्वर्ग मे फैले हुए चक्षुओवाला है। विष्णु के उस परम पद को ज्ञानी लोग सदा देखते हैं। क्रोधहीन और सचेत रहनेवाले विप्रजन इसका सदा साक्षात्कार करते हैं। अत यही निर्वाण का उपदेश है, वेदो की शिक्षा तथा उनका अनुशासन है। (7)

सप्तम खंड

शरीर के अदर स्थित गुहा मे एक नित्य पुरुष रहता है, पृथ्वी जिसका शरीर है और वह पृथ्वी के अदर सचार करता है, कितु पृथ्वी उसे नही जानती है। जिसका जल शरीर है और जो जल मे

सचार करता है, किंतु जल उसे नही जानता। इसी प्रकार तेज उसका शरीर है, वायु उसका शरीर है, आकाश उसका शरीर है, बुद्धि उसका शरीर है, अहंकार उसका शरीर है, चित्त उसका शरीर है, अव्यक्त, अक्षर तथा मृत्यु भी उसके शरीर हैं। यह इन सबसे संचार करता है, किंतु ये उसे नही जानते है। यह सभी प्राणियों का अतरात्मा, अपहत आत्मा दिव्य देव नारायण है। (1)

यह विद्या नारायण ने अपांतरतम को दी, अपांतरतम ने ब्रह्मा को दी, ब्रह्मा ने घोरांगिरस को दी, घोरागिरस ने रैक्व को दी, रैक्व ने राम को दी तथा राम ने सभी प्राणियों को दी थी। यह मोक्ष का उपदेश है, वेदो का अनुशासन और शिक्षा है। (2)

अष्टम खंड

सभी के अत शरीर मे स्थित गुहा में वही आत्मा रहता है। यह शरीर रक्त एव मास से भरा हुआ है तथा यह चित्रमय भित्ति (दीवार-चित्रवीथी) की तरह, गंधर्वो के नगर की तरह नि सार सुदरता युक्त, केले के वृक्ष के अंदर के भाग की तरह सारहीन और पानी के बुलबुले की तरह चंचल है, किंतु इससे पृथक् रहनेवाला आत्मा अचितनीय रूपवाला, दिव्य देव, असंग, शुद्ध, तेजोमय देहवाला, अरूप, सर्वेश्वर तथा अचित्य देहवाला अशरीर है। यह हृदय गुहा का रहनेवाला अमर ज्वाज्वल्यमान है। विद्वान मनीषी उसी मे लय होकर उस आनंद स्वरूप को देखते है। (1)

नवम खंड

रैक्व ने घोरागिरस से पूछा, 'ये सब चराचर जगत के प्राणी एवं पदार्थ अंत मे किसमे अस्त होते है ?' घोरांगिरस ने उत्तर दिया, 'जो पदार्थ चक्षु से प्राप्त होते है, वे चक्षु में ही अस्त होते है। चक्षु दर्शनीय पदार्थो के लिए प्राप्त होता है, अत. ये दर्शनीय पदार्थो में ही अस्त हो जाते है। ये दर्शनीय पदार्थ सूर्य से प्राप्त होते है अत उसी में अस्त हो जाते है। सूर्य विराट से प्राप्त होता है और उसी मे अस्त हो जाता है। यह प्राण से प्राप्त होता है, प्राण मे ही अस्त हो जाता है। प्राण विज्ञान से प्राप्त हो जाता है और उसी मे अस्त होता है। विज्ञान आनंद से प्राप्त होता है, अत आनद मे हीअस्त होता है। आनंद तुरीय से प्राप्त और उसी में अस्त होता है। वह अमृत, अभय अनत निर्बीज प्राप्त होता है।

इसी प्रकार जो श्रोत्र को प्राप्त करता है वह श्रोत्र में ही अस्त होता है। श्रोत्र श्रोतव्य के लिए, श्रोतव्य दिशा से, दिशा सुदर्शना से, सुदर्शना अपान से और अपान विज्ञान से प्राप्त होता है। अत नियमानुसार ये क्रमश· श्रोतव्य मे, दिशा मे, सुदर्शना में, अपान में तथा विज्ञान में (अर्थात जो जिसके लिए अथवा जिससे प्राप्त होता है, यह उसी मे अस्त होता है) अस्त होते हैं विज्ञान (विज्ञान के पश्चात यहा से इस खंड के अंत तक इससे पहले वाले अश का ही अतिम अश अन्वय होगा अर्थात—) आनद मे प्राप्त होता है, अत आनद में ही (पूर्ववत)। (2)

जिह्वा को प्राप्तकर जिह्वा में ही अस्त होता है। अत उपर्युक्त प्रकार मे जिह्वा, रसनीय, वरुण, मौम्य, उदान एव विज्ञान क्रमश रसनीय के लिए, वरुण से, मौम्य से, उदान मे, विज्ञान मे एव आनद

से प्राप्त होते है, अत· इनका (पूर्व लिखितो का बाद में लिखे हुओं में) क्रमश· अस्त होता है। विज्ञान का (इसके बाद प्रथम अश के समान)। (3)

नासा को प्राप्तकर नासा (नाक) में ही अस्त होता है। अत नासिका घ्रातव्य (सूघने योग्य), पृथ्वी, जिता, व्यान, विज्ञान एव आनद। प्रत्येक अपने से पूर्व से या उसके लिए प्राप्त हुआ है, अत· पूर्व लिखित का अपने से बाद वाले मे अस्त होता है। विज्ञान आनद में और आनद पूर्ववत प्राप्त होता है। (5)

त्वचा को प्राप्त कर त्वचा मे ही अस्ता होता है, अत त्वचा, स्पर्श, वायु, मोघा, समान, विज्ञान और आनंद में प्रत्येक अपने से पश्चात वाले के लिए या उससे प्राप्त हुआ है, अत उसका पश्चातवाले मे ही अस्त होता है। आनद के बाद पूर्ववत होता है। (5)

वाणी को प्राप्त कर वाणी मे अस्त होता है। अत वाणी, वक्तव्य, अग्नि, कुमार, वैरम्य, विज्ञान एव आनंद मे प्रत्येक अपने से बादवाले के लिए या उससे प्राप्त होता है, अत इनका उसी में अस्त भी होता है। (6)

हाथों को प्राप्त कर हाथो में ही अस्त होता है और हाथ, लेने योग्य, इद्र, ऋता, मुख्य एव विज्ञान मे प्रत्येक अपने से बादवाले को प्राप्त है, अत प्रत्येक का अपने बादवाले में अस्त होता है। (7)

पांवों को प्राप्त कर पावो मे अस्त होता है और पाव गतव्य, विष्णु, सत्य, अतर्याम एव विज्ञान मे प्रत्येक अपने बादवाले को प्राप्त हैं, अत उसका इसी मे अस्त होता है (8)।

जो पायु को प्राप्त होता है, वह पायु में ही अस्त होता है। पायु, त्याज्य (मल), मृत्यु, मध्यमा, प्रभंजन एव विज्ञान प्रत्येक अपने बादवाले को प्राप्त होता है, अत उसका इसी मे अस्त होता है। (9)

जो उपस्थ को (शिश्न या योनि) प्राप्त होता है, उसका उपस्थ में ही अस्त होता है। उपस्थ, आनदनीय, प्रजापति, नासीरा, कूर्मिर एव विज्ञान, ये प्रत्येक अपने बाद वाले को प्राप्त होते है और उसी मे अस्त होते है। (10)

जो मन को प्राप्त होता है, उसका मन ही अस्त होता है। मन, मतव्य (मनन करने योग्य), चद्र, शिशु, नाडी, श्येन, विज्ञान एवं आनद, ये अपने बाद वाले को प्राप्त होते है, अत उसी मे अस्त हो जाते है। (11)

जो बुद्धि को प्राप्त होता है, वह बुद्धि मे ही अस्त होता है। बुद्धि, बोधव्य (बोध करने योग्य) ब्रह्मा, सूर्य, कृष्ण एवं विज्ञान, ये प्रत्येक अपने बाद वाले को प्राप्त करते है, अत. उसी मे अस्त होते है। (12)

जो अहंकार को प्राप्त होता है, उसका अहकार में ही अस्त होता है। अहंकार, अहकर्तव्य (अहकार के योग्य) रुद्र, असुरा नाडी, श्वेत एवं विज्ञान, सभी अपने परवर्ती (बाद वाले को) प्राप्त होते है और इसी मे अस्त भी होते है। (13)

जो चित्त को प्राप्त होता है,उसका चित्त में ही अस्त होता है । चित्त,चेतितव्य (चितन योग्य), क्षेत्रज्ञ, भास्वत,नाड़ी,नाग,वायु एव विज्ञान,ये सभी अपने से बादवाले को प्राप्त होते है तथा उसी में अस्त होते है । (14)

इस तरह जो निर्बीज तत्त्व को प्राप्त होता है,वह स्वयं भी निर्बीज बन जाता है । वह जन्म नही लेता है,उसकी मृत्यु नही होती है,वह दु खी नही होता,वह भेदा नही जा सकता,जल नही सकता, काटा नही जा सकता, कांपता नही,क्रोधित नही होता और इसे सबको जलानेवाला आत्मा कहा जाता है । (15)

यह आत्मा सैकड़ो प्रवचनो से,बहुत शस्त्रों के अध्ययन से या बुद्धि और ज्ञान पर आश्रित मेधा से प्राप्त नही होता । न वेदों से,न उग्र तप से,न साख्य से,न योग से,न आश्रय-व्यवस्था से और न ही किसी अन्य उपाय से,इस आत्मा को प्राप्त किया जा सकता है । जो ब्रह्मज्ञानी प्रवचनों से,प्रशसा से और समाधि से उठकर बाहर आते ही और आत्मा विषयक श्रवण करते है,व्याख्यान करते है,वे ही इसे प्राप्त करते है । शांत,इंद्रिय दमनवाला,उपरति एवं तितिक्षा मे समाहित होकर ही ब्रह्मवेत्ता आत्मा मे ही इस आत्मा को देखता है और वह सर्व आत्मामय हो जाता है । जो इस प्रकार जानता है,वह ऐसा ही हो जाता है । (16)

दशम खंड

(यह खड प्रश्नोत्तर रूप मे है । घोरागिरस द्वारा एक लोक बताए जाने पर रैक्व उसी पर प्रश्न पूछ डालते है कि यह लोक किसमे ओत-प्रोत है,अत प्रश्न रैक्व के है तथा उत्तर घोरागिरस के)। रैक्व ने पूछा,'भगवन किस लोक मे सब कुछ अच्छी तरह प्रतिष्ठित है ?'—'रसातल के लोको मे,' 'रसातल किसमें ओत-प्रोत है ?' —'भूलोक में ।' भूलोक किसमें ओत-प्रोत है —'भुव· लोक में ।' भुव· लोक ? (किसमें ओत-प्रोत है प्रत्येक प्रश्न के साथ अकित मानें) —'मह लोक में ।' मह लोक ? —'जल लोक में ।' जन लोक ?— 'तपो लोक मे ।' तपोलोक ?— 'सत्य लोक में ।' सत्य लोक ?— 'प्रजापति लोक में ।' प्रजापति लोक ? — 'सभी लोक आत्मा रूपी ब्रह्म मे माला की तरह ओत-प्रोत है ।' (1)

इस प्रकार जो इन लोकों को आत्मा में ही प्रतिष्ठित है,ऐसा जान जाता है,वह भी उमी आत्मा में मिल जाता है । यही निर्वाण की शिक्षा है,वेदों का उपदेश एव अनुशासन है ।(2)

एकादश खंड

रैक्व ने पूछा,'भगवन । यह विज्ञानमय आत्मा वाहर निकलते ममय किम मार्ग से तथा किम स्थान को छोडकर जाता है ?' इस पर घोरागिरस वोले,'हृदय के वीच लोहित मामपिड मे दहर पुंडरीक कुमुद के समान अनेक प्रकार से विकसित होता है,इसके मध्य में एक कोश है । उसमे चार नाड़ियां होती है । इनके नाम इस प्रकार है—रमा,अरमा,इच्छा तथा अपनर्भवा । रमा पुण्य से पुण्य लोक में तथा अरमा पाप से पाप लोक में ले जाती है । इच्छा स्मरण किए हुओं को प्राप्त कराती है तथा अपुनर्भवा इस कोश को भेदती है । कोश को भेदकर शीर्षकपाल को,शीर्षकपाल को भेदकर

पृथ्वी को, पृथ्वी को भेदकर जल को, जल को भेदकर, तेज को, फिर वायु को, फिर आकाश को, फिर मन, फिर अहकार को, फिर महत को, फिर प्रकृति को, इसके बाद अक्षर को तथा अक्षर भेदकर मृत्यु को भेदती है। मृत्यु से परे परमदेव ही है और उसी से मिल जाती है। इससे आगे न 'सत' होता है, न 'असत' होता है; और न 'सत-असत' ही होता है। यही निर्वाण का उपदेश है, यही वेदों की शिक्षा है और यही वेदों का अनुशासन है। (1)

द्वादश खंड

नारायण से ही अन्न आया (उत्पन्न हुआ) है। यह ब्रह्मलोक में पका, इसके पश्चात यह माहसवर्तक मे, आदित्य में तथा क्रव्यादि में पका है। साधु-सन्यासी इस अन्न को जल में भिगोकर, वासी करके पवित्र करें और तब खाए। उनके द्वारा खाया जानेवाला यह अन्न स्वयं पैदा किया या मांगा हुआ नही होना चाहिए। उन्हे किसी से मांगना नही चाहिए (अर्थात स्वयं स्वतत्र स्थानो पर उगा अन्न तथा कदमूल ही उनका भोजन है। (1)

त्रयोदश खंड

बाल्यकाल में रहने की इच्छा करे, स्वभाव बच्चों की तरह सरल हो, आसक्ति एवं दोष से रहित हो, मौन साधन पाडित्य अर्जन के लिए ढोग करनेवाले के अनुसार न चलना कैवल्य की पराकाष्ठा कही गई है। प्रजापति का कथन है कि महान पद को जानकर तरुतले वास, चिथडे पहनना, किसी से सहायता न लेना तथा एकात समाधि लेनेवाला व्यक्ति आप्तकाम (पूर्ण हो चुकी इच्छाओं वाला) और निष्काम होता है, इच्छाए उसके लिए पुरानी (व्यर्थ की) चीजें हो जाती है। वह हाथी, शेर, मच्छर, नेवला, सर्प, राक्षस, मृत्यु आदि रूपो को जानकर उनसे डरता नही है। वह वृक्ष की तरह रहना चाहता है, कोई काट भी डाले, तो क्रोधहीन और कंपहीन, कोई छेद भी डाले, तो गुस्सा नहीं, ऐसे कमल की तरह, छिन्न-भिन्न कर दिए जाने पर भी अक्रोधी आकाश की तरह तथा सत्य की तरह रहना चाहता है। यह आत्मा ही सत्य है। (1)

सब गंधो का हृदय पृथ्वी है, सभी रसो का हृदय जल है, सब रूपों का हृदय तेज है, सब स्पर्शो का वायु, सब शब्दों का आकाश, सब गतियों का प्रकृति तथा सब प्राणियों का हृदय मृत्यु है। यह मृत्यु ही परमात्मा में एकाकार होता है। इसके बाद न 'सत' रहता है, न 'असत' और न 'सत-असत' ही। यही निर्वाण का उपदेश, वेदो की शिक्षा तथा वेदानुशासन है। (2)

चतुर्दश खंड

पृथ्वी अन्न है, जल अन्नभक्षी है। जल अन्न है, तेज अन्नद (अन्न भक्षी या अन्न खानेवाला) है। तेज अन्न है, वायु अन्नाद है। वायु अन्न है, आकाश अन्नाद है। आकाश अन्न है, इंद्रियां अन्नाद है। इद्रिया अन्न है, मन अन्नाद है। मन अन्न है, बुद्धि अन्नाद है। बुद्धि अन्न है, अव्यक्त अन्नाद है। अव्यक्त अन्न है, अक्षर अन्नाद है। अक्षर अन्न है, मृत्यु अन्नाद है। मृत्यु ही परमात्मा में एकाकार होता है। (इत्यादि इससे पूर्ववत) । (1)

पंचदश खंड

रैक्व ने पूछा, 'भगवन जब यह विज्ञानमय आत्मा शरीर को छोड़ता है, तो किसके द्वारा कौन-से स्थान को जलाता है ?' घोरांगिरस बोले, 'जब यह विज्ञानमय आत्मा बाहर निकलता है, तो प्राण को, अपान को, व्यान को, उदान को, समान को, वैरम्य को, मुख्य को, अंतर्याम को, प्रमनन को, कुमार को, श्येन को, कृष्ण को तथा नाग को जलाता है। फिर पृथ्वी, जल, तेज, वायु एव आकाश को, तव जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एव तुरीय इन अवस्थाओं को, फिर महती, लोक एव परलोक को, फिर लोकालोक को, धर्म-अधर्म को, फिर सूर्य रहित अमर्यादित स्थानों को जलाता हैं। फिर महत, प्रकृति, अक्षर और मृत्यु को जलाता है। मृत्यु ही परमात्मा मे एकाकार होती है, इत्यादि इससे पूर्व त्रयोदश खंड के अनुसार है।(1)

षोडश खंड

सौबाल बीजवाला यह ब्रह्म का उपनिषद (रहस्य) अत्यत अशांत, पुत्रहीन, शिष्य के अलावा कोई अन्य, जो कम-से-कम एक वर्ष तक समीप मे न रहा हो, उसे और अज्ञान कुल एव शील, इतने प्रकार के लोगो को न दिया जाए, क्योंकि कहा गया है कि जिसकी गुरु मे परमेश्वर जैसी भक्ति हो, यह विद्या उसी के लिए है। महापुरुष ऐसे ही व्यक्ति को इसकी दीक्षा देते है। यही निर्वाणानुशासन, वेद शिक्षा तथा वेदोपदेश है। (1)

□

39. मंडल ब्राह्मणोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमिद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

ॐ शांति शाति शाति ।

महामुनि याज्ञवल्क्य सूर्यलोक गए। उन्होंने आदित्य से कहा, 'भगवान सूर्य देव कृपया आत्म-तत्त्व के विषय मे उपदेश दीजिए।' सूर्य बोले यम आदि के सहित ज्ञान को अष्टाग योग कहते है। शीत,उष्ण,आहार एव निद्रा पर अधिकार,सर्वदा शाति,निश्चलता तथा इद्रिय निग्रह ये यम कहलाते है। गुरु-भक्ति सत्य,मार्ग के प्रति अनुराग,अपने-आपको कुछ भी मिल जाए,उसी पर सतोष करना,अनासक्ति,एकांत सेवन,मन की निवृत्ति,फलो की इच्छा न करना तथा वैराग्य,ये नियम है। लंबे समय तक एक ही आसन में सुखपूर्वक बैठना,यह आसन का नियम है। पूरक, कुभक एव रेचक को क्रमश सोलह,चौसठ तथा बत्तीस मात्राओ तक करना प्राणायाम है। इद्रियो के विषयों से मन को रोकना प्रत्याहार है। इस प्रकार के मन को चैतन्य में स्थापित करना धारणा है। सभी देहों में एक ही चैतन्य को देखना ध्यान है तथा ध्यान को भी भूल जाना समाधि है। इस प्रकार ये योग के सूक्ष्म अग है, इन्हे जाननेवाला मुक्ति का अधिकारी होता है। (1)

काम,क्रोध,विषय,भय एवं निद्रा,ये देह के पाच प्रकार के दोष है। सकल्प का अभाव,क्षमा, अल्पाहार,निर्भयता एव तत्त्व-चितन से ये दोष दूर किए जाते है। निद्रा एव भय सरीसृप (साप आदि) के समान,हिंसक विचार तरगों के समान,तृष्णा भवर सदृश और स्त्रिया कीचड सदृश है। ससार रूपी ऐसे सागर से पार होने के लिए सूक्ष्म मार्ग के आश्रय से सत्त्वादि गुणो को लाघकर तारक ब्रह्म का ध्यान करें। दोनों भौहो के मध्य मे स्थित ब्रह्म को अभ्यास द्वारा देखे। तीन लक्ष्यो का अवलोकन इसका उपाय है। मूलाधार से ब्रह्मरध्र तक सूर्य की आभावाली सुषुम्ना नाडी है। इसके मध्य कमल नाल से भी सूक्ष्म कुडलिनी है। इससे तमोगुण दूर होता है। इसके दर्शन से सभी पाप नष्ट होते है। तर्जनी से दोनों कानो को बद करने पर सुनाई देनेवाले फूत्कार शब्द मे मन को स्थित करने पर नेत्रो के मध्य नीली ज्योति दीखती है। ऐसे ही दर्शन हृदय मे भी होते है। बहिर्लक्ष्य यह है कि नासिकोस चार,छ ,आठ,दस एवं बारह अंगुली पर क्रमश नीला,काला,लाल,पीला एव दो रगों का मिश्रण युक्त प्रकाश के दर्शन से योगी हो जाता है। जिसे चंचल दृष्टि से आकाश भाग को देखने पर तुरंत ही तेज किरणे दीखें,उसकी दृष्टि स्थिर हो जाती है। मस्तक के ऊपर बारह अगुली लबा प्रकाश दिखने पर अमरता मिलती है। मध्यम लक्षण यह है कि प्रात ,सूर्य,चंद्र,अग्नि, ज्वाला जैसा फिर इससे रहित अतरिक्ष जैसा और बाद में स्वय उसी के आकार जैसा दीखता है। पुन. अभ्यास करने पर यह निर्गुण आकाश के समान,प्रकाशमय तारों जैसा,गहन अधकार सदृश 'पराकाश' जैसा,प्रलयकालीन अग्नि सदृश 'महाकाश' जैसा परम अद्वितीय स्वरूप मे प्रकाशमान

'तत्त्वाकाश' और करोड़ो सूर्यो के समान आभामय सूर्याकाश होता है। इसका ज्ञाता अभ्यास द्वारा तन्मय होता है। (2)

योग के पूर्व और उत्तर दो भेद है। पूर्व भेद तारक ब्रह्म तथा उत्तर भेद अमस्क है। तारक भी मूर्ति तारक और अमूर्ति तारक, दो प्रकार का है। यह दोनों क्रमश इद्रियो तक तथा भौहो के मध्य से आगे तक जानेवाले है। इन दोनो का अभ्यास अतर्दृष्टि तारक ब्रह्म को प्रकट करने मे समर्थ होता है। बाद मे भौहो के मध्य छिद्र मे तेज का आविर्भाव होता है। यह पूर्व तारक है। उत्तर विभाग मन रहित होता है। तलु मूल के ऊर्ध्व भाग मे महाज्योति रहती है, जिसके दर्शन से अणिमा आदि सिद्ध होती है। लक्ष्य से अतर्दृष्टि तथा बाह्य दृष्टि के निर्निमेष (अपलक) स्थिर होने पर शाभवी मुद्रा बनती है। यह सभी तंत्रो की एक गोपनीय मुद्रा है। उसके ज्ञान संसार से मुक्ति तथा पूजन से मोक्ष प्राप्ति होती है। अतर्लक्ष्य जल के समान ज्योति रूप है। इसे केवल महर्षि जानते है। यह अदर और बाहर की इद्रियो से अदृश्य रहता है। (2)

सहस्रसार मे अतर्लक्ष्य जल ज्योति है। अन्य लोगो के अनुसार बुद्धिगुहा मे सर्वाग सुदर पुरुष ही अतर्लक्ष्य है। मध्य के प्रशात पंचमुख उमा सहित नीलकंठ शिव ही अतर्लक्ष्य मानते है। यह सभी विकल्प आत्मा रूप ही है। इन्हे शुद्ध आत्मा दृष्टि से देखनेवाला ही ब्रह्मनिष्ठ होता है। जीव पचीसवा तत्त्व है, किंतु इसके दर्शन पर वह स्वकल्पित चौबीस तत्त्वो को त्यागकर अनुभव करने लगता है कि वह छब्बीसवा तत्त्व स्वय परमात्मा ही है, इस निश्चय से वह जीवनमुक्त हो जाता है। इस प्रकार अतर्लक्ष्य के दर्शनों से जीवन मुक्त हो जाता है। इस प्रकार अंतर्लक्ष्य के दर्शनों से जीवनमुक्ति प्राप्त होने पर साधक एव अतर्लक्ष्य बनकर अखड मडल परम आकाश रूप हो जाता है। (3)

द्वितीय ब्राह्मण

तब याज्ञवल्क्य ने आदित्य मडल के पुरुष से पूछा, 'अतर्लक्ष्य अनेक प्रकार से कहा गया है, किंतु मै इसे नही जानता, अत इसे मुझे बताइए।' वह पुरुष बोला, 'पचभूतो का कारण विद्युत की आभावाला एव चार पीठोवाला है। उसके मध्य मे अति गूढ और अव्यक्त तत्त्व का प्रकाश होता है। ज्ञान-नौका पर चढ़कर ही उसे जाना जा सकता है। वही अंतर्लक्ष्य एव बहिर्लक्ष्य है। उसके मध्य में जगत लीन है। वह नाद, बिंदु एव कला रहित अखड मडल और निर्गुण स्वरूप है। इसके ज्ञान से मुक्ति होती है। पहले अग्नि-मडल एव इसके ऊपर सूर्य-मडल है। उसके मध्य सुधामय चद्र-मडल और इसके मध्य अखंड ब्रह्म तेज-मडल है, वह विद्युल्लेखा समान सफेद चमकीला है, यही शाभवी मुद्रा का लक्षण है। इसके दर्शन से अमावस्या, प्रतिपदा एव पूर्णिमा, ये तीन रूप दीखते है, बंद, अधखुली और खुली दृष्टि क्रमश इनके रूप है। इनमे पूर्णिमा दृष्टि का अभ्यास करना चाहिए, नासिकाग्र इसका लक्ष्य है। तालु मूल मे गहन अधकार के दर्श पर इसके अभ्यास से अखंड मडलाकार ज्योति के दर्शन होते है। यही सच्चिदानद ब्रह्म है। इसमे मन के लय होने पर प्राणी को मिलनेवाली शाति खेचरी मुद्रा है। इसके अभ्यास से मन स्थिर होता है, फिर बुद्धि स्थिर

होती है । इसमे पहले तार जैसा, फिर वज्र दर्पण, पूर्ण चद्रमडल, नौ रत्नों का प्रभा मडल, मध्याह्न सूर्य मडल और फिर अग्निशिखा मडल क्रमशः दीखते हैं । (1)

तब पश्चिमाभिमुख स्फटिक समान धूम्रवर्ण नाद, बिंदु, कला, नक्षत्र, खद्योत, नेत्र, स्वर्ण, नवरत्न आदि की प्रभा दिखाई पडती है । यही प्रणव रूप है । प्राण एव अपान को एक करके कुभक में नाक के आगे दृष्टि रखकर प्रबल भावना से दोनों हाथ की अगुलियों से षण्मुखी मुद्रा करें, तब नादश्रवण करके उसमे मन लीन होता है । उसे कर्म लिप्त नही करते । सूर्य के उदय-अस्त होने पर ये भी होते है, अत चैतन्य सूर्य का उदय-अस्त न होने से कर्म भी नही रहते । शब्द-काल के लय से रात्रि एव दिवस से रहित होने पर सर्व परिज्ञान की अवस्था में स्वयं मे एकता और मनहीनता होती है । निश्चित अवस्था उसका ध्यान, सब कर्मों से दूर रहना आवाहन, निश्चय ज्ञान आसन, मन हीनता पाद्य, नित्य मन रहित होना अर्घ्य, प्रकाश और अनत अमृत वृत्ति स्नान, ब्रह्म समानता की भावना चदन, दर्शन स्वरूप में स्थित अक्षत, चैतन्य सूर्य दीपक, परिपूर्ण नमस्कार, मौन साधना स्तुति तथा पूर्णतया सतोष विसर्जन है । इसका ज्ञाता ब्रह्मरूप हो जाता है । (2)

इस प्रकार ज्ञाता, ज्ञान औनज्ञेय रूपी त्रिपुटी के निमग्न होने पर देह तरगहीन समुद्र जैसा, वायु रहित दीपक जैसा, अचल, पूर्ण, भाव-अभाव हीन 'केवल ज्योति' रूप हो जाता है । जागते-सोते भी अत परिज्ञान से ब्रह्मवेत्ता बनता है । सुषुप्ति एव समाधि में मन की लीनता समान होने पर भी इनमें अतर है, सुषुप्ति में यह आन मे लीन होता है, किंतु समाधि में तमोगुण के विकारों का नाश और ब्रह्म से एकाकार होने पर जगत प्रपच का लय हो जाता है, क्योंकि यह मन से ही कल्पित है । तब कभी समाधि से उठने पर भी यह प्रपंच मिथ्या जान पडता है । एक बार भी इस 'सत' आनद का अनुभव हो जाने पर ब्रह्मवेत्ता उसी के समान हो जाता है । सकल्पनाश होने पर मुक्ति हाथ मे हो जाती है । अत भाव-अभाव के त्याग पर परमात्म के ध्यान द्वारा वह मुक्ति पाता है । फिर बार-बार सभी अवस्थाओं में ज्ञान ज्ञेय, ध्यान-ध्येय, लक्ष्य-अलक्ष्य, दृश्य-अदृश्य और ऊहा-पोह को त्यागकर मानव जीवन मुक्त हो जाता है, इसका ज्ञाता भी ब्रह्म को प्राप्त करता है । (3)

जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया तथा तुरीयातीत, ये पांच अवस्थाएं हैं । जागृत अवस्था में प्रवृत्त जीव प्रवृत्ति मार्ग का आसक्त होने से पाप के फलस्वरूप नरक आदि को जाता है । शुभकर्म के फल स्वर्ग की इच्छा से वह वैराग्य स्वीकार करके कर्मफल जन्य जन्म एव ससार से मुक्ति हेतु निवृत्ति मार्ग अपनाता है । गुरु का आश्रय लेकर काम आदि को त्यागकर वेदानुसार कर्म करता हुआ चार साधन युक्त होता है । हृदय कमल स्थित भगवान की सत्ता-मात्रा अतर्लक्ष्य मे सुषुप्ति अवस्था रहित ब्रह्मानद को स्मरण करता हुआ विचार करता है कि 'मै एक अद्वितीय ही हू, किंतु कुछ काल से अज्ञान के कारण अपना स्वरूप भूल गया हू । जागृतावस्था के कारण स्वप्नावस्था में भी मै स्वय को तेज स्वरूप मानने लगा था, इन दोनो अवस्थाओ के बाद सुषुप्ति मे मैं अपने को प्राज्ञ मानने लगा था, किंतु अब मैं स्वय को 'एक ही हू', ऐसा अनुभव करता हू । स्थान-भेद से यह भी भिन्न अवस्थाए थी, किंतु मुझसे कुछ भी पृथक् नही है । इस विवेक के होने पर 'अब मै अद्वैत ब्रह्म हू ।' इस अनुभूति से समस्त भेदभाव दूर हो जाते है । अपने अंत स्थित भानु मडल के ध्यान से ब्रह्म के तदाकार होकर मुक्ति मार्ग पर आरूढ होकर परिपक्व होता है । सकल्प आदि मन के बधन के हेतु

और भीतर से अपरमित द्युति के समान तत्त्व महाकाश है। सूर्याकाश बाहर एव भीतर से सूर्य के समान है। परमाकाश अवर्णनीय ज्योतिवाला तथा असीम आनंदमय है। इस प्रकार इनमे जिसका दर्शन हो, उसी के समान रूप की प्राप्ति होती है। नौ चक्रोंवाले, छ. आधारवाले तथा तीन लक्ष्योंवाले, इन पाचो आकाशों को जो सम्यक रूप में जानता है, वस्तुत वही योगी है।

पंचम ब्राह्मण

विषयी मन बंधन कारक तथा निर्विषयी मन मुक्तिकारक होता है। अत समस्त जगत चित्त का ही विषय है, यदि चित्त निराश्रय हो, तो मन उन्मन्य अवस्था से परिपक्व होकर लय योग्य होता है। अत लय को परिपूर्ण 'मै' के प्रति अभ्यास करें। क्यों मन के लय का कारण ही 'मै' है। अनाहत शब्द के भीतर की ध्वनि के अदर ज्योति है, इस ज्योति के अतर्गत मन है और यह मन ही तीनो लोको की उत्पत्ति, स्थिति तथा सहार का कारण है। अत· जिसमे मन लय होता है, वही विष्णु का परम पद है। इसमे मन का लय होने से पूर्ण अभेदमय शुद्ध अद्वैत तत्त्व की प्राप्ति होती है। यही परम तत्त्व है। इसका ज्ञाता बालक, उन्मत्त या पिशाच के समान ससार में जड़ जैसा आचरण करता है। इस अमस्क का अभ्यास होने से नित्य तृप्ति, मल-मूत्र की अल्पता, कम आहार, दृढ शरीर, जडता का अभाव, निद्रा और पलकों का न झपकाना आदि लक्षणो से युक्त हो जाता है। उसे ब्रह्मदर्शन हेतु सुखमय स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। अधिक समय तक समाधि के अभ्यास से उत्पन्न ब्रह्मरूपी अमृत पीने मे परायण संन्यासी परम हस अवधूत होता है। उसके दर्शन से जगत पवित्र हो जाता है। उसकी सेवा से अज्ञानी भी युक्त होकर अपनी एक सौ पीढ़ियो का तारण करता है। उसके माता-पिता, पत्नी और सतान सब मुक्त हो जाते है। यही उपनिषद है।

□

(कारण) है । संकल्प रहित मन मोक्ष देनेवाला होता है । मोक्ष प्राप्त करनेवाला आत्मा चक्षु आदि बाह्य प्रपंचो से सर्वथा रहित हो जाता है, वह समस्त जगत को आत्मवत देखता है । अहकार छोडकर 'मै ब्रह्म हूं' ऐसा चितन तथा 'यह सब आत्मा ही है', ऐसी भावना से वह कृतार्थ हो जाता है । (4)

योगी सभी प्रकार से परिपूर्ण तुरीयातीय ब्रह्मस्वरूप हो जाता है । उसकी ब्रह्म के समान स्तुति करते है । इस प्रकार स्तुति योग्य बनकर वह सभी लोको मे संचरणशील परमात्मा रूप गगन मे बिदु स्थापित करके शुद्ध अद्वैत, जडताहीन साथ ही उत्पन्न मन से रहित स्थितिवाली योग निद्रा मे अखड आनद की अनुभूति से जीवनमुक्त हो जाता है । ऐसे योगी आनद के समुद्र मे मग्न हो जाते है । इनकी अपेक्षा इद्र आदि भी कम आनदवाले हैं । इस प्रकार के आनद को परम योगी ही प्राप्त करते है । यही उपनिषद् (रहस्य की बात) है । (5)

तृतीय ब्राह्मण

महामुनि याज्ञवल्क्य ने मंडल पुरुष से पूछा, 'स्वामी । मनहीनता का जो लक्षण आपने बताया, मै उसे भूल गया हू, अत इसे पुनः कहिए ।' 'बहुत अच्छा' कहता हुआ मंडल पुरुष बोला 'यह अमनस्क (मनहीनता) स्थिति अति रहस्यमय है, यह जिसके ज्ञान से मनुष्य नित्य कृतार्थ होता है, वह शाभवी मुद्रा से युक्त है । परमात्म दृष्टि से उसके लक्षणो को देखनेवाला उसके बाद सर्वेश्वर, अप्रमेय, अजन्मा, शिव परम आकाश, निरालंबन, अद्वैत, ब्रह्मा, विष्णु एव रुद्र आदि का एकमात्र लक्ष्य तथा सबके कारण परम ब्रह्म को अपनी ही आत्मा मे देखता है । तब हृदय गुफा में उसे निश्चय जानकर भाव-अभाव आदि द्वंदो से रहित होकर मन को उन्मन (मन है ही नही) अनुभव करता है । तदनतर सभी इंद्रियों के नष्ट होने पर अमनस्क सुख के ब्रह्मानंद रूप समुद्र में मन को प्रवाहित करके योग रूपी वायु रहित स्थान पर रखे दीपक के समान अचल ब्रह्म को प्राप्त करता है । तब सूखे वृक्ष के समान मूर्छा और निद्रावाली स्थिति मे सास का चलना भी नही रहता । अत सुख-दु ख आदि द्वदो का नाश होकर सदा अचंचल शरीरवाला योगी परम शांतिमय और प्रचार शून्य होकर परमात्मा मे लीन होता है । जैसे दुही हुई गाय के थनो मे दूध नही होता, ऐसे ही सभी इद्रियों के नष्ट होने पर मन भी नष्ट हो जाता है, यही अमनस्क स्थिति है, तब मै ही नित्य शुद्ध परमात्मा हूं', ऐसी अवस्था, 'तत्त्वमसि' (तुम वही ब्रह्म हो) का उपदेश मिलने पर 'तुम ही मै हो' और 'मैं ही तुम हू', योग मार्ग के इस तारक ब्रह्म रूप के आश्रय से योगी कृतार्थ होता है । परिपूर्ण परमाकाशमय मनवाले उन्मन अवस्था को प्राप्त योगी का इद्रियगर्व छूट जाता है, तब वह अनेक जन्म के संचित पुण्यो से कैवल्य रूपी फल के पक जाने पर सभी दु:ख एव पापों के नष्ट होने पर अखड आनंद से 'मै ब्रह्म हू' ऐसा अनुभव करता हुआ कृतकृत्य होता है । अत परमात्मा पूर्ण है, तुम ही मैं हो, कोई भेद नही है । ऐसा कहते हुए शिष्य का आलिंगन करते हुए गुरु ने शिष्य को उपदेश दिया था ।

चतुर्थ ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य ने मडल पुरुप से कहा, कि वह पांचो आकाशों के लक्षण को विस्तार मे बताए । उसने बताया कि आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश और परमाकाश, ये पाच होते हैं । आकाश बाहर और भीतर से अंधकारमय है । पराकाश बाहर और भीतर से कालाग्नि के समान है । बाहर

और भीतर से अपरमित द्युति के समान तत्त्व महाकाश है। सूर्याकाश बाहर एव भीतर से सूर्य के समान है। परमाकाश अवर्णनीय ज्योतिवाला तथा असीम आनंदमय है। इस प्रकार इनमे जिसका दर्शन हो, उसी के समान रूप की प्राप्ति होती है। नौ चक्रोंवाले, छः आधारवाले तथा तीन लक्ष्योवाले, इन पाचो आकाशों को जो सम्यक रूप मे जानता है, वस्तुत. वही योगी है।

पंचम ब्राह्मण

विषयी मन बधन कारक तथा निर्विषयी मन मुक्तिकारक होता है। अत समस्त जगत चित्त का ही विषय है, यदि चित्त निराश्रय हो, तो मन उन्मन्य अवस्था से परिपक्व होकर लय योग्य होता है। अत लय को परिपूर्ण 'मै' के प्रति अभ्यास करें। क्यों मन के लय का कारण ही 'मै' है। अनाहत शब्द के भीतर की ध्वनि के अदर ज्योति है, इस ज्योति के अंतर्गत मन है और यह मन ही तीनो लोको की उत्पत्ति, स्थिति तथा सहार का कारण है। अत· जिसमे मन लय होता है, वही विष्णु का परम पद है। इसमे मन का लय होने से पूर्ण अभेदमय शुद्ध अद्वैत तत्त्व की प्राप्ति होती है। यही परम तत्त्व है। इसका ज्ञाता बालक, उन्मत्त या पिशाच के समान ससार में जड़ जैसा आचरण करता है। इस अमस्क का अभ्यास होने से नित्य तृप्ति, मल-मूत्र की अल्पता, कम आहार, दृढ शरीर, जडता का अभाव, निद्रा और पलकों का न झपकाना आदि लक्षणों से युक्त हो जाता है। उसे ब्रह्मदर्शन हेतु सुखमय स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। अधिक समय तक समाधि के अभ्यास से उत्पन्न ब्रह्मरूपी अमृत पीने मे परायण संन्यासी परम हंस अवधूत होता है। उसके दर्शन से जगत पवित्र हो जाता है। उसकी सेवा से अज्ञानी भी युक्त होकर अपनी एक सौ पीढियो का तारण करता है। उसके माता-पिता, पत्नी और संतान सब मुक्त हो जाते हैं। यही उपनिषद है।

□

40. कौशीतकी ब्राह्णोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठता मनो मे वाचि प्रतिष्ठम् आविराविम एधि वेदस्तन आणीस्थ श्रत मे मा प्रहासीरतेनाहोरात्रान्सदधाम्यृतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।

ॐ शांति. शांति शांति ।

हे परमात्मा मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो,मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो,तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ । मुझे वेदो का ज्ञान दो । मै सुने हुए ज्ञान को न भूलू । इस अध्ययन से मै रात-दिन एक कर दूं,मै ऋत एवं सत्य बोलू । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनो की रक्षा करो । दैहिक दैविक तथा भौतिक,तीनो प्रकार के ताप (कष्ट) शांत हों ।

प्रथम अध्याय

गर्ग ऋषि के प्रपौत्र महर्षि चित्र ने अरुण के पुत्र उद्दालक को यज्ञ में बुलाया । उद्दालक ने यहा यज्ञ करने के लिए अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेज दिया । श्वेतकेतु यहा जाकर एक ऊचे आसन पर बैठ गए तव महर्षि चित्र ने उनसे पूछा,'क्या इस लोक मे कोई ऐसा आवरणवाला ऊचा स्थान है, जहा मुझे स्थित करोगे ? या किसी अदभुत आवरणवाले स्थान मे स्थित करोगे ?' श्वेतकेतु बोले, 'मुझे इस विपय मे कोई ज्ञान नही है । मेरे पिता से जाकर पूछिए । तव वह स्वय पिता के पास गए और यह प्रश्न पूछा । पिता ने कहा,'मै कैसे बताऊ ? मै भी इस विपय में नही जानता । अत वही यज्ञ सभा मे तत्त्व के अध्ययन से इस विपय को प्राप्त करेंगे । अन्य व्यक्तियो के समान चित्र से भी धन मिलेगा । अत चलते है । (1)

हाथो मे समिधा लेकर उद्दालक चित्र के पास पहुचे और बोले,'मै यहा ज्ञान-प्राप्ति हेतु आया हू ।' इससे किसी को आश्चर्य नही हुआ । चित्र बोले,'आप वस्तुत ब्रह्मविद्या के अधिकारी है । श्रेष्ठ होते हुए भी आप मेरे यहां आए है । मैं आपको यथार्थ ज्ञान दूगा । श्रेष्ठ कर्मों को करनेवाले लोग इस ससार से प्रयाण के वाद स्वर्ग को ही प्राप्त करते हैं । उनके प्राणों से शुक्ल पक्ष लाभान्वित होता है,कितु कृष्ण पक्ष मे चद्रमा के स्वर्ग में रहने से यह पक्ष लाभान्वित नही होता । चद्रमा स्वर्ग लोक का प्रसिद्ध द्वार ही है । स्वर्ग से पुन गिरना ही है,ऐसा सोचकर जो निष्काम कर्मों से इसका त्याग कर देते है,वे ब्रह्म लोक प्राप्त करते हैं । ऐसा न करनेवाले को पुण्य नष्ट होने पर वर्षा की तरह स्वर्ग से गिरा दिया जाता है । वे यहा कीट,पतंग,पक्षी,व्याघ्र,सिंह,मछली,कुत्ता,पुरुप या किसी अन्य योनि को प्राप्त करते है । इस कर्म एव विद्यामय स्वर्ग नरक की गति को जानकर सदगुरु की शरण में जाने पर गुरु उससे पूछता है,'तुम कौन हो ?' तो वह उत्तर दे—विलक्षण चद्रमा से उत्पन्न होकर श्रद्धा,सोम,वर्षा और अन्न के प्रभाव से उत्पन्न वीर्य जो पुरुप रूप अग्नि मे स्थित है,उसी से

उत्पन्न मुझ प्राणी को संयोग की कामना करनेवाले पुरुष मे स्थित किया है, फिर उसी पुरुष ने मेरा गर्भ में निसेचन किया। उसी से उत्पन्न हुआ मै ब्रह्म जिज्ञासा से जीवित रहा हू। अत आप मुझे अमृत्व देनेवाले ब्रह्मज्ञान के लिए दीर्घायु दें, यही विचार करते हुए मै देवताओं से भी इसके लिए प्रार्थना करता हूं। मेरे द्वारा कहे गए इसी सत्य एवं तपस्या से मै ऋत हू। यदि यह सत्य नही है, तो आप ही बताइए कि मै कौन हू ? क्या मै वही हू, जो आप है ? इस पर गुरु उसे पापों से छुडाकर मुक्त कर देता है। (2)

इस देवयजन मार्ग को प्रापत करके वह पहले अग्निलोक को जाता है। फिर क्रमश वायुलोक में, वरुणलोक मे, आदित्यलोक मे, इद्रलोक में, प्रजापतिलोक मे तथा ब्रह्मलोक मे जाता है। इस ब्रह्मलोक के प्रवेश-द्वार पर एक आर नाम का जलाशय है। कुछ ही दूरी पर येष्टिहा नामक देवता है, फिर विरजा नदी, तब इल्य नामक वृक्ष है और आगे इद्र एव प्रजापति के भवन से भी सुदर एक भवन है, जिसमें ब्रह्मा के दो द्वारपाल बाहर से रहते है, जिसमें विभुप्रमति नामक सभी मंडप है, विचक्ष नाम की वेदी है, अमितौज नाम का ब्रह्माजी का पर्यक (विस्तर) है। मानसी उनकी पत्नी है, प्रतिरूपा एव चाक्षुषी उनकी छाया मूर्ति है। अंबा और अबायत्री वहा अप्सराए है। अबया नाम की नदिया है, जो ज्ञानस्वरूप है। इस ज्ञान का ज्ञाता ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। तब ब्रह्माजी अपने सेवको से उस ब्रह्मज्ञानी को बुलाने की आज्ञा देते हुए कहते है, 'जाओ उसे मेरे यश के अनुरूप आदर से बुला लाओ। वह साधना से विराजा नदी के समीप आ गया है। वह अब कभी वृद्ध नही होगा। (3)

तब पाच सौ अप्सराएं उसे लेने के लिए दौडती है और कई सौ उसके लिए हाथो मे केसर, कुमकुम, वस्त्र आभूषण आदि लेकर उसे ब्रह्मा के अलकारो से अलकृत करती है। इस प्रकार अलकृत होकर वह पूर्वकथित जलाशय के पास जाता है और मानसिक सकल्प से ही उससे पार हो जाता है। अज्ञानी वहा जाने पर उसमे डूब जाते है। यष्टिहा के समीप पहुचने पर देवता उसके तेज के सामने ठहर नही पाते। विरजा को भी वह मन से ही तैर लेता है। उस पुण्यात्मा से द्वेष करनेवाले पाप के भागी बनते है, किंतु उससे प्रेम रखनेवालों को पुण्य मिलता है। वह रथारोही द्वारा चक्रो को देखने के समान रात्रि-दिन, सुकृत-दुष्कृत आदि को देखता भर है उनके सपर्क मे नही आता। अत ब्रह्मज्ञान से यह ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। (4)

इसके बाद ईल्य वृक्ष के पास आने पर उसमे ब्रह्म गंध, सालज्य नगर के पास आने पर दिव्य ब्रह्म रस, अपराजित आयतन (भवन) के पास आने पर तेज ब्रह्म प्रविष्ट होता है। द्वारपाल उसके लिए मार्ग दे देते है विभुप्रमति के पास जाने पर उसमे ब्रह्मयश प्रविष्ट होता है। विचक्षणा के पास आने पर प्रज्ञा एव महत् को देखता है। अमितौजस पर्यक के पास आने पर उसे अगले पापो पर भूत एव भविष्य तथा पिछले पापों पर श्री और ईश्वरी दीखती है। बृहद रथतर मे आने पर वह राम को देखता है। भद्र एव यज्ञायज्ञीय नामक शीर्ष अमृत एव साम इसके दो पाए है। इसकी पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक लगी पट्टिया क्रमश ऋक-साम और यजुर्वेद की प्रतीक है। चद्रमा की रश्मिया बिस्तर है तथा उद्‌गीथ चादर है। उसमे ब्रह्मा बैठते है। इस तत्त्व का ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी इस पर पावो से चढता है। तब ब्रह्मा उससे पूछते है, 'तुम कौन हो ?' तब वह कहे, 'मै उस आकाश योनि स्वयभू से उत्पन्न हुआ हू, जो इस समस्त विस्व का कारण भूत तेज है, मै उसका तेज रूप हू, मै आत्मा हूं, आप भी आत्मा है। जो आप है, वही मै हू। तब ब्रह्मा पूछते है, 'मै कौन हू ?'। (5)

तव वह कहे, 'आप साक्षात सत्य है।' ब्रह्म कहते हैं 'सत्य यथार्थ में क्या है ?' दिव्यता एवं प्राण से भिन्न अदभुत सत्य है। वही सत है, दिव्यता है और प्राण सत्य है। वाणी जिस शव्द को सत्य कहती है, वह इन सवका संयोग है। जो सव कुछ है वही, सत्य है। आप में भी सब कुछ निहित होने के कारण आप सत्य हैं। (यहा से आगे प्रश्नकर्ता ब्रह्मा हैं और उत्तरदाता ब्रह्मवेत्ता हैं) पुलिंग से किसका वोध होता है —'प्राण का।' स्त्रीलिग से —'वाणी का।' नपुंसक लिंग से ? —'मन का।' गध किसके द्वारा ग्राह्य है ? —'घ्राण से।' रूप किसके द्वारा ? —'चक्षु से।' शव्द ? —'श्रोत्र से।' रस ?— 'जिह्वा से।' कर्म ? —'हाथों से।' सुख-दु ख ? —'शरीर से।' आनद रति की प्राप्ति ? —'जननेंद्रिय से।' चलना ?—'पांवों से।' ज्ञान किसके द्वारा ?—'प्रजा से।' तव ब्रह्मा कहने हैं 'यह मेरा लोक तुम्हारा है।'

द्वितीय अध्याय

कौषीतकि ऋषि कहते हैं कि प्राण ही ब्रह्म है। इस प्राण ब्रह्म का मन दूत है, वाणी परिवेष्ट्री, चक्षु रक्षक है और श्रोत्र संदेश सुनानेवाले है। इस प्राण के, मन को, चक्षु को तथा वाणी को जानता है, वह दूतोवाला, रक्षकोंवाला संदेश पाठक वाला तथा परिवेष्ट्रीवाला होता है। समम्त इद्रिया इसे देवताओं द्वारा विना मांगे ही भेंट स्वरूप प्रदान की है। इस रहस्य के ज्ञाता को समस्त प्राणियो की भेंट विना मागे ही प्राप्त होती है। जैसे गाव से भिक्षा न मिलने पर याचक प्रण कर लेता है कि भिक्षा मागकर कभी न खाऊगा, वैसे ही प्राण का उपासक किसी प्रकार की याचना न करे। इसका वह दृढता से पालन करे। याचक मे दीनता होती है। इसलिए उसे भिक्षा दी जाती हैं (किंतु प्राण को याचक विना मांगे ही सव कुछ पा जाता है) ।(1)

महर्षि पैंगप्रस्त ने भी प्राण को ब्रह्म कहा है। इस प्राण ब्रह्म के वाणी से परे चक्षु आदि इद्रिया हैं, चक्षु ने वाणी को चारों ओर से व्याप्त किया है। चक्षु से परे श्रोत्र हैं, इसने चारों ओर से चक्षु को व्याप्त किया है। इसी प्रकार फिर मन है, जो चक्षु को व्याप्त करता है। फिर प्राण है, जो मन को चारो ओर से व्याप्त करता है। देवता इस प्राण ब्रह्म को विना याचना किए वलि (भेंट) प्रदान करते हैं। इस तथ्य के ज्ञाता (उपयुक्त की तरह) यह मानते हैं कि गांव में मांगने पर भी भिक्षा न मिलने पर जैसे याचक पुन भीख न मांगने की प्रतिज्ञा करता है, वे भी किसी से कुछ नही मागेंगे। (2)

इस प्रकार धन की प्राप्ति न होने पर यह अनुष्ठान करे—अमावम्या, पूर्णिमा अथवा किसी शुद्ध तिथि को पुष्य नक्षत्र मे धन का इच्छुक अग्नि-स्थापना करके परि समूह न करके अभिमंत्रित जल में कुशों का अभिषेचन करके इस प्रकार घृत की आहुति दे। अभीष्ट देने वाली वाणी देवी मुझे रुके हुए धन को दे। उसके लिए यह आहुति है (तस्यै स्वाहा)। अभीष्ट सिद्धि में समर्थ प्राण देवता मुझ उपासक को धन प्रदान करें। उसके लिए यह आहुति है। (इसी प्रकार चक्षु, श्रोत्र, मन एव प्रज्ञा देवताओं को भी प्रार्थना करते हुए आहुति दी जाती है।) फिर धूप गध को सूघकर शरीर में घृत का लेप करके मौन रहकर धनवाले के पास जाकर प्रार्थना करने मे धन की प्राप्ति होती है। धनिक यदि दूर होता है, तो दूत मे वुलवा लेता है। (3)

अभीष्ट सिद्धि हेतु किसी का प्रिय बनने के लिए साधक उपर्युक्त विधि से अग्नि स्थापन आदि करके घृताहुति देता हुआ इस प्रकार प्रार्थना करे—यह मै तुम्हारी वाणी को अपने में हवन करता हू, तस्यै स्वाहा। तुम्हारे प्राण को अपने मे हवन करता हू, तस्यै स्वाहा। इस प्रकार नेत्रों को, मन को एव प्रज्ञा को आहुति देने के बाद पूर्वोक्त प्रकार से धूप गध सूघकर घी का लेप कर मौन होकर अभीष्ट व्यक्ति के पास जाकर इसी प्रकार मन में विचार करता हुआ खडा हो। इस प्रकार वह उस व्यक्ति का प्रिय तो होता ही है, साथ ही उसके वहा से चले जाने पर अन्य व्यक्ति भी उसे याद करते है। (4)

अब प्रतर्दन के 'सायमन्न अग्निहोत्र अनुष्ठान के' विषय में कहा जाता है। मनुष्य बोलते समय पूरी तरह श्वास नही ले पाता, अत उस समय वाणी का प्राण मे हवन होता। ये वाणी एव प्राण रूप अनत और अमर आहुतिया प्राणी द्वारा सोते-जागते हवन होती रहती है, जबकि अन्य आहुतिया कर्म से हवन होती है। इस प्राचीन ज्ञान का विद्वान केवल कर्ममयी आहुतिया नही देता। (5)

शुष्कभृगा भी प्राणों को ब्रह्म मानते है। प्राण को ऋक मानकर उपासना करने से श्रेष्ठ वनने के इच्छुक लोग उस ज्ञानी की पूजा करते है। इसे यजुष मानकर उपासना करने से प्राणी (जो श्रेष्ठ बनना चाहते हैं) उससे सहयोग करते है। इसकी श्री मानकर उपासना करने से, यश-रूप में तथा तेज-रूप मे उपासना करने से क्रमश शास्त्रों की श्रीमत्ता, श्रेष्ठ यश एव तेज प्राप्त होता है। इसका ज्ञाता विद्वान सभी प्राणियों में श्री, यश एवं तेज से सपन्न होता है। ईटो की वनी वेदी पर प्राण-रूप अग्नि आत्म स्वरूप है। अध्वर्यु इसका सस्कार करता है। तभी वह प्राणों मे यजुर्वेद से सिद्ध होनेवाले कार्यो की तथा यजुर्वेद से सिद्ध होनेवाले कार्यों में ऋग्वैदिक विधि से सिद्ध होनेवाले कार्यो की और इनमें सामवेद से सिद्ध होने वाले कार्यो की वृद्धि करता है। इन तीनों वेदों की विद्या का अध्वर्यु प्राण है, जो इसका आत्मा कहा जाता है। इसका ज्ञाता प्राणी स्वयं इस आत्मा के समान हो जाता है। (6)

कौषीतकि के द्वारा तीन उपासनाए बतलायी गई है, यज्ञोपवीत को स्पर्श करके आचमन करे। फिर तीन बार पात्र भरकर सूर्य को अर्घ्य देते हुए कहे—'ससार का तिनके के समान त्याग कर देने से सूर्य देवता। आप वर्ग कहे जाते है। आप मेरे पापो को नष्ट करें।' इसी प्रकार मध्याह्न मे कहे 'हे सूर्य देवता। आप उदवर्ग है। मेरे पापों को नष्ट करें।' सायकाल अस्त होते हुए सूर्य से इसी प्रकार प्रार्थना करें—हे सूर्य देव। आप संवर्ग कहलाते है। मेरे पापों को दूर करें। इस उपासना से वह रात या दिन में कभी पाप नही करता। (7)

प्रत्येक महीने अमावस्या का चद्रमा की सूर्य के पश्चिम में उपस्थिति होती है। तब उपर्युक्त विधि से सूर्य की पूजा करे। जलयुक्त अर्घ्यपात्र मे हरी दूब रखे। फिर निवेदन करे, 'हे चद्र-मडल की देवी सुंदर भावोंवाला तुम्हारा हृदय चद्र-मंडल में विराजमान है। तुम अमृतपद की अधिकारिणी हो, मुझे पुत्रलोक में रोना न पडे।' इससे उपासक का पुत्र उससे पहले नही मरता। पुत्रहीन इसी पूजा को करता हुआ यह स्तुति करे—'स्त्री रूप चंद्रमा। तुम पुरुष रूप तेज को प्राप्त कर वृद्धि प्राप्त करो। उत्पत्ति का कारक तेज तुममे स्थित हो। तुम अन्न देनेवाले हो। हे सौम्य। गुणोवाले चद्र। तुम्हारा रस पुष्पो का उपकारी, शत्रुजयी एव शक्तिप्रद है। अन्न-जल पर जीवन-यापन करनेवालो को यह सुलभ है। तुम तेज से हमे यश दो। स्वर्ग में यश को प्रतिष्ठित करो। जिस नारी रूपी चद्र

को बारह आदित्य आनदित करते है वह चद्र तथा अक्षय बलवाला वृहस्पति हमे बलवान बनाए। हे चद्रमा ! हमारे जीवन,प्रजा तथा पशुओ से अपनी भूख शात न करो। हमारे वैरी के जीवन,सतान तथा पशुओ से तृप्त होओ। मै इस मत्र के देवता (सूर्य) का तथा तुम्हारा अनुगमन करनेवाला हू। (8)

पूर्णिमा के दिन जब सामने चंद्रमा दिखाई दे,तो पूर्व विधि से चंद्रमा का उपस्थापन करके यह प्रार्थना करे—'हे सोम ! तुम राजा हो, विलक्षण पाच मुखोवाले हो, और प्रजापति हो। ब्राह्मण अपने एक ही मुख से क्षत्रियो को तथा क्षत्रिय वैश्य को अपने एक ही मुख से जागृत करते है। यह ब्राह्मण एव क्षत्रिय तुम्हारा एक-एक मुख है। अपने इस मुख से तुम मुझे अन्न भक्षण की एव पाचन-शक्ति दो। श्शेन (बाज) और अग्नि भी तुम्हारे एक-एक मुख है, जिनके द्वारा तुम क्रमश पक्षियो तथा समस्त अग्नियो का भक्षण करते हो। इन मुखो से मुझे भक्षण एव पाचन शक्ति दो। पाचवा मुख समस्त जीवों का भक्षण करता है। इससे तुम मुझे अन्न (पूर्ववत) मेरे प्राण, सतान एव पशु किसी का नाश न हो। मेरे शत्रुओ के प्राण सतान तथा पशु नष्ट करो। मै मत्र के देवता का तथा तुम्हारा अनुगामी हू।' इस प्रकार सोम का पूजन करने के बाद पत्नी के पास बैठकर उसके हृदय को स्पर्श करता हुआ कहे, 'हे श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करने वाली तुम सोम रूपा हो और तुम्हारा हृदय संतानों का पोषण करनेवाला है। इसमे स्थित अमृत रूप प्रजापति को मै जानता हू। यह सत्य है। अत मुझे कभी पुत्रशोक न हो। इस प्रकार साधक की सतान उससे पूर्व कभी नही मरती। (9-10)

प्रवास से लौटा पिता पुत्र के माथे को सूघकर कहता है, 'तुम अपने अगो एव शरीर सहित मेरे हृदय मे प्रकट होते हो। पुत्र अपना ही रूप होता है। तुम सौ वर्ष तक जिओ। वश-परपरा को छिन्न मत करो। पुन सौ वर्ष जीवित रहो, मै तुम्हारा माथा सूघता हू।' फिर माथा सूघे। जैसे गाय बछडे के लिए रंभाती है, वैसे ही मै भी तुम्हे पुकारता हू। (मै तुमसे अत्यधिक स्नेह रखता हू) (11)

देव परिसर का वर्णन—अग्नि के जलने पर यह ब्रह्म प्रकाशित होता है। अग्नि के बुझ जाने पर यह तेज आदित्य मे चला जाता है और इसी से ब्रह्म ही दीपित होता है। सूर्यास्त होने पर यह तेज चंद्रमा मे और प्राण वायु मे चला जाता है। तब इसी से ब्रह्म प्रकाशित होता है। चद्रमा के न रहने पर यह विद्युत मे, विद्युत के न रहने पर वायु मे और प्राण भी वायु मे चले जाते है। ये समस्त देवता वायु मे प्रविष्ट होकर तृप्त होते है और कभी निस्तेज नही होते। यहा से इनकी पुन उत्पत्ति. कही गई है कि यह अधिदैवत है। अध्यात्म इस प्रकार है। (12)

मनुष्य जो वाणी बोलता है, यह ब्रह्म ही प्रकाशित होता है। इसकी मृत्यु पर यह तेज चक्षु मे चला जाता है और प्राण, प्राण मे चले जाते हैं। चक्षु से देखना भी ब्रह्म रूप है। चक्षु के मरने पर जब यह नही देखते तब इनका तेज कानो को प्राप्त हो जाता है और प्राण प्राण को। कानों से सुनना भी ब्रह्म का प्रकाशन है। कानों की मृत्यु पर जब ये सुन नही पाते, तो इनका तेज मन को प्राप्त हो जाता है। मन से होनेवाला ध्यान भी ब्रह्म रूप ही है। मन के मरने पर ध्यान नहीं होता, तब इसका तेज प्राण को ही प्राप्त हो जाता है। अत ये समस्त देवता प्राणों में प्रविष्ट होकर तृप्त होते हैं और मूर्छित नही होते। यहा से इनका पुन आविर्भाव होता है। इस ज्ञान के ज्ञाता की आज्ञा की पर्वत भी अवहेलना नही कर सकते। उससे द्वेष करनेवाले सर्वथा नष्ट हो जाते है।(13)

अहंकार से अपने-अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए देवता (इद्रिया) परस्पर विवाद करके शरीर से निकल गए। शरीर मृत हो गया। बाद में इन इद्रियों ने देह में प्रवेश किया, तो शरीर देखने, विचारने, सुनने तो लगा, किंतु प्राणों के अभाव में उठने और कार्य करने में समर्थ न हो सका। प्राणों के प्रवेश करने पर वह उठ पड़ा, अत इन सबने प्राणों को श्रेष्ठ स्वीकार किया। और उसके साथ वायु से प्रतिष्ठित होकर आकाश रूपी स्वर्ग को प्रस्थान किया। अतः जो विद्वान सभी प्राणियो में प्राण ही प्रज्ञा और आत्मा है, ऐसा मानकर इसकी श्रेष्ठता को जानता है, इस वह शरीर को छोडने पर वायु पर होकर आकाश रूपी स्वर्ग में जाता है और वहां रहनेवाले देवताओ के समान अमर हो जाता है। (14)

जब पिता को अपने अतकाल की समीपता प्रतीत होने लगती है, तो वह उसे अपना ज्ञान देना चाहता है। इससे पूर्व घर को नए तृणों से छप्पर डालकर अग्नि जलाकर पात्र सहित कुभ को रखकर वस्त्र से उसे ढककर पुत्र को बुलाकर अपनी समस्त प्राणशक्ति उसमें प्रतिष्ठित करता है। पुत्र के सभी अंगों को स्पर्श करता हुआ वह कहता है, 'मैं अपनी वाणी तुममें स्थापित करता हू।' तब पुत्र कहता है, 'आप अपनी वाणी मुझ मे स्थापित कीजिए।' फिर पिता कहता है, 'मै अपने चक्षु तुम मे स्थापित करता हू,' और पुत्र कहता है, 'आप अपने चक्षु मुझमें स्थापित कीजिए।' इस प्रकार पिता एक-एक करके अपनी प्राण, घ्राण, श्रोत्र, रस, अन्न, कर्म, सुख-दुःख, प्रजननशक्ति, गति प्रज्ञा आदि को कहता हुआ पुत्र में स्थापित करता है और पुत्र स्वीकार करता जाता है। ऐसा करने से पिता को स्वर्ग प्राप्ति होती है। इसके बाद यदि पिता जीवित रहे, तो पुत्र के आश्रय में रहे। अथवा सन्यासी बन जाए। इससे पुत्र को पिता की सारी शक्तिया प्राप्त होती है और वह वास्तविक उत्तराधिकारी बनता है। (15)

तृतीय अध्याय

राजा प्रतर्दन इंद्र के धाम स्वर्ग में गए। युद्ध में उनके पौरुष से प्रसन्न होकर इद्र ने उनसे कहा, 'मैं तुम्हे क्या वर दूं'? प्रतर्दन बोले, 'जिसे आप मनुष्य के लिए कल्याणकार समझते है, मुझे वही वर दीजिए।' इद्र—'वर अन्यों के लिए नही मागा जाता, आप अपने लिए मागिए।' प्रतर्दन—'तब अपने लिए मागने को मेरे पास कुछ नही है।' इंद्र भी अड़ गए, क्योंकि इद्र सत्य रूप है और बोले, 'प्रतर्दन। आप मुझे जानिए। मुझे भली भांति जानना ही मानव के लिए कल्याणकारक है। मैने प्रजापति त्वष्ट्रा के पुत्र का वध किया। आचरणहीन यतियों को काटकर भेडियों को दे डाला। प्रह्लाद के पालक राक्षस को मार, पृथ्वी में पुलोमासुर तथा कालाश्य दैत्य को नष्ट किया। जो मुझे जानता हैद्र उसके मावन-वध, पितृ-हत्या, स्तेय (चोरी), भ्रूण हिंसा आदि जन्य पाप नष्ट होते है। किसी भी कार्य में उसका मुख नीला नही होता (उसे किसी भी कार्य मे असफलता नही मिलती)।(1)

मै प्राण रूप हूं। मुझे प्राण (प्राण ही आयु है), आयु एवं अमृत मानक उपासना करो। प्राण रहने तक ही आयु रहती है। मुझे जानकर प्राणी को अमृत्व मिलता है। मै प्रज्ञा हूं। सत्य-असत्य का निर्णय प्रज्ञा से होता है। मुझे इस रूप में अमृतमय मानने पर पूर्ण आ— के बाद स्वर्ग मे अन—

अमरता का आनंद प्राप्त होता है। कुछों का मत है कि सब प्राण एक भाववाले होते है। कोई भी कानों से सुनने; नेत्रों से देखने तथा मन से विचार करने मे एक साथ समर्थ नही है। अत सब प्राण एक भाववाले हैं। प्रत्येक विषय की अनुभूति अलग-अलग समय में होती है। मन के विचार करने पर या कान के सुनने पर अन्य प्राण (प्राण अपान आदि) उसके साथ हो जाते है। मुख्य प्राण के कार्य में अन्य प्राण वर्ग सहयोगी बनता है। समस्त प्राण एक ही है। पांचों प्राण (प्राण अपान, व्यान, उदान और समान) वस्तुत अत्यंत कल्याणमय है। (2)

यह सब प्रत्यक्ष उदाहरण है कि प्राण रहने पर ही मनुष्य आदि प्राणी जीवितं रहते है। गूंगा भी जीवित रहता है, नेत्रहीन, बहरे, मनहीन बालक, अगहीन सभी जीवित रहते है, किंतु प्राणहीन जीवित नही रहता। अत प्राण ही उपासना करने योग्य है। प्राण ही प्रज्ञा (बुद्धि) है, प्रज्ञा ही प्राण है। अत: दोनों शरीर में एक साथ रहते है और साथ ही बाहर निकलते है। अत. इसी दृष्टि से इन्हे जाने। प्राणी के प्राण के साथ एकाकार हो जाने पर वह सुषुप्तावस्था मे भी स्वप्न नही देखता। तब सभी प्राणी नाम के, शब्द वाणी के, रूप चक्षु के, शब्द श्रोत्र के, चितन मन के साथ (सभी इंद्रिया अपने विषयो के साथ) मुख्य प्राण मे लीन हो जाते है। प्रज्वलित अग्नि की चिनगारियो के समान वाणी आदि सभी जागने पर अपने-अपने स्थानों को ग्रहण कर लेते है। फिर उनमे अग्नि आदि विभिन्न विषयो के प्रकट होने का कारण बनते है। इसकी सिद्धि इस प्रकार समझनी चाहिए। जब मनुष्य किसी कारण से मरने लगता है, तो उस समय वह शक्ति एव चेतना से रहित होने पर किसी परिचित को नही पहचान सकता। उस समय के विषय मे कहा जाता है कि वह तब न कुछ कहता है, न सुनता है, न देखता है और न चिंतन ही करता है, प्राणों में लीन मात्र हो जाता है। उस समय नाम, रूप आदि सब प्राणों मे लीन हो जाते है। पुन. जन्म लेने पर अग्नि से निकलनेवाली चिगारियो के समान प्राण रूप आत्मा के प्राण, अपान आदि पांचों प्राण अपना-अपना स्थान प्राप्त कर लेते है। उनके अधिष्ठाता देवता और लोक आदि भी प्रकट हो जाते है ।(3)

प्राण हमारे शरीरों से इद्रियों सहित उत्क्रमण करता है। तब वाणी सब नामों को, घ्राणेंद्रिय गधो को, नेत्र रूपो को, श्रोत्र शब्दों को तथा मन चिंतनीय विषयो को त्याग देते है। इस प्रकार प्राण मे सभी इंद्रिया समर्पित हो जाती है और अपने-अपने विषयो का परित्याग कर देती है। अत प्राण ही प्रज्ञा है, प्रज्ञा ही प्राण है। दोनों साथ ही देह में निवास करते है और साथ ही उत्क्रमण भी करते है। प्रज्ञा में समस्त-समस्त भूतो के एकीकरण की व्याख्या इस प्रकार है। (4)

वाणी इसकी (प्रज्ञा की) एक अंग है और इसका विषय 'नाम' है, जो इद्रियों का अश है। एक अग की पूर्ति नासिका करती है, जिसका विषय गंध है, जो भूतों (इद्रियों) का एक अश है। इसी प्रकार नेत्र, श्रोत्र, जिह्वा, हाथ, देह, उपस्थ एव पाव ने भी प्रज्ञा के एक-एक अग की पूर्ति की है, जिनके विषय क्रमश रूप, शव्द, रस, आदान, सुख-दु:ख, रति-प्रजनन एव चलना है। प्रज्ञा के एक अग की पूर्ति स्वयं प्रज्ञा ने की है, जिसके वाह्य विषय बुद्धि से अनुभूत वस्तुएं-कामनाए हैं। (5)

प्रज्ञा द्वारा मनुष्य वाणी पर अधिकार रखकर नामों को प्राप्त करता है। इसी प्रकार घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, हाथ, शरीर, उपस्थ, पाव आदि पर अधिकार रखकर क्रमश गंध, रूप, शब्द, रस, आदान, सुख-दु:ख, रति-प्रजनन, गमन (चलना) आदि पर अधिकारकरता है या उन्हे ग्रहण करता है। (6)

प्रज्ञाहीन वाणी किसी नाम का बोध नही करा सकती । प्रज्ञा के साथ न देने पर व्यक्ति कहता है कि उसका मन कही अन्य जगह था, अत वह इसे नहीं समझ पाया । इसी प्रकार प्रज्ञा से हीन होने पर घ्राण, श्रोत्र, नेत्र, जिह्वा, हाथ, देह, उपस्थ, पांव और मन क्रमश सूघना, सुनना, देखना, रस-ग्रहण, आदान, सुख-दु ख, रति-प्रजनन, गमन, मनन आदि का बोध नही होता या इन विषयो का ज्ञान नही रहता है । (7)

वाणी को नही, अपितु वक्ता को (आत्मा को) जानना चाहिए । गध को नही, अपितु गध ग्रहण करने वाले आत्मा को जानना चाहिए । इसी प्रकार रूप, शब्द, रस, आदान, सुख-दु ख, रति-प्रजनन, गमन तथा मन को नही, अपितु इनको ग्रहण करनेवाले अथवा इनको लिए प्रेरित करनेवाले आत्मा को जानना चाहिए । प्रज्ञा मे नाम, रूप आदि दस भूत मात्राएं (विषय) तथा इन भूतो मे वाणी, चक्षु आदि दस इद्रियं प्रज्ञा मात्राए है । भूत मात्राओ के न होने पर प्रज्ञा मात्राओ का तथा प्रज्ञा मात्राओ के न होने पर भूत मात्राओ का अस्तित्व सभव नही है । (8)

प्रज्ञा मात्राओ तथा भूत मात्राओ के स्वरूप मे कोई भी अतर नही है । जैसे रथ के नेति तथा अर नाभि मे आश्रित रहते है, वैसे ही, भूत मात्राएं प्रज्ञा मात्राओ मे तथा प्रज्ञा मात्राएं प्राण पर आश्रित है । प्राण ही अजर, अमर आनदमय और प्रज्ञात्मा है । यह श्रेष्ठ कर्मो से बडा या निम्न कर्मो से छोटा नही होता है । प्रज्ञा एव प्राणरूप परमेश्वर ही श्रेष्ठ कर्मो से मनुष्य को श्रेष्ठ लोको मे तथा दुष्ट कर्मो से निम्न लोको मे भेजता है । यह लोकपाल, लोकाधिपति, सर्वेश्वर है । इस प्रकार के गुणो से युक्त प्राण ही आत्मा है । (9)

चतुर्थ अध्याय

वेदों एव शास्त्रो के पारगत बालकि, गार्ग्य, उषीनर, मत्स्य, कुरु पांचाल, काशी, विदेह आदि देशो मे भ्रमण करते हुए काशी नरेश अजातशत्रु के पास पहुचे और बोले, 'मै तुम्हे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दूगा ।' तब अजातशत्रु बोले, 'इसके लिए मै आपको एक हजार गाये दूगा । आजकल तो ऐसे विषय के लिए हर एक वाणी में केवल जनक का ही नाम है । सब उन्ही के पास दौड़ते है ।' (1)

गार्ग्य बोले, 'मै आदित्य में स्थित पुरुष की ही उपासना करता हूं ।' अजातशत्रु बोले, 'आप इस विषय में न बोले । यह पांडु वस्त्रों मे अधिष्ठित निश्चय ही महान हैं । यह सब प्राणियो में श्रेष्ठ है । में भी इसकी उपासना करता हू । इसकी उपासना करनेवाला सभी प्राणियों से श्रेष्ठ बनता हैं' । (2)

गार्ग्य बोले, 'मै चंद्रमंडल मे स्थित पुरुष रूप ब्रह्म की उपासना करता हू ।' इस पर अजातशत्रु बोले, 'यह चद्रमा सबका राजा है । यही अन्न का प्राण है । मे इसकी वैसी ही उपासना करता हू । ब्रह्म रूप मे इसकी उपासना करनेवाला अन्न का आत्मा बन जाता है ।' (3)

पुन गार्ग्य बोले, 'मै विद्युतमडल स्थित पुरुष की ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू ।' तब अजातशत्रु ने कहा, 'इस विषय में भी आप कुछ न कहें । इस तेज की मै भी आत्मा के रूप में उपासना करता हूं । इस प्रकार से इसकी उपासना करनेवाला तेज का आत्मा हो जाता है ।' (4)

गार्ग्य—'मै मेघमंडल स्थित अंतर्यामी परमेश्वर की ब्रह्म रूप में उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'आप इस संबंध में भी कुछ न बोलें। मै भी आत्मा मानकर इसकी उपासना करता हूं। इसको शब्द का आत्मा मानकर उपासना करनेवाला भी शब्द रूप आत्मा ही वन जाता है।' (5)

गार्ग्य—'मै आकाश में स्थित पुरुष का उपासक हूं।' अजातशत्रु, 'आप इस पर भी कुछ न वोलें। मै इसे प्रकृति शून्य पूर्ण ब्रह्म मानकर उपासना करता हूं। इसकी इस भावना से उपासना करनेवाला सतान एवं पशुओ से युक्त होता है तथा उसकी संतान की अकाल मृत्यु नही होती।'(6)

गार्ग्य—'मै वायुमडलस्थ पुरुष का उपासक हूं।' अजातशत्रु—'आप इस विषय मे कुछ न कहें (संवाद सख्या 17 तक अजातशत्रु के हर कथन मे यह अंश है, अत इसे वहा तक सम्मिलित माने) यही इंद्र है, यही बैकुठ है और यही अपराजिता है। मै इसी भावना से इसका उपासक हू। इसकी इस भावना का उपासक अपराजित तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला होता है।' (7)

गार्ग्य—'मै अग्नि में स्थित पुरुष का उपासक हूं।' अजातशत्रु—' यह विपाहहि है। मैं इसी भाव से इसका उपासक हू। इस प्रकार का उपासक दूसरो के आक्रमण को नही सह पाता।'(8)

गार्ग्य—'मै वारि मडल स्थित पुरुष का उपासक हूं।' अजातशत्रु— वह नामधारी जीवो का आत्मा है। मै ऐसा मानकर ही इसकी उपासना करता हूं। ऐसा उपासक नामधारी प्राणी मात्र का आत्मा हो जाता है।' यह अधिदैविक उपासना है। अब आध्यात्मिक उपासना है (9) –

गार्ग्य—'इस दर्पण में स्थित पुरुष की मै ब्रह्म भाव से उपासना करता हू।' अजातशत्रु—' मै इसकी प्रतिरूप भावना से उपासना करता हूं। इस भाव से इसकी उपासना करनेवाला उपासक प्रतिरूप गुण सपन्न होता है। उसकी संतान भी उसकी प्रतिरूप होती है।' (10)

गार्ग्य—'मै प्रतिध्वनि में स्थित पुरुषक रूप ब्रह्म की उपासना करता हू।' अजातशत्रु—'- मै इसे द्वितीय अनपग मानकर इसकी उपासना करता हूं। इसकी इस भाव मे उपासना करनेवाला स्वय द्वितीय को प्राप्त करता है।' (11)

गार्ग्य—'मै पग-ध्वनि की ब्रह्मरूप में उपासना करता हू।' अजातशत्रु—' मैं उसकी प्राणरूप मे उपासना करता हूं। इसकी इम भाव से उपासना करनेवाला तथा उमकी सतान पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं।' (12)

गार्ग्य—'मैं मनुष्य के पीछे चलनेवाली छाया की ब्रह्मरूप में उपासना करता हू।' अजातशत्रु—' यह छाया मृत्यु रूप है। मैं इसकी इसी रूप में उपामना करता हू। इमकी इम रूप में उपासना करनेवाला मनुष्य नथा उसकी मतति अकाल मृत्यु नही मरते है'। (13)

गार्ग्य—'मै इस शरीर पुरुष की उपामना करता हू।' अजातशत्रु—' मै प्रजापति रूप मे इसकी उपासना करता हू। जो इसकी इस रूप में उपामना करता है, वह प्रजाओं एव पशुओ मे संपन्न होता है।' (14)

गार्ग्य—'मै इस प्राज्ञ आत्मा की, जिसमें संयुक्त पुरुष सुषुप्तावस्था में ˜चरण करता है, उपासना करता हू।' अजातशत्रु—' यह यम या राजा है। मै इसी रूप में इसकी उपासना करता हूं। जो इसकी इस रूप मे उपासना करता है, वह श्रेष्ठ बनता है, समस्त विश्व उसके सामने नत हो जाता है।' (15)

गार्ग्य—'मै दक्षिण नेत्र स्थित पुरुष की उपासना करता हू।' अजातशत्रु—' मै इसकी नाम-आत्मा, अग्नि-आत्मा तथा ज्योति आत्मा के रूप मे उपासना करता हू। इस भावना से इसकी उपासना करनेवाला सबका आत्म रूप हो जाता है।' (16)

गार्ग्य—'मै इसकी बाए नेत्र मे स्थित पुरुष के रूप में उपासना करता हू।' अजातशत्रु—' यह सत्य आत्मा, विद्युत आत्मा और तेजस आत्मा है। मै इसी रूप मे इसकी उपासना करता हूं। जो इसकी इस भाव से उपासना करता है, वह इन सभी का आत्मा हो जाता है।' (17)

तब गार्ग्य चुप हो गए। इस पर अजातशत्रु बोले, 'क्या आपका ज्ञान इतना ही है' ? गार्ग्य ने हामी भरी। अजातशत्रु पुन बोला, 'तब आपने ब्रह्मज्ञान देने की बात व्यर्थ ही की। वस्तुत आपके द्वारा कथित इन सब पुरुषो का कर्ता ही जानने योग्य है।' तब गार्ग्य समिधा लेकर अजातशत्रु के पास गए (समिधा लेकर किसी के पास जाना, उसे गुरु रूप मे स्वीकार करना सूचित करता है) और बोले, 'मैं आपको गुरु के रूप में स्वीकार करने आया हू।' अजातशत्रु ने कहा, 'ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिय का गुरु रूप मे वरण करना सामाजिक नियमो के प्रतिकूल होगा। आप मेरे साथ चले। मै आपको इस ज्ञान की प्राप्ति कराऊगा।' इतना कहकर वह गार्ग्य का हाथ पकडकर एक सोते हुए व्यक्ति के घर ले गए। राजा ने 'हे वृहन! हे पाडरवास!' कहते हुए उसे जगाना चाहा, किंतु वह न जागा। तब राजा ने उसे छडी से पीटा। इस पर वह तत्काल जागकर खडा हो गया। राजा ने गार्ग्य से कहा, 'गार्ग्य! यह व्यक्ति चेतना से हीन होकर कहा सो रहा था और जागकर अब कहा से आया है ?' गार्ग्य इसका उत्तर न दे पाए। (18)

राजा अजातशत्रु उन्हे बताने लगे, 'जहां वह सोया था और जागकर जहा से आया, वह स्थान इस प्रकार है—हृदय कमल से हिता नाम की अनेको नाड़ियां समस्त शरीर मे व्याप्त है। ये बाल के हजारवे भाग के समान पतली है। इनका रग श्वेत, पिगल, लोहित, काला अनेक प्रकार का है। सुप्तावस्था मे जब मनुष्य कोई भी स्वप्न देखता है, तो इन्ही मे रहता है। इसी अवस्था मे जब मनुष्य स्वप्न नही देखता, तब प्राण मे लीन हो जाता है। तब वाणी अपने विषय रूप समस्त नामो के सहित, नेत्र रूपो के सहित, श्रोत्र सभी शब्दो के सहित और मन सभी चितनीय विषयों के सहित प्राण मे स्थित हो जाते है। मनुष्य के जागने पर अग्नि से निकली चिनगारियो के समान सभी इद्रिया अपने-अपने स्थानों पर चली जाती है और अपने-अपने अधिदेवताओ के साथ प्रकट होकर अपने विषयो को प्रकट करते है। डिब्बे मे रखे छुरे के समान अगुष्ठ मात्र पुरुष के रूप मे हृदय मे परमात्मा रहता है। यह प्राज्ञ आत्मा सारे शरीर में नखों से लेकर लोकों तक सर्वत्र विद्यमान रहता है। (19)

जैसे किसी सेठ के सेवक उसी के साथ धन का भोग करते है तथा उसी के अनुगामी होते है, वैसे ही सभी इंद्रियां देह में आत्मा के साथ भोग करती हैं तथा उसी की अनुगामिनी होती है। ये

परस्पर एक-दूसरे का भोग करते है। इंद्र ने जब तक इस आत्मा को नही जाना, तब तक असुर इसे पराजित करते रहते थे, परंतु जब उसने आत्मा को जान लिया, तब उसने असुरो को मार डाला और जीतकर सभी देवताओं में श्रेष्ठ होकर स्वर्ग का राज्य आधिपत्य प्राप्त किया। विद्वान मनुष्य इसी प्रकार प्राणियो मे श्रेष्ठ बनकर स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त करता है। इसके ज्ञाता को भी यही फल प्राप्त होता है। (20)

□

जाबालदर्शनोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अध्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बालमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकरोद निराकरण मस्त्वनिराकरर्ण मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु ।

ॐ शांति शांति शांति ।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रियां तथा बल पुष्ट हों । यह उपनिषद् ब्रह्म स्वरूप जानने योग्य है । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे; हमारा परस्पर अनिराकरण हो । उपनिषदों का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमें व्याप्त हो । दैहिक (शारीरिक), दैवीय और भौतिक (प्राणियों द्वारा होनेवाला) तीनो प्रकार के ताप कष्ट शांत हों ।

प्रथम खंड

भूत भावन भगवान चतुर्भुज महाविष्णु ने योगियों के साम्राज्य को दीक्षित करनेवाले महायोगी दत्तात्रेय के रूप में अवतार लिया था । एक बार मुनियों में श्रेष्ठ गुरुभक्त साकृति नाम के उनके शिष्य ने अत्यंत विनम्रता के साथ अंजलि बाधकर एकांत में उनसे पूछा, 'भगवन । कृपया समस्त प्रपच सहित आठ अंगोंवाले योग के विषय मे मुझे सब कुछ बताइए, जिसके ज्ञानमात्र से मैं जीवनमुक्त हो जाऊ ।' इस पर दत्तात्रेय बोले, 'हे सांकृति । मै तुम्हें इस विषय में सब कुछ बताता हू । ध्यान से सुनो, योगदर्शन आठ अंगोंवाला है । ये आठ अग क्रमश: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि नामवाले हैं । इनमे नियमों के नाम सत्य, अहिसा, दया, आर्जव, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, मिताहार, तथा शुचिता (पवित्रता) है । (1-6)

वेदो मे बतायी गई विधि के अतिरिक्त यदि किसी को मन, वाणी अथवा शरीर द्वारा किसी भी प्रकार से सताया जाता है, तो यही हिसा कहलाती है । इसके अतिरिक्त हिसा और कुछ भी नही है । हे मुनि । मै मानता हूं कि यह आत्मा सर्वगत, अछेद्य (जिसे काटा नहीं जा सकता) तथा अग्राह्य है । और वेदात के ज्ञाताओ ने अहिसा को श्रेष्ठ कहा है । इस आत्मा को चक्षु, घ्राण, श्रोत्र आदि इंद्रियों द्वारा सूंघा अथवा सुना आदि नही जा सकता । अत. इसके विषय में केवल वाणी से कहा गया वर्णन ही सत्य है, अन्यथा इसके विषय मे अन्य किसी भी प्रकार से नही बताया जा सकता । इसके प्रतिकूल परम ब्रह्म सब प्रकार से सत्य है, उसके अतिरिक्त कुछ भी सत्य नही है, इस मत को वेदांत दर्शन के विद्वानों ने परम सत्य कहा है । अन्य धन, संपत्ति, मणि-मुक्ता, रत्न, स्वर्ण आदि किसी भी प्रकार की मूल्यवान अथवा तुच्छ वस्तु से मन को पूर्णतया आसक्ति रहित रखना इन विद्वानों के मत में अस्तेय (चोरी न करना) है । आत्मा के प्रति अनात्म भाव न रखना, अर्थात इसे न स्वीकार करना

परस्पर एक-दूसरे का भोग करते है । इंद्र ने जब तक इस आत्मा को नही जाना, तब तक असुर इसे पराजित करते रहते थे, परंतु जब उसने आत्मा को जान लिया, तब उसने असुरो को मार डाला और जीतकर सभी देवताओं में श्रेष्ठ होकर स्वर्ग का राज्य आधिपत्य प्राप्त किया । विद्वान मनुष्य इसी प्रकार प्राणियो मे श्रेष्ठ बनकर स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त करता है । इसके ज्ञाता को भी यही फल प्राप्त होता है । (20)

☐

41. जाबालदर्शनोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अध्यायंतु ममागानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बालमिद्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषदं माह ब्रह्म निराकरोद निराकरण मस्त्वनिराकर्णं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सतु।

ॐ शांति शाति शांति ।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इद्रियां तथा बल पुष्ट हों। यह उपनिषद् ब्रह्म स्वरूप जानने योग्य है। मैं ब्रह्म का निराकरण न करू, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे; हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदों का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमें व्याप्त हो। दैहिक (शारीरिक), दैवीय और भौतिक (प्राणियो द्वारा होनेवाला) तीनों प्रकार के ताप कष्ट शांत हों।

प्रथम खंड

भूत भावन भगवान चतुर्भुज महाविष्णु ने योगियों के साम्राज्य को दीक्षित करनेवाले महायोगी दत्तात्रेय के रूप मे अवतार लिया था। एक बार मुनियो में श्रेष्ठ गुरुभक्त सांकृति नाम के उनके शिष्य ने अत्यंत विनम्रता के साथ अजलि बाधकर एकात में उनसे पूछा, 'भगवन । कृपया समस्त प्रपच सहित आठ अंगोंवाले योग के विषय मे मुझे सब कुछ बताइए, जिसके ज्ञानमात्र से मैं जीवनमुक्त हो जाऊ।' इस पर दत्तात्रेय बोले, 'हे सांकृति । मै तुम्हें इस विषय में सब कुछ बताता हू। ध्यान से सुनो, योगदर्शन आठ अगोंवाला है। ये आठ अग क्रमश यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि नामवाले हैं। इनमे नियमों के नाम सत्य, अहिसा, दया, आर्जव, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, मिताहार, तथा शुचिता (पवित्रता) है। (1-6)

वेदो मे बतायी गई विधि के अतिरिक्त यदि किसी को मन, वाणी अथवा शरीर द्वारा किसी भी प्रकार से सताया जाता है, तो यही हिसा कहलाती है। इसके अतिरिक्त हिसा और कुछ भी नही है। हे मुनि । मै मानता हू कि यह आत्मा सर्वगत, अछेद्य (जिसे काटा नही जा सकता) तथा अग्राह्य है। और वेदांत के ज्ञाताओ ने अहिसा को श्रेष्ठ कहा है। इस आत्मा को चक्षु, घ्राण, श्रोत्र आदि इद्रियों द्वारा सूंघा अथवा सुना आदि नही जा सकता। अत. इसके विषय में केवल वाणी से कहा गया वर्णन ही सत्य है, अन्यथा इसके विषय मे अन्य किसी भी प्रकार से नही बताया जा सकता। इसके प्रतिकूल परम ब्रह्म सब प्रकार से सत्य है, उसके अतिरिक्त कुछ भी सत्य नही है, इस मत को वेदांत दर्शन के विद्वानों ने परम सत्य कहा है। अन्य धन, संपत्ति, मणि-मुक्ता, रत्न, स्वर्ण आदि किसी भी प्रकार की मूल्यवान अथवा तुच्छ वस्तु से मन को पूर्णतया आसक्ति रहित रखना इन विद्वानों के मत में अस्तेय (चोरी न करना) है। आत्मा के प्रति अनात्म भाव न रखना, अर्थात इसे न स्वीकार करना

और संसार के सभी व्यावहारिक कार्यो मे अनात्म बुद्धि रखते हुए (इन्हें आत्मा से पृथक् मानते हुए) व्यवहार करना भी ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में अस्तेय है। मन, वाणी या देह से स्त्री सहवास का परित्याग ब्रह्मचर्य है और अपनी पत्नी से केवल ऋतु काल में सहवास करना भी ब्रह्मचर्य ही कहा गया है और इंद्रिय विषयो से हटाकर मन को ब्रह्म-भाव में लगाना भी ब्रह्मचर्य कहा गया है। समस्त प्राणियो को आत्मवत समझना तथा मन, वाणी और शरीर से उनके प्रति अपने समान ही व्यवहार करना, इस प्रकार की भावना को भी वेदातवादियो ने दया नाम से पुकारा है। (7-15)

पुत्र, मित्र, पत्नी और शत्रु मे भी साथ ही स्वय में भी एकरूपता का अवलोकन मेरे अनुसार आर्जव है। काया, मन अथवा वाणी द्वारा भी शत्रुओ द्वारा दु ख पहुचाए जाने पर भी बुद्धि मे किसी प्रकार का विक्षोभ न होना क्षमा का लक्षण है। वेदो द्वारा बताए गए मार्ग से ही ससार की मुक्ति हो सकती है, अन्य किसी भी प्रकार से नही, इस ज्ञान के दृढ निश्चय को वैदिक विद्वानों ने वृत्ति कहा है। 'मैं वही आत्मा हू, इस प्रकार की बलवती भावना को मति कहा जाता है। अल्पमात्रा मे सात्त्विक भोजन से आधे पेट को अन्न से, एक चौथाई को जल से तथा शेष एक चौथाई को वायु के लिए रिक्त छोड़ देना योगी के परिमित आहार का लक्षण है। योग के लिए इसी प्रकार भोजन करना अनुकूल माना गया है। हे मुनि ! मिट्टी एवं जल से शरीर को स्वच्छ करना वस्तुत इसकी बाह्य शुद्धता है, किंतु मै विशुद्ध आत्मा हू, ऐसा मानसिक मनन विद्वानो की दृष्टि मे वास्तविक पवित्रता है। देह तो अत्यत मलिन है, किंतु देही (देह में रहनेवाला आत्मा) अत्यंत निर्मल है, इस प्रकार इनके अंतर को जानकर किसे पवित्र करना चाहिए (अर्थात आत्मा की निर्मलता ही श्रेष्ठ है)। ज्ञान रूपी पवित्रता को छोड़कर जो व्यक्ति बाह्य पवित्रता मे ही लगा रहता है, वह मूर्ख वस्तुत: स्वर्ग का परित्याग करके लोष्ठ (मिट्टी का टुकडा) को ग्रहण करता है। ज्ञान रूपी अमृत को पीकर तृप्त बना योगी कृतार्थ हो जाता है। उसके लिए ससार मे कुछ भी शेष नही रह जाता। यदि वह समझे कि उसे अभी कुछ करना शेष है, तो वह वास्तविक तत्त्ववेत्ता नही कहा जा सकता। आत्मवेत्ताओ के लिए तीनो लोको में भी करने को कुछ भी शेष नही रहता, अतः हे साकृति मुनि ! सभी प्रकार से प्रयत्न करते हुए अहिसा आदि साधनो से अनुभवमय ज्ञान को प्राप्त करके आत्मा को अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म समझो। (16-25)

द्वितीय खंड

तप, सतोष, आस्तिकता, लज्जा, दान, व्रत, मति, ईश्वर, पूजन एव सिद्धातो का श्रवण, ये दस नियम कहे जाते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है—वेदों में कहे गए कृच्छ एव चाद्रायण आदि व्रतो द्वारा अपने शरीर को सुखान तप कहलाता है। मोक्ष के स्वरूप एवं आत्म को ससार रूपी बधन प्राप्त होने के कारणों पर विचार करना तत्त्व ज्ञानियों की दृष्टि में तप है। भाग्य से जो कुछ भी मिल जाए उसे ईश्वर की इच्छा समझकर स्वीकार करना संतोष है। सभी जगह अनासक्त रहकर ब्रह्मलोक आदि के सुखों के प्रति भी विरक्ति होना और तब भी प्रसन्न मन रहना श्रेष्ठ सतोष कहलाता है। वेदों एवं स्मृतियों में कथित धर्म में विश्वास धर्म है। सकट ग्रस्त अथवा श्रेष्ठ वैदिक ज्ञान संपन्न विद्वानों को जो न्यायपूर्वक अर्जित किया हुआ धन दिया जाता है, मैं उसे दान कहता हू।
(1-7)

असत्य, कटुता आदि से रहित भाषण, राग (आसक्ति) आदि से रहित मन तथा हिसा आदि क्रूरता से रहित मन से किया गया कर्म ही ईश्वर-पूजन है। यह सत्य, नित्य, ज्ञान स्वरूप, अनत, परम आनद एव ध्रुव है। इस सिद्धात का पुन-पुन श्रवण एव इसके अनुकूल आचरण ही सिद्धात श्रवण है। वैदिक एव लौकिक मतो ने जिन कार्यों को निदनीय माना है, उनको करने मे होनेवाला स्वाभाविक सकोच लज्जा है। सभी वैदिक सिद्धातों पर श्रद्धा तथा इनसे सबध रहित होने पर गुरु के द्वारा बताये गए मार्ग पर श्रद्धा ही मति है। वेदोक्त प्रकार से मत्रो का बार-बार अभ्यास करना जप है। साथ ही कल्पसूत्र, वेद, धर्मशास्त्र, पुराण एव इतिहास मे मन का लगा रहना भी मेरे मत मे जप ही है। जप के 'वाचिक' एव मानस दो भेद होते है। वाचिक पुन· दो प्रकार का होता है 'उपाशु' और 'उच्च'। मानसिक जप भी 'मनन' और ध्यान के' भेद से दो प्रकार का होता है। उच्च जप से उपाशु जप हजार गुना तथा उपाशु से मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ होता है। उच्च जप भी सभी को यथोक्त फल देता है, कितु मत्र-जप के समय यदि इसे नीच लोक सुन ले, तो यह फलहीन हो जाता है। (8-16)

तृतीय खंड

स्वास्तिक, गोमुख, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, मुक्तासन, मयूरासन तथा सुखासन— ये नौ आसन होते है। घुटनो और जाघो के बीच मे दोनो पांवो को अच्छी तरह से रखकर गर्दन, सिर और शरीर को सीधा रखने पर स्वस्तिकासन होता है। इसका नित्य अभ्यास करे। दाहिने घुटने को बांई ओर से तथा बाए घुटने को दाहिनी ओर से पीछे की ओर ले जाए— इसे गोमुखासन कहते हैं। तलुओं को ऊपर को करते हुए दो पांवों को (दाए को बाए मे और बाए की दाहिने मे) दोनो जाघो मे रखकर इनके अगूठो को विपरीत हाथो से पीछे की ओर पकडने से पद्मासन बनता है। यह आसन सभी रोगों को दूर करनेवाला है। बाएं पैर को दक्षिण जघा पर रखकर तनकर बैंठने से वीरासन होता है। पावो को दोनों अंडकोशो के नीचे पार्श्व में रखे हाथो से दोनो पावो तथा पार्श्व भाग को दृढता से बाधकर बैठे, इससे भद्रासन बनता है, जो समस्त विषजन्य रोगो को नष्ट करता है। सीवनी की सूक्ष्म रेखा को बाए घुटने से दबाकर और फिर दाहिने घुटने से बाए को दबाने पर मुक्तासन होता है। दोनो 'हथेलियो को फैलाकर भूमि मे रखे फिर कुहनियो को नाभि के दोनो ओर लगाए। तब सिर और पावो को ऊंचा उठाकर आकाश मे (शून्य मे) दड की तरह सीधे सतुलित हो जाए। इस प्रकार बननेवाला यह मयूरासन समस्त पापों को नष्ट करनेवाला होता है, जिस प्रकार से बैठने पर सुख एवं धैर्य उत्पन्न होता है, उसे सुखासन कहते है। अशक्त-दुर्बल लोग इस आसन को करे। जो आसनों को सिद्ध कर लेता है, वह वस्तुत तीनो लोको को जीत लेता है। इसी प्रकार आसनो से प्राणायाम करे। (9-13)

चतुर्थ खंड

शरीर अपने हाथ की 96 अगुलियों के बराबर होता है। इसके मध्य मे तपे सोने के समान अग्नि का स्थान है। हे साकृति । मै सत्य कहता हू, यह त्रिकोण की आकृति का है। पायु से दो

और संसार के सभी व्यावहारिक कार्यो मे अनात्म बुद्धि रखते हुए (इन्हें आत्मा से पृथक् मानते हुए) व्यवहार करना भी ज्ञानी पुरुषो की दृष्टि में अस्तेय है। मन, वाणी या देह से स्त्री सहवास का परित्याग ब्रह्मचर्य है और अपनी पत्नी से केवल ऋतु काल मे सहवास करना भी ब्रह्मचर्य ही कहा गया है और इंद्रिय विषयो से हटाकर मन को ब्रह्म-भाव में लगाना भी ब्रह्मचर्य कहा गया है। समस्त प्राणियो को आत्मवत समझना तथा मन, वाणी और शरीर से उनके प्रति अपने समान ही व्यवहार करना, इस प्रकार की भावना को भी वेदांतवादियों ने दया नाम से पुकारा है। (7-15)

पुत्र, मित्र, पत्नी और शत्रु मे भी साथ ही स्वयं में भी एकरूपता का अवलोकन मेरे अनुसार आर्जव है। काया, मन अथवा वाणी द्वारा भी शत्रुओं द्वारा दुःख पहुचाए जाने पर भी बुद्धि मे किसी प्रकार का विक्षोभ न होना क्षमा का लक्षण है। वेदो द्वारा बताए गए मार्ग से ही ससार की मुक्ति हो सकती है, अन्य किसी भी प्रकार से नही, इस ज्ञान के दृढ निश्चय को वैदिक विद्वानों ने वृत्ति कहा है। 'मैं वही आत्मा हूं, इस प्रकार की बलवती भावना को मति कहा जाता है। अल्पमात्रा मे सात्त्विक भोजन से आधे पेट को अन्न से, एक चौथाई को जल से तथा शेष एक चौथाई को वायु के लिए रिक्त छोड़ देना योगी के परिमित आहार का लक्षण है। योग के लिए इसी प्रकार भोजन करना अनुकूल माना गया है। हे मुनि ! मिट्टी एवं जल से शरीर को स्वच्छ करना वस्तुत इसकी बाह्य शुद्धता है, किंतु मै विशुद्ध आत्मा हू, ऐसा मानसिक मनन विद्वानो की दृष्टि मे वास्तविक पवित्रता है। देह तो अत्यंत मलिन है, किंतु देही (देह में रहनेवाला आत्मा) अत्यत निर्मल है, इस प्रकार इनके अंतर को जानकर किसे पवित्र करना चाहिए (अर्थात आत्मा की निर्मलता ही श्रेष्ठ है)। ज्ञान रूपी पवित्रता को छोड़कर जो व्यक्ति बाह्य पवित्रता मे ही लगा रहता है, वह मूर्ख वस्तुत. स्वर्ग का परित्याग करके लोष्ठ (मिट्टी का टुकडा) को ग्रहण करता है। ज्ञान रूपी अमृत को पीकर तृप्त बना योगी कृतार्थ हो जाता है। उसके लिए संसार मे कुछ भी शेष नही रह जाता। यदि वह समझे कि उसे अभी कुछ करना शेष है, तो वह वास्तविक तत्त्ववेत्ता नही कहा जा सकता। आत्मवेत्ताओं के लिए तीनो लोकों में भी करने को कुछ भी शेष नही रहता, अत. हे सांकृति मुनि ! सभी प्रकार से प्रयत्न करते हुए अहिसा आदि साधनों से अनुभवमय ज्ञान को प्राप्त करके आत्मा को अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म समझो। (16-25)

द्वितीय खंड

तप, संतोष, आस्तिकता, लज्जा, दान, व्रत, मति, ईश्वर, पूजन एव सिद्धातो का श्रवण, ये दस नियम कहे जाते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है—वेदों में कहे गए कृच्छ एव चाद्रायण आदि व्रतो द्वारा अपने शरीर को सुखान तप कहलाता है। मोक्ष के स्वरूप एव आत्म को ससार रूपी बधन प्राप्त होने के कारणों पर विचार करना तत्त्व ज्ञानियों की दृष्टि में तप है। भाग्य से जो कुछ भी मिल जाए उसे ईश्वर की इच्छा समझकर स्वीकार करना संतोष है। सभी जगह अनासक्त रहकर ब्रह्मलोक आदि के सुखों के प्रति भी विरक्ति होना और तव भी प्रसन्न मन रहना श्रेष्ठ सतोष कहलाता है। वेदों एव स्मृतियों में कथित धर्म में विश्वास धर्म है। संकट ग्रस्त अथवा श्रेष्ठ वैदिक ज्ञान संपन्न विद्वानों को जो न्यायपूर्वक अर्जित किया हुआ धन दिया जाता है, मै उसे दान कहता हूं। (1-7)

असत्य, कटुता आदि से रहित भाषण, राग (आसक्ति) आदि से रहित मन तथा हिसा आदि क्रूरता से रहित मन से किया गया कर्म ही ईश्वर-पूजन है। यह सत्य, नित्य, ज्ञान स्वरूप, अनत, परम आनद एव ध्रुव है। इस सिद्धात का पुन-पुन. श्रवण एव इसके अनुकूल आचरण ही सिद्धात श्रवण है। वैदिक एव लौकिक मतो ने जिन कार्यो को निदनीय माना है, उनको करने में होनेवाला स्वाभाविक सकोच लज्जा है। सभी वैदिक सिद्धातो पर श्रद्धा तथा इनसे सबध रहित होने पर गुरु के द्वारा बताये गए मार्ग पर श्रद्धा ही मति है। वेदोक्त प्रकार से मत्रो का बार-बार अभ्यास करना जप है। साथ ही कल्पसूत्र, वेद, धर्मशास्त्र, पुराण एवं इतिहास मे मन का लगा रहना भी मेरे मत मे जप ही है। जप के 'वाचिक' एव मानस दो भेद होते है। वाचिक पुन· दो प्रकार का होता है 'उपाशु' और 'उच्च'। मानसिक जप भी 'मनन' और ध्यान के' भेद से दो प्रकार का होता है। उच्च जप से उपाशु जप हजार गुना तथा उपाशु से मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ होता है। उच्च जप भी सभी को यथोक्त फल देता है, किंतु मत्र-जप के समय यदि इसे नीच लोक सुन ले, तो यह फलहीन हो जाता है। (8-16)

तृतीय खंड

स्वास्तिक, गोमुख, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, मुक्तासन, मयूरासन तथा सुखासन— ये नौ आसन होते है। घुटनों और जाघो के बीच मे दोनो पांवो को अच्छी तरह से रखकर गर्दन, सिर और शरीर को सीधा रखने पर स्वस्तिकासन होता है। इसका नित्य अभ्यास करे। दाहिने घुटने को बाई ओर से तथा बाए घुटने को दाहिनी ओर से पीछे की ओर ले जाएं— इसे गोमुखासन कहते है। तलुओ को ऊपर को करते हुए दो पावों को (दाए को बाए मे और बाए को दाहिने मे) दोनो जाघो मे रखकर इनके अंगूठों को विपरीत हाथों से पीछे की ओर पकडने से पद्मासन बनता है। यह आसन सभी रोगों को दूर करनेवाला है। बाए पैर को दक्षिण जघा पर रखकर तनकर बैठने से वीरासन होता है। पावो को दोनों अडकोशों के नीचे पार्श्व मे रखे हाथो से दोनो पावो तथा पार्श्व भाग को दृढता से बाधकर बैठे, इससे भद्रासन बनता है, जो समस्त विषजन्य रोगो को नष्ट करता है। सीवनी की सूक्ष्म रेखा को बाएं घुटने से दबाकर और फिर दाहिने घुटने से बाए को दबाने पर मुक्तासन होता है। दोनों 'हथेलियो को फैलाकर भूमि में रखे फिर कुहनियो को नाभि के दोनो ओर लगाए। तब सिर और पावो को ऊचा उठाकर आकाश में (शून्य मे) दड की तरह सीधे सतुलित हो जाए। इस प्रकार बननेवाला यह मयूरासन समस्त पापो को नष्ट करनेवाला होता है, जिस प्रकार से बैठने पर सुख एव धैर्य उत्पन्न होता है, उसे सुखासन कहते है। अशक्त-दुर्बल लोग इस आसन को करे। जो आसनो को सिद्ध कर लेता है, वह वस्तुत तीनो लोको को जीत लेता है। इसी प्रकार आसनो से प्राणायाम करे। (9-13)

चतुर्थ खंड

शरीर अपने हाथ की 96 अगुलियो के बराबर होता है। इसके मध्य मे तपे सोने के समान अग्नि का स्थान है। हे साकृति । मै सत्य कहता हू, यह त्रिकोण की आकृति का है। पायु से दो

अंगुल ऊपर तथा उपस्थ से दो अंगुल नीचे का स्थान ही देह का मध्य भाग है। यही मूलाधार है। इससे 9 अंगुल ऊपर कंद स्थान है। यह चार-चार अंगुल लंबा-चौड़ा तथा मुर्गी के अडे के समान होता है। यह ऊपर से त्वचा आदि से ढका हुआ है। हे श्रेष्ठ मुनि! इसी कंद स्थान के मध्य में योगतत्त्व के ज्ञाता नाभि को वताते है। कंद के मध्य भाग की नाड़ी सुषुम्ना कहलाती है। इसके चारों ओर वहत्तर हजार नाड़ियां हैं। इनमें सुषुम्ना, पिगला, इड़ा, सरस्वती, पूषा, वरुणा, हस्तजिह्वा, यशस्विनी, अलंवुसा, कुहू, विश्वोदरी, तपस्विनी, शंखिनी तथा गांधारी— ये चौदह प्रमुख नाड़िया मानी जाती है। इनमें तीन नाड़ियां प्रधान हैं तथा इन तीनों में भी सुषुम्ना प्रमुख है, इसे ब्रह्म-नाड़ी भी कहा जाता है। पीठ के मध्य भाग में अस्थियों का समूह मेरुदंड है। इससे निकलकर सुषमा मस्तक पर्यंत प्रतिष्ठित है। नाभिकंद के दो अंगुल नीचे आठ प्रकृतियों से युक्त कुडली है। (9-11)

यह कुडली वायु के प्रयत्न एवं अन्न-जल आदि को रोककर सदा नाभि स्कंद के दोनों पार्श्वों को घेरे रहती है तथा अपने मुख से ब्रह्मरंध्र के मुख को आवृत्त किए रखती है। सुषुम्ना के दक्षिण एवं वाम भाग मे क्रमश पिगला और इडा होती हैं और दोनों पार्श्वों में सरस्वती और कुहू होती है। पिगला के पृष्ठ और पूर्व में क्रमश: पूषा और यशस्विनी होती हैं। कुहू और हस्तजिह्वा के मध्य में विश्वोदरी प्रतिष्ठित है। यशस्विनी और कुहू के बीच मे वरुणा स्थित है। गाधारी और सरस्वती के मध्य शंखिनी कही जाती है। नाभिकंद के मध्य से पायु (गुदा) पर्यंत अलंवुसा है। सुषुम्ना, अर्थात् राका के पूर्व भाग में कुहू स्थित है। यह ऊपर से नीचे तक स्थित होने से नासिका तक मानी जाती है। इड़ा वाम नासिका तक है। यशविनी वाए चरण के अंगूठे के अंत तक है। पूषा पिगला के पीछे से लेकर बांई आंख तक है। यशस्विनी वाएं कान तक है। सरस्वती जिह्वा तक तथा हस्तजिह्वा वाए पांव के अंगूठे तक है। शंखिनी नाडी वाएं कान तक है। गांधारी को वेदांतवेत्ता वाएं नेत्र तक स्थित मानते है। (12-22)

विश्वोदरी नाभिकंद के मध्य में स्थित है। प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नागकूर्म, क्रकर, देवदत्त तथा धनंजय— ये दस वायु सभी नाडियों में विचरण करते है। इनमें प्राण, अपान आदि प्रारंभ के पाच ही मुख्य रूप से प्राण वायु कहे जाते हैं और इन पांचों में भी प्राण एवं अपान इन दोनों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्राण वायु नासिका, नाभि तथा हृदय में सदा सचार करता रहता है। अपान पायु में, उपस्थ में, घुटनों में, समस्त उदर में, कमर में, नाभि में तथा जांघों में रहता है। व्यान कानों, नेत्रों, कंधों, घुटनों प्राण स्थान तथा गले में विद्यमान रहता है। उदान वायु, दोनों हाथों तथा पांवों में रहता है। समान नि संदेह समस्त देह में रहता है। शेष पाच वायु, नाग कृकर आदि त्वचा, अस्थि आदि में रहता है। प्राण के कार्य सांस लेना तथा उसे छोडना और खांसना है। अपान का कार्य मूत्र-पुरीष विसर्जन करना है। समान वायु का कार्य समस्त देह को संतुलित अवस्था में रखना है। उदान वायु ऊर्ध्वगामी है। व्यान को वेदांती लोग नाद करनेवाला कहते हैं। डकार आना, वमन आदि करना इसी के कार्य हैं। शरीर में शोभा आदि धनजय के कार्य हैं। आंखें खोलना, वंद करना आदि कूर्म के, भूख, प्यास आदि उत्पन्न करना कृकर के तथा तंद्रा, आलस्य आदि उत्पन्न करना देवदत्त के कार्य कहे गए है। (23-34)

सुषुम्ना, इड़ा, पिगला तथा सरस्वती नाडी के देवता क्रमश. शिव, विष्णु, ब्रह्मा और विराट है। पूषा का सूर्य, वरुणा का वायु, हस्तजिह्वा का वरुण, यशस्विनी का भास्कर, अलवुसा का जल (वरुण), गाधारी का चंद्रमा तथा कुहू का देवता क्षुधा है। इसी प्रकार शखिनी, पयस्विनी एवं विश्वोदरा नाडी के देवता क्रमश. चंद्रमा, प्रजापति तथा अग्नि है। इड़ा एवं पिगला नाड़ियो में क्रमश चद्र एवं सूर्य सदा संचार करते है। पिगला से इडा में प्राणमय सूर्य के सक्रमण को वेदात के ज्ञाता उत्तरायण कहते है। इसके विपरीत पिगला में प्राणरूप सूर्य का सक्रमण दक्षिणायन कहलाता है। जब प्राण इड़ा एवं पिगला की संधि में आता है, तो इसे अमावस्या कहते हैं। मूलाधार में प्राण का प्रवेश होना तपस्वियों की दृष्टि मे अतिम विषुव योग है। सभी उच्छवास एव नि.श्वास मासों की सक्रातिया है। प्राण का इडा से कुंडली स्थान मे आना सोम-ग्रहण कहा जाता है तथा पिगला से कुंडली स्थान में सूर्य का आगमन सूर्य ग्रहण होना है। (35-47)

शरीर के मस्तक में श्री पर्वत तथा ललाट में केदार नामक तीर्थ हैं। नाक तथा दोनों भौंहों के मध्य वाराणसी है। स्तनो के स्थान पर कुरुक्षेत्र तथा हृदय-कमल में प्रयाग है। हृदय के मध्य में चिदंबर तथा मूलाधार से कमलालय नामक तीर्थ है। आत्मा सबसे महान तीर्थ है, अत इसको न जानकर बाह्य तीर्थो मे जाना हाथ में रखे हुए मूल्यवान रत्न को छोडकर कांच को लेकर घूमने के समान है। भावतीर्थ सभी कर्मों में प्रमाण स्वरूप महान तीर्थ है, अत: इसी को गले से लगाए। पत्नी को तथा पुत्री संतान का आलिगन करना दूसरी बात है। तीर्थो में केवल जल और काष्ठ आदि से निर्मित मूर्तियां ही है; योगी आत्मा रूपी तीर्थ की पूजा करते है, अत वे तीर्थो में नही घूमते-फिरते। बाह्य तीर्थ व्यर्थ है; आत्मा रूपी तीर्थ ही परम तीर्थ है। शरीर के अंदर स्थित दुष्ट चित्त-तीर्थो मे स्नान करने से शुद्ध नही होता, क्योंकि यह भी मदिरा भरे पात्र को बाहर से धोने के समान शुद्ध नही हो सकता। शरीर में स्थित विषुव योग, उत्तरायण, दक्षिणायन, सूर्य-चद्र ग्रहण, वाराणसी आदि तीर्थों मे भावनामय स्नान से ही मनुष्य शुद्ध होता है। अज्ञानियों के भावों की शुद्धि के लिए ज्ञान योग मे परायण योगियो के पाद प्रक्षालन का (पाव धोने का पानी) जल ही तीर्थो का जल है। (48-53)

मूर्ख व्यक्ति शिव को तीर्थ में, दान में, जप मे, यज्ञ में काष्ठ पाषाण की प्रतिमाओं आदि मे देखता है, अपने शरीर में नही देखता, जबकि वास्तविक शिव इसी शरीर मे है। इस प्रकार के मुझ शिव को, जो मै उसके हृदय में ही स्थित हू, छोड़कर बाह्य स्थूल मूर्तियों को देखनेवाला वस्तुत हाथ मे रखे भोजन पिड को छोड़कर कुहनी को चाटता है। योगी शिव को प्रतिमाओ मे नही, अपितु आत्मा मे देखते हैं। प्रतिमाए तो अज्ञानियो की भावनाओं के लिए बनायी गई है। अपूर्व, अद्वितीय, सत्य, अगम्य, प्रज्ञानधन, आनंद स्वरूप ब्रह्म को अपने आत्मा में देखनेवाला ही वस्तुत ब्रह्म को जानता है। यह नर देह नाड़ियों का पुज मात्र है। इसे सदा सारहीन समझो। अत इसके प्रति अपनत्व भाव को त्याग दो और अपने को परमात्मा ही समझो। इन शरीरों में रहनेवाले महान अशरीर आनंद धन, अविनाशी ईश्वर के समान ही स्वयं को भी साक्षात ब्रह्म माननेवाला धैर्यशाली शोकमुक्त हो जाता है। आत्मा-परमात्मा के मध्य भेद रूपी अज्ञान के नष्ट होने पर, जब ज्ञान प्राप्त होने पर कौन मूर्ख फिर इन दोनों में भेद की बात करेगा। (54-60)

पंचम खंड

सांकृति ने पुन निवेदन किया है कि हे ब्रह्मन्! संक्षेप में नाडी शुद्धि किस प्रकार होती है सम्यक रूप से बतलाइए, जिसके शुद्ध होने पर 'सत' का ध्यान करता हुआ जीवन मुक्त हो जाऊ। तब भगवान दत्तात्रेय बोले—मै नाड़ी-शुद्धि को सक्षेप मे कहता हू। इसे ध्यान से सुनो। शास्त्रो द्वारा बताए कर्मो का पालन करते हुए कामना, संकल्प आदि का त्याग कर देना चाहिए। यम आदि आठ अंगों का शांति एवं सत्य-परायणता से पालन करे। ज्ञानियों की सेवा मे शिक्षा प्राप्त करे। पर्वत शिखर, नदी-तीर बेल-वृक्ष के नीचे, वन में या किसी मनोरम शुद्ध स्थान में मठ बनाकर रहे। उत्तर या पश्चिम को मुख करके आसन लगाएं। ग्रीवा, सिर एवं शरीर को सीधा रखते हुए निश्चल बैठे। नासाग्र में (नाक के आगे) चद्रमंडल की कल्पना करते हुए उसमें प्रणव बिदु पर तुरीय स्वरूप ब्रह्म को अमृत प्रवाहित करते हुए आंखों से प्रत्यक्ष देखें। इड़ा से प्राण वायु को खीचकर उदर मे भरें और देह के मध्य में स्थित अग्नि का चिंतन करें मानो खीची हुई वायु में अग्निदेव की ज्वालाए उठ रही है। बिदु-नाद युक्त अग्नि बीज का चितन करके पिगला से रेचक करे। पुन अग्नि बीज को विचारते हुए पिंगला से पूरक करे और इड़ा से रेचक करें। तीन-चार दिन तक लगातार अथवा नित्य तीनों संध्याओं को तीन, चार या छ बार इसी प्रकार करें। इससे नाडी शुद्ध होती है। शरीर का हलकापन, जठराग्नि का बढना, आहत नाद की अभिव्यक्ति आदि कुछ प्रत्यक्ष अनुभव इसकी सिद्धि के लक्षण हैं। इनका अनुभव न होने तक अभ्यास करते रहने से अभ्यास मे अवश्य सफलता मिलती है। ऐसा न करने पर आत्मशुद्धि का अनुष्ठान करना चाहिए। आत्मा शुद्ध, सदा नित्य, सुखरूप एवं स्वयं प्रकाशित है। अज्ञान के कारण ही इसमें मलिनता आती है और ज्ञान प्राप्ति पर यह शुद्ध हो जाता है। अज्ञान रूपी मल का कीचड़ को ज्ञान रूपी जल से धोकर पुरुष सर्वथा शुद्ध हो जाता है। सांसारिक कार्यों में रत व्यक्ति शुद्ध नही हो पाता। (1-14)

षष्ठ खंड

हे सांकृति! आदर से सुनो, मै प्राणायाम के क्रम को बताता हू। प्राणायाम पूरक कुभक एव रेचक इन तीन क्रियाओ से होता है। प्रणव (ओम—अ + अम) में तीन वर्ण है, जो क्रमश पूरक, कुभक एव रेचक के प्रतीक हैं। इन तीनों का सम्मिलित स्वरूप ही प्रणव है। सोलह मात्राओं के समय में 'अ' को स्मरण करते हुए इडा से पूरक करें। चौसठ मात्राओं तक 'उ' का ध्यान करते हुए कुभक करें। जब तक सभव हो जप करते हुए उसे धारण करते रहें। बाद में धीरे-धीरे 'म' का ध्यान करते हुए बत्तीस मात्राओ के समय में पिंगला से रेचक करें। यही प्राणायाम है। इसका पुन अभ्यास करें। दूसरों बार सोलह मात्राओं तक 'अ' को स्मरण करते हुए पिंगला से पूरक, 'उ' का ध्यान करते हुए चौंसठ मात्राओं तक कुभक तथा 'म' का ध्यान करते हुए इडा से बत्तीस मात्राओं से रेचक करें। इसी प्रकार पुन इड़ा से पूरक (आदि क्रमश) करें। नित्य उसका अभ्यास करें। छ मास तक अभ्यास करने पर पूर्ण ज्ञान हो जाता है। योगी इसका नित्य अभ्यास करें। एक वर्ष तक अभ्यास करने से ब्रह्म साक्षात्कार होता है। (1-11)

प्राणायाम के ज्ञान द्वारा ही मुक्तता मिलती है। बाहर से वायु को उदर में भरना पूरक है। भरे हुए कुभ की तरह इसे उदर मे धारण करना कुंभक है। इसे खाली करके वायु को बाहर निकालना रेचक है। प्राणायाम के समय पसीना आना प्राणायाम की निम्नता को बताता है, पसीना आना मध्यम श्रेणी के प्राणायाम को सूचित करता है और साधक का इस अवस्था में भूमि से ऊपर उठ जाना प्राणायाम की उत्तमता का परिचायक है। इस उत्तम श्रेणी का प्राणायाम होने तक अभ्यास करते रहें। अतत यह प्राणायाम भी सिद्ध हो जाता है। सिद्धि पर सुखानुभूति होती है। प्राणायाम से चित्त शुद्ध होता है, जिससे अत में साक्षात आत्म-तत्त्व के दर्शन होते हैं, और प्राण चित्त से संयुक्त होकर परमात्मा मे स्थित होता है। इस अवस्था में देह के भूमि से उठने पर मुक्ति होती है। अब उसे पूरक एव रेचक का अभ्यास छोड़कर केवल कुंभक का ही नित्य अभ्यास करना चाहिए। इससे योगी सभी पापो से मुक्त होकर श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करता है। उसे मन के अनुसार तेज गति मिलती है तथा वृद्धावस्था के चिह्न सफेद बाल, झुर्रियों आदि से मुक्ति मिल जाती है। केवल प्राणायाम में ही निष्ठा होने से योगी के लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नही रहती, अत पूर्ण प्रयत्न से प्राणायाम का सम्यक अभ्यास करना चाहिए। (12-20)

अब मै प्राणायाम के विनियोगों के विषय में कहता हूं। प्रातः-साय दोनों संध्याओं में, ब्रह्म मुहूर्त मे अथवा मध्याह्न में सदैव बाह्य प्राण वायु को खीचकर उदर को भर लें। इसे नासिकाग्र में, नाभिमध्य मे तथा पाव के अंगूठे में धारण करें। इससे मनुष्य सभी रोगों से मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। नासिका के अग्रभाग में धारण करने से प्राण वायु को जीत लेता है, नाभि मध्य में धारण करने से रोग-निवृत्ति होती है तथा पांव के अगूठे में धारण करने से शरीर में हलकापन होता है। जिह्वा द्वारा खीचकर वायु पान करने से श्रम एव दाह शाति होकर नीरोगता प्राप्त होती है। जिह्वा से वायु को खीचकर जिह्वा मूल मे रोककर पीने से सारे सुख प्राप्त होते हैं। इड़ा से वायु को खीचकर भ्रूमध्य में रोकने के बाद इसे अमृत समझकर पीने से समस्त रोगों से मुक्ति मिलती है। इडा एव पिगला से वायु को खीचकर नाभि में रोकने से भी व्याधि से मुक्ति प्राप्त होती है। एक मास तक तीनों सध्याओं में शनै-शनै वायु को खीचकर अमृत की तरह पीते हुए नाभि मे रोकने से वात एव पित्त जनित रोग पूर्णतया नष्ट हो जाते है। नाक के छेदो से वायु को खीचकर दोनों आखों मे तथा कानों में इसे रोकने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं। इस प्रकार की वायु को रोककर सिर में धारण करने से सिर के रोग सचमुच नष्ट हो जाते हैं। (21-32)

एकाग्र मन से स्वस्तिकासन लगाकर अंगूठों से कानों को ढंककर तर्जनियों से नेत्रों को बद कर लें तथा अन्य अगुलियों से नाक को भी बंद कर लें। तब धीरे-धीरे अपान को ऊपर उठाते हुए प्रणव का जप करें। आनद की अनुभूति होने तक वायु को रोके रहें। इससे प्राण का ब्रह्मरध्र में प्रवेश होता है, इस पर पहले शख के समान नाद ध्वनि होती है, फिर मेघ जैसी ध्वनि होती है। इसके बाद सिर के मध्य में वायु के जाने पर पर्वत शिखर से गिरते हुए झरने के समान ध्वनि होती है। इसके बाद योगी प्रसन्नता के साथ साक्षात आत्मा के प्रति उन्मुख हो जाता है। फिर इस ज्ञान की निष्पत्ति स्वरूप जगत के प्रपचों से मुक्ति मिल जाती है। दाहिने गुल्फ से सीवनी को दबाकर घुटनो के नीचे जोड़ो में स्थित भगवान—त्रयबक का ध्यान करके गणेश एवं सरस्वती का स्मरण करे। फिर लिग की

नाल से वायु को खीचकर उसे आगे की ओर से खीचते हुए, साथ-ही-साथ प्रणव का जप करते हुए वायु को मूलाधार के मध्य मे स्थापित करें। इससे वहां की अग्नि प्रदीप्त होकर कुंडली मे चली जाती है। फिर यह वायु सुषुम्ना द्वारा अग्नि के साथ चली जाती है। इस प्रकार का अभ्याम करते रहने से वायु को जीता जाता है। (32-43)

पहले स्वेद (पसीना), फिर कपन तथा अंत में शरीर का ऊपर उठना वायु को जीत लेना सूचित करता है। इस अभ्यास के चलते रहने पर रोगों का मूलत नाश हो जाता है। भगदर (बावासीर) जैसे रोग भी ठीक हो जाते है। छोटे-बडे पापो के नाश होने के फलस्वरूप चित्त शुद्ध एव दर्पण के समान निर्मल हो जाता हैं। फिर ब्रह्मा आदि देवताओ के भोगो से भी वैराग्य हो जाता है। ससार से विरक्त कैवल्य प्राप्ति का साधन है। इसी पाप नाश के बाद भगवान सदा शिव के ज्ञान से जो एक बार भी ज्ञान रूप अमृत का पान कर लेता है, वह सब कुछ छोडकर उसी के प्रति दौड पडता है। अज्ञानी इस विश्व को ज्ञान स्वरूप कहते है, ज्ञानी इसे भोग रूप समझते है। आत्म स्वरूप का ज्ञान होने से अज्ञान का नाश होता है। अज्ञान का नाश होने पर राग आदि विषय भी नष्ट हो जाते है। इन विषयों के नष्ट होने पर पुण्य पाप भी नष्ट हो जाते है। इनके नाश से पुनर्जन्म भी नही होता। (43-51)

सप्तम खंड

हे महामुनि। अब मैं प्रत्याहार के विषय मे बताता हू। स्वाभाविक रूप में अपने विषयो मे विचरणशील इंद्रियों को बलात उनसे लौटाना आहरण कहलाता है। समस्त दृश्यमान ब्रह्म ही है। इस प्रकार की भावना का होना भी ब्रह्मवेत्ताओ की दृष्टि में प्रत्याहार ही है। मानव मृत्यु पर्यत जो कुछ भी शुद्ध या अशुद्ध करता है, उसे ब्रह्म को समर्पित कर देना भी प्रत्याहार है। ब्रह्म की आराधना समझते हुए नित्यकर्मो अथवा कामनाओं का करना भी प्रत्याहार ही है। या वायु को खीचकर दूसरे स्थान पर रोकें, दातो के मूल से वायु को खीचकर पहले कठ में फिर कठ से हृदय मे तथा हृदय से नाभि मे ले जाकर रोकें। फिर यहा से भी ले जाकर कुंडली में रोके। कुडली से मूलाधार मे रोके। फिर अपान से कमर के दोनो ओर फिर उस मध्य मे, तब दोनों जघेओ में और अत मे पाव के अगूठे में रोके। प्रत्याहार में निरत लोग इसी को प्रत्याहार कहते है। इस अभ्यास में लगे हुए महात्मा पुरुष के सभी पाप तथा सासारिक रोग नष्ट हो जाते है। स्वस्तिकासन में निश्चल बैठकर नाक से वायु को खीचकर पावों से लेकर मस्तक पर्यत भर ले। फिर इस वायु को दोनों पांवो मे, मूलाधार मे, नाभिकंद में, हृदय मध्य मे, कठमूल में, तालुओं में, भ्रूमध्य मे, ललाट मे तथा मूर्धा में धारण करे। एकाग्रचित से आत्मबुद्धि को त्याग कर निर्विकल्पक आत्मा में बुद्धि को स्थित करें। साक्षात ब्रह्म के वेत्ताओं ने इसी को प्रत्याहार कहा है। इसके अभ्यास से योगी के लिए कुंछ भी दुर्लभ नही रहता। (1-14)

अष्टम खंड

इसके पश्चात अब मै पाच प्रकार की धारणाओं के विषय में बताता हू। शरीर मे स्थित आकाश में बाह्य आकाश को धारण करें। इसी तरह प्राण से बाह्य वायु को, जठराग्नि मे बाह्य अग्नि।

को और शारीरिक जल मे बाह्य जल को धारण करे। तथा इन पाचो धारणाओ के समय क्रमश 'ह' 'य' 'व' 'र' 'ल' इन मंत्रो का उच्चारण करे। इसे सभी पापो को नष्ट करनेवाली धारणा को श्रेष्ठ माना गया है। जानुओ के अंत तक पृथ्वी का अश, घुटनो से गुदा तक का भाग जल का अश, गुदा से हृदय तक अग्नि का अंश, हृदय से भौहो तक वायु का अश और यहा से मस्तक तक आकाश का अंश कहा गया है। पृथ्वी के अश मे ब्रह्मा का, जल के अंश मे विष्णु का, अग्नि के अश मे महेश का, वायु के अंश में ईश्वर का तथा आकाश के अश मे सदाशिव के अश की धारणा करनी चाहिए। हे साकृति मुनि । अब मै एक अन्य धारणा के विषय मे बताता हूं। बुद्धिमान योगी स्वय को आत्मा मे नित्य, सर्वशासक, बोधमय एव आनदमय परमात्मा को धारण करे। इससे सभी पापो से मुक्ति मिलकर साधक सर्वथा शुद्ध हो जाता है। ब्रह्मा आदि कार्य रूपो को उनके अपने-अपने कारणो मे लय करके सर्व कारण, अव्यक्त, अनिरूप्य, अचेतन एव साक्षात तत्त्व को अपने आत्मा मे धारण करे तथा इस धारणा मे समस्त कलाओ से परिपूर्ण प्रणव (ओम) रूपी परमात्मा मे अपने मन का लय कर दे और मन के साथ इद्रियो को भी उसमे ही संयुक्त कर दे। (19)

नवम खंड

अब ध्यान के विषय मे बताता हू। इस ध्यान से समस्त सांसारिकता का नाश हो जाता है। ऋत (ऋत का अर्थ प्राकृति नियम है, जो कभी नही बदलते, सर्वथा सत्य होते है। जैसे दिन के बाद रात, जन्म के बाद मृत्यु अवश्य होती है, सूर्य पूर्व मे ही उदय होता है। इत्यादि) सत्य, परम ब्रह्म, समस्त संसार की एकमात्र औषधि, ऊर्ध्वरेता, विश्वरूप तथा विकराल नेत्रोवाले महेश्वर की, जो ईश्वरो का भी ईश्वर है, 'सोऽहम्' भावना से धारणा करे। अथवा सत्य, ईश्वर, ज्ञानस्वरूप, आनदमय, अद्वैत, परम निश्चल, नित्य, आदि-मध्य-अत में स्थित, स्थूल, अनाकाश, अस्पर्श्य, अदृश्य, रूप, गंध रहित, अप्रमेय, अनूप, सच्चिदानद अनंत ब्रह्म मै ही हू, ऐसी अभेद प्रतीत भी मुक्ति देनेवाली होती है। इस प्रकार अभ्यास करते रहने से महात्मा पुरुष को नि सदेह क्रमश वेदात ज्ञान की प्राप्ति होती है। (1-6)

दशम खंड

'अब भवनाशक समाधि के विषय मे बताता हू। परमात्मा एव जीवात्मा की एकता का निश्चयात्मक ज्ञान ही समाधि है। यह आत्मा नित्य, सर्वगत देह रहित एव दोष रहित है। एक होते हुए भी यह माया द्वारा उत्पन्न भ्रम के कारण अनेक दिखाई देता है। वस्तुत आत्मा एव परमात्मा मे कोई भेद नही है, माया के प्रपच नाम की कोई वस्तु नही है। जैसे एक ही आकाश (शून्य) घडे मे घटाकाश तथा मठ के ऊपर मठाकाश कहलाता है, वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा मे कोई भेद नही है। अज्ञानी इन्हे दो रूपों में मानते हैं। जो ज्ञानी अपने को देह, प्राण, इंद्रिय, मन आदि नही मानते तथा साक्षी रूप में एकमात्र परमात्मा शिवरूप को ही मानते हैं, उनकी ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि ही समाधि कही जाती है। (1-5)

'मै वही ब्रह्म हूं, कोई अन्य सांसारिक जीव नही, मुझसे परे किसी वस्तु का अस्तित्व नही है। जैसे फेन एव लहरे समुद्र से उत्पन्न होकर पुन उसी में मिल जाती हैं, उसी प्रकार यह जगत मुझसे

ही उत्पन्न होकर मुझमें ही लीन हो जाता है। इसी प्रकार मेरा मन भी मुझसे पृथक् नही है। इस प्रकार की अनुभूतिवाला योगी परम आनंद स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करता है। जब उसके चित्त में सर्वव्यापक आत्म चैतन्य की अनुभूति होने लगती है, तब वह स्वयं परमात्मा रूप में स्थित हो जाता है। जब वह समस्त प्राणियों को स्वयं में तथा स्वयं को समस्त प्राणियों में देखने लगता है, तब वह साक्षात ब्रह्म ही हो जाता है। समाधि में स्थित योगी परमात्मा से एकाकार हो जाने पर अपने से भिन्न किसी भी प्राणी को नही देखता। इस अवस्था में वह परमात्मा में ही स्थित हो जाता है। अपनी आत्मा को ही सत्य रूप में देखने तथा विश्व को माया की क्रीड़ा मात्र देखने पर वह परम आनद को प्राप्त कर लेता है। (6-12)

'इस समस्त ज्ञान को देने पर भगवान दत्तात्रेय चुप हो गए। सांकृति मुनि अपने स्वरूप को जानने के बाद निर्भय होकर परम आनंद को प्राप्त हुए'। (13)

□

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांति शाति शांति ।

गौतम ने सनत्कुमार से निवेदन किया, 'भगवन् ! आप समस्त धर्म-तत्त्वो के ज्ञाता है, सभी शास्त्रों मे विशारद है। अत कृपया यह बताए कि ब्रह्म विद्या का ज्ञान किस उपाय से हो सकता है ?' इस पर सनत्कुमार बोले, 'समस्त धर्मो पर विचार करने के बाद उनके मतो को जानकर भगवान् शिव ने पार्वती को जो कुछ भी बताया था, हे गौतम ! उसी सब ज्ञान को तुम मुझसे सुनो। इस गोपनीय ज्ञान को हर किसी को नही देना चाहिए। योगियो के लिए यह कोष के समान है। हस आत्मा की स्थिति को बताने वाला यह वर्णन मुक्तिरूप फल को प्रदान करनेवाला है। केवल शात प्रकृति, इद्रियजयी गुरुभक्त ब्रह्मचारी के सामने ही इस ज्ञान को प्रकट करना चाहिए। जैसे काष्ठ मे अग्नि एव तिलो में तेल होता है, वैसे ही सारे शरीर मे यह 'हस-हस' का ध्यान करता हुआ होता है। इसके ज्ञाता मृत्यु को जीत लेते है। (1-5)

सर्वप्रथम वायु को खीचकर आधार चक्र की वायु को बाहर निकालकर स्वाधिष्ठान चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करे। मणिपूरक चक्र मे जाकर अनाहत चक्र का अतिक्रमण करके विशुद्ध चक्र में प्राणो को रोककर आज्ञाचक्र के ध्यान के बाद ब्रह्मरध्र का ध्यान करो। ऐसा करते हुए 'मै त्रिमात्रा स्वरूप हूं', इस प्रकार का ध्यान करने से साधक उसी के समान बन जाता है। यह परम हस, जिसने समस्त जगत को व्याप्त कर रखा है, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान है। इसकी आठ प्रकार की वृत्ति होती है। पूर्व दल मे पुण्यमती, आग्नेय मे निद्रा, आलस्य आदि, दक्षिण मे क्रूर बुद्धि, नैऋत्य मे पाप बुद्धि, वारुणी मे क्रीडा-बुद्धि, वायव्य मे गमन बुद्धि, चद्रमडल मे रति तथा ईशान कोण में द्रव्य आदन होता है। साथ-ही-मध्य मे वैराग्य, केश में जागृत अवस्था, कर्णिका मे स्वप्न-लिग मे सुषुप्ति और तुरीय होता हैं। इस प्रकार का ध्यान करने से आधार चक्र से ब्रह्मरंध्र तक जो नाद होता है, उसे शुद्ध स्फटिक के समान परमात्मा कहा गया हैं। (6-9)

इसमे हस ऋषि है, अव्यक्त गायत्री छंद, परम हस देवता, 'ह' बीज, 'स' शक्ति तथा 'सोऽहम्' कीलक है। इस प्रकार इन छ मे एक रात-दिन मे वीस हजार छ सौ से भी अधिक सासे होती हैं। सूर्य, सोम, निरजन, निराभास आयतन सूक्ष्म तनु, प्रेरित करे। अग्नि के लिए वौषट्—इस प्रकार हृदय से अन्य अगो मे इसके अगन्यास एव करन्यास होते है। ऐसा करके हृदय मे हस स्वरूप आत्मा का ध्यान करें। (10-13)

अग्नि एव सोम इस हंस के पक्ष (पखे) है, 'उ' सिर है, विंदु नेत्र है, मुख रुद्र है, रुद्राणी दोनों

चरण हैं और काल दोनो हाथ है। इस प्रकार मन रहित होकर इसका अजय उपसंहार कहा गया है। इस स्थिति मे भाव हंस के वश मे रहते है। इसी जप कोटि से नाद का अनुभव होता है,जो दस प्रकार का है। दसो नाद क्रमश इस प्रकार है—पहले चिणि नाद होता,फिर चिणि-चिणि होता है। इसके बाद क्रमश. घटानाद,शखनाद,तन्त्रीनाद,तालनाद,वेणुनाद,भेरीनाद,मृदगनाद तथा दसवा मेघ का नाद होता है। (14-16)

दसो नादो मे प्रथम नौ को छोड़कर केवल दसवें का ही ध्यान करना चाहिए। प्रथम नाद के अभ्यास से शरीर मे चिणचिणाहट होती है,दूसरे के अभ्यास से शरीर टूटने का भय रहता है। तीसरे से पसीना आता है,चौथे से सिर कापने लगता है,पाचवे से तालु से लार का स्राव होता है,छठे से अमृत-वर्षा होती है,सातवे से गूढ ज्ञान प्राप्त होता है,आठवे से परा वाणी की प्राप्ति होती है,नवे से अदृश्य होने की शक्ति तथा निर्मल दिव्य दृष्टि की प्राप्ति और दसवे नाद से परम ब्रह्म का ज्ञान एव उसका सान्निध्य (समीपता) मिलता है। (17-20)

उसमे मन के लय होने पर,सकल्प-विकल्पो का नाश होने से पाप-पुण्य दग्ध हो जाते है। तब सदाशिवमय, सर्वत्र व्यापक, स्वय ज्योति, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निरजन परम शात ब्रह्म से साधक प्रकाशमय हो जाता है। यही वेदो का वचन है। यही ज्ञान का सार है। (21)

□

43. स्वसंवेद्योपनिषद

जल के बुलबुलों के समान प्राणी अदृश्य अमर ब्रह्म में लीन हो जाता है। लीन हो जानेवालों का जन्म नही होता। जैसे घडा टूटकर मिट्टी में, कपडा फटकर धागों में बंट जाता है, वैसे ही प्राण की भी स्थिति हो जाती है। जगत का न तो उपादान कारण है, न उसकी कोई उपादेयता है और न वह निमित्त कारण है। वस्तुत विद्या, पुराण, वेद, इतिहास, यह जगत, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, बिंदु, कला, प्रारंभ, मध्य, अंत आदि सभी है ही नहीं। मुनि भी शब्दों के बुलबुलों से बने हुए है। वे पुराण, इतिहास आदि का अभिमान करते है। उन्हें वास्तविक ज्ञान प्राप्त ही नही होता; वे अज्ञान से घिरे रहते है। अत उन्हे प्रमाण नही माना जा सकता।

उसके ज्ञान से कोई भी प्रयोजन नहीं। जो चीज सचमुच मे है या जो नही है वह भी सच है। जगत में सब कुछ समय एवं स्वभाव के कारण है। न पाप है न पुण्य है, अतः सोने का पहाड़ या गाय दान करनेवाले तथा गौ हत्यारे, शराबी, चोर, ठग आदि सब एक समान हैं। समय के कारण यह सब होता है, आत्मा इन सबसे अलग है। उसके द्वारा गाय, ब्राह्मण, शराबी, चोर, ठग आदि के कोई कार्य नही होते। यह सब अपने-अपने मत है। अत उनका निर्वाण और नरक कुछ नही होता। यह सभी जानते है।

तत्त्वज्ञान अधकार है, क्योकि अज्ञानियों के मार्ग को इसमें उचित कहा गया है। उन्हे इस पर गर्व है। वे सुदर वचनों से मोहित होते हैं। यह सब गुड़ के अंदर कडवी दवा देने जैसा धोखा है। सब लोभ के कारण ही अनेक देवताओं, गुरुओं, तीर्थों आदि की शरण लेते हैं। कुछ हमें वैदिक (वेदों को माननेवाला) कहते है, कुछ नही कहते। कोई सर्वशास्त्रों का ज्ञाता बनता है, कोई स्वयं को देवों की कृपा का पात्र बताता है, कोई स्वप्न में देवता की कृपा से सब कुछ बता देने की बात करते हैं, कोई अपने को देवता कहते है, कोई वैष्णव बनता है, कुछ नाचते है, कुछ मूर्ख स्वयं को परम भक्त बताते हुए नाचते है और रोते है। ये सब अज्ञानी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं, वे वस्तुतः तत्त्वज्ञानी होते हैं। उनके मतों मे भेद हो सकता है। जिस ईश्वर में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि जाते हैं उसी में कुत्ते, गधे आदि भी लीन होते हैं, अत. कुत्ते, गधे आदि भी न ऊंच है; न नीच हैं और न मध्यम हैं, अर्थात सब समान हैं। अत यह सब ठीक ही है।

इस प्रकार न तो 'वह', 'क्या' आदि शब्द, माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्र या मित्र कुछ भी नही है। अत साधक अपने स्वरूप को जानने के लिए या मोक्ष के लिए संतों की सेवा करें। पत्नी, पुत्र, घर, धन आदि सब कुछ उनके ऊपर छोड़ दें। कर्माद्वैत (दो प्रकार के कार्य) नही, अपितु भावाद्वैत करना चाहिए। सर्वाद्वैत (सब एक जैसा) सबसे अच्छा है। गुरु सबसे बढकर है, अत उसे अलग ही समझना चाहिए। वही प्रकाश दिखाता है। उससे बड़ा कौन हो सकता है ? वह सत्य ही जीवनमुक्त है। इसे भली-भाति समझना चाहिए।

□

44. जाबाल्योपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बलमिद्रियाणिच सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषद माहं ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु।

ॐ शांति शांति शाति ।

भगवान् जाबालि से पिप्पलादि ने पूछा, 'परमतत्त्व के बारे में बताइए। तत्त्व क्या है ? जीव क्या है ? पशु कौन है ? ईश्वर क्या है ? मोक्ष का उपाय क्या है ?' जाबालि बोले, 'तुमने वडी अच्छी बात पूछी है, जो भी मुझे ज्ञात है, मैं बताता हूं।' पिप्पलादि ने फिर पूछा, 'यह सब आपको किसने बताया ?' 'कार्तिकेय ने'—उत्तर मिला। 'उन्हें किसने बताया ?' पुन पूछने पर जाबालि बोले, 'ईशान ने।' इस पर पिप्पलादि ने कहा, 'यह रहस्य मुझे भी बताइए।' (1-9)

जाबालि बोले, 'अज्ञान से पशुपति ही प्राण धारण कर जीव बनता है। पच तत्त्वों के कारण ही वह पशु हो जाता है। (पशु कौन है ?) जन्म लेने के कारण जीव ही पशु है। जीवो का स्वामी होने से ईश्वर पशुपति है।' पिप्पलादि—'जीव पशु कैसे है ? उसकी उत्पत्ति कैसे होती है ?' जाबालि—'घास खानेवाले, बुद्धिहीन, दूसरे के अधीन, खेती आदि कार्य करनेवाले, सब दु खो को सहनेवाले, अपने स्वामी के दास गाय के समान सभी प्राणी पशु ही हैं। ईश्वर उनका स्वामी है।' पिप्पलादि—'तब ज्ञान कैसे होता है ?' जाबालि—'विभूति धारण करने से।' पिप्पलादि—'यह कैसे धारण की जाती है ? कहां-कहा धारण की जाती है ?' (10-18)

जाबालि बोले—'सद्योजातादि०' 'अग्निरति०' 'मामस्तोक०' 'त्र्यायुष०' 'त्र्यंबक०' इन मंत्रों से क्रमश भस्म ग्रहण करें, अभिमंत्रित करें तथा हाथ जल से गीला करें, सिर-ललाट, छाती-कधो में लगाएं और तीन रेखाएं लगाएं। सभी वेदों में वेदवादियो ने 'इसे शाभव व्रत कहा है। अत मोक्ष पाने के लिए इसे लगाएं।' (19)

सनत्कुमार ने इसे प्रमाण बताते हुए कहा है कि ललाट, भौंहों के बीच तथा आखों के ऊपर विभूति की तीन रेखाएं (त्रिपुंड) लगाएं। इसकी पहली रेखा गार्हपत्य अग्नि, रजोगुण, (ओम का) अ, भूलोक, अपनी आत्मा, क्रिया शक्ति, प्रात पूजा तथा प्रजापति है। दूसरी रेखा दक्षिण अग्नि, 'उ', सत्त्वगुण, अंतरिक्ष लोक, अतरात्मा, इच्छाशक्ति, मध्य दिन की पूजा और विष्णु है। तीसरी रेखा आह्वनीय अग्नि, 'म' द्यु लोक, परमात्मा, ज्ञानशक्ति, सामवेद, साय की पूजा और महादेव है। इस भस्म के त्रिपुड को लगानेवाला विद्वान, ब्रह्मचारी, गृहस्थ या यती, जो भी हो, वह सभी पापों से छूट जाता है। वह सभी वेदों को पढनेवाले के समान, सभी देवताओं की पूजा करनेवाले के समान, सभी तीर्थों में नहाए के समान और रुद्रमत्रों का जप करनेवाले के समान हो जाता है। उसका फिर से जन्म नही होता। यह सत्य रहस्य है। (20-23)

शांतिपाठ .

ॐ अप्यायतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बलमिंद्रयाणिच्च सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषद माह ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सतु।

ॐ शाति. शांति शांति।

प्रथम अध्याय

शरीर नष्ट होनेवाला है, ऐसा विचार करते हुए वैराग्य के कारण राज्य बड़े पुत्र को देकर राजा वृहद्रथ वन में चला गया। वहां उसने हाथ ऊपर करते हुए सूर्य पर दृष्टि जमाकर कठोर तपस्या की। एक हजार वर्ष बाद बिना धुए की अग्नि के समान शाकटान्य मुनि वहां आए। उन्होने राजा से वर मागने को कहा। राजा बोला, 'आप आत्मा को जाननेवाले है। आप मुझे आत्मतत्त्व का उपदेश दीजिए।' मुनि बोले, 'यह कठिन विषय है। दूसरा वर मागो।' ऋषि के चरण छूते ही राजा बोले, 'समुद्र सूख जाते है, पर्वत टूट जाते है, पृथ्वी डूब जाती है और देवता भी नही रहते। अत सारा विश्व नाश होनेवाला और विषयों मे डूबा हुआ है। इनमें डूबे प्राणी को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। मैं कुएं के मेढक के समान हूं। आप ही मेरा उद्धार कीजिए। मनुष्य मां-बाप के मैथुन से उत्पन्न होता है। यह शरीर मूत्र द्वार से निकला, मास से लीपा, चमड़े से मढ़ा हुआ हड्डियों का ढांचा है। इसमें मल-मूत्र आदि भरे है। ज्ञान रहित शरीर व्यर्थ है। मुझे शरण दें।' (1-3)

मुनि बोले, 'तुम धन्य हो। आत्मा 'मरुत' कहा जाता है।' राजा ने कहा, 'आत्मा क्या है ?' इस पर मुनि बोले, 'शब्द-स्पर्श आदि अनर्थकारी विषयों में पड़कर प्राणियो का आत्मा ब्रह्म को भूल जाता है। तप से ज्ञान होता है, ज्ञान से मन वश मे होता है। इससे आत्मा की प्राप्ति होने पर संसार से मुक्ति मिलती है। जैसे अग्नि बुझ जाती है, वैसे ही वृत्तियों के नाश होने से, सारे विषय झूठ लगते है, चित्त ही ससार है, अत प्रयत्नपूर्वक इसे शुद्ध करने से तन्मयता होती है। चित्त के शुद्ध होने पर ही शुभ-अशुभ कर्म नष्ट होने पर आत्मा में लीनता और कभी कष्ट न होनेवाला सुख मिलता है। चित्त जितना सासारिक विषयो में लगता है, उतना यदि ब्रह्म में लगे, तो मुक्ति अवश्य मिलती है। हृदय कमल में रहनेवाला आत्मा कर्मो का साक्षी है। परमात्मा मन, वाणी आदि से नही जाना जानेवाला है। वह आदि-अत सब मे है। वह स्वय प्रकाश, भावना की गतिवाला, अहेय, अनुपादेय, विचित्र, ध्रुव, गभीर, प्रकाशमान, चारों ओर निराभास, निर्वाणमय और अकेला है। यह परम आनदमय, प्रत्येक प्रत्यक्ष रूप को धारण करनेवाला निसदेह मै ही हू। (अर्थात प्रत्येक आत्मा परमात्मा ही हैं) (4-15)

'जिसे आत्मा का ज्ञान हो जाता है,वह असंग कहलाता है। वह आशा के पिशाच को दूर कर देता है और उसे संसार मदारी के खेल के समान लगता है। तब उसे दुःख छू भी नही सकते। वर्ण-आश्रम को माननेवाले मूर्ख कर्मों का फल भोगते हैं। इन्हें छोड़कर आत्मा में रहनेवाला आनद भोगता है। वर्ण-आश्रम और शरीर नाश होनेवाले तथा कष्ट देनेवाले है,अत पुत्र,शरीर आदि से मोह त्यागकर अनंत सुख (आत्मा को जानना) चाहिए।' (16-18)

द्वितीय अध्याय

भगवान् मैत्रेय एक बार कैलाश गए। उन्होने भगवान शिव से कहा,'हे ईश्वर ! मुझे परम तत्त्व का रहस्य बताइए।' शिव बोले,'शरीर को मंदिर कहा गया है। इसमे जीव केवल शिव ही है। अत अज्ञान को छोड़कर 'मैं वही हूं',ऐसा मानकर उसे पूजो। आत्मा-परमात्मा में भेद न समझना ज्ञान है,विषय-बुराइयों रहित मन ध्यान है,मन को शुद्ध रखना स्नान,तथा इद्रिय-निग्रह शुद्धता है। ब्रह्म-अमृत पीएं,केवल जीवित रहने हेतु भिक्षा लें तथा एकांत में रहे। बुद्धिमान को इसी से मुक्ति मिलती है। मां-बाप के मल से उत्पन्न सुख-दुःख के घर इस अपवित्र शरीर के मरने पर इसे छूकर स्नान किया जाता है। धातुओ से बने,महारोगी,पाप के घर,नश्वर और विकारोवाले इस शरीर को छूकर स्नान किया जाता है। आख,कान आदि शरीर के नौ द्वार गदगी उत्पन्न करने वाले है। जन्म के समय इसे माता के कारण सूतक होता है और मृत्यु पर भी सूतक होता है,अत इसे छूकर स्नान करना चाहिए। मल-मूत्र आदि की शुद्धता जल आदि से हो जाती है,किंतु 'मै-मेरा',इस अज्ञान की सफाई ही शुद्ध पवित्रता है,जो चित्त की सफाई के साथ ही,वासनाओं का नाश करके वैराग्य पैदा करती है। अद्वैत (जीव-ब्रह्म एक ही है) भावना सच्ची भिक्षा है। द्वैत भावना अभक्ष्य (न खाने योग्य) जैसी है,अत गुरु की आज्ञा के अनुसार ही भिक्षा मागनी चाहिए। (1-10)

'विद्वान कैद से छूटे चोर की तरह संन्यास लेकर घर से दूर रहने लगे। अहकार रूपी पुत्र,धन रूपी भाई,मोह रूपी बंधु एवं आशा रूपी पत्नी को छोडकर निःसदेह जीवन्मुक्ति मिलती है। मोह रूपी मां मरी और ज्ञान रूपी पुत्र उत्पन्न हुआ। दो सूतक एक साथ होने से संध्यावदन कैसे करू ? हृदयाकाश में चैतन्य सूर्य सदा चमक रहा है। न तो यह अस्त होता है;न उदय ही। अब सध्या कैसे हो ? गुरु के कहने पर यह ज्ञान हो गया कि सब कुछ एक ब्रह्म ही है। इसे ही एकात कहते है,किसी मठ या वन को नही। जिसे इसमें संदेह नही है,वही मुक्त होता है। शंकालु को जन्म-जन्मातर तक मुक्ति नही होती। कर्मों को छोड़कर या कहने मात्र से कोई सन्यासी नही कहलाता। समाधि में जीव और ब्रह्म एक ही हैं;ऐसा ज्ञान ही सन्यास है। जिसे समस्त इच्छाए उलटी के समान लगती है और शरीर का मोह नही होता,वही संन्यास लेने योग्य है। सभी वस्तुओं से वैराग्य होने पर ही सन्यास लें,अन्यथा पतन होता है। धन,अन्न या वस्त्र के लिए संन्यास लेने पर दोनों लोक नष्ट होते हैं,उसे कभी मुक्ति नही मिलती है। व्यक्ति के लिए तत्त्व-चिंतन श्रेष्ठ कर्म है,शास्त्र चिंतन मध्यम,मत्र चिंतन नीच तथा तीर्थों में जाना इससे भी घटिया है। मूर्ख व्यक्ति सच्चे ज्ञान के बिना ब्रह्म को पाने के विचार से प्रसन्न होता है,यह प्रसन्नता वृक्ष की छाया के फल देखने की प्रसन्नता जैसी है। ज्ञान में वृद्ध के सामने धनवृद्ध,आयुवृद्ध तथा विद्यावृद्ध शिष्य जैसे हैं। 'मै' इस आत्मा को न जाननेवाले

विद्वान भी माया मे पड़े हुए तथा पेट भरने के लिए घूमनेवाले कौओं की तरह हैं। ,त्थर, लोहे, सोने या मिट्टी की मूर्तियों की पूजा फिर जन्म और भोग देती है। मोक्ष-प्राप्ति हेतु सन्यासी इन वाहरी पूजाओ को छोडकर हृदय मे आत्मा की पूजा करें। सागर में रखे घडे के वाहर-भीतर पानी ही है। खाली स्थान मे रखा घड़ा बाहर-भीतर से खाली होता है। संसार से कुछ भी ग्रहण करने की भावना मत करो। इसके अलावा जो भी है, उसमें तन्मय बनो। देखे दृश्य और देखने की इच्छा को ही छोडकर दर्शन का प्रथम आभास करानेवाले आत्मा को भजो। सारी इच्छाए समाप्त होने पर जो पत्थर के समान बन चुका है, जो न जागता है और न सोता है, वही परम रूप एवं अवस्था है।' (11-30)

तृतीय अध्याय

'मै ही हू, दूसरा भी मैं हू, मैं ब्रह्म, सवका गुरु, सभी लोक, मै ही हू। मै ही सदा, नित्य, विमल, विज्ञान, विशेष, चद्रमा, पूर्ण, शुभ, शोकहीन, चैतन्य, सम, मान-अपमान रहित, निर्गुण, शिव, द्वैत-अद्वैत से अलग, द्वद्वहीन, भाव-अभाव-रहित, भाषाहीन, प्रकाश, शून्य-अशून्य, प्रभावी, सुंदर-असुंदर, समानता-असमानता रहित, नित्य शुद्ध, सदा शिव, सव और कुछ नही से भी अलग और सात्त्विक सब मै ही हू। मै एक भी नही हूं और दो भी नही हूं, सत-असत के भेद से बाहर हू, अखड आनंद हू, 'मै' भी नही हू और 'अन्य' भी नही हू। मै देह, आधार, आश्रय, बधन एव मोक्ष इन सबसे रहित हू। मैं शुद्ध, ब्रह्म 'वह' हू। चित्त आदि से रहित परम, परात्पर, सदा विचार रूप एव निर्विचार रूप हू।' (1-10)

'मै (ओम का) 'अ', 'उ' और 'म्' हू, सनातन हू, ध्याता, ध्यान एवं ध्येय से रहित हूं, सर्वत्र परिपूर्ण, सच्चिदानद, सभी तीर्थ, परमात्मा, लक्ष्य (दीखनेवाले) अलक्ष्य से रहित, लयहीन, रस रूप, प्रमाण-प्रमेय आदि हीन शिव, नेत्र आदि रहित हू, समस्त जगत को देखनेवाला नही हू, प्रबुद्ध प्रसन्न हर, सभी इद्रियों से हीन सब कर्म करनेवाला, वेदांत में कहा गया और सर्वसुलभ हू (11-15)।

'मै आनद भी हूं, शोक भी हूं, मौन धारण का फल भी हू, मै नित्य, चिन्मय, सच्चिदानद जो कुछ भी है, उससे हीन, हृदय ग्रंथिहीन, हृदय-कमल से, छ विकारों से, छ कोशो से, छ. शत्रुओ से रहित हू, अदर से भी अदर, देशकाल से परे, दिशाओ और आकाश का सुख हू, मै, 'नही है' से रहित, विमुक्त, सकारात्मक, अखंड आकार रूप, प्रपचमुक्त हूं। मै सर्वप्रकाश रूप चैतन्य ज्योति भूल-भविष्य-वर्तमान, तीनों कालों से रहित, काम, मोह आदि रहित, कामना रहित, निर्गुण, केवल, मुक्तिहीन, मुक्त, मोक्षहीन, सत्य-असत्य से परे, सत मात्र, गतव्य, स्थान, चलने से रहित, सदा समान रूप, शांत, पुरुषोत्तम, प्रत्येक के अनुभव जैसा और वह (ब्रह्म) मै ही हू, इसको एक बार सुननेवाला भी ब्रह्म हो जाता है। यही उपनिषद् का मत है।'

□

46. शांडिल्योनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्य शृणुयाम देवा भद्र पश्येमार्ताक्षिर्भिर्यजत्रा ।
स्थिरेरगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नर्स्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति शाति शांति ।

हम कानो से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रो से कल्याणमय चीजों को देखे और दृढ अगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे । इंद्र हमारा कल्याण करे पूषा हमारा कल्याण करें, अमंगल नाशक गरुड और वृहस्पति हमारा कल्याण करे । दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के दु ख शात हो ।

प्रथम अध्याय

शांडिल्य ने अथर्वागिरस से कहा, 'मुझे आत्मा की प्राप्ति के उपाय अष्टाग योग का बताइए ।' तब मुनि बोले—'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एव समाधि— ये योग के आठ अंग है । नियम भी दस है । आसन आठ, प्राणायाम तीन, प्रत्याहार पाच, धारणा पाच, ध्यान दो तथा समाधि एक प्रकार की होती है । अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धीरज, अल्प भोजन तथा पवित्रता— ये दस यम हैं । मन, वचन एव शरीर से किसी भी प्राणी को दु ख न देना अहिसा है, मन, वचन एव शरीर से प्राणियो की भलाई में सच बोलना सत्य है । इसी प्रकार दूसरे के धन की इच्छा न करना अस्तेय है, सब प्रकार का मैथुनत्याग ब्रह्मचर्य है, सभी प्राणियो पर अनुग्रह दया है, लोग कुछ भी करे उनके प्रति एकरूपता आर्जव है, प्रिय-अप्रिय एव प्रशसानिदा, सब कुछ सहना क्षमा है, धनहानि बधु आदि से वियोग एव मिलन मे एक समानता धृति है । एक चौथाई पेट को खाली रखते हुए स्निग्ध-मधुर आहार अल्प भोजन है और पवित्रता अदर और बाहर दो प्रकार की होती है । बाहर की पवित्रता मिट्टी, जल आदि से तथा अदर-मन की पवित्रता अध्यात्म से होती है । (1)

'तप, सतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर-पूजा, सिद्धातों को सुनना, लज्जा एव व्रत— ये दस नियम है । कृछ्र चांद्रायण आदि से शरीर को सुखाना— तप और भाग्य से जो भी मिले, उसी पर सतोष करना— सतोष है, वेदों में विश्वास— आस्तिकता, न्याय से कमाए धन को श्रद्धा से देना— दान, प्रसन्नता से शिव, विष्णु आदि की पूजा— ईश्वरपूजन, वेदों के अर्थ पर विचार, सिद्धात— श्रवण, वेदविरुद्ध कार्य में अनुभूति— लज्जा, वेदों के बनाए मार्ग मे श्रद्धा मति, गुरु द्वारा प्राप्त मत्र का अभ्यास— जप है, जो वाचिक एव मानसिक दो प्रकार का होता है । ध्यान लगने पर मन मे जप

करना मानसिक जप है। वाचिक भी दो प्रकार का होता है—ऊंची आवाज में और उपांशु। ऊंची आवाज का जप भी फल देता है, किंतु उपांशु हजार गुना और मानसिक जप करोड गुना श्रेष्ठ होता है। वेदो द्वारा वर्जित कार्यों का कभी आचरण न करना व्रत है। (2)

'स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिह, भद्र, मुक्त तथा मयूर— ये आठ आसन हैं। दोनों पावों के तलुओं को जानुओ के बीच मे रखकर तनकर बैठना स्वस्तिकासन है। बाए घुटने को बाई ओर तथा दाहिने को दाहिनी ओर पीठ में लगाकर गाय के मुख के समान बैठना गोमुखासन है। दोनों जांघों पर दोनों पैरों को रखकर हाथो से विपरीत पांवों के अगूठों को पकड़ना पद्मासन है। दोनों पावो को दोनों जांघों से मिलाकर बैठना वीरासन है। दोनों घुटनों को मिलाकर, हाथों को अगुलिया फैलाकर जांघों पर रखकर बैठें, एकाग्र होकर दृष्टि को नाक के आगे चलाए— यह सिंहासन है। योगी इसकी प्रशसा करते है। गुदा को बाएं से दबाए तथा लिग के ऊपर दाहिने पाव को रखकर भौंहों के बीच में दृष्टि रखने से सिद्धासन होता है। जननेंद्रिय के नीचे दोनों घुटनों को जमाएं और हाथों से पैरों को अगल-बगल से दृढ़ता से पकडें। बिना हिले बैठें। इसे भद्रासन कहते है। यह सभी रोगों और विषों का नाश करता है। बाएं घुटने से हलके से दबाएं, इस पर दाहिना पाव रखने से मुक्तासन बनता है। हथेलियो को फैलाकर भूमि में रखे कुहनियो को नाभि की बगलों में फिर इस पर सतुलित होकर शरीर एवं सिर को लकडी के समान हवा में उठाने से सभी पापों को नष्ट करनेवाला मयूरासन बनता है। इन आसनों से शरीर के विषों एव रोगों का नाश होता है। दुर्बल इनका सुखपूर्वक आसानी के साथ अभ्यास करें। आसन जीतना तीनों लोक जीतना है। यम नियमों से भली-भाति परिचित होकर ही प्राणायाम करे। इससे नाडी शुद्धि होती है। (3-10)

'नाडिया कैसे शुद्ध होती है? ये कितनी है? कैसे उत्पन्न होती है? उनमें कितने वायु है? किसका स्थान कहा है? शरीर में उनके क्या कार्य है? इस विषय में सभी जानने योग्य मुझे वताइए।' शाडिल्य के इस प्रकार पूछने पर अथर्वा बोले, 'शरीर 96 अगुल लंबा तथा प्राण वायु इससे 12 अगुल अधिक है। योगाभ्यास से प्राण को अग्नि के साथ या कुछ कम करनेवाला श्रेष्ठ योगी होता है। मानव शरीर में तपे सोने के समान त्रिकोण चौपायों मे चतुष्कोण तथा पक्षियों मे गोल आकार की अग्नि होती है। गुदा से दो अंगुल ऊपर और जनन इंद्रिय से दो अगुल नीचे मनुष्य देह मे, चौपायों में हृदय के मध्य मे और पक्षियों में बीच पेट मे इसका स्थान है। यह नौ अगुल लबा-चौडा अंडे जैसा होता है। (11-15)

'नाभि में बारह अरोंवाला चक्र है। इसमें पुण्य-पाप से प्रेरित जीव घूमता है। शरीर मे जीव प्राणों पर सवार है। नाभि के पास में ऊपर-नीचे कुंडली का स्थान है। इसकी कुडल के समान आठ प्रकृतिया हैं। यह योग के समय वायु को सही रूप मे चलाकर अन्न-जल आदि को चारों ओर कधो के पास रोकती है और मुख से ब्रह्मरंध्र को घेरती है। समाधि में अपान एव अग्नि के साथ हृदयाकाश को प्रकाशित करती हुई ज्ञान रूप बनती है। मध्य मे स्थित कुंडलिनी से इडा, पिगला, सुषुम्ना, सरस्वती, वारुणी, पूषा, हस्तजिह्वा, यशस्विनी, विश्वोदरा, कुहू, शखिनी, पयस्विनी, अलबुसा तथा गाधारी, ये चौदह मुख्य नाडिया निकलती है। सुषुम्ना विश्व को धारण करनेवाली

एवं मोक्ष देनेवाली है । गुदा के पीछे वीणा दंड के समान मूर्धा में ब्रह्मरंध्र तक सूक्ष्म वैष्णवी होती है ।(16-20)

'सुषुम्ना के बाएं एवं दाहिने क्रमश. इड़ा एवं पिगला है । इड़ा मे चंद्रमा चलता है, यह तमोगुण रूप और अमृत का भाग है । पिगला मे सूर्य चलता है, जो रजोगुण रूप एव विष का भाग है । ये दोनो सारे समय को धारण करते हैं । सुषुम्ना समय को भोगती है । इसके पीछे और बगल में सरस्वती और कुहू है । यशस्विनी एवं कुहू के बीच वारुणी, पूषा एवं सरस्वती के बीच पयस्विनी, गांधारी एव सरस्वती के बीच यशस्विनी, कंद के बीच अलंबुसा तथा सुषुम्ना के पूर्व से लिग तक कुहू है । कुंडलिनी के ऊपर-नीचे चारों तरफ वारुणी है । यशस्विनी एव सौम्या पाव के अगूठे तक, पिंगला ऊपर को बाई नाक तक, पूषा पिगला के पीछे बाई आंख तक, यशस्विनी बाए कान तक, सरस्वती जीभ के ऊपरी भाग तक, शखिनी ऊपर को बाएं कान तक, गाधारी इडा के पीछे से बाए नेत्र तक और अलंबुसा गुदा-मूल से ऊपर-नीचे को जाती है । इनके अतिरिक्त भी बहुत-सी नाडिया है । उनसे भी नाड़ियां निकलती है । जैसे पीपल के पत्ते मे शिराएं होती है, वैसे ही शरीर मे नाडिया फैली है । (21)

'प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनजय— ये दस वायु इन सभी नाडियो मे चलते है । मुख, नाक, गला, दोनों पांव के अगूठे और कुडली में प्राण । कान, नाक, कमर, आंख मे व्यान । गुदा, लिग, जानु, पेट में अपान । जोड़ों में उदान, हाथों, पावों तथा सारे देह मे समान रहता है । पेट मे अन्न और अग्नि के साथ भी समान फैला रहता है । नाग, कूर्म आदि त्वचा. हड्डी आदि मे रहते है । पेट मे अन्न, जल आदि से प्राण रस को पृथक् करता है । अग्नि मे पानी, पानी मे अन्न आदि को रखकर प्राण अपान के पास जाकर उसके साथ शरीर की अग्नि के पास जाता है । यह अग्नि अपान से बचकर धीरे-धीरे जलता है और प्राण के साथ मिलकर भोजन को पचाकर उसमें से पसीना, मूत्र, जल, रक्त, वीर्य, मल आदि को अलग करता है और समान के साथ नाडियो में रस पहुचाता है । प्राण सास रूप में सारे देह मे चलता है । देह के नौ छिद्रो से वायु, पसीना, मूत्र आदि त्यागते है । सास लेना प्राण का, मूत्रादि त्यागना अपान का, लेना-देना आदि व्यान का, शरीर को उठाना उदान का तथा पोषण करना समान का कार्य है । डकार आदि नाग का, पलकें झपकना कूर्म का एवं भूख लगना कृकर का कार्य है । इस प्रकार नाडी वायु स्थानों को सही-सही जानकर नाडी शुद्धि करे । (22)

'योगाभ्यास करके यम-नियम के साथ सग (लगाव) छोडकर सत्यता से क्रोध को जीतकर गुरु की सेवा से, माता-पिता के अधीन रहकर आश्रम में शिक्षा को पाकर तप करने, फल-मूल आदिवाले स्थान में जाए । आश्रम के पास, फूल-फलों वाले मदिर, नदी तीर, ग्राम या नगर मे जहा भी उपयुक्त हो, सुंदर स्थान पर, न अधिक ऊचा, न अधिक नीचा, न अधिक लंबा, न चौडा हो ऐसे— दरवाजेवाला गोबर से लिपा सुंदर मठ बनाएं । वहां वेदात का श्रवण करता हुए योगाभ्यास करे । गणेश-पूजा और इष्ट को नमस्कार करके आसन में बैठें । मुख पूर्व या उत्तर को हो । बैठने का आसन कोमल हो । तनकर बैठते हुए नाक के आगे दृष्टि हो । भौंहों के बीच चद्र बिंब को देखते हुए

नेत्रों से अमृत पीए। बारह मात्राओं से इड़ा से पूरक करें। ज्वालाओं वाले 'र' और बिदु के साथ अग्नि का ध्यान करता हुआ पिंगला से रेचक करे, फिर पिगला से पूरक के बाद कुभक करके इडा से रेचक करे। तीन, चार या सात मास तक तीनों संध्याओं में तीन-चार बार और बीच में छ बार अभ्यास से नाड़ी शुद्धि होती है। तब शरीर में हलकापन, सुंदरता तथा भूख में वृद्धि होती है। नाद सुनाई देता है। (23)

'प्राण एवं अपान को मिलाना ही प्राणायाम है, जिसके पूरक, कुंभक और रेचक तीन भेद है। यह तो केवल वर्ण है, वस्तुत. प्रणव (ओम) ही प्राणायाम है। पद्म आदि आसन में वैठकर नाक के आगे दृष्टि जमाकर ऐसा ध्यान करे— चंद्रमंडल की चादनी से लिपटी मूर्ति-सी लाल रग की हस पर बैठी हाथ मे दंडवाली गायत्री ओम (अ + उ + म) की 'अ' है, 'उ' सफेद अगोवाली, गरुड पर बैठी, हाथ मे चक्रवाली युवती सावित्री है और 'म' श्याम अगों, बैल पर बैठी हाथ मे त्रिशूलवाली सरस्वती है। इस प्रकार ओम अक्षर इन तीनों का कारण परम ज्योति है। तब इडा में सोलह मात्राओ मे 'अ' का चितन करते हुए पूरक करे। 'उ' का चितन करते हुए चौसठ मात्राओ तक कुंभक करके बत्तीस मात्राओ मे 'म' के चितन के साथ रेचक करें। इसी क्रम से बार-बार करें। (24)

'आसन दृढ होने पर जितेंद्रिय योगी अल्पाहार से सुषुम्ना के मल को शुद्ध करने हेतु पद्मासन लगाकर पहले पूर्वोक्त विधि से तथा फिर पिगला से पूरक और इड़ा से रेचक करे। इसी क्रम से नित्य प्राणायाम करने से योगी की नाडी तीन मास में शुद्ध हो जाती है। प्रात, दोपहर, शाम एव मध्यरात्रि मे धीरे-धीरे 80 मात्रा तक कुभक का अभ्यास करे। हलके प्राणायाम मे पसीना तथा मध्यम प्राणायाम में कपकपी होती है। उत्तम प्राणायाम में पद्मासन उठ जाता है। पसीने को शरीर मे ही मल ले, इससे योगी का शरीर दृढ और हलका होता है। अभ्यास के आरभ मे घी-दूध का भोजन उत्तम है, किंतु अभ्यास पक्का होने पर कोई नियम नही होता। शेर, हाथी, व्याघ्र आदि को वश में करने के समान वायु भी वश मे हो जाती है। उलटा-सीधा प्राणायाम साधक का नाश करता है। उचित रीति से ही पूरक, कुंभक एव रेचक करे, तभी सिद्धि मिलती है। शक्ति के अनुसार कुभक करने से अग्नि बढती है। नाड़ी शुद्धि तथा नाद श्रवण होता है। विधि अनुसार प्राणायाम से नाडी शुद्धि होने पर सुषुम्ना के मुख को भेदकर वायु सुख देता है। वायु के मध्य मे जाने से मन स्थिर होता है। मन का सुदरता से स्थिर होना ही मनोमयी अवस्था है।

'पूरक के एव कुभक के अत में तथा रेचक के आरभ मे क्रमश· जालधर बध, उड्डीयाण एव उड्डीण करें। नीचे मूलरध्र को सिकोडने से शीघ्र ही कठ सिकुडता है। मध्य को पश्चिम में तानने से प्राण ब्रह्म नाडी में जाता है। अपान को ऊपर रोककर प्राण को कठ से नीचे ले जाता हुआ रोगी सोलह वर्षीय वन जाता है।

'सुखासन में बैठकर दाहिनी नाडी से वायु को खीचकर केशो से नाखूनों तक मे कुंभक करके बाए से रेचक करें। इससे कपाल शुद्धि होकर नाडी का वायु रोग नष्ट होते है। चलते-रुकते हृदय से गले तक ध्वनि सहित दोनों नाक से पूरक करके शक्ति भर कुंभक करके इडा से रेचक करे। इससे कफ-नाश होकर भूख बढ़ती है। मुख से 'सी-सी' करते हुए पूरक करें। यथाशक्ति कुभक के

बाद दोनो नाको से रेचक करने से भूख, प्यास, आलस्य एव निद्रा नहीं लगती। जीभ से कुभक करके ऐसा करने से गोला, तिल्ली, ज्वर, पित्त एवं भूख का नाश होता है। कुभक दो प्रकार का होता है—सहित एव केवल। रेचक-पूरक के साथवाला सहित तथा बिना इनके केवल कुंभक है। केवल की सिद्धि तक अभ्यास करें। इसके सिद्ध होने से तीनो लोकों में कुछ भी दुर्लभ नही है। इससे कुंडलिनी का ज्ञान होता है। तब शरीर हलका, मुख प्रसन्न, आखे निर्मल हो जाती है। नाद सुनाई देता है, बिदु जीत लिया जाता है और रोग नष्ट हो जाते है। लक्ष्य भीतर हो, दृष्टि बाहर हो तथा पलकें न गिरें, यह सब तत्रो की गोपनीय वैष्णवी मुद्रा है। लक्ष्य अदर हो, योगी का चित्त और वायु विलीन हो गया हो, अपलक बाहर नीचे देखता हुआ भी कुछ न देखता हो, यह खेचरी मुद्रा है। यह केवल लक्ष्य मे ही एकचित्त होने से और मगलमय होने से वैष्णवी भी कहलाती है। अधखुली आखे, स्थिर मन, नाक के आगे दृष्टिवाला योगी सूर्य एवं चद्र नाड़ी को भी लीन कर देता है। ज्योतिरूप समस्त विषयों से परे देदीप्यमान तत्त्व ही तब उसका विषय होता है।

पुतलियो को ज्योति मे लगाकर कुछ भौहो को उठाया हुआ जैसा यह पूर्व मार्ग का अभ्यास है। इससे क्षण-भर मे उन्मन अवस्था प्राप्त होती है। फिर योग निद्रा प्राप्त होती है, जिससे योगी का काल नही होता। शक्ति एव मन को एक-दूसरे के बीच मे रखकर मन से मन को देखकर सुखी होओ। आकाश एवं आत्मा को एक-दूसरे के मध्य मे रखकर सब आकाशमय है, ऐसा मानकर कुछ भी चितन न करे। बाहर और अदर की समस्त चिताओं को त्यागकर चैतन्यमात्र परायण बनो।

जैसे कपूर अग्नि मे और लवण पानी मे लीन हो जाता है, वैसे ही लीन होने पर मन मे लय होता है। जानने योग्य सब जान लेने पर यह ज्ञान ही मन कहलाता है। ज्ञान और जानने योग्य साथ ही नष्ट हो, यही श्रेष्ठ मार्ग है। जानने योग्य (ज्ञेय) का परित्याग करने से मन लीन होता है, तब कैवल्य (मोक्ष) ही शेष रहता है। चित्त नाश के योग एवं ज्ञान दो मार्ग है। चित्तवृत्ति को रोकना योग है। यथार्थ दृष्टि ज्ञान है। चित्तवृत्ति को रोकने से मन अवश्य शात हो जाता है, तब ससार के भ्रम का भी लय हो जाता है। सूर्यगति के शात होने से जगत व्यवहार रुकने के समान शास्त्रो और सज्जनो की कृपा से वैराग्य के अभ्यास पर ससार शांत हो जाता है। इस प्रकार वैराग्य होने पर लबे समय तक ध्यान एव तत्त्व के अभ्यास से प्राणायाम वश में हो जाता है, पुन इसके दृढ अभ्यास से मन के वश में होने पर ओकार के उच्चारण से शब्द तत्त्व का ज्ञान होता है और सुपुप्ति का रूप भी ज्ञात हो जाता है। तालु के मूल ग्रथि को सावधानी से जिह्वा द्वारा दबाने पर प्राण ऊपर चला जाता है और उसकी गति रुक जाती है।

तालु से बाहर अंगुल ऊपर प्राण के चेष्टारहित होने पर ऊपर के छिद्र से इसकी गति रोकी जाती है। नासिका के सामने बारह अगुल पर निर्मल आकाश में ज्ञान दृष्टि से तथा भौहों के बीच मे तारक ब्रह्म के दर्शन से जगत प्रपंच नष्ट होने पर मानसिक सकल्प मे प्राण गति रोकी जाती है। कल्याणकारक ओकार ज्ञान के होने पर जब कोई भी विकार शेष नही रहता, तब प्राण-गति रोकी जाती है। दीर्घकाल तक हृदय मे आकाश का अनुभव होने पर वासनारहित मन के ध्यान द्वारा प्राण की गति रुकती है।

इस प्रकार अनेक अन्य कर्मों द्वारा भी प्राण को रोका जाता है। कुडलिनी को सकुचित करने

से मोक्ष का द्वार खुलता है। जिस मार्ग से जाना होता है,उसके मुख को ढककर कुडलिनी सोई रहती है,जो सर्प के समान लिपटी होती है। इसे शक्ति से चलायमान करने पर योगी मुक्त होता है। कठ से ऊपर सोई कुडलिनी योगियों मे होती है,जो मुक्ति देती है,इससे नीचे की कुडली मूर्खों मे होती है तथा बधन कारक होती है। यदि यह इडा-पिगला के मार्ग को छोडकर सुषुम्ना से चले,तो विष्णु का परम पद देती है। विद्वान मन के साथ ही प्राणायाम का अभ्यास करे। दिन या रात्रि का विचार किए बिना सदा विष्णु की पूजा करें। पाच स्त्रोतो वाले सुषिर का ज्ञान खेचरी मुद्रा है। दाई-बाई नाडी में सचरणशील वायु का स्थिर हो जाना खेचरी मुद्रा है।

इड़ा एव पिगला के बीच का शून्य स्थान वायु को ग्रस लेता है। वही खेचरी भी रहती है। छेदन आदि से जिह्वा को नुकीली बनाकर भ्रू मध्य में दृष्टि लगाकर जब जिह्वा उलटी जाने लगे,तो खेचरी मुद्रा होती है। जिह्वा और चित्त दोनों कपाल आकाश में घूमते है,तब ऊर्ध्व जिह्वावाला व्यक्ति अमर हो जाता है,बाए पैर से मूल रंध्र को दबाकर पसरे हुए दाहिने पैर को हाथों से पकडें। नाक से वायु को ऊपर चढाकर इसे रोकने से क्लेश नष्ट होते है। तब विष भी अमृत जैसा पच जाता है और क्षय,गुल्म एव चर्म-गुदा रोग नष्ट हो जाते हैं। यह प्राणो को जीतनेवाली और मृत्यु को भगानेवाली क्रिया है। बाई एडी को योनि स्थान में लगाकर दाहिने पाव को बाए के ऊपर रखें। वायु को भरकर हृदय एव ठोडी में धारणकर योनि मार्ग को सकुचित कर मन मे धारण करके यथाशक्ति अपने आत्मा का ध्यान करे। इससे अपरोक्ष सिद्धि होती है। वायु खीचकर उदर मे भरे, मन से इसे नाभि,नाक के आगे और पाव के अगूठे मे धारण करें। सध्याकाल में ऐसा करने से योगी रोगो एव थकान से रहित हो जाता है। नाक के आगे धारण करने से वायु विजय,नाभि मध्य मे धारण से सभी रोगों का नाश और पाव के अगूठे मे धारण करने से देह में हलकापन आता है। जीभ से लगातार वायु पीने से रोग,थकान एव दाह का नाश होता है।

सध्या के समय तीन मास तक जीभ से वायु पीने पर तीन माह में वाणी मे कल्याणमय सरस्वती आ जाती है। छ माह तक ऐसा करने से सब रोग नष्ट हो जाते है। जीभ से वायु को लेकर उसकी जड मे रोककर पीने से सब प्रकार से भला होता है। इड़ा से भौहों के मध्य आत्मा मे आत्मा को धारण करने से अमृत भेदन होता है और रोगी भी रोगमुक्त हो जाता है। एक माह तक तीनो सध्याओं में जिह्वा से वायु को पेट में भरने से अमृत भेदन होता है। क्षण-भर भी नाक के आगे वायु को मन से नित्य धारण करने पर सभी ज्वर,विष तथा सैकडो जन्मों के पाप नष्ट होते है। मन के साथ आंख की पुतली के सयम से समस्त विषयों का ज्ञान,नाक के साथ सयम से सभी लोको का,चित्त के सयम से वायुलोक का,आख के सयम से सभी लोको का,श्रोत्र सयम से यमलोक का,पार्श्व से निर्ऋति लोक का,पृष्ठ भाग से अरुणलोक का,बाएं कान से वरुणलोक का,कठ से चद्रलोक का, बाई आख से शिवलोक का,तलवो से अतललोक का,पांवों से वितललोक का,पावो के जोडो से अनित्य लोक का ज्ञान होता है। इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अगो से तथा शरीर के तत्त्वो आदि से मन का सयम करने पर अनेकों लोकों का ज्ञान होता है।

प्रत्याहार पांच प्रकार का होता है। इद्रियों को उनके विषयों से बलपूर्वक हटाना प्रत्याहार है और सब कुछ दिखाई पडनेवाला,नित्य कर्म फलो का त्याग,सभी विषयो से विमुख होना तथा

अठारह मर्मस्थलों को धारण करना, ये सभी प्रत्याहार हैं। पांव का अंगूठा, गुल्फ, जंघा, जानु, गुदा, लिग, नाभि, हृदय कठ छिद्र, तालु, नाक, आंख, भ्रूमध्य, ललाट एवं मस्तक, इन स्थानों में उतार-चढ़ाव क्रम द्वारा क्रमशः प्रत्याहार करें।

धारण के तीन भेद हैं—आत्मा में मन को धारण करना, दहर आकाश में बाहरी आकाश को धारण करना तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश में पांच मूर्तियों को धारण करना।

ध्यान सगुण एवं निर्गुण दो प्रकार का होता है। मूर्ति का ध्यान सगुण तथा आत्मा का ध्यान निर्गुण ध्यान है।

जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता की अवस्था समाधि है। यह (ज्ञान, ज्ञेय एव ज्ञाता) त्रिपुटी रहित परमानद स्वरूप शुद्ध चैतन्य अवस्था है।

द्वितीय अध्याय

चारों वेदों से भी ब्रह्म विद्या प्राप्त न होने पर शांडिल्य ने अथर्वा के पास जाकर कहा, 'भगवन, मेरे कल्याण के लिए मुझे ब्रह्म-विद्या का उपदेश दीजिए।'

तब अथर्वा बोले, 'ब्रह्म सत्य, अनंत और विज्ञानमय है। जिसमें यह जगत और जो इसमें पिरोया गया है और जिसको जानने पर समस्त ज्ञान हो जाता है, वह हाथ, पांव, आख, कान, जीभ आदि रहित एक अवर्णनीय तत्त्व है। जिससे मन के साथ वाणी आदि सभी इद्रिया उसे पाए विना लौट आती है। जो केवल ज्ञान से प्राप्त होता है। जिमसे प्रज्ञा-जन्मी है, जो अद्वितीय है, आकाश के समान सबमें है, अत्यंत सूक्ष्म, निरंजन, निष्क्रिय, 'सत' मात्र आनंदमय रस, शिव, प्रशात, अमृत और परम ब्रह्म है। तुम भी वही हो, उसे ज्ञान से जानो। एक ही देव आत्मा की प्रधान शक्ति है, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, प्राणियों का अंतरात्मा, सभी प्राणियों में गूढ़ और रहनेवाला तथा सवका कारण है। जो विश्व को वनाता है, पालता है तथा उसका उपभोग करता है, वही आत्मा है। इसी में समस्त लोकों को समझो। शोक मत करो। आत्मज्ञानी शोक का अंत कर देता है।'

तृतीय अध्याय

'शाडिल्य ने पूछा, यह ब्रह्म एक, अक्षर, निष्क्रिय, शिव एवं सत मात्र है तब यह विश्व कैसे उत्पन्न होता है? कैसे स्थित रहता है? और कैसे लय होता है? मेरी शका को दूर कीजिए।' अथर्वा बोले, 'ठीक है, ब्रह्म अक्षर और निष्क्रिय है, किंतु इसके सकल, निष्कल तथा सकल-निष्कल, ये तीन रूप हैं। जो सत्य, विज्ञान, आनंद, निष्क्रिय, निरंजन, सर्वगत एवं अति सूक्ष्म है, निष्कल रूप है। इसके साथ ही उत्पन्न होनेवाली लाल, सफेद एवं काली मूल प्रकृति माया है। इसकी सहायता से वह देव काला-पीला महेश्वर होता है, यह इसका सकल-निष्कल रूप है। ज्ञान तप करके इसने अनेक प्रकार का वनना चाहा। फिर तप करने पर तीन अक्षर, तीन व्याहतिया तीन गायत्री, तीन वेद, तीन देव, तीन वर्ण तथा तीन अग्नियां उत्पन्न हुईं। यह ऐश्वर्ययुक्त, सर्वव्यापी, सभी प्राणियों के हृदय में स्थित मायावी और माया के साथ क्रीड़ा करनेवाला ब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इद्र आदि सभी देव है। यह प्राणियों के आगे-पीछे, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे सभी जगह है। वही सब कुछ है। यह दत्तात्रेय के समान रूपवाला, वस्त्ररहित, नीलकमल के समान, चार भुजाओंवाला और भयरहित है। यह उसका सकल रूप है।' (1)

शाडिल्य ने पूछा, 'इस सन्मात्र आनद और रस रूप को परम ब्रह्म क्यों कहते हैं ?' अथर्वा ने कहा, 'वह स्वय बढता है और दूसरों को बढ़ाता है, इसलिए उसे परम ब्रह्म कहते हैं। सबमें व्याप्त रहने से, सबको ग्रहण करने से तथा सबको खा जाने से वह आत्मा कहलाता है। वह शब्द, ध्वनि तथा आत्मशक्ति में सबसे बडा और सबका शासक होने के कारण वह महेश्वर कहलाता है। अत्रि ने पुत्र की इच्छा से कठिन तपस्या की, ज्योतिर्मय भगवान् प्रसन्न होकर स्वयं अत्रि-अनसूया के पुत्र बने। अतः वह दत्तात्रेय कहलाता है। जो इन नामों के अर्थ को जानता है और जो इस विद्या की उपासना करता है, वह सब कुछ और ब्रह्म को भी जान लेता है। दत्तात्रेय, शिव, शांत, इद्रनील मणि के समान, मायामय, अवधूत, दिगबर, सारे शरीर में भस्म लगाए हुए, जटाधारी, चार भुजावाले, खिले कमल जैसे नेत्रोवाले, ज्ञानयोग की निधि, विश्वगुरु, योगियों के प्रिय, भक्तों पर कृपा करनेवाले, सर्वसाक्षी, सिद्धों द्वारा पूजित, ऐसे रूप का जो लगातार ध्यान करता है, वह सारे पापों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है। यह सत्य रहस्य है।' (2)

□

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभ्य शृंणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्रा ।
स्थिरेरगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।
ॐ शाति शाति शाति ।

हम कानो से कल्याणमय वचन सुने, नेत्रो से कल्याणमय चीजो को देखे और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे । इद्र हमारा कल्याण करे, पूषा हमारा कल्याण करे । अमगल नाशक गरुड और बृहस्पति हमारा कल्याण करे । दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के दु ख शात हो ।

शौनक ने भगवान् पिप्पलाद से पूछा, 'ससार मे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ क्या पहले ही भगवान् के हृदय रूपी आकाश मे रहते है ? इन्हे विभाग सहित अपने मे कैसे बनाता है ? यह महान प्रभु कौन है ?' तब पिप्पलाद बोले, 'जो सत्य है, वह बताता हूं । ब्रह्मपुर मे, विरज (तीनो गुणो से हीन), निष्फल, स्वच्छ अक्षर (जो नष्ट नही होता) ब्रह्म रहता है । वह जीवो के बधन और मोक्ष को बनाता है, अत उसे निर्मक कहते है । वह जीवो को अविद्या (माया) से नियमित कर देता है और मोक्ष पानेवालो के लिए इसे समाप्त कर देता है । निष्काम बुद्धि से काम करनेवाले को उसके कर्म विषयो मे नही खीच सकते । चार प्राण देवता है । थके हुए बाज की तरह प्राण इन्हे प्राप्त करनेवाली नाडियो मे आश्रय लेता है । यह हिरण्यमय परम कोश मे रमा आदि तीन नाडियो मे घूमता है । तब उसका त्रिपाद स्वरूप ब्रह्म ही शेष रहता है । जैसे सोए व्यक्ति को लाठी से पीटने पर वह बैठ जाता है, फिर नही सोता, वैसे ही जीव भी वेदात तत्त्व को जानकर फिर अज्ञान मे नही पडता । मनचाही चीज मिलने पर बच्चे के समान प्राणी भी स्वप्न एव जागृत अवस्था मे आनदित होता है । मैने परम ज्योति को जान लिया है, 'मै परम ज्योति और उसका प्रकाश हू', ऐसे चित्तवाला परम आनद प्राप्त करता है । तब चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है । तब प्राण उसी मार्ग से निर्विकल्पक समाधि से स्वप्न अवस्था मे विश्राम करता है । फिर एक-एक कर ईश्वर की इच्छा से तीनों अवस्थाओं में सचरण की प्रवृत्ति हो जाती है, इससे आत्मा आनंदित होता है । इस प्रकार वह ब्रह्म को अपने से अभिन्न मानकर उसे नही छोडता । इसी प्रकार स्तन की तरह लटके हुए इस आत्मा की साधना करो । यही योग का आधार है । यही इंद्रयोनि और वेदयोनि है, जो इसमें जागृत रहता है । इसका ध्यान करनेवाला शुभ-अशुभ से लिप्त नही होता । यह देव अत्यत प्रसन्नतावाला, असग, चैतन्य, पुरुष, प्रणव, हस और परम ब्रह्म है । प्राण का अर्थ यहा प्रणव है; जीव नही है । प्रणव ही जीवों का आधार है । इस जाननेवाला जीव ब्रह्म की एकता को जानकर ब्रह्म को पाता है । (1-2)

'ब्रह्मज्ञान ही पुरुष की आतरिक शिखा है। ब्रह्मवेत्ता और मुमुक्षु,इसे (आंतरिक [illegible]) एव जनेऊ धारण करें। बाह्य शिखा एव जनेऊ गृहस्थ धारण करें। आंतरिक शिखा [illegible] बाहरी धागे के समान दीखनेवाले नहीं हैं। अव्यक्त होने पर भी ये ब्रह्म से मिलते हैं। (3)

'अविद्या (माया) 'है', 'नही है', 'सत', 'असत', भिन्न, भाग सहित, भागरहित या दोनों [illegible] से अलग है। वह मिथ्या स्वरूप है, अत ब्रह्मज्ञान होने पर यह सब छोड़ दिया जाता है। (4)

'ब्रह्म की जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एव तुरीयातीत अवस्था नहीं होती। [illegible] उसके चार पाद (स्थान) हैं—नाभि, हृदय, कठ तथा सिर। पूर्व की चार अवस्थाओं [illegible] आदि अग्नियों में आत्मा की भावना करें। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एव तुरीय में क्रमश: [illegible] एव अक्षर ब्रह्म का ध्यान करें। जनेऊ को चार अगुलियों में लपेटना इन चार अवस्थाओं [illegible] है। 96 तत्त्व इसमें लिपटे हैं, जिनमें तीन (गुणों) का भाग देने पर 32 तत्त्वों का [illegible] इसके तीन पल्ले तीन गुणों (सत्त्व, रजस एव तमस) के प्रतीक हैं। साथ ही ये [illegible] रुद्र भी माने जाते हैं। नौ पल्ले नौ ब्रह्म हैं। इनमें फिर 3 का भाग देने पर [illegible] चद्रमा एव अग्नि स्वरूप है। इनकी कला स्वरूप से एक करके आदि-अत में तीन [illegible] इसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र को समझें। इसकी चित्त गाठ को अद्वैत ग्रंथि बनाकर [illegible] पहनने से चित्त-शुद्धि होती है। नाभि से ब्रह्मरंध्र तक 27 स्थानों के सूचक इसके 27 सूत्र होते हैं। जिस प्रकार मिट्टी से बने बर्तन मिट्टी ही होते हैं, वैसे ही ब्रह्म से निर्मित वस्तुएं ब्रह्म ही होती हैं। ऐसा ही यज्ञोपवीत को भी समझना चाहिए। 'मैं उस हस ब्रह्म का ही अश हूं', ऐसा निश्चय करके [illegible] ब्राह्मणत्व ध्यान की योग्यता यति के गुणों की प्राप्ति होती है। तभी व्यक्ति में आतरिक यज्ञोपवीत की योग्यता आती है, बाह्य यज्ञोपवीत गृहस्थों का लक्षण है।

'बाल की शिखा एवं कपास ततुओं से बना जनेऊ वैदिक कर्म करने का आभास कराते हैं। चौबीस तत्त्वों के प्रतीक इस जनेऊ में भले ही नौ तागे हों, किंतु यह एक ही ब्रह्म का स्वरूप है। अपनी-अपनी बुद्धि से लोग भले ही अनेक मत बना लें। ब्राह्मणादि, देव, ऋषि सभी की मुक्ति, ब्रह्म तथा ब्राह्मणत्व एक ही है, वर्ण आश्रम, नियम भले ही अलग हों, वर्णाश्रमवालों की शिखा एक ही है। मोक्ष के अधिकारी यति की शिखा एवं यज्ञोपवीत का कारण प्रणव भी एक ही है। इनकी शिखा एव जनेऊ ब्रह्मज्ञान एव प्रणव है तथा नाद इन्हें जोडता है। यह धर्म भिन्न नही है, क्योंकि प्रणव, हंस, नाद एव जनेऊ परमात्मा ही हैं। पर और अपर दो प्रकारका ब्रह्म है, उसे जानो। उसे जानने के लिए शिखा, जनेऊ आदि प्रपंच त्याग दें। (5)

'केशों को काटकर तथा जनेऊ को त्यागकर ब्रह्म रूपी जनेऊ धारण करे। पुनर्जन्म से मुक्ति के लिए रात-दिन मोक्ष का चिंतन करें। ब्रह्म की सूचना देने के कारण ही जनेऊ को सूत्र कहते है। जो वस्तुत इसे जान लेता है, वही मुमुक्षु है, वही भिक्षु है, वही वेद जाननेवाला, सदाचारी ब्राह्मण और पवित्र है। जिसमें सब कुछ तागे में मोतियों के समान पिरोया गया है, उस सूत्र को योगी, योग ज्ञाता, ब्राह्मण तथा यति धारण करे। योग ज्ञान में लगा हुआ ब्राह्मण बाह्य सूत्र को त्यागकर ब्रह्म भाव के सूत्र को धारण करें, इससे उसे मुक्ति मिलती है। इसे धारण करने से अपवित्रता तथा जूठापन नष्ट होते हैं। (6-10)

'ज्ञान रूपी आतरिक जनेऊ धारण करनेवाले ही सच्चे सूत्रविद तथा जनेऊ धारक हैं। ज्ञान ही जिनकी शिखा, भक्ति एव जनेऊ है उनका ज्ञान ही परम ज्ञान एव पवित्र ज्ञान है। अग्नि के समान आंतरिक शिखावाला ही वास्तविक शिखावाला है अन्य वालों की शिखावाला नही। वैदिक या लौकिक कर्मकाडी सच्चे ब्राह्मण न होकर, ब्राह्मणों की छाया के समान तथा केवल पेट भरनेवाले है, जो बार-बार जन्म रूपी नरक मे जाते है। विद्वान वाएं कधे से दाहिनी कमर तक ज्ञान रूप आतरिक जनेऊ को, जो ब्रह्म सूत्र है, नाभि से ब्रह्मरंध्र तक प्रमाण सहित धारण करें। ज्ञानमयी शिखा एव जनेऊ धारक ब्राह्मण का जन्म ही सफल है। इस परम परायण यज्ञोपवीत को धारण करनेवाला विद्वान मुक्ति पाता है। केवल बाहरी जनेऊ धारण करने से ही सन्यासी नही वना जाता, इसके लिए आतरिक जनेऊ भी अनिवार्य है। अत मोक्ष का इच्छुक सभी प्रयलो से वाहरी जनेऊ को त्यागकर भीतरी जनेऊ धारण करे।' (11-20)

□

48. कठरुद्रोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शाति शांति शाति।

परमात्मा हम (गुरु-शिष्य) की साथ ही रक्षा करे। हम साथ-साथ उपभोग एवं वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम परस्पर विद्वेष न करे। तीनो प्रकार के दु ख शात हो।

देवताओ ने ब्रह्मा से कहा, 'कृपया हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश दें।' तब प्रजापति बोले, 'शिखा सहित केशो को काटकर यज्ञोपवीत त्याग दो। पुत्र को देखकर उससे कहो—तुम ब्रह्म हो, यज्ञ हो, बषटकार, ओकार, स्वाहा, स्वधा, धाता और विधाता हो। तब पुत्र कहे—मै ब्रह्म हू, यज्ञ हू । तब सन्यास लेकर घर से चलने पर पीछे आते हुए पुत्र आदि को देखकर आसू न गिराए। आसू गिरने से सतान नष्ट हो जाती है। तब सभी सन्यासी की प्रदिक्षणा करते है और इधर-उधर न देखकर घर लौट आते हैं। ऐसा सन्यासी स्वर्ग प्राप्त करता है। (1-2)

'ब्रह्मचर्याश्रम में वेदो को पढकर युवावस्था आने पर विवाह करे। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात उसे योग्य बनाकर यथाशक्ति धार्मिक कार्य करें। फिर सबकी अनुमति से संन्यास ले सकता है। सन्यास लेने पर बारह रात्रि तक दूध का आहार लेते हुए दूध का ही हवन करें। तब वैश्वानर एवं प्रजापति के लिए विष्णु एव प्रजापति को दिए जानेवाले चरु से हवन करे। तब दारुपत्रो को तथा मिट्टी पात्रो को क्रमश हवन एवं जल मे विसर्जित करे। स्वर्ण आदि की वस्तुओं को गुरु को दे दें और कहे, 'तुम मुझे छोडकर न जाना, मै तुम्हे नही छोड़ूंगा।' कुछ शास्त्रो का मत है कि गार्हपत्य आदि अग्नियो की भस्म मुट्ठी में लेकर खाए। चोटी सहित बाल काटकर जनेऊ को 'ॐ भू स्वाहा' कहता हुआ जल मे विसर्जित कर दे। फिर अनशन, जलप्रवेश, अग्निप्रवेश या वीरो की तरह जैसे चाहे, प्राणात करे या किसी वूढे सन्यासी के आश्रम मे रहे। दूध-जल के साथ संन्यासी जो कुछ खाता है, उसी का हवन करे। अमावस्या एवं पूर्णिमा का भोजन क्रमश 'दशयज्ञ' एव प्रौर्णमास है। बसत मे केश, दाढी आदि कटवाना ही उसका अग्निष्टोम है। (3)

'सन्यास लेने पर फिर यज्ञ के लिए अग्नि नही जलाई जाती। केवल आध्यात्मिक मत्रों को पाठ होता है। 'सव जीवो का कल्याण हो', इस भावना से हाथ ऊपर उठाकर प्रपचरहित घूमता रहे। घर का त्याग कर दे। भिक्षा मे जो मिले, उसी मे सतोष करे। किसी स्थान पर क़म ही ठहरे। वर्षा होने पर रुक सकता है। कुंडिका, चमसा, शिक्य, तिपाही आदि पूजा के बर्तनो, जूतो तथा लंगोट के अतिरिक्त वस्त्रों, कुश का आसन, जनेऊ तथा वेदादि के अध्ययन का संन्यासी त्याग कर दे। पवित्र जल से स्नान करे। मदिर या नदी किनारे सोए, अधिक आराम न करे और अधिक परिश्रम भी न करे। प्रशंसा या निदा से प्रसन्न या क्रोधित न हो। आलस्य छोड़ ब्रह्मचर्य से रहे। ज्ञानियो ने स्त्री

को देखना, स्पर्श करना, उसका चितन करना, क्रीड़ा या काम-भोग चितन, इसकी चर्चा, इच्छा तथा समागम, ये आठ प्रकार के मैथुन कहे है। मोक्ष चाहनेवाला या सन्यासी इनका त्याग करके पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहे। (4-11)

'प्रकाशमान स्वयं प्रकाशित आत्मा ही विश्व को प्रकाशित करने वाला है। वह स्वच्छ स्वरूप, साक्षी, सबका आत्मा, सबमे स्थित है। मनुष्य को अपने किसी भी कर्म, प्रयत्न या सतान द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति नही हो सकती। ब्रह्म अवर्णनीय, सत्य, ज्ञान एव आनंदमय है। ससार अज्ञान और माया है। इसमें व्याप्त ब्रह्म को जाननेवाले की सब इच्छाए पूर्ण होती है। मै ब्रह्म हू, इस प्रकार माया को समझ लेनेवाला ब्रह्म ही बन जाता है। रस्सी को सांप समझने के समान ही ब्रह्म से शब्द, स्पर्श आदि की उत्पत्ति हुई। फिर आकाश से वायु, वायु से अग्नि आदि उपजे। फिर परमात्मा ने पच तत्त्वो से ब्रह्मा की तथा ब्रह्माड मे उनके कर्मो के अनुसार देवता-दैत्य-यक्ष-किन्नर-मनुष्य आदि रचे। सभी प्राणियो के अन्न से बने इस स्थूल शरीर के साथ ही एक प्राणमय आत्मा है, जो इस स्थूल शरीर मे है। इसके भीतर एक सूक्ष्म आनदमय आत्मा है। प्राणमय आत्मा आनदमय आत्मा से तथा आनदमय आत्मा प्राणमय से परिपूर्ण होता है। ये इनके बिना पूर्ण नही है। आनदमय आत्मा मे सर्वव्यापक परिपूर्ण ब्रह्म आत्मा है, किंतु ब्रह्म को पूर्ण करनेवाला कोई नही है, यह स्वय पूर्ण, सत्य, ज्ञानस्वरूप, सबका आश्रय, सार तथा रसमय है। देहधारी केवल इसी को पाकर सुखी होता है। यही सबका आत्मा है, इसके बिना कोई भी जीवित नही रह सकता। सबके चित्त मे रहनेवाला यह अतर्यामी ही दु:खी प्राणियों को आनद देता है। (12-30)

'इस भेदरहित परम तत्त्व को पानेवाला महान योगी देशकाल से परे, सतरूप, परब्रह्म, परम अमृत रूप तथा कल्याणमय बन जाता है। अपने को इससे दूर माननेवाला कभी निर्भय नही बन सकता। छोटे तिनके से विष्णु तक इसी से आ नदित होते है। पूर्ण विरक्त ही इसका स्वय अनुभव करता है। वाणी किसी उद्देश्य को लेकर ही कार्य करती है, परम तत्त्व कारणहीन है, अत वह इसे पाए बिना ही लौट आती है। यह सभी विषयो से शून्य है, अत· शब्दो का विषय नही बन सकता। यह सूक्ष्म तत्त्व सर्वत्र विचरण करता है। नेत्र आदि इद्रियों की शक्ति सीमित है। अत ये उसे नही प्राप्त कर सकती। इस निर्द्वंद्व-निर्गुण आदि ब्रह्म को जाननेवाला भयमुक्त हो जाता है। गुरुजनों के उपदेश से इसे जानने वाला अच्छे-बुरे कर्मो से मुक्त होकर तपते सूर्य के समान, ब्रह्म को जान लेता है। वेदात मे प्रत्येक आत्मा के ब्रह्म, ईश्वर चैतन्य, जीव चैतन्य, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय एव फल, ये सात तत्त्व कहे गए है। यह भेद केवल सुविधा के लिए है। ब्रह्म शुद्ध चैतन्य माया रहित है। माया के कारण ब्रह्म ईश्वर तथा अज्ञान के कारण जीव बनता है। अतकरण के कारण वह प्रमाता, तदवृत्ति से प्रमाण, अज्ञात चैतन्य से प्रमेय तथा इसका ज्ञान हो जाने पर फल कहलाता है। अपने को उपाधि (अज्ञान) रहित अनुभव करने पर वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। यही वेदात का सार है। अपने कर्मो से प्राण जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है, अन्यथा सब आत्मा ही है। यही रहस्य है।' (31-47)

□

कुंडिकोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायतु ममागान वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बलमिद्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषदं माह ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्व निराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि सतु।

ॐ शाति· शाति शांति ।

मेरे समस्त अग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इद्रिया तथा बल पुष्ट हो। यह उपनिषद् ब्रह्मस्वरूप, जानने योग्य है । मै ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करें, हमारा परस्पर अनिराकरण हो । उपनिषदो का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमे व्याप्त हो । दैहिक (शारीरिक), दैवीय और भौतिक (प्राणियों द्वारा होनेवाला) तीनो प्रकार के ताप-कष्ट शांत हो ।

वेदो का अध्ययन करके ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति पर जिसे गुरु घर जाने की आज्ञा दे, वह आश्रमी कहलाता है । अनुरूप पत्नी को पाकर शक्ति के अनुसार अग्नि में ब्राह्म यज्ञ का पूजन करें । फिर पुत्रो को सब कुछ सौपकर वन में जाकर भ्रमण करे । वायु, जल या कदमूल का भोजन करे । किसी भी कष्ट मे आंसू न गिराए। यह एक सामान्य नियम है, केवल इसी से कोई सन्यासी नही कहलाता । अत इच्छारहित होकर वर्ण (जाति) एवं अग्नि का त्यागकर संन्यासाश्रम को त्यागकर वानप्रस्थ ग्रहण किया जाता है । जनसाधारण की तरह स्त्री आदि सुखों के त्याग से ही कोई लाभ नही, अन्यथा पुनर्जन्म के भय से, शीत-उष्ण के भय से कोई भी भोगों को नही छोड़ता । छोडने का कारण केवल परम पद को प्राप्त करना ही है। फिर वह हाथ ऊपर उठाकर ब्रह्म का स्मरण, मृत्युजय-जप, मुंडन, भिक्षा आदि मागता हुआ घूमता है । निदिध्यासन, पवित्र व्रत धारण करता है । कमंडलु, चमसा, गुदडी, लंगोट, धोती आदि के सिवा संन्यासी सब वस्तुओं को त्याग दे । (1-10)

संन्यासी नदी-तट पर या मंदिर मे सोए। अधिक सुख या दु.ख से शरीर को कष्ट न दे । स्नानादि से पवित्र रहे । निदा-प्रशसा से संतुष्ट या क्रोधित न हो । भिक्षापात्र या जल, जैसा भी प्राप्त हो ग्रहण करे । इस प्रकार से संयमी बने । आकाश, वायु आदि में व्याप्त ब्रह्म से ही अपने को उत्पन्न हुआ माने अत अपने को उसी के समान अजर, अमर आदि समझे । ब्रह्म एव स्वय के बीच माया की लहरो को उत्पन्न एवं विलीन होती देखे, देह से कोई सबध न समझे । जागृत, स्वप्न आदि अवस्थाओ को व्यर्थ माने । *(11-15)*

'मै आकाश की तरह अकल्पनीय हूं, सूर्य की तरह अन्य जातियों से भिन्न निश्चल, समुद्र के समान पारहीन, नारायण, नरकातक, पुरारि, अखड आदि गुणोंवाला ईश्वर हू', सन्यासी स्वय को ऐसा ही माने । इस प्रकार प्राण-अपान को संयमित करे। हाथो को गुदा एव अंडकोष के मध्य रखकर जीभ को जो के बराबर बाहर निकालकर दांतों से दबाए, दृष्टि एव कानो को भूमि से स्थापित करे, जिससे शब्द कानों में एव गंध नासिका में न पहुचे । इस प्रकार ब्रह्म का ध्यान करनेवाला ब्रह्म और शिव ही है । पूर्व जन्म के पुण्य से अभ्यास द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है । (16-20)

वायु से नाद सुनना ही हृदय का तप है,यह देह को भेदकर मूर्धा की ओर जाता है। इसके मूर्धा तक पहुंच जाने पर पुनर्जन्म से मुक्ति तथा परम गति प्राप्त होती है। उस सबके साक्षी को साक्ष्यधर्म वैसे ही नही छूते,जैसे घर का दीपक पर और घड़े का खाली स्थान पर प्रभाव नही पडता। मै इसी प्रकार निर्लिप्त,निष्क्रिय,निर्विकार आदि हू। मै आनंदमय निर्विकल्प हूं। चलते रुकते,सोते प्रत्येक अवस्था में मुनि इच्छानुसार रहे। यही उपनिषद् है। (21-30)

□

50. अरण्योपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायतु ममागानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बलमिद्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मोपनिषद माहं ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि सतु।

ॐ शांति शाति शाति।

मेरे समस्त अग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इद्रिया तथा बल पुष्ट हो। यह उपनिषद् ब्रह्म स्वरूप जानने योग्य है। मै ब्रह्म का निराकरण न करू, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे, हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदो का धर्म आत्मज्ञान मे निरत मुझमे व्याप्त हो। दैहिक (शारीरिक), दैवीय और भौतिक (प्राणियो द्वारा होनेवाला) तीनो प्रकार के ताप-कष्ट शात हो।

प्रजापति लोक जाकर आरुणि प्रजापति से बोले, 'भगवन, मै सारे कर्मो को कैसे छोडू ? कृपया बताइए।' प्रजापति बोले, 'पुत्र, भाई-बधु, शिखा-जनेऊ, यज्ञ-अध्ययन को छोडकर, भू, भुव, स्व., मह आदि लोको की भी इच्छा न करो। केवल दड, कौपीन (लगोट) और ऊपर ओढने के वस्त्र के अतिरिक्त सभी कुछ त्याग दो। ब्रह्मचारी, गृहस्थ या वानप्रस्थ जो भी हो, जनेऊ को जल मे विसर्जित कर दे। लौकिक अग्नि को उदर की अग्नि मे रखकर वाणी मे गायत्री को रखे। कुटी मे रहनेवाला ब्रह्मचारी कुटुब, पात्र, पवित्री आदि को त्याग दे। दड, अग्नि, मंत्र, मन की चंचलता को भी त्यागकर औषधि के समान भोजन करे, तीनो सध्याओ मे स्नान करे, संधि के समय समाधि ले तथा ब्रह्म के सूचक अत-सूत्र को धारण कर बाहरी सूत्र (जनेऊ) को भी त्याग दे। (1-2)

'मैंने संन्यास ले लिया है', ऐसा तीन बार कहे। 'सभी प्राणी मुझसे निर्भय रहे', इस मत्र से दड धारण करे। दवा के समान खाकर जो कुछ भी मिले उसी मे सतोष करे। ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और सत्य का यत्नपूर्वक पालन करे। परिव्राजक परमहस की तरह भूमि मे सोए। मिट्टी या लकडी का बर्तन रखे। काम, क्रोध आदि को त्याग दे। वर्षा ऋतु में एक स्थान पर रहे, शेष आठों महीने घूमता रहे। पिता, पुत्र या पत्नी को त्याग दे। हाथ या उदर रूपी पात्र को लेकर भिक्षा हेतु गाव मे जाने पर तीन बार 'ओम हि' कहे। जनेऊ के बाद श्रेष्ठ ज्ञानी पलाश, बेल, गूलर आदि की पत्तियो, दड एव मूछ के कमरबंध को भी त्याग देता है। भगवान विष्णु के परम व्योम मे स्थित सूर्य के समान प्रकाशित लोक के ऐसे ज्ञानी सदा दर्शन करते है। निष्काम उपासक उसे प्राप्त कर लेते है। यही निर्वाण का उपदेश है, वेदों का मार्ग है तथा वेदों की शिक्षा है।

□

51. संन्यासोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममगानि वाक्प्राणचक्षुष. श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषद माहं ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि सतु ।

ॐ शांति शांति· शांति ।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रिया तथा बल पुष्ट हो । यह उपनिषद ब्रह्मस्वरूप, जानने योग्य है । मै ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे, हमारा परस्पर अनिराकरण हो । उपनिषदो का धर्म आत्मज्ञान मे निरत मुझमें व्याप्त हो । दैहिक (शारीरिक) दैवीय और भौतिक (प्राणियो द्वारा होनेवाला) तीनो प्रकार के ताप-कष्ट शात हो ।

सन्यास उपनिषद इस प्रकार है—क्रम से संसार को त्यागकर व्यक्ति सन्यासी बनता है । संन्यास क्या है ? कैसे ग्रहण किया जाता है ? इनका उत्तर इस प्रकार है—माता-पिता, पुत्र आदि की अनुमति मिलने पर यज्ञ करानेवाले ऋत्विज को प्रणाम करके वैश्वानर यज्ञ करे । समस्त सम्पति दान कर दे, ऋत्विज यज्ञ पात्रो को भी हवन कर दे । प्राण, अपान आदि को आरोपित कर केशो आदि का मुडन कर दे । पुत्र से 'तू यज्ञ है' कहे, पुत्र न हो तो स्वय से कहे । फिर पूर्व या उत्तर दिशा मे चल पड़े । चारो वर्णो से भिक्षा ले । हाथ को ही पात्र मानकर भिक्षा ले । दवा के समान भोजन करे, जिससे मोटापा न बढे । शरीर को दुबला करता हुआ गाव में एक तथा नगर मे पाच रात्रि तक रुके या पक्ष को ही मास समझकर दो मास तक रहे । फटे वसत्र या पेड़ो की छाल पहने । वर्षा ऋतु मे एक ही जगह रुक जाए । इस प्रकार का क्लेश ही तप है । इस प्रकार के संन्यासी के लिए ध्यान ही जनेऊ, ज्ञान ही शिखा, जलाशय ही पात्र और उनका तट निवास-स्थान है । उसके लिए रात-दिन समान है, अर्थात् सदा दिन ही है, अत उसे आचमन, जनेऊ आदि की आवश्यकता नही है । (1)

सन्यासी चालीस संस्कारोंवाला, पूर्ण विरक्त, शुद्ध चित्त, काम, क्रोध आदि से रहित, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष से संपन्न होता है । निश्चय करने पर भी संन्यास न लेने पर कृच्छ्र व्रत करके फिर सन्यास लिया जा सकता है । सन्यास से गिर जानेवाला, पतिल को दीक्षा देनेवाला तथा मन्याम ग्रहण करने में विघ्न डालनेवाला, ये सभी पतित (गिरे हुए) है, पतित्र, स्त्रैण (स्त्री के स्वभाववाला), अंगहीन, वहरा, वालक, गूगा, पाखडी, चक्री, लिंगी, ब्राह्मणत्व से पतित ब्राह्मण, घरेलू नौकर, वेतन लेनेवाला अध्यापक, अग्निहोत्र रहित ब्राह्मण, नास्तिक तथा वैरागी सन्याम योग्य नही है । मन्यास ले भी लें, तो उपदेश देने के अधिकारी नही हैं । पतित, संन्यासी, खराव नाखूनवाला, मैले दातवाला, क्षय रोगवाला, विकलाग, एकाएक वैराग्य होनेवाला, महापापी, सस्कारहीन और वदनाम लोगो को सन्याम की दीक्षा न दें । व्रत, तप, दान आदि से हीन लोगों को भी मन्याम न दें । यदि ये चाहें तो, आतुर सन्यामी वन मकते है । 'ओम भृ म्वाहा' कहकर शिखा का तथा 'यशो मल ' कहकर जनेऊ

को त्याग दें। 'ओं स्वाहा' कहकर कटि सूत्र (कमर का तागा) एव वस्त्रो का परित्याग करे। फिर 'मैंने सन्यास ले लिया है' ऐसा तीन बार कहे। संन्यासी द्विज को देखकर सूर्य भी 'यह मेरे मडल को भेदकर परम ब्रह्म में जा रहा है, ऐसा सोचकर हिल उठता है। जो ज्ञानी सन्यास लेता है, वह अपनी पीछे की एवं आनेवाली साठ-साठ पीढियों का तारण करता है। वह अपने पैत्रिक एव शारीरिक दोषो को अग्नि में सोने के दोषों के समान जला देता है। 'मित्र, मेरी रक्षा करो' कहता हुआ दंड धारण करे। दड सीधा बिना गाठवाले बास का हो, स्वच्छ, बेदाग हो, कीड़ों का खाया न हो तथा इसकी लबाई नाक, भौह या चोटी तक हो। (2-14)

दड एव आत्मा का सबंध उचित है, अत संन्यासी एक से दूसरे स्थान तक तीन बार बाण फ़ेके जाने की दूरी से अधिक बिना दड के न जाए। 'जगज्जीव ' मत्र से कमडलु एवं योग पट्ट से सुशोभित होकर सुखपूर्वक चले। धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य को त्यागकर फिर इस त्यागनेवाले को भी त्याग दे। वैराग्य, ज्ञान, ज्ञान-वैराग्य और कर्म सन्यासी, सन्यासी के ये चार भेद होते है। देखे-सुने विषयो के प्रति पूर्व जन्म के कर्मो से वैराग्य होने पर बना सन्यासी वैराग्य सन्यासी है। शास्त्र ज्ञान से भले-बुरे को विचारकर देह, शास्त्र एवं लोक की इच्छा को त्यागकर ससार प्रपच को वमन के समान समझकर संन्यास ग्रहण करनेवाला ज्ञान सन्यासी है। क्रम से सब अनुभव प्राप्त करके ज्ञान एव वैराग को भली-भांति समझकर सन्यास लेनेवाला ज्ञान-वैराग्य सन्यासी है। तीनो आश्रमो का पालन करने पर बिना वैराग्य के सन्यास लेना कर्म सन्यासी होता है। सन्यासी छ प्रकार के होते है—कुटीचक्र, बहूदक, हस परमहंस, तुरीयातीत एव अवधूत। कुटीचक्र शिखा, यज्ञोपवीत, दड, कमडलु, कौपीन, चादर एव कथा धारण करता हुआ माता-पिता एव गुरु की आराधना करनेवाला बटलोई, कुदाल, छीका रखनेवाला, एक स्थान पर भोजन करनेवाला, सफेद खडा त्रिपुड धारण करनेवाला और तीन दड धारण करनेवाला होता है। बहूदक भी ऐसा ही होता है, किंतु उसका भोजन केवल आठ कौर का होता है। (15-25)

हस जटाओवाला, त्रिपुड या खड़ा तिलक लगानेवाला, इधर-उधर मांगकर खानेवाला तथा केवल एक कौपीन पहननेवाला होता है। परमहंस शिखा-जनेऊ रहित, पाच घरो से हाथ मे ही मांगकर खानेवाला, एक चादर, एक दंड, एक कौपीन अथवा केवल चादर से शरीर ढकनेवाला होता है। तुरीयातीत गाय की तरह केवल तीन घरों से अन्न-फल खानेवाला तथा शरीर को मृत जैसा मानकर नगा रहनेवाला होता है। अवधूत नियमहीन, केवल पतितों को छोडकर सभी वर्णो के यहा अजगर की तरह खाने वाला होता है। वह केवल आत्मा की खोज में रहता है। यह वक्ष आदि मुझसे भिन्न है। दिखाई पडनेवाली वस्तुए जड है, मै विभु काल की कल्पना तथा शीघ्र ब्रह्म मे लय होनेवाला हू।' यही उसके विचार होते है। (26-30)

मै कान द्वारा कल्पित अचेतन शून्य शब्द नही हूं। नाश होनेवाली त्वचा द्वारा स्पर्श भी नही हू, स्पर्श जड है। रसभोग जीभ का विषयरस भी नही हू। दृश्य एव दर्शन मे क्षण-भर मे लीन होनेवाला रूप भी नही हू। गंध भी नासिका को जड कल्पना है; मै गंध भी नही हू। इस प्रकार मै इद्रियों का विषय भी नही हू। मैं निर्मल, शांत, प्रपंच रहित, शुद्ध चैतन्य और उससे भी बढकर हू। मैं सबके बाहर-भीतर व्याप्त निष्फल, निर्विकल्प, चिदाभास हू। मेरे कारण ही घड़े-वस्त्र से लेकर

सूर्य तक तेज युक्त है। मेरे आतरिक प्रकाश से ही इंद्रियां काम करती है। यह दृष्टि अनत आनद का भोग करनेवाली तथा अन्य दृष्टियो को जीतनेवाली है। यह मुक्त सभी भावनाओं मे स्थायी रहता है। इस प्रत्येक आत्मा को नमस्कार। निष्कल-अकल्पनीय चित शक्ति ही इन विचित्र,स्वच्छ एव समान भाववाली शक्तियो को प्रकट करती है। यह तीनों कालो मे सर्वाधिक शक्तिशाली एव बंधनरहित है। यह अवर्णनीय, शाश्वत एवं आत्मा के समान शेष रहनेवाली है। इच्छा-अनिच्छा युक्तो मे रहनेवाली यह शक्ति मैली पख बंधे पक्षी के समान उडने मे असमर्थ है। ईर्ष्या एव इच्छा के द्वद्व से प्राणी मोह रूप पृथ्वी के गर्त मे गिरे कीटो के समान है। (31-46)

अचितनीय चिदात्मा को और मुझे नमस्कार। मै विकल्पहीन बुद्धि रूप उदय होनेवाला आदि जो भी हूं, मुझे नमस्कार। हे अनंत ईश्वर ! तू रुकने पर भी रुका नही है, चलने पर भी जाता हुआ नही है, तू परमेश्वर है; मै शिव हूं, तू शात रहने पर भी काम करता है और कार्य करने पर भी इसमे लिप्त नही होता। इस प्रकार के तुझे तथा मुझे दोनों को नमस्कार। यह ईश्वर सदा सुलभ, सगो की तरह चतुर तथा शरीर कमल मे भंवरे की तरह रहने वाला है। इच्छा एव भोगो से मुझे कुछ नही करना है। जिसे आना है आए, जिसे जाना है जाए। मन, अहंकार एवं भाव का नाश हो जाने पर मै केवल शुद्ध रूप में हूं। मेरा शत्रु कोई कैसे हो सकता है ? मेरे शरीर की अहकार रूपी चिडिया इच्छा रूपी रस्सी को काटकर न जाने कहां उड़ गई है। जो अपने को कार्य करनेवाला (कर्ता) नही समझता, जिसकी बुद्धि लिप्त नही होती और जो सबको समान समझता है उसी का जीवन उचित है। (46-55)

जिसका अतःकरण शीतल एव राग-द्वेषहीन है, जो जगत को साक्षी के समान देखता है, जिसे ज्ञान प्राप्त हो गया है, जिसने उचित-अनुचित का ध्यान छोड दिया है तथा जिसका चित, चित्त मे ही जुड गया है, ऐसे व्यक्ति का जीवन ही सुंदर है। ग्राह्य-ग्राहक सबध नष्ट होने पर मिलनेवाली शाति ही मोक्ष है। जैसे भुना हुआ बीज नही जमता, वैसे ही जीवन मुक्त का हृदय शुद्ध हो जाता है। तब वह पवित्र, उदार, शुद्ध, सत्त्व होकर ध्यानयुक्त और नित्य मे स्थित होता है। चित्तहीन चेतन ही आत्मचेतन कहलाता है। मन रहित होने पर दोष शात होते हैं। यही सब जानना ज्ञान एव तृप्ति है। बोलने, आदान-प्रदान करने, आखें खोलने पर भी मै मनन करने योग्य आनदमय आत्मा हू। सवेद्य (जानने योग्य) मन को इच्छारहित करके आशा के बंधन को काटकर अब मैं ज्ञान रूप हू। शुभ-अशुभ, इष्ट-अनिष्ट सकल्पों एवं भावों से रहित अब मै निरामय एव ज्ञान ही हूं। (56-65)

राग-द्वेष हीन होकर मै विभागहीन जगत में वज्र स्तंभ के समान आत्मा के सहारे हू। मैं निर्मल एवं इच्छा रहित दशा में प्रयत्न, हेय, उपादेय आदि भावना से रहित स्थित हूं। मैं कब निर्विकल्पक समाधि में निश्चल शिला जैसा बनूंगा ? कब संतुष्ट होऊंगा ? कब स्वय प्रकाश पद मिलेगा ? कब पर्वत गुफा में शांत होकर मनन करूगा ? और कब उस ब्रह्म के ध्यान में लीन होने पर कोयले मेरे माथे में घोसला लगाएंगी ? सकल्प तृष्णा के वृक्ष-लताओं को काटकर मन के मैदान में प्रसन्नता से घूमता हूं तथा परमपद मिलने पर कैवल्य रूप अपना ही नाम जपता हूं। अब मैं निर्वाण, निरीह, निरश, स्वच्छ, विजेता, सत्य एव ज्ञानरूप हो गया हूं। आनंद, इद्रिय शमन, सदा प्रसन्नता, पूर्णता, उदारता, शोभा तथा अद्वैत की भावना करता हुआ सन्यासी अपने रूप मे स्थित रहकर निर्विकल्प

रूप को जानकर निर्विकल्पक बना रहे। जीवित रहने पर आतुर संन्यासी क्रम सन्यास ले। नीच स्त्री, पतित और रजस्वला से वार्तालाप न करे। देवता-पूजन न देखे, यह सन्यासी का कार्य नही है। आतुर, कुटीचक्र, बहूदक, हस एवं परमहस को क्रमश· भू, भुव, स्व, तप एव सत्य लोक मिलता है। तुरीयातीत एव अवधूत अपने स्वरूप को खोजते हुए कैवल्य पाते है। अपने को जानने के प्रयत्न के अतिरिक्त कार्य सन्यासी के लिए ऊट को केसर लगाने के समान व्यर्थ है। योग, साख्य, मत्र-तत्र आदि सन्यासी के लिए वर्जित है। ऐसे कार्य करना शव पर अलकार लगाने के समान सन्यास के विरुद्ध है। उसके लिए नाम कीर्तन मे भाग लेना भी मना है। जो कर्म किया जाता है, उसका फल भी मिलता है। वह अडी के फेन के समान सब कुछ त्याग दे। देवता का प्रसाद लेना या किसी देवता की पूजा भी न करे। (66-75)

अपने अतिरिक्त सब कुछ त्यागकर उसे हाथ या मुह से मधुकरी (भिक्षा) ग्रहण करके जीवन यापन करना चाहिए। शरीर मे चर्बी न बढे, इसके लिए घूमते रहना। आधा पेट भोजन और एक चौथाई जल पीकर शेष पेट वायु के लिए खाली रहना चाहिए। एक ही घर से लगातार न खाए। श्रद्धा से उसकी प्रतीक्षा करनेवालो के घर से ही भिक्षा यथासभव प्राप्त करे। पाच-सात घरो से भिक्षा पाने के लिए गाय दुहने तक के समय तक प्रतीक्षा करे। एक घर मे दोबारा न जाए। रात को उपवास उचित है। बिना मागे मिली भिक्षा श्रेष्ठ है। इसके लिए घर मे दाएं-बाए मार्ग से न जाए। निर्दोष घरो को न छोडे। वेद न जाननेवाले, श्रद्धाहीन और सस्कारहीन के घर से न मागे। श्रद्धालु सस्कारहीन के घर से ग्रहण कर ले। भिक्षा पाच प्रकार की होती है, असकल्पित, प्राक्प्रणीत, अयाचित, तात्कालिक तथा उपपन्न। बिना विचार किए तीन, पांच या सात घरो से मधुमक्खी के समान भिक्षा लेना असंकल्पित मधुकरी है। पहले दिन या प्रात किसी के द्वारा प्रार्थना करने पर उससे भिक्षा लेना प्राक्प्रणीत है, चलते-फिरते कोई निमत्रण दे, तो यह अयाचित है, जाते ही कोई ब्राह्मण भोजन कराने का आग्रह करे, तो तात्कालिक तथा यदि वह तैयार भोजन लाए तो इसे उपपन्न मधुकरी कहते है। (76-88)

सन्यासी म्लेच्छ से भी भिक्षा ले, किंतु बृहस्पति के घर से लगातार न ले। वह याचित या अयाचित भिक्षा से ही जीवनयापन करे। वायु सभी को स्पर्श करता है, अग्नि जला देता है और जल में लोग गंदगी कर देते है, किंतु ये उससे अपवित्र नही होते। इसी तरह संन्यासी भी दोषो से दूषित नही होता। धुआ एव मूसल की ध्वनिहीन जगह पर, जहा आग बुझ जाए और लोग भोजन करते हों, वहां दोपहर बाद भिक्षा मांगे। आपत्तिकाल में नीच एव पाखंडी को छोडकर चारो वर्णो से भिक्षा ले सकता है। उसके लिए घी, शहद, तेल लहसुन युक्त और उड़द के पकवान तथा दूध क्रमश कुत्ते के मूत्र के, शराब के, सुअर के पेशाब के, गोमांस के तथा मूत्र के समान है। अत इन्हे कभी न खाए। हाथ ही उसका बर्तन है, अत उसी में भोजन करे। इसी प्रकार एक दिन में एक ही बार भोजन करे। गाय के समान भोजन करने से समानता की भावना के बाद अमरता मिलती है। (89-96)

वह घी, एकत्रित अन्न, सुगंधित उबटन, नमक, वस्त्र, तेल, मालिश, हसी-मजाक, घमड, परिचित घर की भिक्षा, स्त्री, राजधानी और एक ही घर के भोजन को क्रमश खून (रक्त), मास, गदी वस्तु, अस्पर्श्य, जूठे बर्तन, स्त्री-सहवास, मूत्र, गोमांस, चाडाल, सर्पिणी, कालकूट विष, श्मशान, कुंभीपाक

नरक तथा शव के समान त्याग दे । देवपूजन न करे । सांसारिकता को त्यागकर जीवन्मुक्त बने । आसन, पात्र लोप, इकट्ठा करना, शिष्य बनाना, दिन में सोना तथा व्यर्थ बोलना, ये छ सन्यासियो के लिए पाप है । वर्षा काल के अलावा कही अधिक रुकना आसन है, कहे गए सामान से अधिक रखना सग्रह है, इनमे से किसी के खो जाने पर दूसरा लेना पात्र लोप है तथा एक दड के साथ दूसरा लेना परिग्रह है । साथ ही आगे के लिए रखना संचय, सेवा-पूजा-यश के लिए प्रयत्न करना परिग्रह और स्वयं आत्मकल्याण के लिए आए हुए व्यक्ति के अतिरिक्त को शिष्य बनाना शिष्य— सग्रह है । उसके लिए विद्या प्रकाशमय दिन तथा अविद्या रात्रि है । विद्याभ्यास मे आलस्य दिन में सोना है । आध्यात्मिक चर्चा और भिक्षा के लिए बोलने के अलावा बोलना व्यर्थ का वार्तालाप है । घमड, मात्सर्य, गंध, पुष्प, आभूषण, पान, तेल, क्रीड़ा, भोगो की इच्छा, रसायन, प्रशंसा, निदा, कुशल प्रश्न क्रय-विक्रय, क्रिया-कर्म, वाद-विवाद, गुरु का कहना न मानना, संधि-विग्रह की बाते, पलंग, सफेद वस्त्र, वीर्य पात, दिन मे निद्रा, भिक्षा का बर्तन रखना, स्वर्ण, विष, शास्त्र, हिसा, क्रोध एव मैथुन वर्जित है । उसके लिए गृहस्थियो के कर्म, गोत्र का विचार, माता-पिता की संपत्ति आदि लेना मना है । इन्हे लेने से नीच गति मिलती है । विद्वान सन्यासी वृद्धा का भी विश्वास न करे, क्योंकि जीर्ण कथा (गुदडी) में जीर्ण कपड़ा ही लगता है । चल-अचल, बीज, स्वर्ण, विष एवं हथियारो को मल-मूत्र समझकर कभी सचित न करे । (97-110)

केवल आपत्तिकाल मे मार्ग के लिए रखने के अलावा संन्यासी को कुछ भी पास में नही रखना चाहिए । अन्न न मिलने पर पका अन्न ले सकता है । सुंदर युवक संन्यासी कभी किसी के घर मे न रहे । दूसरे के लिए मांगना या कुछ देना मना है । सबके कल्याण के लिए विनम्र आचरण करे । पका या बिना पका मांगने से अधोगति मिलती है । खाने के लालची तथा ऊनी या सूती या रेशमी किसी भी वस्त्र को ग्रहण करने से उसका पतन होता है । उसे अद्वैतरूपी नाव में बैठकर जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करनी चाहिए । वाणी, शरीर तथा मन को दंड देने के लिए क्रमश मौन धारण, उण्वास तथा प्राणायाम करे । कर्म से बधन तथा विद्या से मुक्ति मिलती है, अत सन्यासी कर्म से पृथक रहते हे । गलियों मे वस्त्र, सब जगह भिक्षा तथा सोने को विस्तृत भूमि की पलग मिल जाती है, तव वे दु खी कैसे रहेगे । समस्त प्रपंच को ज्ञान की अग्नि में जला दे । आत्मा में अग्नि को रखनेवाला महान अग्निहोत्री है । मार्जारी एवं वानरी दो प्रवृत्तियां है । ज्ञान के अभ्यासवालो की मुख्य प्रवृत्ति मार्जारी तथा सहायक वानरी है । बिना पूछे और अन्यायी प्रश्न पूछने पर भी न बोले । ऐसे समय मे सव कुछ जानता हुआ भी मूर्ख जैसा वन जाए । पाप का प्रसग होने पर बारह हजार तारक मत्र का जप करके पाप को काट दे । प्रतिदिन बारह हजार प्रणव जप से बारह मास में ही परम ब्रह्म मे साक्षात्कार होता है । (111-116)

□

52. नारद परिव्राजकोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभ्य शृणुयाम देवा भद्र पश्येमातक्षिर्भिर्यजत्रा
स्थिरेरगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्योँ अरिष्टनेमि स्वस्ति नी बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति शाति शाति ।

हम कानो से कल्याणमय वचन सुने, नेत्रो से कल्याणमय चीजो को देखे और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे । इद्र हमारा कल्याण करे, पूपा हमारा कल्याण करे । अमगलनाशक गरुड और बृहस्पति हमारा कल्याण करे । दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के दु ख शात हो ।

प्रथम उपदेश

एक बार परिव्राजको (सन्यासियो) मे श्रेष्ठ नारद सब लोको मे संचार करते हुए पुण्य स्थलो, तीर्थों को पवित्र करते हुए चित्त-शुद्धि प्राप्त करके निर्वैर-शात- दानपूर्ण-विरक्त होकर अपने स्वरूप का अनुसधान करते हुए सयम-नियम से आनदमय और मुनियो के आश्रय स्थान नैमिषारण्य पहुचे । इस पुण्य स्थल को देखकर वीणा के द्वारा 'स-रे-ग-म-प-ध-नि' स्वरो से वैराग्य की स्वर झकार निकल रही थी । सासारिकता से दूर उनकी हरिकथा को सुनकर स्थावर (वृक्ष आदि) और जंगम (चलनेवाले प्राणी) सभी मनुष्य आनदित हुए । उनका भक्तिमय सगीत पशु, मनुष्य, देवता, गधर्व, किन्नर, अप्सरा सभी को आकर्षित कर रहा था । भगवदभक्त ब्रह्मा के पुत्र नारद को देखकर वहा हो रहे बारह वर्षीय 'सत्र यज्ञ' में उपस्थित वेद्रज्ञ, सर्वज्ञ, तपस्वी और ज्ञान-वैराग्य-सपन्न शौनक आदि महर्षि उठ खडे हुए और उन्होने नारद का यथोचित सत्कार करके उन्हे एक आसन पर बैठाया तथा स्वय भी बैठ गए । तब उन ऋषियों ने उनसे कहा, 'भगवन । मुक्ति का क्या उपाय है ? कृपया हमें बताए ।' (1)

तब नारद बोले, 'उच्च कुल में उत्पन्न होकर उचित विधि ले उपनयन सस्कार करके चौबीस सस्कारों से सपन्न गुरु के आश्रम मे अपनी शाखा के अनुसार सभी विद्याए पढकर बारह वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ जीवन बिताएं और फिर 25 वर्ष वानप्रस्थ मे रहे और नियम पालन सही रूप में करे । विद्वानो ने इन तीनों आश्रमो को क्रमश चार, छ और चार प्रकार का कहा है । इनका नियमपूर्वक पालन करे । फिर धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष इन चारो माधनो से सपन्न होकर सपूर्ण संसार से ऊपर उठकर मन, वाणी और कर्म से सभी आशाओ को त्यागकर वासना एव इच्छा को भी त्याग दे । किसी के प्रति वैर न रखकर, शांत तथा इद्रियो का दमन करके

संन्यास लेकर अबाध रूप मे आत्मा का ध्यान करते हुए देह त्याग करने से नि सदेह व्यक्ति मुक्त होता है।' (2)

द्वितीय उपदेश

शौनक आदि ऋषियो ने नारद से फिर कहा, 'कृपया हमे सन्यास की विधि समझाइए।' इस प्रकार उन्हे देखते हुए नारदजी बोले कि इसे पितामह ब्रह्मा के मुख से सुनना उचित होगा। अत 'सत्र यज्ञ' के पूर्ण होने पर वह उन सबको साथ लेकर ब्रह्मलोक गए। ब्रह्मा के प्रति विधिपूर्वक निष्ठा दिखाकर प्रणाम कर स्नान से पवित्र होकर उन्हे अपने साथ बैठाकर नारद ब्रह्मा से बोले, 'आप पिता, गुरु, सब विद्याओ के रहस्य को जाननेवाले और सर्वज्ञ है। अत मेरे एक रहस्य के बारे मे बताइए। आपके अलावा मेरे प्रश्न का उत्तर और कौन दे सकता है ? यदि आप कृपा करे, तो सन्यास के स्वरूप एव क्रम को समझाइए। ब्रह्मा चारो ओर देखते हुए क्षण-भर के लिए आखे बद कर समाधिस्थ हो सांसारिक दु खो से मुक्ति का उपाय सोचने लगे। फिर आखे खोल नारद को देखकर कहा, 'प्राचीन काल मे पुरुष सूक्त एव उपनिषदो मे कहा गया गूढ रहस्य, जो विराट पुरुष ने मुझे उपदेश मे दिया था, वही तुम्हे बताता हू। इस रहस्य क्रम को ध्यान लगाकर सुनो।

'नारद ! माता-पिता के आज्ञाकारी बालक का यदि उपनयन न हुआ हो, तो पहले इस सस्कार को करे। फिर वह किसी उच्च कुलीन विद्वान गुरु के आश्रम मे जाकर विनम्र भाव से प्रणाम करके अपनी इच्छा बताए। बारह वर्ष तक गुरु-सेवा सहित विद्याओ का अभ्यास करे। फिर अध्ययन पूर्ण होने पर गुरु की आज्ञा से अनुरूप कन्या से विवाह करे। पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ धर्म का पालन करे। वश चलाने के लिए पुत्र उत्पन्न करे। फिर सन्यासी के रूप में अगले पच्चीस वर्ष बिताए। दिन मे तीन बार स्नान तथा चौथे प्रहर एक बार भोजन करे। ग्राम-नगर के परिचित मार्गो को त्यागकर एकात वन मे रहे। स्वय उपजे हुए चावलो को एकत्र कर आश्रम के धार्मिक कार्य करे। लोक-परलोक से वैराग्य ले ले। चालीस सस्कारो से पवित्र होकर आशा, असूया आदि का त्याग कर दे। तब चालीस सस्कारो से पवित्र होकर ही सन्यास लेने का अधिकारी होता है।'

तृतीय उपदेश

नारद बोले, 'सन्यास कैसे और किसके द्वारा लिया जाता है, कृपया बताए।' ब्रह्मा ने कहा, 'पहले संन्यास का अधिकारी कौन है ? इसी पर प्रकाश डालता हू। अगहीन, नपुसक, पतित, स्त्रैण, बहरे, गूगे, बच्चे, पाखडी, चक्री, लिगी, वैतानिक अध्यापक आदि विरक्त होने पर भी सन्यास के अधिकारी नही है, यदि सन्यास ग्रहण भी कर ले, तो महावाक्यो का उपदेश ग्रहण नही कर सकते। पहले से ही सन्यास के अनुकूल आचरण करनेवाला ही इसे ग्रहण कर सकता है, क्योंकि किसी से न डरनेवाला और किसी को न डरानेवाला ही स्मृतियों के अनुसार सन्यास ले सकता है। नपुसक, अगहीन आदि सन्यास लेने पर केवल आतुर सन्यासी ही हो सकते है, किंतु क्रम सन्यासी नहीं। (2-4)

'आतुर सन्यास का समय प्राण निकलते समय आतुर सन्यास लिया जाता है। ठीक समय

पर प्राप्त हो जाने पर यह भी मुक्ति देता है। इसे भी मत्रो सहित विधिपूर्वक ले। नियमो एव मत्रो में इसमे और संन्यास मे कोई अतर नही है। सभी कर्म मत्र युक्त होते है, अत मत्र-त्याग न करे। बिना मत्र का कर्म बुझी हुई आग मे आहुति डालने के समान है। नियमपूर्वक मत्रो को पढने पर ही कर्म संन्यास की प्रक्रिया पूरी होती है। अग्निहोत्री को विदेश मे वैराग्य होने पर वह जल मे प्राजापत्य करे और सन्यास ले। यह कर्म वह मन से, विधि सहित मत्रोच्चारण से या वैदिक रीति से करे, तभी सन्यास ले, अन्यथा वह धर्मच्युत हो जाएगा। पदार्थो से पूर्ण वैराग्य होने पर ही सन्यास का विचार करे। थोडा-सा भी अनुराग मन मे हो, तो घर को त्यागे। अन्यथा पतन होने पर नरक मिलता है। जिसकी इद्रियां वश मे हो या जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण हो, ये तथा पूर्ण वैराग्य होने पर अविवाहित भी सन्यास ले सकते है। कर्म प्रवृत्ति एव ज्ञान सन्यास का लक्षण है, अत ज्ञान के लिए ही सन्यास लेना चाहिए। (5-16)

'परमतत्त्व सनातन ब्रह्म का ज्ञान होने पर यज्ञोपवीत एव शिखा त्यागकर दंड ग्रहण करे। सब पदार्थो से वैराग्य और परमात्मा से पूर्ण अनुराग होने पर ही भिक्षा का अन्न खाया जा सकता है। आदर मिलने पर होनेवाली प्रसन्नता पिटने पर भी बनी रहे, तभी भिक्षु बनने का अधिकारी होता है। 'मै ही अद्वितीय ब्रह्म हू,' ऐसी भावना होने पर ही भिक्षुक कहलाता है। जिसमे शक्ति, दमन, सयम आदि हो एव जो मन, वाणी और कर्म से ईर्ष्या भाव न रखे, वही सन्यासी है। इस प्रकार का आचरण करता हुआ एक आसन से उपनिषदो को सुनता हुआ तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक अध्ययन करके ऋषि ऋण से मुक्त होकर ही सन्यास ले। धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, पवित्रता, इद्रिय, सयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना, ये दस धर्म के लक्षण हैं। बीते सुखो का स्मरण एव आगे की कल्पना न करनेवाला, इद्रियो एव मन को जीतनेवाला तथा प्राणो के रहने पर भी मृत के समान सुख-दु ख का अनुभव न करनेवाला ही सन्यासी बनने का अधिकारी है। दो कौपीन, एक गुदडी और डडा इससे अधिक का लोभ करनेवाला सन्यासी रौरव नरक मे जाता है और फिर पशु-पक्षियो की योनि मे जाता है। शीत से बचने के लिए फटे वस्त्रो की गुदडी बनाए। एक वस्त्र पहनें या वस्त्रहीन रहे। चचल दृष्टि न हो, अकेला रहे, वर्षा मे ही एक स्थान पर रहे और परिवार, वेदाग एवं जनेऊ भी त्याग दे। अपनी प्रशसा न करे। (17-32)

'ममता, काम, क्रोध, राग, द्वेष से दूर रहे। स्वर्ण को मिट्टी-पत्थर समझे। दभ, अहकार का त्याग तथा आत्मज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। इद्रियो के वश मे होने से दोष तथा इन्हे वश मे करने से सिद्धि मिलती है। भोगो को भोगने से इच्छाए शात न होकर और अधिक भडकती है। मीठे या कटु शब्दो से, स्वादिष्ट या अरुचिकर भोजन से, कोमल या कठोर वस्तु को छूकर, सुदर या असुदर को देखकर और सुगध या दुर्गध को सूघकर जो समान रहता है, वही जितेद्रिय है। मन-वाणी से पवित्र हो वेदों का फल पाते है। विद्वान सम्मान को विष एव अपमान को अमृत के समान समझे। अपमान होने पर मनुष्य सुख से सोता, जागता एव घूमता है, कितु अपमान करनेवाला नष्ट हो जाता है। नश्वर शरीर के लिए किसी से शत्रुता न करे। कठोर वचनो को सहे। क्रोध करनेवाले से भी क्रोध न करे और गाली देनेवाले को गाली न दे। वाणी दो-दो नाक, कान और आख तथा मुख सात छिद्रों मे सबधित है। इससे झूठ न बोले। सुख की इच्छा होने पर आध्यात्मिक चितन करे। अपनी सहायता

से ही घूमे। इंद्रिय संयम से प्राणियो का कल्याण करे। शरीर अस्थि-मास आदि से वना रोगो का घर है। वीर्य एवं रज से बनने के कारण यह रजस्वल है। पच तत्त्वों का बना यह शरीर त्यागने योग्य है। इससे प्रेम करनेवाला नरक में जाता है। इसमें स्थित अहकार महावीचि नरक देनेवाला है। इसका मल असिपत्र नरक है। यह अश कुत्ता खानेवाली चांडालिनी के समान है। (41-50)

'अपने प्रिय-अप्रिय, सुकर्मो एव दुष्कर्मो को त्यागकर ध्यान योग से ब्रह्म को प्राप्त करे। इस प्रकार धीरे-धीरे आसक्ति को छोड़कर ब्रह्म को प्राप्त करता है। सिद्धि के लिए अकेला ही रहे। प्राप्त सिद्धि को देखकर प्रयास न छोडे। कपाल लकडी का पात्र, वृक्ष-मूल का भोजन, सबके प्रति समानता, सबका कल्याण चाहनेवाला सन्यासी केवल राम को हृदय मे रखकर दड एव कमडलु के साथ भिक्षा के लिए जाए। एक होने पर सन्यासी, दो होने पर जोडा तथा तीन होने पर पूरा नगर ही माना जाता है, अत· अकेला ही रहे; एक से दो न होने दे। नगर, ग्राम या जोडे के रूप मे रहने पर सन्यासी अधर्मी हो जाता है। एक से अधिक होने पर परस्पर राजनीति एवं भिक्षा की बाते होने पर स्नेह, द्वेष आदि उत्पन्न होते है। अत शास्त्रो की आज्ञा है कि अकेला ही रहे। व्यर्थ मे न बोले। नमस्कार का उत्तर 'नारायण' कहकर दे। एकांत मे रहकर मन, वाणी एवं कर्म से ब्रह्म का ही ध्यान करे। मृत्यु या जीवन का स्वागत न करे। आयु पूरी होने तक काल की प्रतीक्षा करे। नपुसक, लूले-लंगडे, बहरे-अधे तथा मूर्ख की तरह रहकर काम-क्रोधादि से दूर रहनेवाला सन्यासी मुक्त होता है ' भोजन के स्वाद को न देखनेवाला तथा अभी उत्पन्न, सोलह वर्षीया या सौ वर्ष की वुढिया को देखकर निर्विकार रहनेवाला षंडक कहलाता है। (51-64)

'केवल शौचादि या भिक्षा के लिए प्रतिदिन एक कोस से अधिक न घूमनेवाला सन्यासी पगु है, चलते या रुकते जो इधर-उधर न देखनेवाला अध, हित-अहित या मनोहर शब्दो को सुनते हुए भी न सुननेवाला बहरा तथा स्वस्थ शरीर होने पर भी विषयो से अनासक्त रहनेवाला मुग्ध (मूर्ख) कहा जाता है। संबंधियों, तमाशा, जुआ, युवती, रजस्वला स्त्री तथा पकवानो को न देखे। राग, द्वेष आदि का मन से भी विचार न करे। स्त्रियो की बातें, सफेद वस्त्र, चटोरपन, दिन मे नींद तथा कोई सवारी उसके लिए पाप है। जहा तक हो, लवी यात्रा न करे। विद्याभ्यास से मुक्ति की चिता करे। तीर्थाटन, अधिक उपवास, अन्य विपयो का अध्ययन तथा व्याख्यान देना भी मना है। पाप, धृष्टता, कुटिलता को त्यागकर इंद्रियो को कछुवे के अगों के समान समेट ले। इस प्रकार हर्ष-शोक से भी दूर होकर नमस्कार एव स्वधा को भी त्यागता हुआ ममता-अहंकारहीन सन्यासी एकात मे रहे और किसी वस्तु की कामना न करे। ऐसा सन्यासी निःसदेह मुक्त हो जाता है। (65-76)

प्रमादरहित तथा त्याग एव भक्ति-ज्ञान सपन्न ब्रह्मचारी गृहस्थ या वानप्रस्थ कोई भी वैराग्य होने पर संन्यास ले सकता है। वैराग्य कम होने और आश्रमों की इच्छा होने पर ब्रह्मचर्य के वाद गृहस्थ आश्रम में, फिर वानप्रस्थ के वाद ही सन्यास ले। ब्रह्मचारी या इससे रहित, स्नातक या अस्नातक, अग्निहोत्र करनेवाला या न करनेवाला, कोई भी वैराग्य होने पर सन्यासी वन जाए। वह प्राजापत्य यज्ञ करे या न करे, अथवा आग्नेयी ही करे। अग्नि ही प्राण है। अत इससे वह अपने प्राण को पुष्ट करता है। इस समय त्रैधातवीय कर सकता है। इससे सत्त्व, रजस एव तमस का ही हवन होता है। विधि सहित मंत्र पढकर अग्नि को सूंघे। अग्नि न हो, तो जल मे हवन को और करे,

'सब देवता जलस्वरूप है, मै उनके लिए हवन करता हू। यह आहुति उन्हे मिले।' फिर उस जल से आचमन करे। घी मिली हवि रोगनाशक है। इसके पश्चात चोटी, जनेऊ, पिता, पुत्र, स्त्री, अध्ययन एव मत्रो को त्याग दे। इससे आत्मज्ञानी संन्यासी हो जाता है। त्रैधातवीय मत्र मोक्ष देनेवाला है, इसी से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करे और सत्य ज्ञानमय है, इसी की उपासना करे। (77-79)

'यज्ञोपवीत त्यागने पर ब्राह्मण कैसे रहेगा ?' नारद के इस प्रश्न पर ब्रह्मा कहने लगे—(यह कथन इससे पूर्व परब्रह्मोपनिषद के 'शिखा सहित चोटी काटकर बाह्य सूत्र को त्याग दे' (6-14) इत्यादि मे आ चुका है, अत यहा उल्लेख करना अर्थहीन होगा)। (80-89)

'इस तत्त्व को जानकर ब्राह्मण सन्यासी बने। सिर मुंडाकर, एक ही वस्त्र धारण करता हुआ शारीरिक कष्ट सहे। या पुत्र आदि को त्यागकर स्वाध्याय एव सत्कर्म करता हुआ ब्रह्माड सहित कौपीन, दड, वस्त्र त्याग दे। द्वदो को सहनेवाला सन्यासी शीत-उष्ण, सुख-दु ख, निदा, मान-अपमान इन छ उर्मियो से अलग रहे। निदा, अहकार, काम, क्रोध आदि को भी छोड़ दे। अपने देह को शव समझे। आत्मा के अतिरिक्त किसी भी वस्त्र के स्वाहा, स्वधा, निदा, प्रशसा से कोई प्रयोजन न रखे। भाग्य से जो मिले उसी में संतोष करे। स्वर्ण आदि संग्रह न करे। किसी भी देवता का आह्वान, विसर्जन, मत्र, ध्यान उपासना आदि न करे। एक ही स्थान पर न रहे। छोडे हुए घर, वृक्ष के नीचे, मदिर, झोपडी, कुम्हार का छप्पर, यज्ञशाला, नदी-तट, कछार, गुफा, झरना, चबूतरा, जो भी स्थान मिले वही रह ले। श्वेतकेतु, ऋभु, निदाघ, ऋषभ, दुर्वासा आदि ऋषियो की तरह कोई चिह्न न रखे। दड, झोली, कमडलु सबको 'भू स्वाहा' कहकर जल मे विसर्जित कर दे। (90)

'नग्न होकर रहे। आत्मा को खोजने मे लगा रहे, द्वदो को सहता हुआ, ब्रह्म के मार्ग मे शुद्ध मन से रहे और प्राण-रक्षा के लिए, जो अन्न-जल स्वय मिल जाए, उसे हाथ की ही बर्तन समझकर ग्रहण करे। लाभ, हानि, ममता आदि को त्यागकर केवल आत्मध्यान एव अभ्यास मे लगा रहे। पाप-पुण्य के कर्मो ससे मुक्त रहे। स्वयं को ब्रह्म समझकर केवल उसी का चितन करे। अह-भाव एव सासारिकता से सबंध तोडकर ही शरीर छोडे। इस प्रकार सन्यासी सार्थक होता है। (91-92)

चतुर्थ उपदेश

'ससार वेद, इद्रियों और उनके विषयों के छोड़ने पर आत्मा मे स्थित योगी को परम गति मिलती है। सन्यासी अपने नाम, गोत्र, वर्ण, देश, उम्र, चरित्र, व्रत, ज्ञान आदि की किसी से चर्चा न करे। स्त्री से न बोले, परिचित स्त्री का चित्र देखना मना है। इससे मन मे विचार उठते है, जो भ्रष्टता पैदा करते है। उसके लिए माया-मोह, सग्रह, शिल्प, चिकित्सा करना, दूसरे के घर मे रहना, मत्र प्रयोग, आशीर्वाद देना आदि वर्जित है। अपने मित्र का भी स्वागत न करे और न उसे अपने पास ठहराए। दान न ले और न दिलाए। अपने किसी प्रिय व्यक्ति के शुभ या अशुभ समाचारो से सुखी या दुखी न हो। हर्ष-शोक का पूर्णतया त्याग कर दे। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि का धर्म समझकर पालन करे। निर्द्वद्व, ममदर्शी, तुरीय, परमहस सन्यासी साक्षात नारायण होता है। गांव में एक और नगर में पाच रात्रि रहे। वर्षा ऋतु में कही पर भी चार मास रहे। यदि गाव में दो रात्रि रहता है, तो अनुराग उत्पन्न होने से नरक मिलता है। गांव के निर्जन स्थान मे

रहे। कही भी अपने लिए आश्रम न बनाए। आठ महीने कीड़े के समान घूमता रहे। एक ही वस्त्र पहने या नग्न रहे। उसकी दृष्टि चचल न हो, इस पवित्र मार्ग को कलंकित न करे। सदा भूमि की ओर देखे। शून्य, कठिन, भयंकर स्थानों पर भी न घूमे। रात्रि, दोपहर या संध्या को न घूमे। गाव में एक, पत्तन मे तीन, पुर मे दो तथा नगर में पांच रात्रि रहे। बहूदक एव वानप्रस्थ तीन वार तथा हस केवल एक वार स्नान करे। परमहंस के लिए स्नान आदि का कोई भी नियम नही है। (1-22)

'एक दडी सन्यासी के लिए मौन रहना, योग आसन, एकात में रहना, वितिक्षा, निस्पृहता तथा समता, ये सात नियम है। परमहस के लिए केवल चित्तवृत्तियों का त्याग ही उचित है। त्वचा, मास आदि से बने शरीर से भोग करनेवालो और गंदगी के कीड़ों मे कोई अंतर नही है। यह शरीर कफ आदि का घर है, तब इसकी सुदरता का क्या महत्त्व है? फिर भी मानव घृणित पदार्थो से भरे इस शरीर से प्रेम करता है। वह नरक से भी प्रेम करेगा। स्त्रियों के न कहने योग्य अंगो और सडे फोडे में कोई अतर नही है। फिर भी मनुष्य भ्रम में ठगा जाता है। स्त्रियों का अंग अपान वायु की दुर्गंध से भरा है, उससे भोग करनेवाले मनुष्यों को नमस्कार है। इससे अधिक दु साहस क्या हो सकता है? सन्यासी के लिए न कोई चिह्न है और न करने योग्य कोई कार्य ही। वह भय, ममता, भोजन की चिता आदि से दूर रहता है। वह एक कौपीन या उसके विना ही ध्यान करे। ज्ञान व्रत से ही ब्रह्म भाव तथा मोक्ष प्राप्त होता है। ज्ञान न होने पर चिह्न धारण करना भी व्यर्थ है। सच्चे ब्रह्मज्ञानी की इस बात को कोई नही जानता कि वह साधु है, असाधु है, मूर्ख है या विद्वान है। विना चिह्न के केवल ब्रह्म चितन ही करे। इस प्रकार रहे कि लोगों को उसके विषय में कुछ भी पता न चले, सदेह ही वना रहे। इस प्रकार के शांत योगी के दर्शनों की देवता भी इच्छा करते हैं और उसी की तरह व्यवहार करना चाहते है। आत्मा के अतिरिक्त सब कुछ भूल जाने पर ही मोक्ष मिलता है। यही ब्रह्म तत्त्व का उपदेश है।' (23-66)

तब नारद ने पितामह से संन्यास की विधि बताने के लिए निवेदन किया। इस पर पितामह ब्रह्मा बोले—आतुर या कर्म-सन्यास लेने से पहले कृच्छ्र व्रत लेकर प्रायश्चित्त करना पडता है और तव देवता, ऋषि, स्वर्गीय मनुष्य, प्राणी, माता-पिता तथा आत्मा इन आठों के लिए श्राद्ध किया जाए। फिर पहले सत्य एवं वसु नाम के विश्वदेवों और वाद में देवश्राद्ध में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का, ऋषि श्राद्ध में देवर्षि, राजर्षि एवं मानव ऋषियों का, दिव्य श्राद्ध में आठ वसुओं, ग्यारह रुद्रों एव वारह आदित्यों का, मानव श्राद्ध में सनक, सनंदन, सनत्कुमार एवं सनत्सुजात का, भूत श्राद्ध में पृथ्वी, आकाश आदि पांच भूतों का, पितृश्राद्ध में पिता, पितामह (दादा) एवं पडदादा का, मातृ श्राद्ध में माता एवं पितामही का तथा आत्म श्राद्ध में अपना, पिता का एवं पितामह का आह्वान (बुलावा) करे। पिता जीवित हों, तो उनका आह्वान नही किया जाता। इन आठों श्राद्धों को एक ही अनुष्ठान का अग वनाए (सवको एक ही अनुष्ठान समझे)। प्रत्येक में दो-दो ब्राह्मणों का पूजन करे। आठों श्राद्धों को अलग-अलग करने पर अपनी ही शाखा के मंत्रों से आठ दिन में अथवा एक ही दिन में किए जा सकते है। पितृयोग में वताए गए विधान के अनुसार ब्राह्मणो का पूजन आदि करके पिडदान देना चाहिए। फिर दक्षिणा, पान आदि देकर विदा करना चाहिए।

'शेष कार्यों को सपन्न करने के लिए केवल सात वालों को छोडकर सभी वालो, दाढी-मूछ

सहित नाखूनो को भी काट डाले। आख एवं गुप्त अगो के बाल न काटे। तब स्नान करके सायंकालीन सध्या के समय एक हजार गायत्री मत्र जपे। बाद मे ब्रह्मयज्ञ करके अलग अग्नि की स्थापना करके अपनी शाखा के अनुसार उपसंहार करके घी की आहुति दे। इसके पूर्ण होने पर तीन कौर सत्तू के खाए। आचमन करे। अग्नि मे ईधन देकर काले मृगचर्म पर बैठे। उत्तर की ओर मुख करके पुराण आदि सुनता हुआ रात्रि-भर जागता रहे। पुरुष सूक्त के सोलह मत्रो से आहुतिया दे। विरजा होम, आचमन, दक्षिणा, वस्त्र-गौ-स्वर्णदान करके ब्रह्मा को विसर्जित करे। आधिदैविक अग्नि को आत्मा में प्रतिष्ठित करे। अग्नि का ध्यान प्रदक्षिणा एव नमस्कार के बाद अग्नि को यज्ञशाला में विसर्जित करे। प्रातःकाल की संध्या मे गायत्री का जप एवं सूर्य की स्थापना करे। नाभि तक जल में प्रवेश करके आठो दिक्पालो को अर्घ्य दे। बाद मे गायत्री का विसर्जन तथा सावित्री का व्याहृतियो मे प्रवेश कराए। अब अपनी बुद्धि, शरीर, जिह्वा आदि के लिए मगलकामना करता हुआ धन-सपत्ति एव लोक की इच्छा का परित्याग करता हुआ 'ॐ भुव. सन्यस्त मया ' इत्यादि मत्रों को धीमे-ऊचे स्वर मे या मन ही मन उच्चारण करता हुआ पूर्व दिशा मे अंजलि से जल डालकर शिखा को उखाड डाले। फिर इन्ही मत्रो को कहता हुआ वस्त्र और कमर मे बाधे जानेवाले डोरे को भी त्याग दे। 'मैने समस्त कर्म त्याग दिए है,' ऐसा विचार करता हुआ हाथो को ऊपर उठाकर उत्तर की ओर चल दे। (37)

'इसके बाद सन्यासी गुरु से प्रणव (ओम) तथा महावाक्य (तत्त्वमसि, सोह महावाक्य कहे जाते है) उपदेश प्राप्त करके 'कोई भी मुझसे अलग नही है, सभी मुझमें है', ऐसा सोचता हुआ सुख से विचरण करे। फल, पत्तों एव जल का आहार करे। पर्वत, वन, मदिर आदि. मे ठहरे। दिगबर (वस्त्रहीन) सन्यासी हो तो केवल आत्मा की अनुभूति को ही अपने हृदय मे रखे। कर्मो से दूर रहना ही लाभदायक है। ऐसा विचार करता हुआ फल, रस, पत्ते, जड आदि से प्राणो को धारण करता हुआ, मोक्ष की इच्छा करता हुआ पर्वतों की गुफा मे देह त्याग करे। यदि ज्ञान-प्राप्ति के लिए सन्यास लिया हो, तो आज्ञा मिलने पर ही किसी गुरु के पास जाकर उससे दड, कमडलु प्रणव तथा महावाक्य का उपदेश ग्रहण करे। दड को ग्रहण करते समय 'सखा मा गोपायौज ' तथा कमडलु लेते समय 'जज्जीवन जीवनाधारभूत ' इन मत्रों का उच्चारण करे। इसी प्रकार कौपीन, चादर आदि भी ग्रहण करे। योगपट्ट मिल जाने पर अपने को धन्य समझता हुआ सन्यासी बनकर घूमे। (38-39)

पंचम उपदेश

'नारद ने अपने पिता ब्रह्मा से पूछा, 'एक ओर आप संन्यास आश्रम को सभी कर्मो से मुक्त कहते हैं तथा दूसरी ओर कहते हैं कि सन्यासी अपने आश्रम के आचरण का उचित पालन करे। इसमे परस्पर विरोध जैसा प्रतीत होता है। कृपया इसका समाधान करें।' इसके उत्तर में ब्रह्मा बोले, 'शरीर धारण किए हुए प्राणी की जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय, ये चार अवस्थाएं होती हैं। इन्ही से प्राणी कर्म एवं वैराग्य में प्रवृत्त होता है। सभी को इन अवस्थाओं में आश्रम के अनुसार आचरण करना पडता है।' (1)

'सन्यास के कितने भेद है ? तथा इनके अनुष्ठानों मे क्या अंतर है ?' नारद के इस प्रश्न के उत्तर मे ब्रह्माजी बोले, 'सन्यास के भेद से सन्यासियो का आचरण भी अलग-अलग प्रकार का होता है। वास्तव मे सन्यासी एक ही प्रकार का होता है। यह भेद अज्ञान के कारण, असमर्थता के कारण तथा कर्मलोप के कारण किया जाता है। इस प्रकार इसके चार भेद किए जाते है—वैराग्य, सन्यास, ज्ञान सन्यास, ज्ञान वैराग्य संन्यास तथा कर्म संन्यास। पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण काम विकारो के नष्ट हो जाने पर वैराग्य को वैराग्य संन्यास कहते है। शास्त्रों के अध्ययन से अपने अनुभवो के कारण संसार की नश्वरता का ज्ञान होने पर क्रोध, ईर्ष्या, या, पत्नी, धन, सपत्ति आदि सबसे मुक्त हो जाना तथा सभी भोगो को जूठन के समान समझना ज्ञान संन्यास है। सभी शास्त्रों के अध्ययन से तथा कर्म से सभी अनुभवो को प्राप्त करके ज्ञान एवं वैराग्य के कारण आत्मा की खोज मे लग जाना वैराग्य संन्यास कहा जाता है। ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद क्रमश गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रम को भोगकर सन्यास लेने से कर्म संन्यास होता है तथा ब्रह्मचर्य आश्रम (विद्यार्थी जीवन) के बाद सीधे दिगबर हो जाना वैराग्य सन्यास लेना है। विद्वान संन्यासी को ज्ञान संन्यासी तथा विद्या प्राप्त करने की इच्छावाले को कर्म सन्यासी कहा जाता है। (2-7)

'कर्म सन्यास भी दो प्रकार का होता है—निमित्त कर्म सन्यास तथा अनिमित्त कर्म सन्यास। आतुर संन्यास ही निमित्त सन्यास है और कर्म संन्यास अनिमित्त सन्यास है। रोग, बुढापा आदि कारणों से अशक्त हो जाने पर देहात के समय संन्यास लेना निमित्त संन्यास है। शरीर के स्वस्थ होने पर भी सारे जगत को तथा शरीर को भी नाशवान समझने पर और एकमात्र ब्रह्म को ही सर्वव्यापक एव अविनाशी समझने पर लिया गया संन्यास अनिमित्त सन्यास है। कुटी चक्र, बहूदक हस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत (आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से) सन्यासियो के ये छ भेद होते हैं। कुटीचक्र सन्यासी शिखा (चोटी) एवं जनेऊ का परित्याग नही करता। वह दड, कमडलु, कौपीन एव कथा धारण करता हुआ माता-पिता की सेवा करता रहता है, मत्र सिद्धि में लगा रहता है, माथे मे सफेद खड़ा त्रिपुड धारण करता है तथा एक ही स्थान पर भोजन करता है। बहूदक भी कुटीचक्र के समान ही शिखा, जनेऊ एवं त्रिपुंडवाला होता है। सबको समान समझता हुआ अनेक घरों से भिक्षा मागता है और केवल आठ ग्रास (कौर) भोजन करता है। हस सन्यासी खडा त्रिपुड लगाते हैं, कौपीन धारण करते हैं तथा तूंबा रखते है। परमहस शिखा-जनेऊ से रहित होते है। पाच घरों से मागकर केवल रात्रि में भोजन करते हैं तथा हाथ ही उनका वर्तन होता है। अत इन्हें करपात्री (हाथ ही जिसका पात्र है) भी कहते है। वे कौपीन, एक ओढने का कपड़ा तथा वास का डडा रखते हैं। यदि ओढ़ने के लिए कुछ न हो, तो शरीर में भस्म लगा लेते हैं तथा अन्य सव कुछ का त्याग कर देते है। तुरीयातीत संन्यासी गाय के समान जो कुछ भी प्राप्त हो जाए, उसी में सतोष करते है, किसी से कुछ भी नही मागते। अधिकतर फलों का आहार करते है, यदि अन्न का भोजन करना हो तो केवल तीन घरों से लेते है तथा अपने शरीर के अतिरिक्त अपने पास कुछ भी नही रखते। वे दिगबर रहते है और अपनी इंद्रियों को मरे हुए के समान निष्क्रिय कर देते हैं। अवधूत के लिए कोई भी वंधन नही होता। वे कलकित एवं नीच (गिरे हुए) व्यक्ति को छोडकर अन्य सबके यहा से जो कुछ भी मिल जाए, उसे अजगर के समान ग्रहण करते हुए आत्मा के चितन में लगे रहते हैं। (8-17)

'सन्यास लेने के बाद यदि आतुर संन्यासी जीवित रहता है, तो वह कर्म सन्यास लेता है। कुटीचक्र, बहूदक और हंस ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एव वानप्रस्थ के बाद संन्यास लेते है। परमहस, तुरीयातीत एव अवधूत, इन तीनो को कटिसूत्र, कौपीन, वस्त्र, कमडलु, दड आदि नही रखने चाहिए। वे सभी वर्णो के यहा से भिक्षा लेते है। वस्त्र, दंड आदि को जल मे बहाकर उन्हे तब तक अध्ययन करते रहना चाहिए, जब तक यह विश्वास न हो जाए कि अब उनका अध्ययन पर्याप्त हो गया है। दिगबर होने पर कौपीन, कथा, अध्ययन, भाषण, प्रणव के अलावा चितन, शब्द शास्त्र, तर्क शास्त्र आदि कुछ भी रखने या पढने की आवश्यकता नही है। वाणी का व्यर्थ में दुरुपयोग न करे। सकेतो से बात करना भी इनके लिए मना है। नीचो, पतितों एव स्त्रियो से कदापि न बोले। रजस्वला स्त्री से भूलकर भी बात न करे। उत्सव देखना, तीर्थों मे जाना तथा देवता पूजन भी दिगबर के लिए मना है। (18-20)

'कुछ विशेष नियम इस प्रकार है कि कुटीचक्र एक स्थान पर ही भिक्षा मांगे, बहूदक जितने चाहे, उतने घरो से मागे, हस केवल आठ घरों से आठ ग्रास मांगे, परमहस केवल पाच घरो से हाथ रूपी वर्तन मे फल आदि का भोजन करे, तुरीयातीत गाय के समान जो भी मिल जाए उसे खा ले तथा अवधूत सभी वर्णो से ले। सन्यासी किसी के भी घर मे एक रात्रि भी न रहे और किसी को नमस्कार न करे। तुरीयातीत और अवधूत मे कोई भी छोटा य बड़ा नही है। जो अपने स्वरूप को नही जानता, वह बडा होने पर भी छोटा ही है। हाथों से तैरकर नदी पार करना, वृक्ष या वाहन मे चढना, खरीदना-बेचना, अदला-बदली घमड या असत्य भाषण, ये कर्म नही करने चाहिए। सन्यासी के लिए यदि कोई कार्य है, तो वह है—केवल चितन करना। आतुर एव कुटीचक्र क्रमश भू एव भुव लोक को तथा बहूदक हस एवं परमहंस क्रमश स्वर्ग, तप एव सत्यलोक और तुरीयातीत एव अवधूत भ्रमर एव कीट के समान सदा आत्मा की खोज मे लगे रहते है, अत वे कैवल्य को प्राप्त करते है। वेदों का यह कथन सत्य है कि प्राण त्याग करते समय जिस भाव का स्मरण किया जाता है, वह वस्तु अगले जन्म में प्राप्त होती है। (21-23)

'इस सबको जान लेने पर आत्मरूप के अतिरिक्त किसी भी विषय मे न लगे। आचरण के अनुसार ही लोको की प्राप्ति भी होती है। ज्ञान एव वैराग्य सपन्न सन्यासी की मुक्ति स्वय मे ही होती है। अपने अनुसार ही सन्यासी को आचरण भी करना चाहिए। शरीर जागृत, स्वप्न एव सुपुप्ति इन तीन अवस्थाओं में रहता है। यही जागृत, स्वप्न एवं सुपुप्ति मे क्रमश विश्व, तेजस एव प्राज्ञ कहलाता है। इन अवस्थाओ के भेदो से साधक के कार्य भेद भी होते हैं। कार्य भेद ही कारण भेद है। चौदह कारणोवाली बाहरी एव भीतरी सभी वृत्तियों का कारण एक ही है। मन, बुद्धि, अहकार एव चित्त, ये चार भीतरी वृत्तिय. है। वृत्तियों के भेद के कारण ही आचरणों मे भी भेद हो जाता है। जागृत, स्वप्न एवं तुरीय अवस्थाओं में विश्व, तेज एव प्राज्ञ क्रमश. नेत्र, कठ एव मूर्धा मे स्थित हो जाते है। 'इन अवस्थाओं को प्रकाशित करनेवाला मैं ही हू और मै तुरीय अक्षर व्रह्म हू', ऐसा जाननेवाला जागृत अवस्था मे भी सुपुप्ति के समान देखी एवं सुनी वातो को विना देखी एव विना सुनी जैसी समझता है। वह स्वप्न अवस्था में भी जागता रहता है। ऐसा ही व्यक्ति जीवन मुक्त कहा जाता है। वेद इसी मुक्ति को वताते है। संन्यासी इस लोक के माथ ही परलोक की इच्छा

भी त्याग देता है, क्योंकि इच्छा करने पर फिर वैसा ही बनना पडता है । अपने स्वरूप का चितन छोड़कर अन्य विषयों का चितन करना ऊंट के पीठ में लदे हुए केसर के समान है, जो उसके किसी काम का नही होता । वह योग, साख्य, मत्र आदि के चक्कर में न पड़े; इन्हे शव पर चढाए गए आभूषणो के समान समझे । जैसे चर्मकार चमड़े को उतारकर दूर रख देता है, सन्यासी को ऐसे ही इन सब कर्म विद्याओं से दूर रहना चाहिए । प्रणव का जप भी जोर से नहीं करना चाहिए । कर्मो को रेंडी (अडी) के तेल के झाग के समान त्याग दे । संन्यासी के लिए आत्मचितन ही सब कुछ है । दिगंबर, पागल, मूर्ख या पिशाच के समान जीने या मरने की इच्छा न करे । नौकर द्वारा स्वामी की आज्ञा पालन करने के समान समय की प्रतीक्षा करे कि जब भी समय आएगा, इस शरीर को त्यागकर चल देंगे । (24-26)

'तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य आदि गुणो से हीन केवल भिक्षा मांगनेवाला सन्यासी पेट भरनेवाला ही है । दंड रखने, सिर मुड़ाने या वेश रख लेने से ही मुक्ति नही होती । यह तो पाखड है । ज्ञान का दंड धारण करें, दिखावे के लिए दंड रखने पर अज्ञानी संन्यासी नरक में पडता है तथा प्रतिष्ठा को सूअरी की विष्ठा के समान कहा गया है । अत. इन्हें त्यागकर कीडे के समान घूमते रहना चाहिए । दिगंबर स्वय मिले भोजन को ही खाए तथा दूसरो के कहने पर ही वस्त्र पहने या स्नान करे । जो स्वप्न में भी जागृत जैसा रहता है, वही श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी है । शिक्षा मिलने पर प्रसन्न या न मिलने पर दु:खी न हो । जितने से पेट भर जाए, उतनी ही भिक्षा ले । सम्मान के प्रति उदासीन रहे । इनसे घृणा करे । इससे आसक्त होने पर संन्यासी मुक्त होकर भी बधन मे पड जाता है । (27-34)

'प्राणो की रक्षा के लिए ही सन्यासी उत्तम लोगो के घर से भिक्षा ले । रसोई की आग बुझ जाने पर जब सब लोग भोजन कर चुके तभी भिक्षा के लिए निकले । करपात्री बार-बार न मागे एक ही बार जो भी मिले, चलते-चलते हाथ मे ही खा ले और पानी पीकर समुद्र की तरह मर्यादा मे रहे । जब वह गाय की तरह रहने लगता है, तो समस्त प्राणी उसके लिए समान हो जाते है और तब वह अमरता प्राप्त कर लेता है । निदित घरों मे तथा बंद दरवाजेवाले घरो में संन्यासी न जाए । धूल-भरे निर्जन घर में या वृक्ष के नीचे निवास करे और अच्छी-बुरी भावनाओ से दूर रहे ।.सूर्य न दिखनेवाले स्थान में सोए । घर न बनाए । अग्नि न जलाए । इंद्रियों को संयमित रखे । ज्ञान से परिपूर्ण रहता हुआ विचरण करे । किसी भी प्राणी को भयभीत न करनेवाला सन्यासी स्वय भी प्राणियो से निर्भय हो जाता है । इस प्रकार के आचरणवाला काम, क्रोध आदि से दूर सन्यासी ब्रह्म भाव को प्राप्त करता है । सन्यासी गृहस्थों एव वानप्रस्थों से दूर रहे, अपनी जीवनचर्या को गुप्त रखे तथा शात रहे । (35-46)

'संन्यासी शुभ एवं हिसायुक्त दोनों कर्मों को त्याग दे, सग्रह न करे, शास्त्र आदि पर जीविका न चलाए, शिष्य न बनाए, ग्रंथों का अध्ययन या व्याख्या न करे, कोई भी चिह्न धारण न करे, गूगे-मूर्ख आदि की तरह रहे, इंद्रियों पर सयम रखे, अकेला घूमे । सब वेदों का ज्ञाता होकर भी गाय के समान रहे । दुष्टों द्वारा अपमान आदि होने पर भी इसे सहन कर ले । यहा तक कि उसके शरीर पर मल-मूत्र आदि डालने पर भी वह निर्विकार रहे । अपना उद्धार करता रहे । सम्मान सन्यासी का पतन करता है और अपमानित होने पर वह शीघ्र अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । कोई भी ऐसी बात न करे,

जिससे लोग उससे दूर ही रहना चाहे या उसका अपमान करे। मन, वाणी या कर्म मे किसी के प्रति द्वेष न रखे तथा काम आदि वासनाओं को छोड दे। इस प्रकार के आचरण से सन्यासी निर्भय हो जाता है। (47-59)

'भिक्षा, तप, मौन रहना, ज्ञान प्राप्त करना तथा विरक्ति ही सन्यासी का धर्म है गेरुआ वस्त्र पहनना, ध्यान मे लगा रहना, गृहस्थ के यहा भोजन न करना, अपने आश्रम के अनुकूल आचरण, सर्वत्र आत्मा के अदर-बाहर ब्रह्म को ही देखना तथा क्षमा, सतोष एव ब्राह्मण, गाय, घोडे आदि को एक जैसा देखना सन्यासी का परम कर्तव्य है। जो दंडी संन्यासी कामना मुक्त हो जाता है या जो दिगंबर समस्त संसार के बधन से मुह फेर लेता है, वह अवश्य मुक्त हो जाता है। (60-66)

षष्ठ उपदेश

'नारद ने पुन· पूछा, 'भ्रमर, कीट आदि की तरह अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर मोक्ष तो मिल जाता है, किंतु यह भी बताने की कृपा करे कि इसके लिए अभ्यास किस प्रकार किया जाए ?' इस प्रश्न पर ब्रह्माजी कहने लगे, 'सत्य बोले तथा ज्ञान-वैराग्य द्वारा देह के प्रति सर्वथा अनासक्त हो जाए। इनसे रहित शरीर मे स्थित रहे। यह बचा हुआ शरीर ज्ञान ही है, प्राण वैराग्य है, शम-दम नेत्र है, शुद्ध मन, मुख, बुद्धि, कला, पाच ज्ञानेद्रिया, पाच कर्मेंद्रियां, पाच प्राण, पाच इद्रियो के विषय, चार अतःकरण और प्रकृति, ये पच्चीस, जागृत आदि पांच अवस्थाए, शाखा कर्म, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य इन सबमे प्रथम चौदह कारण कीचड़ मे फसे हुए खंभे के समान कमजोर है। जैसे कुशल नाविक दलदल मे फंसी नाव को कुशलता से निकालकर सही मार्ग पर ले जाता है, संसार सागर को दलदल मे फसी जीवन नौका को श्रेष्ठ बुद्धि से पार लगाना चाहिए। या उन्मत हाथी को जैसे महावत वश मे करता है, वैसे ही इस देह को वश मे करना चाहिए। इस शरीर को नश्वर मानकर सन्यासी 'मै ब्रह्म हू' ऐसा मानकर जीवन्मुक्त बनकर अपने जीवन को सफल करे। कभी भी अपने को ब्रह्म से पृथक् न समझकर जागृत आदि चार अवस्थाओ को पार करके संन्यासी तुरीयातीत अवस्था मे प्रवेश करता है। जागृत, स्वप्न एव सुषुप्ति क्रमश दिन-रात्रि रूप है। चारो पूर्व की अवस्थाएं अत में तुरीयातीत अवस्था में स्थित है। मन, बुद्धि, चित्त एव अहकार के अधीन रहनेवाले चक्षु आदि चौदह कारण होते है। नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, वाणी, हाथ, पाव, पायु, उपस्थ, त्वचा, मन, बुद्धि, अहकार एव चित्त के विषय क्रमश रूप, शब्द, रस, गध, शव्द, लेना (आदान), गमन (जाना), विसर्जन, रति-आनद, मनन, वोध, अह करना और चितन है। इन सबके साथ देह के अभिमान को भी त्यागकर जीव तुरीय चेतन हो जाता है। अपना घर समझकर जीव, अन्यथा अभिमान के कारण इस देह में घूमता है। देह के अष्टदल कमल में विचरए करनेवाला यह जीव जव पूर्वी दल (पंखुडी) मे भ्रमए करता है, तो पुण्यों में प्रवृत्ति होती है, आग्नेय कोणवाले दल में जाने पर निद्रा एवं आलस्य आ जाता है, दक्षिणी दल में जाने पर क्रूरता, नैऋत्य में बुद्धि का उदय, पश्चिम मे क्रीडा से प्रेम, वायव्य मे चलना-फिरना, उत्तर में शातिप्राप्ति, ईशान में ज्ञान का उदय, कमल की कर्णिका में जाने पर वैराग्य तथा केसर में जाने पर आत्मचिंतन करता है। (दिशाएं और उनके वीच के कोण जिन्हें उपदिशाएं कहा जाता है, क्रमश आठ होती हैं—पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर तथा ईशान, अत यही मुख के समान महत्त्वपूर्ण है) । (1-3)

'जागृत स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय के बाद चौथी तुरीयातीत अवस्था है। विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तटस्थ के भेद से एक ही आत्मा चार प्रकार का है। अत स्वयं को निर्गुण ब्रह्म ही माने। तुरीयातीत अवस्था चारों अवस्थाओं से भिन्न ही है इसीलिए इसके भेद नही होते। स्थूल सूक्ष्म एव कारणरूपी विश्व तैजस और प्राज्ञ ब्रह्म है। इन सभी अवस्थाओं में उसके साथ एक साक्षी भी रहता है, जो तटस्थ द्रष्टा है। यह तटस्थ मायायुक्त ईश्वर होता है अत. इसका कोई द्रष्टा (देखनेवाला) नही होता है। अत तटस्थ भी द्रष्टा नही हो सकता। जीव भी अहंकार आदि से युक्त होने से द्रष्टा नहीं है। जीव में उसका जीव परमात्मा के कारण है। जैसे आकाश (शून्य) में घड़ा रखा होने पर उसके अंदर भी आकाश हो जाता है। प्राण भी सांस लेने में सोऽह जपता हुआ अपने वास्तविक रूप को खोजता है। अत शरीर के लिए अभिमान करना निरर्थक है। इंस अभिमान के नष्ट होने पर ही जीव ब्रह्म कहलाता है। (4)

'अत संन्यासी अनासक्ति, अक्रोध तथा अल्प आहार से इंद्रियों को जीतकर मन को ध्यान में लगाए सूने स्थानों मे, गुफाओं में या वन में सदा चिंतन में लगा रहे। उसे अतिथि सत्कार, श्राद्ध, यज्ञ, देवयात्रा, उत्सव आदि में भाग नही लेना चाहिए। उसे लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि वे उससे दूर ही रहें और उसका अनादर करें। वाणी, कर्म एव मन ये तीन दंड कहे गए हैं। इन तीन दडों को वश में रखनेवाला संन्यासी ही दंडी है। चूल्हे की आग बुझ जाने पर भिक्षा मागना अच्छा है। जो मन से सन्यासी न होने पर भिक्षा मांगता है, वह नीच गति पाता है। जहा भिक्षा सरलता से मिलती हो, लोभ के कारण वहा दोबारा न जाए। स्वय प्रकाशवान, सुख-स्वरूप, देह-इंद्रिय आदि से रहित परम ब्रह्म को वह अपने ही स्वरूप में देखता है, अत वह वर्णो एव आश्रमों से अलग ही है, क्योंकि ये वंधन माया के अज्ञान के कारण वने है। अपने को माया के वधनों से तथा वर्ण आश्रम से ऊपर ज्ञान रूप माननेवाला सन्यासी सच्चे अर्थो में सन्यासी है। आत्म-साक्षात्कार हो जाने पर इन विचारों का त्याग कर देनेवाले सन्यासी को वेदांत में अतिवर्णाश्रमी कहा गया है। वर्ण एवं आश्रम शरीर से पृथक् हैं अत इन्हें भ्रमवश वेदांत को न जाननेवाले मूर्खो ने वनाया है। ब्रह्म ज्ञानी के लिए कोई भी नियम-वंधन नही होते। उनके लिए कोई वस्तु त्याज्य नही है। (5-19)

'ब्रह्म को जानने का इच्छुक पद की कामना न करे। वह धन, पुत्र आदि की भी कामना न करे। केवल मोक्ष प्राप्त करने के प्रयत्न में लगा रहे। हाथों में कोई भेंट लेकर किसी सच्चे गुरु के आश्रम में जाए और दीर्घ समय तक वहा गुरु की सेवा करता हुआ वेदांत का ज्ञान प्राप्त करे। ममता, अहंकार, आसक्ति आदि को छोड़कर शमन-दमन आदि से आत्मा को देखे। ससार के दोषों को देखकर वैराग्य होने पर ही संन्यास लिया जाए। मोक्ष का इच्छुक परमहस नामक मोक्ष के साधन का अभ्यास करे और वेदांत को सुने। भय-ममता आदि को त्यागकर पदार्थो का सग्रह करना छोड दे, मुंडन करके कौपीन, पुराने वस्त्र पहनकर अथवा दिगंवर ही रहे। मित्र-शत्रु को समान मानकर परम शात सन्यासी ससाररूपी सागर को तैर लेता है। गुरु के आश्रम में सेवा करता हुआ सदा सावधानी से नियमों का पालन करके एक वर्ष रहे। उत्तम ज्ञान योग को प्राप्त करके वर्ष के अत में गुरु के आश्रम को छोडकर परम आश्रम का मार्ग प्राप्त करे। फिर आसक्ति आदि को छोड़कर पृथ्वी पर भ्रमण करे। (20-33)

'कार्य करनेवाला सन्यासी एवं कार्य न करनेवाला गृहस्थ, ये दोनों शोभा नही देते। सुरा को पीकर नशा होता है, किंतु नारी को देखने से ही नशा होता है, अत सन्यासी नारी को दूर से ही त्याग दे। उनके साथ वार्तालाप, नृत्य, गान, हंसी-मजाक, निंदा आदि न करे। स्नान, जप, पूजा, हवन आदि भी संन्यासी को नहीं करने चाहिए कीट-पतगो या वनस्पतियो को भी नष्ट न करे, अपितु इनका कल्याण करे। वह अंतर्मुखी, स्वच्छ एवं प्रसन्न आत्मावाला विद्वान संन्यासी आसक्ति को त्यागकर घूमता रहे। अराजकतावाले राज्यो मे न जाए। किसी से नमस्कार आदि की इच्छा न करे।' (34-42)

सप्तम उपदेश

नारद द्वारा सन्यासियो के नियमो के विषय में पूछे जाने पर ब्रह्मा कहने लगे, 'वैराग्य-सन्यासी वर्षा के चार महीनों को छोडकर अन्य दिनों घूमता रहे। किसी के आग्रह करने पर भी एक स्थान पर अधिक न रुके। नदी स्वयं न पार करे, वृक्ष पर न चढ़े। देव-पूजा या उत्सव आदि मे भाग न ले। केवल आत्मा की ही उपासना करे। एक ही घर से दोबारा भिक्षा न ले। चदन आदि सुगंधित वस्तुओं को मल-मूत्र समझे। कम खाकर दुबला बना रहे। घी को रुधिर, अन्न को मास, लवण को मास, मालिश को स्त्री अग, मनोरजन को मूत्र, इच्छा को गोमास, परिचित स्थान को चाडाल-घर, स्त्रियो को सांप, स्वर्ण को विष, सभा को श्मशान, राजधानी को कुभीपाक नरक तथा एक ही घर के भोजन को मृतक को दिया जानेवाला अन्न समझे। देह को आत्मा से अलग न समझे, अपने जन्म-स्थान का त्याग कर दे, परिचित स्थानो को भी छोड़ दे, अपने स्त्री, पुत्र आदि से दूर रहे, बिना मागे जो मिले उसी में संतोष करे तथा सदा प्रण का ध्यान करे। काम, क्रोध आदि को भस्म कर दे। भूख-प्यास से व्याकुल न हो। किसी से वैर न करे। पवित्र मन रहे। ग्राम, नगर, पुण्य क्षेत्र अथवा तीर्थ में क्रमश एक रात्रि एव पाच-पाच रात्रियों से अधिक न रहे। झूठ न बोले। अकेला घूमे। किसी पहाड की गुफा मे दो सन्यासी साथ न रहें। तीन को ग्राम तथा चार व्यक्तियो को नगर माना गया है। इद्रियों को विषयों पर न सोचने दे। सब कुछ को अपना ही स्वरूप माने। आत्मा का ही साक्षात्कार करे। इससे जीवन्मुक्ति मिलती है। फिर भी मृत्यु तक आत्मा का चितन करना रहे। कुटीचक्र, बहूदक और हस क्रमश· तीन, दो तथा एक बार स्नान करे। परमहंस, तुरीयातीत तथा अवधूत के लिए स्नान क्रमश मन से, भस्म से तथा वायु से करने का नियम है। कुटीचक्र का तिलक खडा त्रिपुंड्र, बहूदक का त्रिपुंड्र, हस का ऊर्ध्व (खडा) विपुड्र, परमहस का भस्म, तुरीयातीत का तिलक पुंड्र तथा अवधूत का कोई भी तिलक नही होता। तुरीयातीत भी कुछ भी तिलक न लगाने के लिए स्वतंत्र है। कुटीचक्र ऋतु में एक बार अर्थात प्रति दो मास में एक बार, बहूदक चार मास मे एक बार, हस एवं परमहंस छ मास में एक बार क्षौरकर्म करें (सिर एवं दाढ़ी-मूंछ के बाल कटाएं), तुरीयातीत तथा अवधूत को क्षौरकर्म करने की कोई आवश्यकता नही होती। (1-4)

'कुटीचक्र एक स्थान से लेकर अन्न खाए। बहूदक मधुकरी वृत्तिवाला होता है, अर्थात जितनी जगह चाहे, भिक्षा ले। हस एवं परमहंस हाथ में भिक्षा मांगकर खाएं। तुरीयातीत गाय की तरह तथा अवधूत अजगर की तरह खाए। कुटीचक्र दो तथा बहूदक एक वस्त्र रखे। हंस वस्त्र का एक टुकड़ा

रखे। परमहंस कौपीन धारण करे। तुरीयातीत और अवधूत बिना वस्त्र के रहे। कुटीचक्र एव बहूदक देव पूजन करे। हस एव परमहस मन से पूजा करें। तुरीयातीत और अवधूत 'सोऽहं' पर चितन करे। कुटीचक्र एवं बहूदक मत्र जपे। हंस एवं परमहंस ध्यान करे। तुरीयातीत एव अवधूत महावाक्यो (तत्त्वमसि और सोऽह) का उपदेश दे। परमहस भी यह उपदेश दे, किंतु कुटीचक्र एव बहूदक को यह अधिकार नही है। बहूदक एवं कुटीचक्र मानव प्रणव, हस एव परमहस भीतरी प्रणव तथा तुरीयातीत एवं अवधूत का ब्रह्म प्रणव है। कुटीचक्र एवं बहूदक को सुनने का, हस एव परमहस को मनन का और तुरीयातीत एव अवधूत को निदिध्यासन करना चाहिए। आत्मा का अनुसधान करना प्रत्येक का कर्तव्य है। इस प्रकार मोक्ष की इच्छा करनेवाले को ससार से पार होने का प्रयत्न करना चाहिए। उस तारक का स्मरण करते हुए जीवन्मुक्त होकर कैवल्य प्राप्त करे।' (5-11)

अष्टम उपदेश

नारद ने पूछा, 'कौन-सा ऐसा मंत्र है, जो सारे संसार का तारण कर सके?' इस पर ब्रह्माजी कहने लगे, 'इस प्रकार का मत्र 'ओम' है। इसके दो भेद है। समष्टि तथा व्यष्टि (सक्षेप मे व्यष्टि एव समष्टि को इस प्रकार समझे जैसे सारी सृष्टि समष्टि है, एक प्राणी व्यष्टि है या देश समष्टि है, राज्य आदि व्यष्टि है अथवा जनता समष्टि है एक आदमी व्यष्टि है)।' ब्रह्मा से नारद ने पुन पूछा, 'समष्टि एव व्यष्टि क्या होती है?' एक ही ब्रह्म सहार प्रणव, सृष्टि प्रणव तथा उभयात्मक (दोनो स्वरूपोंवाला) प्रणव, प्रणव के ये तीन भेद है। उभयात्मक प्रणव के बाह्य एव भीतरी भेद है। इसीलिए इसे उभयात्मक कहा जाता है। ब्रह्म प्रणव का एक भेद व्यावहारिक प्रणव है। बाह्य प्रणव भी है। इस उभयात्मक प्रणव को विराट कहते है। संहार प्रणव के ब्रह्म प्रणव को अर्द्धमात्रा प्रणव भी कहते है। (1)

'ओम ही ब्रह्म है। इसी को एकाक्षर अत. प्रणव समझना चाहिए। इसके आठ भेद किए जाते हैं—अ, उ, म् अर्द्धमात्रा नाद, बिंदु, कला और शक्ति। इसकी प्रत्येक मात्रा के अनेक भेद है। 'अ' के दस हजार अवयव, 'उ' के एक हजार तथा 'म' के सौ अवयव कहे जाते है। अर्द्धमात्रा प्रणव अनंत अवयवो वाला है। विराट प्रणव सगुण, सहार प्रणव निर्गुण और उत्पत्ति प्रण सगुण-निर्गुण दोनो प्रकार का है। संहार प्रणव चार मात्रावाला तथा अर्द्धमात्रायुक्त है। (2)

'विराट प्रणव सोलह प्रकार का तथा छत्तीस मात्राओ से परे है। अ, उ, म, अर्द्धमात्रा, बिंदु, नाद, कला, कलातीत, शाति, शांति अतीत, उन्मनी, मनोन्मनी, पुरो, मध्यमा, पश्यंती तथा परा इसके सोलह प्रकार है। इसके बाद प्रणव चौसठ मात्राओंवाला तथा प्रकृति-पुरुष इन दो भेदोंवाला होने से एक सौ अट्ठाईस मात्राओंवाले स्वरूप का हो जाता है। एक ही प्रणव इम प्रकार मगुण-निर्गुण आदि रूपों से अनेक भेदोंवाला हो जाता है। (3)

'यह प्रणव (ओम्) ही मबका आधार, परम ज्योति, सर्वेश्वर, सभी देवताओ युक्त, सृष्टि के प्रपच का आधार, सभी अक्षरों वाला, काल, सर्वागमय, शिव, सर्वश्रुति, उत्तम, मृग्य, समस्त उपनिपदमय तथा मोक्षदायक है। उसी को आत्मा, ब्रह्म, अजर, अमर आदि कहा गया है। यही मुक्ति देनेवाला आत्मा है। इसी को स्थूल, मूक्ष्म और दिखाई देने वाला समस्त प्रपच समझो।

विश्व को भी 'ओम' ही समझो । आत्मा के तीनों प्रकार के देहो की उपाधि भी इसी को समझो । इस प्रकार आत्मा-परमात्मा मे दृढ़ एकता को समझते हुए आत्मा रूपी ब्रह्म का निरतर चितन एव अभ्यास करे । (4-8)

'स्थूल और स्थूल का भोक्ता तथा सूक्ष्म एव सूक्ष्म का भोक्ता होने से इसके चार भेद माने गए है । इन्ही चार भेदो के कारण इसे चार पदोवाला कहा गया है । जो स्थूल प्रज्ञ है, विश्व का भोग करनेवाला है । जो उन्नीस मुखो (कर्मेंद्रियां आदि), आठ अगो (भू भुव. आदि लोक), जो स्थूल भोक्ता, चार आत्माओवाला सर्वव्यापक वैश्वानर आदि है, वह एक ही है । यह वैश्वानर उसका प्रथम पाद है । वह सूक्ष्म तत्त्वो का अनुभव करनेवाला, तैजस, प्राणियो का स्वामी हिरण्य गर्भ है, जिसे द्वितीय पाद कहा जाता है । प्राणी जब तक सोता नही तभी तक इच्छाए रखता है, जब तक सुषुप्ति अवस्था नही होती, तभी तक स्वप्न देखता है । परमात्मा इस अवस्था मे एकमात्र स्थित रहनेवाला प्रज्ञानवान, सुखी, नित्य आनदमय तथा सभी जीवों के अदर स्थित रहता है । यह सर्वगत, अविनाशी अपने ही रूप का उपभोग करता है । इस प्रकार के परमात्मा को अपने आत्मा मे देखनेवाले प्राज्ञ ही उसका तृतीय पाद कहे गए है । (9-20)

'वही परमात्मा सबका ईश्वर, सर्वज्ञ, सूक्ष्मता से चितन करने योग्य, सभी मे स्थित, सभी की उत्पत्ति का कारण है । तीन अवस्थाओं से युक्त यह विश्व सुषुप्ति रूप है । यह स्वप्न के समान तथा मायायुक्त है । चौथी अवस्था तुरीय है । यह सच्चितदेव रसलीन है । इसके चारो ही भेद तुरीय है । इस अवस्था मे ओत, अनुज्ञान, अनुज्ञा तथा अविकल्प, ये चार रूप माने गए है । ओत, अतुज्ञाता और अनुज्ञा, ये तीन भेद वैकल्पिक ज्ञानात्मक है । इसे (विकल्प को) स्वप्न या माया ही समझना चाहिए । इन विकल्पों से पृथक सच्चिदानद परमात्मा ही केवल एक स्वरूप है, यही मानना चाहिए । जो स्थूल, सूक्ष्म या इन दोनों ज्ञानों से परे है, जो कम या अधिक द्वारा जाना नही जाता है, जो बाहर या भीतर से भी नहीं जाना जाता, जो प्रज्ञान रूप नहीं है, जो देखा नही जा सकता (क्योकि उसका कोई रूप नही है), जो पकडा नही जा सकता, न जिसे व्यवहार से जाना जा सकता, जो किसी परिभाषा या ध्यान में नही आता, जो केवल आत्मा के विश्वासवाले रूप के अनुसार ही है तथा जो माया के प्रपच से बाहर है, वह अद्वितीय, शांत, शिव (कल्याण स्वरूप) ही उसका चतुर्थ पाद है । यही ब्रह्म प्रणव है न कि तुरीय मोक्ष की इच्छा करनेवालो का यही लक्ष्य है । वह ज्योति स्वरूप एव आकाश स्वरूप है । वह परम ब्रह्म के रूप मे सदा प्रतिष्ठित है ।' (21-23)

नवम उपदेश

नारद ने कहा, 'भगवन, ब्रह्म का क्या स्वरूप है ?' ब्रह्मा बोले, 'ब्रह्म अन्य ही है और मै अन्य ही हू, ऐसा कहनेवालों को पशु ही समझना चाहिए (क्योकि अपना स्वरूप ही ब्रह्म है)। पशुओं से उत्पन्न न होने पर भी उनका स्वभाव पशु के समान होने के कारण वे पशु ही है । अपने को ब्रह्म ही समझनेवाला मृत्यु के मुख से बच जाता है । मोक्ष प्राप्त करने का केवल एक ही मार्ग है—परमात्मा का ज्ञान । काल, स्वभाव, नियति (भाग्य), आकाश आदि पांच महाभूत, जीव, संयोग आदि क्या इस ससार के हेतु (कारण) हैं ? सुख-दु:ख पूर्वजन्म के कर्मों के कारण होते हैं । तव जीवात्मा भी इसका

कारण नही हो सकता। ऐसा विचार करने पर उन मनीषियों ने ध्यान लगाया तब उन्होंने ध्यान योग से देखा कि अपने गुणो से ढका हुआ ब्रह्म आत्मशक्तिस्वरूप है। यह समस्त शक्ति उसी अचितनीय परमात्मा की है, जो अकेला होने पर भी समस्त कारणो का कारण है। वह तीन वृत्तोवाला, सोलह कोणोवाला, पचास अरोंवाला, बीस सहायक अरोवाला, छ अष्टकों का विश्वरूपी एक बधनवाला तथा अनत रूपोवाला है। उन्होंने पाच स्रोतोवाली विषरूपी जलो से सपन्न, पाच स्थानो से निकली प्रचड वेगवाली वक्र गति, पाच प्राण रूपी तरगो से युक्त मन रूपी मूलवाली, पाच भवरोवाली तथा पचास भेदोवाली एक नदी को देखा। (1-5)

'वह परमात्मा समस्त प्राणियो को उनके इस आश्रय मे घुमाता रहता है। स्वय को तथा अन्य सबको प्रेरणा देनेवाले उस परमात्मा को उन्होने स्वीकार किया तथा अमरता को प्राप्त हुए। उस उद्‌गीथ रूप तीन अक्षरों मे स्थित परमब्रह्म को अपनाकर वे उसी में लीन हो गए। इस सयुक्त अक्षर स्वरूप से व्यक्त एव अव्यक्त सभी का पोषण होता है। वह परम ब्रह्म सबका आत्मा है, किंतु उसका कोई भी ईश्वर नही है। जीवात्मा सांसारिक भोगो का उपभोग करता है। इसके इस स्वरूप को जानकर ज्ञानी इस समस्त बधन से मुक्त हो जाते है। आत्मा ज्ञानी-अज्ञानी (और समर्थ-असमर्थ) दो प्रकार का होता है। समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करनेवाली माया है, जो जीव नही है तथा यह तृतीय शक्ति है। ब्रह्म मे इस सृष्टि को बनाने का अभिमान नही, किंतु मनुष्य ईश्वर, जीव एव प्रकृति तीनो को ब्रह्म समझता है। तभी उसके बधन छूट जाते है। माया नश्वर है, जो जीव के साथ ही ब्रह्म के अधीन है। उसी मे अपने को लगा देनेवाले ज्ञानी माया से मुक्त होकर इसे प्राप्त करते है। उसके जन्म-मृत्यु के बधन कट जाते है।' (6-11)

'ज्ञानी शरीर के नष्ट होने पर तृतीय लोक मे अनासक्त, शुद्ध तथा पूर्णकाम होकर रहता है। वह ब्रह्म इसी जीव में स्थित है, ऐसा मानना चाहिए। उससे अधिक जानने योग्य कुछ भी नही है। भोक्ता, भोग्य तथा प्रेरणा देनेवाला परमात्मा, इन तीनो को जान लेने पर समस्त ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। वस्तुत इन तीनो मे एकमात्र वही ब्रह्म व्याप्त है। उसको जानने का मार्ग आत्मज्ञान एव तप है। जो इस प्रकार जानकर अपने स्वरूप के विषय में विचार करता है, जो उसी ब्रह्म से अपनी एकता को देखता है तथा उसी को सबसे श्रेष्ठ, विराट, भूत-भविष्य और अनश्वर समझता है, वह मोह एव शोक से मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्म अणु से भी छोटा तथा महान से भी महान है, वह प्राणी के हृदय मे रहता है तथा उसको जान जाने पर जीव उसकी कृपा से दु खों से मुक्त हो जाता है।' (12-15)

'वह परमात्मा विना हाथ-पावों के अत्यत तेज गतिवाला है। वह विना आखों एव कानों के देखता और सुनता है। उस सबसे प्रमुख महान आत्मा को अपने आत्मा मे देखनेवाला ही उसे जानता है। वही एकमात्र जानने योग्य है, किंतु उसके लिए कुछ भी जानने योग्य नहीं है। वह शरीरवाला न होने पर भी सभी शरीरों में रहता है। उस महान आत्मा को जानकर धैर्यशाली लोग शोकों का त्याग कर देते हैं। वह सबको धारण करनेवाला है। उसकी शक्ति का कोई भी अनुमान नही लगा सकता। सभी वेद आदि उसी के स्वरूप का वर्णन करते है। उसका प्रारंभ, मध्य या अंत नहीं है। वह अनत, अव्यय (नाश या विकार न होनेवाला), कल्याणमय तथा प्रलय पर शेष

रहनेवाला है। वह कवि (कातदर्शी, जो होनी को पहले ही जान लेता है), सबसे प्राचीन, सबका स्वामी तथा सभी देवताओं द्वारा पूजा जानेवाला है। उसी ने ब्रह्मा को भी बनाया है। उसी ने इस आकाश, जल आदि पाच महाभूतों की सृष्टि को बनाया है। वही इन पाचो मे विद्यमान है, किंतु वह स्वय इन पाचो के प्रभाव से मुक्त है।' (16-20)

सासारिक विषयो मे लगा हुआ दुश्चरित्र, असयमी तथा अशात मनवाला इसे नही देख सकता। इसे केवल श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। वह न तो बाहर रहनेवाला है, न भीतर, और न दोनों जगह ही। वह स्थूल-सूक्ष्म, ज्ञान या फिर अज्ञान रूपवाला भी नही है। उसे कोई ग्रहण भी नही कर सकता और न किसी व्यवहार मे ला सकता है। वह आत्मा मे स्थित है। आत्मज्ञान होने पर वह स्वय ही प्राप्त हो जाता है।' इतना सब बताने के बाद ब्रह्मा बोले, 'जो इस प्रकार परम आत्मा के स्वरूप को जान जाता है, वह निसदेह मुक्त हो जाता है। सन्यासी अपने स्वरूप को जानता है, अत वह अकेला ही रहता है। जैसे भयभीत हिरन कही पर नही रुकता, वैसे ही सन्यासी भी किसी एक स्थान पर नही ठहरता। अपने शरीर के अतिरिक्त सब कुछ त्यागकर वह भ्रमर के समान आत्मा की खोज मे लगा रहता है। इसी से उसे मुक्ति मिलती है। वह क्रिया-कारक के भेद को नही मानता। गुरु-शिष्य और शास्त्रादि के बंधन भी उसके लिए नही है। सारे ससार को छोडकर वह कभी दु खी नही होता। इन सभी सुखो को त्यागकर वह वास्तव मे सुखी हो जाता है। ब्रह्म रूपी धन को पाकर वह ज्ञान-अज्ञान एवं सुख-दु ख से ऊपर उठ जाता है। तब वह स्वय प्रकाश रूप सबके जानने योग्य, सर्वज्ञ, सर्वसिद्धि दाता और सबके ईश्वर के रूप मे स्वयं को भी अनुभव करता है। इसके बाद वह विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है। वहा जाकर फिर कभी जन्म लेकर योगी इस ससार में नही लौटते है। इस लोक में सूर्य-चंद्रमा प्रकाश नही करते, क्योकि यह स्वय प्रकाशमय है। यही कैवल्य है। यही ज्ञान का सार है।' (21-23)

□

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद. पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह कार्य जगत भी पूर्ण है । उसी पूर्ण से इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अत इस पूर्ण से इस पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है ।

प्रथम अध्याय

पैगल ऋषि याज्ञवल्क्य के पास गए और उन्होंने बारह वर्षो तक उनकी सेवा की तव उन्होंने याज्ञवल्क्य से कैवल्य विद्या के परम रहस्य को बतलाने के लिए निवेदन किया । इस पर याज्ञवल्क्य कहने लगे, 'सर्वप्रथम केवल 'सत' ही था । वही सदा रहनेवाला, सब प्रकार से मुक्त, विकारहीन, सत्यस्वरूप, ज्ञान एवं आनद से परिपूर्ण तथा सनातन (सदा बना रहनेवाला), एकमात्र, अद्वितीय ब्रह्म है । उस मरुस्थल के समान अवस्था मे जल, शुक्ति (सीप) में चादी, स्थाणु (खभा) में पुरुप तथा स्फटिक मे एक रेखा के समान लाल, सफेद एवं कृष्ण अर्थात् सत्त्व, रजस एवं तमोगुण से युक्त मूल प्रकृत्ति उत्पन्न हुई । इसमें ये तीनों गुण समान अवस्था में थे । यह प्रकृति अनिवर्चनीय (जो शब्दों मे न कहा जा सके) थी । उसमें प्रतिबिव रूप में विद्यमान ही इस जगत आदि एकमात्र साक्षी और चैतन्य (चेतनावाला) है ।' (1-3)

'इस प्रकृति में फिर विकार (बदलाव) आया और सत्वगुण की अधिकतावाली आवरण शक्ति उत्पन्न हुई, इसे अव्यक्त कहा जाता है । प्रकृति में विद्यमान प्रतिविबित उस ईश्वर में भी चेतना आई । वह सर्वज्ञ माया को अपने अधीन रखनेवाला समस्त दृष्टि का बनाने वाला, पालन करनेवाला तथा प्रलय करने वाला इस जगत का अंकुर रूप है । वही अपने में विलीन इस सपूर्ण जगत को प्रकट करता है । प्राणियों के कर्मों के अनुसार वही इस विश्व रूपी वस्त्र को पहले फैलाता है तथा फिर उनके कर्मो का नाश होने पर इसे समेट लेता है । समस्त विश्व उसी मे सिमटे हुए वस्त्र के समान रहता है । आवरण शक्ति में रजोगुण की अधिकता से विक्षेप शक्ति उत्पन्न होती है, जो महत् भी कहलाती है । इसके प्रभाव से चैतन्य हिरण्यगर्भ कहा जाता है, यह महत् से कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट शरीरवाला होता है । (4-5)

'हिरण्यगर्भ में स्थित विक्षेप शक्ति से अहंकार नामक तमोगुणी शक्ति उत्पन्न होती है और उसमें स्थित विराट चैतन्य, जो महत् का अभिमानवाला है, स्पष्ट शरीरवाला होकर स्थूल जगत का पालन करनेवाला प्रधान पुरुष होता है, जिसके आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ । आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । फिर इनमें तीन गुणोंवाली

तन्मात्राएं पैदा हुईं। उस जगत कर्ता को तमोगुण के कारण सूक्ष्म तन्मात्राओं को स्थूल रूप मे बनाने की इच्छा हुई। अत.उसने रचे हुए महाभूतो में प्रत्येक के पहले दो-दो भाग कर दिए, फिर प्रत्येक के चार-चार भाग करके प्रत्येक भूत के आधे भाग मे अन्य भूतों का आठवा भाग मिलाया। इस प्रकार पाच बार मे पांच प्रकार के भूत (पंचीकृत भूत) बने। इनसे उसने असंख्य ब्रह्मांडो, चौदह लोको तथा इनके लिए स्थूल शरीरो को बनाया।' (6-7)

'उसने इन पांच भूतो मे प्रत्येक के रजोगुणवाले अश को चार भागो में विभक्त करके तीन भागो से पांच प्रकार के प्राण तथा चौथे भाग से कर्मेंद्रियों को बनाया। इसके बाद इसी प्रकार उसने सत्त्व गुण वाले भाग को चार भागो में विभक्त किया। तीन भागो से पांच प्रकार के वृत्तियो वाले अतःकरण तथा चौथे भाग से ज्ञानेंद्रियो की रचना की। सत्त्व गुण के समस्त रूप से इद्रियो के देवता बनाए। उन्हें ब्रह्माडों मे स्थापित कर दिया। उसकी आज्ञा से अहकार से युक्त विराट स्थूल जगत की रक्षा करने लगा और हिरण्यगर्भ भी उसी की आज्ञा से सूक्ष्म जगत का पालन करने लगा।' (8-10)

'ब्रह्माडो मे स्थित वे देवता उसके बिना चेष्टा नही कर पाए। उसने उन्हें चेतन करना चाहा और ब्रह्माड को चीरकर ब्रह्मरध्रो में प्रवेश किया। तब वे जड़ (निर्जीव) होते हुए भी चेतन की तरह अपने-अपने कार्य करने लगे। सर्वज्ञ ईश्वर माया के प्रभाव में आने से व्यष्टि देह में प्रवेश कर गया तथा मोह के कारण जीव बन गया। स्थूल आदि तीन प्रकार के शरीरो के सपर्क से वह कर्ता और भोक्ता होने का अनुभव करने लगा। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, मृत्यु आदि से युक्त होकर जैसे घडी या कुम्हार का चाक घूमते रहते है, उसी तरह इस जगत मे घूमने लगा।' (11-12)

द्वितीय अध्याय

'इसके बाद पैगल ने पूछा कि समस्त लोकों की सृष्टि,पालन एव विनाश करने वाला ईश्वर जीव कैसे बनता है ? इस पर याज्ञवल्क्य बोले, 'ध्यान से सुनो, मैं स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरो की उत्पत्ति तथा जीव-ईश्वर का संबंध बताता हू। ईश्वर ने पंचीकृत महाभूतों के अंशों से क्रमश व्यष्टि एव समष्टि के स्थूल शरीरों को बनाया। कपाल, त्वचा, हड्डिया, मास और नाखून पृथ्वी के अश हैं। रक्त, मूत्र, लार, पसीना आदि जल के अश हैं। भूख प्यास, गर्मी, मोह, मैथुन आदि अग्नि के अश हैं। उठना, चलना, सांस लेना आदि वायु के तथा काम, क्रोध आदि आकाश के अश हैं। इन सबके अंशों से निर्मित त्वचा आदिवाले इस स्थूल शरीर में बचपन आदि अवस्थाए, अभिमान आदि अनेक दोष होते हैं। (1-2)

'अपचीकृत महाभूतों के रजोगुण अंश से तीन भाग लेकर प्राणों को बनाया गया। प्राण, अपान, व्यान, उदान एव समान, ये पांच प्राण हैं तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त या धनंजय, ये पाच उपप्राण है। हदय, नासिका, कंठ आदि सभी अंग इनके स्थान हैं। आकाश आदि के रजोगुण के चतुर्थ भाग से कर्मेंद्रियों की रचना हुई। वाणी, हाथ, पांव, पायु तथा उपस्थ, ये पांच कर्मेंद्रियां है। बोलना (शब्द), आदान (लेना), चलना, मल त्याग तथा रति-आनंद क्रमशः इनके विषय हैं। इसी प्रकार महाभूतों के सत्त्वगुण वाले अश के तीन भागों से अंतःकरण बना, जिसकी मन, चित्त, बुद्धि

तथा अहकार वृत्तियां है । संकल्प, निश्चय, स्मरण, अभिमान तथा अनुसंधान इसके विषय हैं । गला, मुख, नाभि, हृदय तथा भ्रूमध्य स्थान है । इस सत्त्वगुण के चौथे भाग से ज्ञानेंद्रियों की रचना हुई, जो इस प्रकार है—कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नाक । शब्द, स्पर्श, रूप, रस एव गंध इन पाच ज्ञानेंद्रियों के विषय है । दिशाएं, वायु, वरुण , सूर्य, अश्विनी, अग्नि, इद्र, उपेंद्र, मृत्यु, यम, चद्रमा, विष्णु ब्रह्मा एवं शिव इनके देवता है । अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनंदमय, ये पाच कोश है । अन्नमय कोश अन्न के रस बढ़ानेवाला, बनानेवाला तथा अन्नमय पृथ्वी में लय हो जानेवाला है । यही स्थूल शरीर होता है । पांच कर्मेद्रियो तथा पांच प्रकार के प्राणो से प्राणमय कोश बनता है । ज्ञानेद्रियो के साथ मन द्वारा मनोमय कोश बनता है । ज्ञानेंद्रियों और बुद्धि के संयोग से विज्ञानमय कोश बनता है । इन तीनों सयोग से लिग शरीर बनता है, जिसे स्वरूप का ज्ञान नही होता । यही कारण शरीर और आनंदमय कोश है । इस प्रकार पांच ज्ञानेंद्रियों, पांच कर्मेद्रियों पांच प्राणों, पाच महाभूतों, चार अंतःकरणों, काम, कर्म तथा अज्ञान इन सबको व्यष्टि कहते हैं । (3-5)

'विराट ईश्वर की आज्ञा से व्यष्टि मे प्रविष्ट हुआ, बुद्धि में स्थित हुआ तथा विश्व नाम से जाना गया । विज्ञानात्मा, चिदाभास, विश्व, व्यावहारिक, जागृत स्थूल, देहाभिमानी, कर्म तथा भू, ये सब इसी के नाम है । ईश्वर की आज्ञा से सूत्रात्मा ने व्यष्टि में प्रवेश किया और मन में स्थित हुआ । तब यह तेजस कहा गया । तेजस, प्रतिभा शक्ति, स्वप्न कल्पित, ये सब इसी के नाम है । ईश्वर की आज्ञा से माया युक्त अव्यक्त ने व्यष्टि मे प्रवेश किया । इसी को प्राज्ञ कहते हैं । अविछिन्न, पारमार्थिक, सुयुक्ति तथा अभिमानी, ये प्राज्ञ के ही नाम है । पारमार्थिक जीव, जो अज्ञान से ढका रहता है, तत्त्वमसि आदि महा वाक्यों के बोध से इसे ब्रह्म से अपनी एकता का पता लगता है, किंतु अन्य व्यावहारिक या प्रतिभासिक अश ब्रह्म से ऐसी एकता नही रखते । पारमार्थिक जीव वस्तुत ब्रह्म का ही अंश होता है । अंतःकरण में प्रतिबिंबित होनेवाला चैतन्य ही तीन अवस्थाओं को प्राप्त करता है । जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति—इन अवस्थाओं को प्राप्त करके रहट के समान ससार चक्र में भ्रमण करता हुआ उद्विग्न होकर मृतक जैसा हो जाता है । (6-10)

'प्राणी को जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति-मूर्च्छा एव मरण, ये पाच अवस्थाएं होती है । अपने-अपने देवताओं से मिलकर कान, नाक आदि इद्रियों द्वारा शब्द, गध आदि विषयों को ग्रहण करने पर जागृत अवस्था होती है । इस अवस्था में जीव भौंहों के बीच में रहता है और पांवों से मस्तक पर्यंत व्याप्त रहकर कृषि, देखना, सुनना आदि सभी कार्य करता है । साथ ही इनके फलों को उपभोग भी करता है । दूसरे लोक में भी उसे इन कर्मों का फल भोगना पड़ता है । अंत में वह एक सार्वभौम सम्राट की तरह थक जाता है तथा अदर के विश्राम स्थल में जाने की इच्छा से मार्ग का सहारा लेकर रुक जाता है । इंद्रियों द्वारा अपने कार्य बंद कर देने पर जागृत अवस्था के सस्कारों से ग्रहण करने योग्य तथा ग्रहण करनेवाला होने के कारण जो प्रतिक्रिया होती है, वह स्वप्न अवस्था कही जाती है । तब यह विश्व (जीव) जागृत अवस्था के कार्यों को नही करता । इन कार्यों के लुप्त हो जाने पर यह नाडियों के मध्य में पहुचकर तैजस बन जाता है । तब यह अपनी वासनाओं के अनुसार एक विचित्र आभासीय जगत की सृष्टि करके इच्छानुसार उसका उपभोग करता है । सुषुप्त अवस्था में एकमात्र कारण चित्त ही होता है । जैसे थके हुए पक्षी पंखों को समेटकर घोंसले की ओर जाते हैं, वैसे ही जीव

भी जागृत एवं स्वप्न अवस्थाओ के कार्यो से थककर अज्ञान मे प्रवेश करके आनद का उपभोग करता है।' (11-13)

'दड या मुद्गर से यकायक पीटे जाने पर जब व्यक्ति अज्ञान एव मय से हक्का-बक्का होकर कापने लगता है, तो इस अवस्था को मूर्छा कहते है। मृत्यु—इन चारों अवस्थाओं (जागृत, स्वप्न, एव मूर्छा) से भिन्न अवस्था मृत्यु है। इस अवस्था से एक तुच्छ कीड़े से लेकर ब्रह्मा तक सभी भयभीत होते है। इसी से स्थूल शरीर का नाश होता है। तब कर्मेंद्रियों, ज्ञानेद्रियो, इनके विषयो और प्राण, इन सबको सकल्पित करके काम एवं कर्म से सयुक्त होकर अविद्यामय जीव अन्य देह को प्राप्त करके दूसरे लोक को जाता है। पूर्व जन्म के फल मे फसा जीव भवर मे फसे कीड़े के समान मुक्ति नही पाता। शुभ कर्मो के परिणाम से अनेक जन्मों के बाद उसकी मति मोक्ष की ओर होती है तब किसी सच्चे गुरु का आश्रय मिलता है और लबे समय तक उसकी सेवा करके वह मोक्ष को प्राप्त होता है। बुरे चितन से बधन तथा अच्छे चितन से मोक्ष होता है। अत· सदा उत्तम चितन करना चाहिए। माया के अध्यारोप एवं अपवाद को जानकर ही स्वरूप का निश्चय होता है। अत सदा जगत, जीव एव परमात्मा के विषय मे चितन करना चाहिए। इससे जीव एवं जगत से मुक्त एकमात्र ब्रह्म ही शेष रहता है।' (14-18)

तृतीय अध्याय

इसके पश्चात पैगल ने याज्ञवल्क्य से महावाक्यों के विषय में बताने का निवेदन किया, तब याज्ञवल्क्य बोले—'तत्त्वमसि (तुम वही हो), 'त्वं तदसि' (तुम वह हो), 'त्व ब्रह्मासि' (तुम ब्रह्म हो) तथा 'अह ब्रह्मास्मि' (मै ब्रह्म हू), ये महावाक्य हैं, इनके विषय मे चिंतन करना चाहिए। तत (वह) से सर्वज्ञता आदि लक्षणोवाले माया की उपाधि से युक्त, सच्चिदानंद स्वरूप, अव्यक्त ईश्वर का बोध होता है, जो जगत का मूल स्थान है। अंतःकरण की उपाधि के कारण ईश्वर से भिन्न होने का बोध होने से 'त्वम्' पद द्वारा सूचित किया जाता। ईश्वर की उपाधि माया तथा जीव की अविद्या है। इन दोनों उपाधियो को अलग कर देने से 'तत' और 'त्वम' (वह और तुम) शब्द फिर प्रत्यक्ष आत्मा ब्रह्म को बताते है। इसी प्रकार 'तत्त्वमसि' एव 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यों को सुना जाता है। एकात मे इन महावाक्यो पर खोज करनी चाहिए। इसी को मनन कहा गया है। श्रवण एवं मनन से जो निष्कर्ष निकलता है, उसके साथ चित्त को लगाना निदिध्यासन है। ध्याता एव ध्यान को छोडकर जब चित्त केवल ध्येय में रहता है, तब उसकी स्थिति वायुरहित स्थान में रखे दीपक की जैसी हो जाती है। इसी अवस्था को समाधि कहते है। इसमें सभी वृत्तियां आत्मा से मिल जाती है, दिखाई नही पड़ती, उनका केवल स्मरण ही होता है। इस अवस्था से करोडों योनियों के कर्म लय हो जाते है। फिर कुशल अभ्यास से हजार धाराओं से अमृत फूटता है इसीलिए समाधि धर्म मेध कही जाती है। इसमें सभी वासनाए और पाप-पुण्य नष्ट हो जाते हैं। 'तत्त्वमसि' का पहले विचार हुआ अर्थ हथेली मे रखे आंवले के समान स्पष्ट हो जाता है। ब्रह्म से साक्षात्कार होकर योगी जीवन्मुक्त हो जाता है।' (1-5)

'ईश्वर उपर्युक्त पचीकृत भूतों को पुन अपचीकृत (मूल रूप में) करना चाहता है। ब्रह्माड

आदि लोको को पुन इनके (बनाने वाले) कारणो में पांच भूतो को मिला दिया। भूमि जल मे, जल अग्नि मे, अग्नि वायु मे, वायु आकाश मे, आकाश अहकार मे, अहकार महत् में तथा महत् अव्यक्त पुरुष मे क्रम से विलीन हो जाते हैं। विराट, हिरण्यगर्भ तथा ईश्वर भी उपाधि के लय हो जाने पर परमात्मा में लीन हो जाते है। पचीकृत महाभूतों से उत्पन्न और कर्मो के संचय से प्राप्त यह स्थूल भी बधन करने वाले कर्मो के नष्ट होने से तथा सत कर्मो के परिणाम से अपचीकृत होकर सूक्ष्म में मिलकर फिर अपने कारणो को प्राप्त होता है। अत में यह कारणो के भी कारण कूटस्थ परमात्मा मे विलीन हो जाता है। विश्व, तेजस और प्राज्ञ भी अपनी-अपनी उपाधियो के लय हो जाने पर प्रत्यगात्मा मे लीन हो जाते है।' (6-7)

'ब्रह्मांड अपनी कारण अविद्या के साथ ज्ञान की अग्नि मे जलकर परमात्मा मे लीन होता है। इसलिए ब्रह्मज्ञानी को 'तत' (वह—ब्रह्म) तथा 'त्वं' (तुम—जीव) दोनो शब्दो मे सदा एकता देखनी चाहिए। ऐसा करने से उसका आत्मा से वैसे ही साक्षात्कार होता है, जैसे बादलो के हट जाने पर सूर्य से। कलश मे रखे हुए दीपक के समान ही अपने शरीर मे रखे हुए धुएं से रहित ज्योति के समान अगुष्ठ मात्र आत्मा का ध्यान करना चाहिए। अत मे स्थित प्रकाशमय कूटस्थ आत्मा का मृत्यु के समय तक ध्यान करनेवाला व्यक्ति जीवन्मुक्त होकर मृत्यु के बाद बद वायु के समान विदेह मुक्ति को प्राप्त करता है। फिर शब्द आदि विषयो से रहित, अव्यय, नित्य, अनादि, अनत एव महत् से भिन्न ध्रुव एव निरामय ब्रह्म ही शेष रहता है।' (8-12)

चतुर्थ अध्याय

याज्ञवल्क्य से पैगल द्वारा यह पूछे जाने पर कि ज्ञानियो के क्या कर्म है ? तथा उनकी स्थिति कैसी है ? याज्ञवल्क्य बोले—'अमानित्व आदि साधनोवाला मोक्ष का इच्छुक अपनी इक्कीस पीढ़ियों का तथा ब्रह्म को जान लेनेवाला अपनी एक सौ एक पीढियो का तारण करता है। आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी, मन को लगाम तथा इद्रियों को घोडे समझो, जो शब्द आदि विषयो के मार्ग पर चलते हैं। किन्तु मनीषियों का हृदय विमान के समान इन मार्गो से हटकर चलता है। महर्षियों का कहना है कि आत्मा इद्रियो आदि से युक्त होकर भोक्ता बनता है और इसके हृदय मे साक्षात नारायण रहते है। पूर्व जन्म के कर्मो का नाश होने तक जीव को साप की केचुल के समान शरीर धारण करने पड़ते है। जो अपने कर्मों को कृष्ण-पक्ष के चद्रमा की तरह घटाते हुए आगे बढ़ते है, वे मुक्त हो जाते है। ऐसा व्यक्ति चाहे तीर्थ मे देह त्यागे या चाडाल के यहा, वह कैवल्य ही पाता है। उसके शरीर को चाहे फिर अग्नि मे जलाया जाए अथवा गड्ढे मे दबाया जाए (यहां केवल सन्यासियो के लिए ही गड्ढे में दबाने से तात्पर्य है) सन्यासी की मृत्यु पर मृतक नही होता तथा उसे पिंड, जल आदि भी नही दिए जाते, क्योंकि जले हुए को पुन नही जलाया जाता और पके हुए को पुन नही पकाया जाता। सन्यासी का शरीर ज्ञान की अग्नि में पहले से ही जला होता है, अत उसकी श्राद्ध क्रिया भी नही की जाती है।' (1-10)

'जब तक सांसारिक उपाधि का नाश न हो, तब तक गुरु, उसकी पत्नी तथा उसके पुत्र की सेवा करनी चाहिए। मैं शुद्ध मनवाला, चित्त रूप, 'वही सहिष्णु हू', इस ज्ञान के मिलने पर जब ज्ञान

स्वरूप आत्मा हृदय में स्थित हो जाए, तब साधक मन एव बुद्धि से शून्य होकर परम शाति पद को पाता है। अमृत छक लेने पर दूध की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार अपनी आत्मा का ज्ञान हो जाने पर वेदों से कोई प्रयोजन नही रह जाता, ज्ञान के अमृत से तृप्त योगियो को कोई भी कर्तव्य नही रह जाता। यदि कोई कर्तव्य शेष रहे, तो समझना चाहिए कि वह पूर्णज्ञानी नही है। वह दूर रहने पर भी पास है तथा पिड में रहने पर भी इससे पृथक् सर्वव्यापी प्रत्यगात्मा है। हृदय को निर्मल करके 'मै ही अनामय ब्रह्म हू', और 'परम सुख हू', जैसे जल मे जल या दूध में मिलाने पर दोनों एकरूप हो जाते है, उसी प्रकार जीवात्मा एव परमात्मा के मिल जाने पर दोनो एक ही हो जाते हैं। जब देह के ज्ञानमय हो जाने पर बुद्धि अखडाकार हो जाती है, तब विद्वान इस ज्ञान की अग्नि से कर्म वधनों को जलाए। तब पवित्र होकर निर्मल आकाश के समान अद्वैत ब्रह्म मे स्वय को उपाधि रहित आत्मा के रूप में पाकर जल मे जल के समान मिला दे। आत्मा आकाश जैसा सूक्ष्म और वायु के समान न दिखाई देनेवाला है। वह भीतर एव बाहर दोनों ओर से निश्चल है। केवल ज्ञान की मशाल से ही उसे देखा जा सकता है। ज्ञानी चाहे कही भी और कैसे भी मृत्यु को प्राप्त हो, वह ब्रह्म मे ही लीन होता है, क्योंकि आकाश के समान ही ब्रह्म भी सर्वत्र है।' (11-20)

'चाहे व्यक्ति एक पाव पर खडा होकर हजार वर्ष तक तप करे, तब भी वह ध्यान योग की सोलह कलाओ में एक कला को भी नही पा सकता। समस्त ज्ञान को प्राप्त करने के लिए यदि एक हजार वर्ष तक भी शास्त्रों का अध्ययन करे, तब भी उसे इसका अत नही मिलेगा। अत मनुष्य जान ले कि केवल अक्षर ब्रह्म ही सत्य है। जीवन चचल है। इसलिए शास्त्रो के जाल को छोडकर इसी सत्य की उपासना करनी चाहिए। अनंत कर्म, पवित्रता, जप, यज्ञ तीर्थ आदि का महत्त्व तत्त्व ज्ञान के प्राप्त होने तक ही है। महात्माओं के लिए मोक्ष का 'मै ब्रह्म हू', यही एकमात्र आधार है। मोक्ष एव वधन के लिए कारण केवल दो ही शब्द है। पहला 'मेरा नही है' दूसरा 'मेरा है'। सासारिकता को अपना समझना वधन है तथा इसे अपना न समझना मोक्ष का कारण है। उन्मनी अवस्था होने पर यह द्वैत भाव समाप्त हो जाता है और परम पद प्राप्त हो जाता है। इसमें जहा भी मन रहता है, वही परम पद रहता है। परम ब्रह्म को सब जगह स्थित मानना चाहिए। अपने को ब्रह्म न मानना आकाश में मुट्ठी मारने तथा चावलों के लिए भूसी कूटने के समान है। इससे उसकी कभी मुक्ति नही होती। इस उपनिषद् का नित्य अध्ययन करने से व्यक्ति अग्नि, वायु, सूर्य, ब्रह्म तथा रुद्र के समान पवित्र हो जाता है। उसे सभी तीर्थो मे स्नान का, सभी वेदों के अध्ययन का तथा उनके व्रतो का फल मिलता है। उसे इतिहास-पुराणो का, एक लाख रुद्र जप का तथा दस हजार प्रणव जप का फल मिलता है। उसकी दस पिछली तथा दस आनेवाली पीढिया तर जाती है। उसके साथ वैठने से ही लोग पवित्र हो जाते है। वह वस्तुत महान हो जाता है, साथ ही वह ब्रह्म-हत्या, सुरापान, स्वर्ण की चोरी, गुरु-पत्नी से व्यभिचार आदि के दोषों से मुक्त हो जाता है। जैसे आखों से आकाश दिखाई देता है, वैसे ही वह विद्वान विष्णु के परम पद को देखता है। वे क्रोधहीन विप्र विष्णु के उस परम पद को स्तुति करके उसे देखते है। यह सत्य ज्ञान का सार है।' (21-30)

☐

54. महावाक्योपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्य शृंणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति शांति शाति ।

हम कानो से कल्याणमय वचन सुने, नेत्रो से कल्याणमय चीजों को देखे और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे। इद्र हमारा कल्याण करे, पूषा हमारा कल्याण करे। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के दु ख शात हो।

एक बार भगवान् ब्रह्मा ने कहा, 'मै प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त उपनिषद् की व्याख्या करता हू। यह ज्ञान परम गोपनीय है; अत· इसे साधारण व्यक्तियो को नही बताना चाहिए। सात्त्विक, अतर्मुखी तथा गुरु की सेवा करनेवाले को ही यह ज्ञान देना चाहिए। संसार मे बधन और मोक्ष के दो नेत्र (कारण) है—विद्या तथा अविद्या (ज्ञान एव अज्ञान)। इन्हे अच्छी तरह समझकर इस बात को जान लेना चाहिए कि यह समस्त ससार अविद्यारूपी नेत्र है। इस नेत्र से दिखाई देनेवाला सब कुछ असत्य है। समस्त वेदो मे कहा गया सकाम कर्म का व्यवहार भी इसी के कारण है। आत्मा अज्ञान के अधकारवाला नहीं है। विद्या (ज्ञान) इस अज्ञान से भिन्न परम ज्योति से प्रकाशित है। अत इसी को ग्रहण करना चाहिए। आदित्य रूप ब्रह्म सासों द्वारा प्रत्येक शरीर में रहता है। यह बिना अधिक प्रयत्न द्वारा प्राप्त होनेवाला हस नामवाला है। स्वय को इसी का अश मानकर प्राण, अपान, श्वास, प्रश्वास को जानकर लबे समय तक साधना करें। तब तीन स्वरूपोंवाले ब्रह्म का ध्यान करने पर सच्चिदानंद परमात्मा का ज्ञान होता है। (1-6)

'यह तत्त्व ज्ञान हजारों सूर्यो से युक्त अविचल समुद्र के समान है। यह समाधि, योगसिद्धिया, मन का लय होना भी नही है। समस्त रूपों पर विचार करके अज्ञान का नाश होने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इंद्र आदि ने भी कहा है कि उस ब्रह्म को इस प्रकार समझनेवाला इसे प्राप्त करता है। मोक्ष का कोई अन्य मार्ग नही है। इद्र आदि ज्ञानलय द्वारा यज्ञ करके जीवन्मुक्त होकर अपने साध्य के स्थान में पहुंच गए। मै वही अर्क हूं, परम प्रकाशमान कल्याणस्वरूप हू, वही आत्मज्योति, शुक्र, सबके ज्योति ब्रह्म से मैं अलग नही हू। इस ब्रह्मज्ञान को प्रात पढने से रात्रि में किए गए पाप नष्ट होते है। सायंकाल पढने से दिन के पाप नष्ट होते हैं। साय-प्रात दोनों समय पढने मे व्यक्ति पापहीन हो जाता है। दोपहर में सूर्य की ओर मुख करके पढ़ने से पांच महापापो मे मुक्ति मिलती है तथा सभी वेदों के अध्ययन का फल मिलता है और श्री महामाया एव विष्णु के लोक की प्राप्ति होती है। (7-12)

शांतिपाठ :

ॐ वाङमे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराविम् एंधि । वेदस्य न आणीस्थ श्रुत मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधामृतं वदिष्यामि । सत्य बदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतुवक्तारमवतु वक्तारम् ।

ॐ शाति· शांति· शाति ।

हे परमात्मा । मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ । मुझे वेदों का ज्ञान दो । मै सुने हुए ज्ञान को न भूलूं । इस अध्ययन से मै रात-दिन एक कर दू, मै ऋत एव सत्य वोलू । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनो की रक्षा करो । दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शात हों ।

प्रथम अध्याय

प्रत्यक्ष आनंद ब्रह्म पुरुष प्रणव के 'अ', 'उ' तथा 'म्' ये तीन अक्षर है । इसी प्रणव को 'ओम' भी कहा जाता है, जिसके जप से योगी जन्म और संसार के बधन से छूट जाता है । 'शख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले भगवान नारायण को नमस्कार है ।' इस मत्र से 'ॐ नमो नारायणाय', इस मत्र का उपासक बैकुठ लोक को जाता है । इस हृदय के ब्रह्मपुर कमल में प्रकाशित होनेवाला दीपक या विद्युत के समान देवकी पुत्र, मधुसूदन, पुंडरीकाक्ष तथा अच्युत विष्णु ब्रह्मज्ञानियों के हितैषी है । वही नारायण सभी प्राणियो मे रहनेवाले जो सबके कारण हैं और जिनका कोई कारण नही है, वही परम ब्रह्म 'ओम्' है । इस प्रकार के विष्णु का ध्यान करने से व्यक्ति शोक एव मोह से छूट जाता है । वह द्वैत भी है, अद्वैत भी है और द्वैत-अद्वैत भी है । जो इसे नही जानता है, वह मृत्यु के वाद भी मृत्यु को प्राप्त करता है । हृदय कमल में रहनेवाला ब्रह्म ही प्रज्ञान स्वरूप, प्रज्ञान नेत्र तथा प्रज्ञान मे ही रहनेवाला है । इसको जाननेवाला ज्ञानी इस लोक के वाद स्वर्ग लोक मे जाकर समस्त कामनाओ को प्राप्त करके अमर हो जाता है । जहा कभी समाप्त न होनेवाली ज्योति है, जहां चारों ओर पूजा होती है, उस अमर लोक में हमें स्थान दे ।

द्वितीय अध्याय

मेरे लिए माया गल गई है, मेरा 'मैं' समाप्त हो गया है, आत्मा एवं परमात्मा का भेद नष्ट हो गया है तथा अव मैं अतुलनीय रूप मात्र हू । मैं अलग नही हू, समस्त नियम-निषेध मेरे लिए नष्ट हो गए हैं, मैंने धर्म त्याग दिया है, मैं परम सुखी तथा ज्ञानी हूं । मैं साक्षी हूं, निरपेक्ष हू, अपनी महिमा से स्थित हू, अचल, अजर, अमर, अव्यय, पक्ष-विपक्ष से ऊपर, ज्ञान स्वरूप, मोक्ष के आनद का समुद्र, सूक्ष्म तथा अक्षर हूं । मेरे लिए सत्त्व, रजस एवं तमस इन तीनों गुणों का नाश हो गया । मै कूटस्थ चेतन, एक, अविकल, निर्मल, निर्वाण रूप, हंस, केवल, विभु, जानने योग्य, परमानंद, शुद्ध, शाश्वत आदि हू । (1-10)

विवेक बुद्धि से मैं जानता हूं कि आत्मा अद्वैत है, तथापि वंधन एवं मोक्ष का व्यवहार प्रतीत हो रहा है। जैसे रस्सी से सांप का भ्रम दूर हो जाता है और रस्सी की वास्तविकता का पता लग जाता है, वैसे ही माया का भ्रम दूर होने पर केवल ब्रह्म ही दिखाई दे रहा है। जैसे गन्ने में मिठास व्याप्त होती है, वैसे ही मैं अद्वैत ब्रह्म के समान तीनों लोकों में व्याप्त हूं। ब्रह्मा से कीड़े तक सव मुझमें हैं। केवल आनंद रूप होने से अव मुझे विषयों की इच्छा नही है। संपन्न के लिए दरिद्रता के समान मुझे इनकी कोई संभावना नही है। अमृत और विष में से विष का त्याग करने के समान मैंने आत्मा को देखकर अनात्मा का त्याग कर दिया है। घड़े के टूट जाने पर भी जैसे उसे प्रकाशित करनेवाला सूर्य नष्ट नही होता, वैसे ही देह का साक्षी इसके नष्ट होने पर स्वयं नष्ट नही होता। अव मेरे लिए वंधन, मोक्ष, शास्त्र, गुरु, कुछ भी नही है। प्राण चला जाए, आ नंद मन कर्मो सहित नष्ट हो जाए, किंतु आनद ज्ञानमय होने से मुझे अव कोई दुःख नही है। (11-21)

मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है। मैं आत्मा का सत्य स्वरूप जान चुका हूं। 'मैं कार्य करनेवाला हू' मेरा यह भाव भी नष्ट हो गया है। मुझे अव कुछ कार्य नही करना है। ब्राह्मणत्व, कुल-गोत्र, नाम, सुंदरता आदि का संवंध स्थूल देह से होता है, किंतु मैं स्थूल देह से अलग हूं। अत इन सवसे अव मेरा संवंध नष्ट हो गया है। भूख, प्यास, काम, क्रोध आदि लिंगी शरीर के गुण हैं, मैं इस शरीर से रहित हूं। अत अव मैं इनसे मुक्त हूं। इसी प्रकार जड़ता, प्रियता आदि से भी मुक्त हो गया हूं, क्योंकि ये कारण शरीर के धर्म हैं, जबकि मैं विषय एवं निर्विकार हूं। जैसे उल्लू को सूर्य अधकारमय दिखाई देता है, वैसे ही अज्ञानी को स्वयं प्रकाश परमानंद अज्ञानमय दिखाई देता है। जैसे वादलों से ढका सूर्य दिखाई नही पड़ता वैसे ही अज्ञानी को अज्ञान से परमात्मा नही दिखाई देता और वह 'ब्रह्म नही है', ऐसा मानने लगता है। जैसेअमृत का विष पर कोई प्रभाव नही पडता, वैसे ही जड़ जगत का मुझ पर कोई प्रभाव नही पड़ता। छोटा दीपक भी जैसे अंधकार नष्ट करता है, वैसे ही थोड़ा-सा आत्मज्ञान अज्ञान को नष्ट करता है। रस्सी में जैसे सर्प तीनों कालों में नही होता, वैसे ही मेरे लिए देह और अज्ञान नही है। चैतन्य-सत्य के दर्शन से मेरे लिए जड़ता एव असत्य नष्ट हो गए हैं और अज्ञान के कारण सत्य प्रतीत होनेवाले दुःख भी आनंदमय हो जाने से समाप्त हो गए हैं। इस आत्म-प्रवोध उपनिषद का क्षण-भर के लिए भी मनन करने से पुनर्जन्म से मुक्ति मिल जाती है। (22-31)

□

56. कैवल्योपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

परमात्मा हम दोनो (गुरु एव शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करे।

महर्षि अश्वलायन समिधा लेकर ब्रह्मा के पास गए और उन्होने उनसे निवेदन किया कि वह उन्हे श्रेष्ठ एव गोपनीय ब्रह्मविद्या का उपदेश दें, जिस पर चलने से पूर्वजन्म के कर्मो से छुटकारा मिलकर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस पर ब्रह्मा बताने लगे, 'उस परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए श्रद्धा, भक्ति एव योग का सहारा लेना पडता है, अत तुम भी ऐसा ही करो। उसे सपत्तियो या कर्म से नही पाया जा सकता। त्याग के मार्ग से ही उसे प्राप्त कर सकते है। एकात में पवित्र होकर सुखासन मे तनकर बैठकर भक्ति से गुरु को चितन प्रणाम करके देह में स्थित शोकरहित हृदय पुडरीक का चितन करे। चितन से परे प्रशात ब्रह्म, आदि, मध्य एव अतहीन, अदभुत, आनंद स्वरूप उमा सहित तीन आखोंवाले भगवान शिव का ध्यान करने से मुनि लोग यम से भी ऊपर ब्रह्म को प्राप्त करते है। वही विष्णु, अग्नि, प्राण, चंद्रमा, भूत, भविष्य एवं सनातन है। मृत्यु स मुक्ति के लिए उसके ध्यान के अतिरिक्त कोई मार्ग नही है। अत सभी प्राणियों को अपने में और अपने को सभी प्राणियों में देखने से ही ब्रह्म मिलता है। (1-10)

'स्वयं को तथा प्रणव को अरणि बनाकर ज्ञान से इन्हें घिसने पर पाप जल जाते है। माया से पागल बना हुआ प्राणी स्त्री आदि भोगो से तृप्ति अनुभव करता है और स्वप्नावस्था मे वह माया से कल्पना करके तमोगुण से दु ख-सुखों की अनुभूति करता है। सुषुप्ति मे माया का प्रपच समाप्त हो जाने पर भी जीव तमोगुण से पराजित होकर पूर्वजन्म के कर्मो से सुख प्राप्त करता है। स्थूल, सूक्ष्म एव कारण शरीरों के लय होने पर माया से छुटकारा मिलता है और अखड आनद मिलता है। इसी से मन, प्राण, इद्रिया आदि जन्म लेती है, जो आकाश आदि को धारण करती है। अत्यंत सूक्ष्म, सबका आत्मा एव निवास ब्रह्म ही नित्य तत्त्व है, इसके दिखाई देने पर जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाए नष्ट हो जाती हैं और 'वह ब्रह्म मैं ही हू' ज्ञान होने पर समस्त माया का बंधन नष्ट हो जाता है। तब लगता है कि तीनों अवस्थाओ का भोग करनेवाला, भोग आदि सब मैं ही हू, वह सदा शिव-चैतन्य-विचित्र लक्षणोंवाला सब मैं ही हूं, सब कुछ मुझमें ही स्थित है, मुझमें ही लय होगा और मै ब्रह्म से भिन्न नही हू। मै अणु से भी छोटा तथा अत्यत विशाल हूं। मैं सबसे पुराना पुरुष ईश्वर आदि हूं।' (11-20)

'मै हाथ-पाव रहित अदभुत शक्ति हूं, बिना आंखों एवं कानों के देखता एव सुनता हू, मै विशेष जानकर हू, मुझे जाननेवाला कोई नही है, सारे वेद मेरा ही गुणगान करते हैं, मैं ही वेदों को

विवेक बुद्धि से मै जानता हूं कि आत्मा अद्वैत है, तथापि बंधन एवं मोक्ष का व्यवहार प्रतीत हो रहा है। जैसे रस्सी से साप का भ्रम दूर हो जाता है और रस्सी की वास्तविकता का पता लग जाता है, वैसे ही माया का भ्रम दूर होने पर केवल ब्रह्म ही दिखाई दे रहा है। जैसे गन्ने में मिठास व्याप्त होती है, वैसे ही मै अद्वैत ब्रह्म के समान तीनो लोकों में व्याप्त हूं। ब्रह्मा से कीडे तक सब मुझमें है। केवल आनंद रूप होने से अब मुझे विषयों की इच्छा नही है। संपन्न के लिए दरिद्रता के समान मुझे इनकी कोई सभावना नहीं है। अमृत और विष में से विष का त्याग करने के समान मैने आत्मा को देखकर अनात्मा का त्याग कर दिया है। घड़े के टूट जाने पर भी जैसे उसे प्रकाशित करनेवाला सूर्य नष्ट नही होता, वैसे ही देह का साक्षी इसके नष्ट होने पर स्वयं नष्ट नही होता। अब मेरे लिए बधन, मोक्ष, शास्त्र, गुरु, कुछ भी नही है। प्राण चला जाए, आ नंद मन कर्मो सहित नष्ट हो जाए, किंतु आनंद ज्ञानमय होने से मुझे अब कोई दु.ख नहीं है। (11-21)

मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है। मै आत्मा का सत्य स्वरूप जान चुका हू। 'मै कार्य करनेवाला हू' मेरा यह भाव भी नष्ट हो गया है। मुझे अब कुछ कार्य नहीं करना है। ब्राह्मणत्व, कुल-गोत्र, नाम, सुंदरता आदि का संबंध स्थूल देह से होता है, किंतु मै स्थूल देह से अलग हू। अत इन सबसे अब मेरा संबंध नष्ट हो गया है। भूख, प्यास, काम, क्रोध आदि लिंगी शरीर के गुण है, मै इस शरीर से रहित हूं। अत· अब मै इनसे मुक्त हूं। इसी प्रकार जड़ता, प्रियता आदि से भी मुक्त हो गया हू, क्योकि ये कारण शरीर के धर्म है, जबकि मै विषय एवं निर्विकार हूं। जैसे उल्लू को सूर्य अंधकारमय दिखाई देता है, वैसे ही अज्ञानी को स्वय प्रकाश परमानंद अज्ञानमय दिखाई देता है। जैसे बादलों से ढका सूर्य दिखाई नही पड़ता वैसे ही अज्ञानी को अज्ञान से परमात्मा नही दिखाई देता और वह 'ब्रह्म नही है', ऐसा मानने लगता है। जैसेअमृत का विष पर कोई प्रभाव नही पडता, वैसे ही जड़ जगत का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पडता। छोटा दीपक भी जैसे अधकार नष्ट करता है, वैसे ही थोड़ा-सा आत्मज्ञान अज्ञान को नष्ट करता है। रस्सी में जैसे सर्प तीनो कालो में नही होता, वैसे ही मेरे लिए देह और अज्ञान नही है। चैतन्य-सत्य के दर्शन से मेरे लिए जड़ता एव असत्य नष्ट हो गए है और अज्ञान के कारण सत्य प्रतीत होनेवाले दु:ख भी आनंदमय हो जाने से समाप्त हो गए है। इस आत्म-प्रबोध उपनिषद का क्षण-भर के लिए भी मनन करने से पुनर्जन्म से मुक्ति मिल जाती है। (22-31)

□

कैवल्योपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

परमात्मा हम दोनो (गुरु एव शिष्य) की एक साथ रक्षा करे,एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो,हम द्वेष न करें।

महर्षि अश्वलायन समिधा लेकर ब्रह्मा के पास गए और उन्होने उनसे निवेदन किया कि वह उन्हे श्रेष्ठ एव गोपनीय ब्रह्मविद्या का उपदेश दें,जिस पर चलने से पूर्वजन्म के कर्मो से छुटकारा मिलकर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस पर ब्रह्मा बताने लगे,'उस परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए श्रद्धा, भक्ति एव योग का सहारा लेना पडता है,अत तुम भी ऐसा ही करो। उसे सपत्तियों या कर्म से नही पाया जा सकता। त्याग के मार्ग से ही उसे प्राप्त कर सकते है। एकात में पवित्र होकर सुखासन में तनकर बैठकर भक्ति से गुरु को चितन प्रणाम करके देह में स्थित शोकरहित हृदय पुडरीक का चितन करें। चितन से परे प्रशात ब्रह्म,आदि,मध्य एव अतहीन,अदभुत,आनद स्वरूप उमा सहित तीन आखोवाले भगवान शिव का ध्यान करने से मुनि लोग यम से भी ऊपर ब्रह्म को प्राप्त करते है। वही विष्णु,अग्नि,प्राण,चद्रमा,भूत,भविष्य एव सनातन है। मृत्यु स मुक्ति के लिए उसके ध्यान के अतिरिक्त कोई मार्ग नही है। अत सभी प्राणियों को अपने में और अपने को सभी प्राणियो में देखने से ही ब्रह्म मिलता है। (1-10)

'स्वय को तथा प्रणव को अरणि बनाकर ज्ञान से इन्हें घिसने पर पाप जल जाते है। माया से पागल बना हुआ प्राणी स्त्री आदि भोगो से तृप्ति अनुभव करता है और स्वप्नावस्था मे वह माया से कल्पना करके तमोगुण से दु ख-सुखो की अनुभूति करता है। सुषुप्ति मे माया का प्रपच समाप्त हो जाने पर भी जीव तमोगुण से पराजित होकर पूर्वजन्म के कर्मों से सुख प्राप्त करता है। स्थूल,सूक्ष्म एव कारण शरीरों के लय होने पर माया से छुटकारा मिलता है और अखड आनद मिलता है। इसी से मन,प्राण,इंद्रिया आदि जन्म लेती है,जो आकाश आदि को धारण करती है। अत्यत सूक्ष्म, सबका आत्मा एव निवास ब्रह्म ही नित्य तत्त्व है,इसके दिखाई देने पर जागृत,स्वप्न,सुषुप्ति अवस्थाए नष्ट हो जाती है और 'वह ब्रह्म मै ही हू' ज्ञान होने पर समस्त माया का बधन नष्ट हो जाता है। तब लगता है कि तीनों अवस्थाओ का भोग करनेवाला,भोग आदि सब मै ही हू,वह सदा शिव-चैतन्य-विचित्र लक्षणोंवाला सब मै ही हूं,सब कुछ मुझमें ही स्थित है,मुझमें ही लय होगा और मै ब्रह्म से भिन्न नही हू। मै अणु से भी छोटा तथा अत्यत विशाल हू। मै सबसे पुराना पुरुष ईश्वर आदि हू।' (11-20)

'मै हाथ-पाव रहित अदभुत शक्ति हूं,बिना आखो एव कानो के देखता एव सुनता हू,मै विशेष जानकर हू,मुझे जाननेवाला कोई नही है,सारे वेद मेरा ही गुणगान करते है,मै ही वेदो को

बनानेवाला हू, मै पाप, पुण्य, जन्म, मृत्यु, देह, इंद्रिय, पृथ्वी, अग्नि आदि से रहित हू, इस प्रकार गुहा में स्थित कलारहित अद्वितीय परमात्मा को जानकर व्यक्ति सत्-असत् परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करता है । जो सौ रुद्रीय का अध्ययन करता है; वह अग्नि के समान पवित्र हो जाता है । उसके सोने की चोरी, सुरापान, ब्रह्महत्या, बुरे-भले पाप छूट जाते हैं और वह पवित्र हो जाता है । इससे भवसागर का नाश करनेवाला ज्ञान प्राप्त होता है । अतः इसे जानकर कैवल्य का फल मिलता है' (21-26) ।

□

अपान वायु के वेग से कभी भी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता है। यह जीव (प्राण) वस्तुत अपने वश में न होकर प्राण एव अपान इन दो वायुओ के वश में है और सदा ही इन दोनों के द्वारा ऊपर-नीचे दौडता रहता है। इस प्रकार यद्यपि यह दाए-बाए मार्गों से सदा सचार करता रहता है, किंतु यह इतना चचल होता है कि दिखाई ही नहीं देता है। जैसे एक बाज जो रस्सी से बधा रहता है, वह चाहे उडने का कितना ही प्रयत्न क्यो न करे, जब चाहे रस्सी के द्वारा पुन. खीच लिया जाता है, उसी प्रकार सासारिक गुणो से बधा हुआ जीव भी प्राण एव अपान वायुओं द्वारा बार-बार खीचा जाता रहता है। प्राण अपान को ऊपर की ओर खीचता रहता है तथा अपान प्राण को नीचे की ओर खीचता रहता है। इस प्रकार इन दोनों ही वायुओ की शक्ति से यह जीव निरतर ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर खिचता रहता है। जो इस गति को समुचित रूप से जान लेता है, वह योग का वेत्ता बन जाता है। (26-30)

यह प्राण वायु जब उदर से बाहर निकलती है, तो उस समय 'ह' ध्वनि की जैसी प्रतीति होती है, अत कहा जाता है कि यह 'ह'कार ध्वनि के साथ बाहर को आता हैऔर पुन· जब यह अदर को जाती है, तब 'स' का उच्चारण करता हुआ जान पडती है, इसीलिए कहा जाता है कि वह सकार का उच्चारण करती हुई अदर जाती है। इन दोनों वर्णों को मिलाकर 'हस' शब्द बनता है, इस प्रकार यह जीव सदा-सर्वदा हस मंत्र का जप करता रहता है। एक दिन एक रात्रि मे कुल मिलाकर यह इक्कीस हजार छ सौ मंत्रो को जपता है, क्योकि इतनी ही बार यह अन्दर से बाहर आता है तथा पुन बाहर से उदरस्थ होता है। इसे अजपा नाम की गायत्री कहा जाता है, यह योगियो के लिए सदा मोक्ष देनेवाली कही जाती है। इसका केवल सकल्प ही कर लेने से भी साधक को उसके सभी पापो से मुक्ति मिल जाती है। कहा गया है कि इस अजपा गायत्री के समान न तो कोई विद्या है, न इसके समान कोई जप है और न ही इसके समान कोई ज्ञान है। यहां तक कि न तो इसके समान विद्या, ज्ञान या जप अभी तक कोई हुआ है और न भविष्य मे ही होगा। कुडलिनी मे उत्पन्न होनेवाली गायत्री प्राणो को धारण करने की शक्ति से युक्त है, अत इसे प्राण-विद्यामय कुंडलिनी कहा जाता है। यह कुडलिनी से उत्पन्न गायत्री अर्थात प्राण विद्या कुंडलिनी एक ज्ञान स्वरूप है, क्योकि इसका ज्ञाता वेदों का जाननेवाला हो जाता है। (31-35)

कन्द के ऊर्ध्व भाग मे कुडली शक्ति होती है, जो आठ प्रकार की कही है। इसकी आकृति कुडल की तरह होती है। यह सदा ही ब्रह्म द्वार का अपने मुख से आच्छादित करती हुई स्थित रहती है। निष्पाप हो जाने पर मनुष्य के प्राण इसी ब्रह्म द्वार से निकलते है; किंतु यह सदा इसे ढके रहती है तथा सदा सुप्तावस्था मे रहती है। यह परमेश्वरी स्वरूपा है। वह्नि के, मन के तथा वायु के साथ सयुक्त होकर वह प्रबुद्ध बन जाती है और तब इसका आकार सुई के समान अत्यत सूक्ष्म हो जाता है। इस प्रकार की बन जाने पर यह सुषुम्ना नाड़ी के साथ ऊपर को चली जाती है। जैसे घर के द्वार को कुजी (चाबी) द्वारा खोला जाता है, ठीक उसी प्रकार योगी कुंडलिनी द्वारा मोक्ष द्वार का भेदन करता है। सर्वप्रथम हाथो को संपुटित कर ले। फिर पूर्ण दृढ़ता के साथ पद्मास लगाकर बैठ जाए, चिबुक को (ठोड़ी) भी दृढता से सामने गले के नीचे वक्षस्थल से संयुक्त करे। फिर ब्रह्म के प्रति ध्यान लगाने की चेष्टा करे। इसके पश्चात बार-बार अपान वायु को ऊपर की ओर खीचे और

कब हुई ? तथा यह लय कब होती है ? अपने पुत्र की इच्छा को व्यास ने अच्छी तरह से समझ लिया और उन्हें सारी बातें समझायी, किंतु शुकदेव ने अपने मन में विचार किया कि वह स्वयं इन सब बातों को पहले से ही जानते है । अत. उन्होंने अपने पिता की बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया । पिता भी पुत्र के मन की बातों को समझ गए । अत· उन्होंने कहा, 'अभी तुम इस विषय को सही रूप मे नही जानते हो । यदि तुम वास्तव में इसे समझना चाहते हो, तो मिथिला में राजा जनक रहते हैं, जो इस विद्या को सही रूप मे जानते हैं । उन्हीं से तुम भी इस ज्ञान को सही प्रकार प्राप्त कर सकते हो ।' पिता की बातों को सुनकर शुकदेव सुमेरु पर्वत से नीचे उतर आए और महाराज जनक की राजधानी मिथिला पहुचे । (11-20)

उन्हे आया हुआ देख राजा जनक के द्वारपालों ने राजा को सूचना दी, 'महाराज ! भगवान व्यास के पुत्र शुकदेव आपसे मिलने हेतु द्वार पर खड़े है ।' यह सुनकर बड़े ही अनादर से राजा जनक बोले, 'ठीक है, आया है, तो रहने दो', और सात दिनों तक उन्होंने शुकदेव से बात भी नहीं की । इसके बाद उन्होने उन्हे आगन में बुलवा लिया, किंतु अगले सात दिनों तक फिर कोई बात नहीं की । फिर उन्हें अत पुर के आगन में बुलवा लिया, परतु सात दिनों तक बात नही की, और न ही राजा उनके सामने आए । तब सुंदर चद्रमुखी युवतियों द्वारा भोगादि द्वारा राजा ने उनका स्वागत कराया, परतु ये सब भोग और पकवान शुकदेव को बिलकुल भी नहीं लुभा पाए, उनका मन उस दीपक के समान अविचलित रहा, जो सुरक्षित स्थान पर रखा होता है और हवा उसे हिला भी नही सकती । वे उसी प्रकार प्रसन्नमन, स्वच्छ, निर्विकार और मौन चद्रमा के समान रहे । वास्तव में यह उनकी परीक्षा थी । राजा जनक शुकदेव के स्वभाव के विषय में जान गए । उन्होंने शुकदेव को बुलवा लिया । इतना अनादर होने पर भी शुक प्रसन्नमुख थे । राजा ने उन्हें प्रणाम किया । उनका समुचित सत्कार किया और बोले, 'आप ससार के सभी विषय-भोगों से ऊपर उठ गए हैं । वस्तुत आपकी सभी इच्छाए पूरी हो चुकी है । तब कृपया आप यह बताएं कि आप यहा मेरे पास किस उद्देश्य से आए हैं ?' अत्यत नम्रता के साथ शुकदेव ने कहना प्रारंभ किया, 'गुरुदेव, कृपा करके यह बताए कि इस विश्व के प्रपच अर्थात् माया से युक्त सृष्टि का जन्म कैसे होता है तथा अत में इस सबका लय कैसे होता है ? इस विषय में जो भी सत्य बात है, उसे मुझे बताने की कृपा करो । यही मेरा यहा आने का कारण है । (21-30)

महात्मा जनक ने शुकदेव को विस्तार से इस विषय को समझाया, किंतु यह सब वर्णन, जो जनक ने बताया, शुकदेव पहले ही अपने पिता वेदव्यास से सुन चुके थे । अत. वह बोले, 'यह सब तो मै अच्छी तरह से पहले से ही जानता हू । मेरे द्वारा पूछे जाने पर मेरे पिताजी ने भी यही सब मुझे बताया था । अब हे विद्वानों में श्रेष्ठ महाराज जनक । आपने भी वही बात बताई है । सभी शास्त्रो में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है कि मन के संकल्प से (इच्छा से) ही इस समस्त प्रपंच का जन्म होता है और उस विकल्प के नष्ट होने पर इस ससार के प्रपच का भी नाश हो जाता है; अर्थात् यह बिलकुल व्यर्थ की और सारहीन है, ऐसा निश्चय हो जाता है । क्या यह जगत सचमुच सारहीन है ? मैं इस विषय में कुछ निश्चित नही कर पा रहा हूं । कृपया वास्तविकता क्या है ? मैं भ्रम मे पड गया हू । आप ही मुझे ज्ञान दीजिए, तभी मुझे शांति मिलेगी ।' शुकदेव के इस निवेदन पर महाराज जनक

उदरस्थ वायु को बाहर निकालता रहे। इस प्रकार वायु का त्याग करते हुए शक्ति का उदय होता है और इसके प्रभाव स्वरूप एक अपूर्व बोध का अनुभव होता है। (36-40)

इस अभ्यास को करने से स्वाभाविक है कि पसीना निकलेगा। योगी को चाहिए कि वह इस पसीने से अपने अंगों में मालिश कर ले। योगी के भोजन में कटु, अम्ल एव लवण का अश नही होना चाहिए अर्थात उसे कड़वे, खट्टे और लवणीय (नमकीन) भोजन का परित्याग कर देना चाहिए तथा दूध तथा दूध मे बने भोजन का ही प्रयोग करना चाहिए। योगी में इन विशेषताओ का होना नितांत आवश्यक है—उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, अल्प आहार करनेवाला होना चाहिए तथा योग का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इस प्रकार का योगी लगभग एक वर्ष से पूर्व ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमे कोई संदेह नही है। योगी का भोजन सुस्निग्ध एव मधुरता के गुणो से युक्त हो, उसे भर पेट भोजन नही करना चाहिए, केवल तीन चौथाई पेट को ही भोजन एवं जल से भरना चाहिए, शेष एक चौथाई को वायु के लिए रिक्त छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार कल्याणस्वरूप परमेश्वर का स्मरण करते हुए ही योगी भोजन करे। इस प्रकार भोजन करनेवाला योगी मिताहारी (कम भोजन करनेवाला) कहा जाता है। कद के ऊपर (पूर्व वर्णित) आठ प्रकार की कुडल की तरह आकृतिवाली कुंडली शक्ति है। यह मूर्खो के लिए बधन स्वरूप है, किंतु योगी इसे जान लेता है तथा योगाभ्यास से मुक्ति प्राप्त करता है। अत यह योगियो को मोक्ष देनेवाली होती है। जो महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डयाण, जलंधर एवं मूलबंध, इन सबको सही रूप मे जानता है, वह योगी मुक्ति का पात्र होता है। (41-45)

'एड़ी से दृढ़ता के साथ योनिस्थान को दबा लें, फिर इसे दृढता के साथ ही सकुचित करें और अपान वायु को ऊपर की ओर आकर्षित करें। यही मूलबंध कहा जाता है। इस मूलबध की प्रक्रिया के सतत अभ्यास से प्राण एवं अपान मे एकता स्थापित होती है और मूत्र-पुरीष की मात्रा घट जाती है। इसके साथ ही यह अभ्यास बुढापे को भी दूर करता है। इस अभ्यास से वृद्ध व्यक्ति भी युवा हो जाता है। जैसे महाखग गरुड अपनी विश्राति (थकान) दूर करने के लिए उड्डियाण करता है, उसी प्रकार का उड्डियाण बध का अभ्यास भृत्य हाथी को भगाने के लिए सिह के समान है। उदर से नाभि के अधो भाग को तानना ही पश्चिमोत्तान कहलाता है। उड्डियाण भी उदर मे ही किया जाता है। इसके ज्ञाता इसे इसी स्थान मे करते हैं। जो योगी नीचे की ओर गमन की प्रवृत्तिवाले आकाश तत्त्व तथा जल तत्त्व को इनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल अपने सिर में इनको बाध देता है, तो उसकी इस प्रक्रिया को जालधर बंध के नाम से जाना जाता है। इसके अभ्यास से समस्त कष्टो-दु खो का नाश होता है। (46-50)

इस दु ख नाशक जालधर बध को करने में कंठ के सकुचित होने से अमृत अग्नि मे नही पडता तथा यह संकोच वायु को भी स्थिर करता है। जिह्वा को मोडकर कपाल कुहर मे प्रविष्ट करके दृष्टि को भौंहों के बीच में स्थिर करने से खेचरी मुद्रा बनता है। खेचरी मुद्रा की साधना से रोग, मृत्यु, भूख, प्यास तथा मूर्छा दूर हो जाती है। इस मुद्रा के ज्ञान से रोगों से मुक्ति के साथ ही व्यक्ति कर्मों मे लिप्त भी नही होता। इस मुद्रा के प्रभाव से चित्त तथा जिह्वा दोनों ही आकाश मे (खे) विचरण करने लगते हैं। इसलिए इस खेचरी, अर्थात् आकाश में चलनेवाली कहा जाता है। पावों से मस्तक तक

कहने लगे, 'मुनिवर शुकदेव । सुनिए। मैने इसी विषय मे आपको जो कुछ भी बताया है, अव मैं उसी को विस्तार से समझाता हूं। यह ज्ञान विश्व के सभी ज्ञानो का रहस्य है। सभी विद्याओं का सार है। इस ज्ञान को इसके सही रूप में जान जाने पर व्यक्ति को विश्व के प्रपच से मुक्ति मिल जाती है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। 'यह समस्त चराचर (चलनेवाले और स्थिर रहनेवालो से युक्त) जगत एक भ्रम है', इस ज्ञान के हो जाने पर इस सब दिखाई देनेवाले जगत से भ्रम का नाश होने पर मन शुद्ध हो जाता है। इस ज्ञान के पूर्ण होने पर निर्वाण के (मोक्ष के) समान शाति प्राप्त होती है। वही त्याग वास्तव मे सबसे बड़ा त्याग है, जिसमें सभी इच्छाए शात हो जाती है। इस सर्वोच्च अवस्था को ही ज्ञानियों द्वारा मोक्ष कहा जाता है। जो लोग केवल इच्छाओ के साथ अपना जीवन जीते है, अर्थात् शुद्ध ज्ञान से उसी के लिए जीते है, उन्ही का जीवन सच्चे अर्थो मे सार्थक है। जो जानने योग्य वस्तु है, वे उसे जान जाते है, वे ही जीवन्मुक्त कहे जाते है । (31-40)

पदार्थ भावना मे दृढ़ता (विश्व के समस्त पदार्थों को वास्तविक मानना) ही बधन का कारण है और इन सबके प्रति इच्छाओ का समाप्त हो जाना ही मोक्ष है। जो बिना तपस्या किए ही, वास्तविकता को जानकर स्वाभाविक रूप से ससार के समस्त भोगों से विरक्त हो जाता है, समय-समय पर मिलनेवाले सुखो से या दु खों से प्रभावहीन रहता है, जो सुखो से सुखी या दु खो से दु खी नही होता, वही जीवन्मुक्त है। ऐसा व्यक्ति काम, क्रोध, हर्ष, उद्वेग आदि विकारों से पूर्णतया शून्य होता है। अहंकार को तो वह जड़ से ही त्याग देता है। जिसके जीवन का लक्ष्य ही त्याग हो जाता है, जो सदा किसी भी पदार्थ की इच्छा ही नही करता, किसी की भी कामना या अपेक्षा नही करनेवाला अतर्मुखी, सुषुप्ति के समान शून्य अवस्था मे रहनेवाला, पूर्णतया शुद्ध, आत्मा मे ही लीन रहनेवाला, अत्यंत शांत, इच्छाओ से उदासीन, किसी भी कार्य के अच्छे या बुरे फल की परवाह न करनेवाला, राग-द्वेष तथा धर्म-अधर्म से दूर रहनेवाला, मान-अपमान से शून्य और उद्वेग से शून्य होकर कार्य करते रहनेवाला जीवन्मुक्त है। (41-50)

जो मोहरहित बनकर साक्षी के समान तटस्थ रहता है, फल की इच्छा नही करता, धर्म-अधर्म के साथ ही समस्त चितन का भी परित्याग कर देता है, दिखाई देने वाले विश्व-प्रपच से उदासीन होता है, जो कडवा, खट्टा, नमकीन इत्यादि सभी स्वादो को त्यागकर भोजन करता है, जो बुढापा, मृत्यु, विपत्ति, निर्धनता, ऐश्वर्य आदि मे समान है, जो आनंद, शोक, हर्ष, आदि में एक-सा अनुभव करता है, जो उत्पत्ति, स्थिति एव प्रलय को समान मानता है, जिसकी दृष्टि में उन्नति-अवनति समान है, जो केवल प्राप्त भोगो का उपभोग करता हुआ ईर्ष्या आदि से मुक्त रहता है, जो सकल होते भी कलारहित रहता है, जो चित्त के होने पर भी विश्व के किसी भी विषय का चितन नही करता, जो धनों की इच्छा नही करता तथा जो आत्मा में भी पूर्णता के दर्शन करता है, वही जीवन्मुक्त है। (51-62)

जीवन्मुक्त अवस्था को मनुष्य शरीर के नष्ट होने पर त्यागकर विदेहमुक्त हो जाता है। यह स्थिति निस्पद पवन (रुकी हुई हवा) के समान है। इसमें आत्मा उन्नति-अवनति से दूर रहता है, उसका लय भी नही होता, यह स्थिति 'सत' (है), 'असत' (नही है), 'मै' और 'वह' से भिन्न है। यह तेज एवं अधकार से रहित अत्यत गभीर स्थिति है। इसमें केवल एक अनिर्वचनीय एव अव्यक्त (जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता) 'सत' शेष रहता है। यह आकाररहित, भूत आदि से रहित

सभी अगो मे बिदु स्थित रहता है। खेचरी मुद्रा से जो व्यक्ति जिह्वा के ऊपरी विवर को (कपाल कुहर को) बंद कर लेता है,उसका बिदु अर्थात् वीर्य कभी क्षय नही होता। यहां तक कि रमणी का आलिग्न भी उसे प्रभावित नही कर सकता। जब तक बिदु शरीर मे रहता है,तव तक मृत्यु भय भी नही रहता। बिदु तभी तक स्थिर रहता है,जब तक खेचरी मुद्रा रहती है। बिदु यदि शरीर के अग्नि तत्त्व मे भी चला जाए,तो योनि मुद्रा की शक्ति से उसकी गति ऊपर को की जा सकती है। बिदु सफेद तथा लाल,दो प्रकार का होता है। सफेद रंग के बिदु को शुक्ल तथा लाल रग वाले को महारज कहा जाता है। (51-60)

रज सिदूर के समान चमकीले सूर्य के स्थान में रहता है तथा शुक्ल चद्रमा के स्थान मे रहता है। इन दोनो का मिलन दुर्लभ होता है। बिंदु ब्रह्मा और रज शक्ति है,या बिदु चद्रमा और रज सूर्य है। इन दोनो के मिलन पर परम पद की प्राप्ति होती है। वायु की शक्ति के द्वारा जव रज बिदु से मिल जाता है और दोनों एक हो जाते है; तो शरीर दिव्य वन जाता है। शुक्ल चद्र से तथा तेज सूर्य से मिला हुआ है। जो व्यक्ति इस एकता को समझता है, वह योग का ज्ञाता होता है। जिससे नाडियों का शोधन होता है तथा सूर्य एव चंद्रमा को गति मिलती है और रस सूख जाते है, वह महामुद्रा कही जाती है। ठोडी को वक्षस्थल से लगाकर बाए पांव से योनि को देर तक दवाए। फैले हुए दाहिने पाव को दोनो हाथों से अच्छी तरह पकडें। फिर दोनो बगलों मे सास भरक धीरे से रेचक करे। इसे समस्त रोगों को नष्ट करनेवाली महामुद्रा कहते है। पहले चंद्र स्वर (बाए) से प्रारभ करें फिर दाहिने से। जब दोनों समान संख्या हो जाए,तो अभ्यास वद कर दे। इस मुद्रा के प्रभाव से पथ्य-अपथ्य सब पच जाते है और नीरस भोजन भी सरस लगता है। अधिक खाया हुआ या विप के समान प्रभावकारी चीजे भी अमृत समान बन जाती है। क्षय रोग,बवासीर,कुंठ,अजीर्ण आदि रोग सदा के लिए नष्ट हो जाते है। इस महामुद्रा के विषय मे कहा जाता है कि यह महान सिद्धियो को देनेवाली है,अत इसे गुप्त रखना चाहिए और जिस किसी को बताना नही चाहिए। (61-70)

पद्मास लगाकर सिर सहित सारे शरीर को सीधा रखकर दृष्टि को नाक के आगे स्थिर रखें और फिर अव्यय 'ओम' का जप करे। वह नित्य,शुद्ध,बुद्ध,निर्विकल्पक,अकथनीय,नागरहित,अनादि (जिसके प्रारंभ होने के विषय में कुछ भी ज्ञात नही है),तुरीय,भूत-भविष्य,परिवर्तनमान,अविछिन्न तथा परम ब्रह्म है। उसी से स्वय प्रकाशित होनेवाली पराशक्ति उत्पन्न हुई है। उसी आत्मा में आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु,वायु से अग्नि,अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी पैदा हुई। फिर इन पाच भूतों से इनके देवता सदाशिव,ईश्वर,ब्रह्मा,विष्णु तथा रुद्र की उत्पत्ति हुई,इनमे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र क्रमश सृष्टि को बनानेवाले,पालनेवाले तथा नष्ट करने वाले है। ब्रह्मा रजोगुण वाले, विष्णु सत्त्वगुणी तथा रुद्र तमोगुणवाले है। देवताओ मे ब्रह्मा सबसे पहले पैदा हुए। ब्रह्मा सृष्टि बनाने के लिए,विष्णु उसे स्थित रखने के लिए रुद्र नाश के लिए तथा चद्रमा सबसे पहले भोग के लिए पैदा हुए। इनमे ब्रह्मा से लोक,देवता,पशु-पक्षी,मनुष्य तथा स्थावर (जो चल नही सकते) उत्पन्न हुए। इनमे मनुष्य आदि का शरीर पाच भूतो का समूह है। ज्ञानेद्रिया,कर्मेद्रिया,प्राण-अपान आदि पाच वायु,मन,बुद्धि,चित्त एव अहकार इन सबका स्थूल रूप है। अत शरीर को भी स्थूल कहा जाता है। पाच कर्म की एव पाच ज्ञान की इद्रिया,शब्द आदि विषय,पाच प्राण,मन,बुद्धि तथा

तथा अनत मे स्थिर रहता है, किंतु यह शून्य भी नही है। न दिखाई देने पर भी यह अदृश्य नही होता। यह 'सत' एव 'असत' से अलग भावना है, चिन्मात्र होते हुए भी चेतन्यरहित, आदि-मध्य-अंतहीन, अनामय (दु खरहित), कल्याणमय, जरा (बुढापा) रहित अवस्था है। इसमे द्रष्टा, दृश्य एव दर्शन कुछ भी शेष नहीं रहता। अत हे शुकदेव । तुम इस विषय के स्वय जाननेवाले हो और अपने पिता से भी इसे जान चुके हो कि इच्छा एवं त्याग ही क्रमश वधन एव मोक्ष के कारण है। तुम भोगों से विरक्त हो चुके हो, प्राप्त करने योग्य सव कुछ पा चुके हो, भ्रम को त्यागकर तुम अपने तपोमय स्वरूप में स्थित हो चुके हो तथा वाहरी, भीतरी तथा इसके भी भीतरी ज्ञान को प्राप्त करके तुम कैवल्य की स्थिति प्राप्त कर चुके हो।' यह सुनकर शुकदेव शोक, भय आदि से रहित होकर परम तत्त्व में स्थिर हो गए। तव उन्होंने मेरु पर्वत मे जाकर हजारों वर्षों तक निर्विकल्प समाधि ली और वह समुद्र में जल की वूदों के समान परमात्मा में लीन हो गए। (63-76)

तृतीय अध्याय

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात निदाघ नाम के श्रेष्ठ मुनि अपने पिता से आज्ञा लेकर वचपन में ही तीर्थयात्रा के लिए निकल पडे। उन्होंने साढे तीन करोड तीर्थों में स्नान किया। तव वह घर पहुचे और अपने महान यशस्वी पिता ऋभु से वोले, 'साढे तीन करोड़ तीर्थों मे स्नान करने के वाद मेरे मन में यह विचार आया है कि यह लोक मृत्यु के लिए ही उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न होने के लिए ही मरता है। अत यह सव चराचर अस्थिर है। ये सपूर्ण ऐश्वर्य दु खद है। सभी भाव लोहे की कील के समान पृथक् हैं, किंतु मनरूपी चुवक इन्हें खीचकर इकट्ठा करता है। मे रेगिस्तान में चलनेवाले यात्री के समान इस विश्व से विरक्त हो चुका हू। ये सव दु ख देनेवाले है। इनसे मैं कैसे मुक्त होऊ ? मुझे यही विचार वार-वार दु खी कर रहा है। जिन सपत्तियो के लिए लोग अनेको विचार करते है, ये सव मुझे कोई आनद नही देते। स्त्री, पुत्र आदि भयकर विपत्तियो के घर है। अत्यत उदार मानी जानेवाली लक्ष्मी जी केवल मोह उत्पन्न करनेवाली है। इससे व्यक्ति सुखी नही हो सकता। पत्ते के सिरे से टपकने वाली जल की वूदों के समान ही मनुष्य की आयु भी पल-भर मे नष्ट हो जानेवाली है। अत· मै उन्मत्त के समान ही इस शरीर का त्याग करूगा। जिसके मन को विषयों रूपी सर्प ने डस लिया हो तथा जिसे ज्ञान न हुआ हो, वह सदा दु.खी ही रहता है। (1-10)

'वायु को लपेटना, आकाश को टुकडे कर देना अथवा लहरो को गूथना भले ही सभव हो जाए, किंतु मुझे अब जीवन के प्रति कोई आस्था नही रह गई है। जो सब कुछ पा ले, फिर दु खी न होना पडे और जिसे परम शक्ति प्राप्त हो गई हो, उसी का जीवन सार्थक है। यो तो वृक्ष, पशु, पक्षी आदि सभी जीवित रहते है, किंतु उसी का जीवन धन्य है, जो आत्मा के विषय मे विचरते हुए लीन हो जाता है। जो इस पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाते है, उन्ही का जीवन धन्य है। अन्य व्यर्थ मे ही गधे के समान बुढापे का बोझ ढोते रहते है, जबकि ज्ञानी लोग राग-द्वेष से मुक्त होकर ज्ञान का बोझ ढोते है। जिन्हे परम शाति नही प्राप्त हुई है, उनके लिए मन भी बोझ है और जिन्हे आत्मज्ञान नही है, उनके लिए उनका शरीर भी बोझ ही होता है। अहकार सभी दु खो का कारण है। इसी के

चित्त लिग कहे जाते है। कारण तीन गुणोंवाला है। इनमें प्रत्येक के तीन शरीर होते है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एव तुरीय, तीन अवस्थाए होती है। विश्व, तेजस, प्राज्ञ एव तुरीय ये चार पुरुष इन अवस्थाओ के स्वामी होते है, जो क्रमश इन अवस्थाओं के भोग करने वाले होते है। 'पर' सबका साक्षी होता है। (71-72)

यह पर (प्रणव) सभी जीवो के भोग के समय अलग से रहता है। सभी अवस्थाओ मे यह नीचे की ओर मुख करके आनद के साथ रहता है। 'अ', 'उ', 'म' ये तीन वर्ण, तीन वेद, तीन लोक, तीन गुण तथा तीन अक्षर, इस सबको प्रणव प्रकाशमान करता है। सभी प्राणियो मे जागृत अवस्था मे अकार (अ) नेत्र मे रहता है। उकार (उ) स्वप्नावस्था में कठ मे रहता है तथा मकार (म) सुषुप्ति अवस्था में हृदय में रहता है। अकार विराट विश्व तथा स्थूल है। उकार हिरंण्यगर्भ, तेजस तथा सूक्ष्म है। मकार कारण अव्यक्त तथा प्राज्ञ है। अकार राजस, लाल रग का ब्रह्मा और चेतन कहा जाता है। उकार को सात्त्विक, सफेद रग का तथा विष्णु कहा जाता है। मकार को तमोगुणवाला, काले रग का तथा रुद्र कहा जाता है। प्रणव से ही ब्रह्मा, प्रणव से ही विष्णु तथा प्रणव से ही रुद्र का जन्म होता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र का लय क्रमश अकार, उकार एव मकार मे होता है। प्रणव ही परम ब्रह्म है तथा प्रणव ही प्रकाशित होता है। ज्ञानियो मे प्रणव ऊर्ध्वमुख (ऊपर को मुखवाला) तथा अज्ञानियो मे अधोमुख (नीचे को मुखवाला) होता है। जो इस तथ्य को जान जाता है, वह वास्तव में वेदो को जान जाता है। प्रणव ज्ञानियों मे अनाहत रूप मे ऊपर को मुख करके रहता है। प्रणव की ध्वनि लगातार गिरती हुई तेल की धार तथा जोर से घंटा बजने की आवाज जैसी होती है। इसका आगेवाला भाग ब्रह्मा कहा जाता है। (73-80)

यह ब्रह्मा कहे जानेवाले का आगे का भाग ज्योतियुक्त होता है। बुद्धि इसके विषय में पूर्ण रूप से कुछ नही कह सकती। महात्मा लोग ही इसे अपनी बुद्धि से देखते है। इसको जाननेवाला वेदों का वेत्ता (जाननेवाला) हो जाता है। जागृत अवस्था मे दोनों नेत्रो के मध्य में 'हस' प्रकाशित होता है। इस हस का (ह + स में से) 'स' वस्तुतः खेचरी मुद्रा का स्वरूप है। साथ ही इसे 'त्वम' (तुम जीव) रूप भी समझना चाहिए। 'हस' का 'ह' परमेश्वर का रूप है, जो उसके सदा विद्यमान रहने को प्रकट करता है। 'स' का ध्यान करनेवाला जीव अपने आप 'ह' भी बन जाता है (जीव आत्मा को जान लेने पर परमात्मा से मिल जाता है)। जीव को सासारिकता में बधन इद्रियो के कारण ही होता है, किंतु आत्मा को कोई बंधन नही होता। ममता (अपनापन) से ही आत्मा जीव बना रहता है, किंतु इस ममता के समाप्त होने पर उसे मोक्ष मिल जाता है। 'ओम' की मात्राओं में 'भू', 'भुव' एव 'स्व' लोक तथा चद्रमा, सूर्य और अग्नि देवता रहते हैं। यह 'ओम' ही परम ज्योति (परमात्मा) है। इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति, ब्राह्मी, रौद्री तथा वैष्णवी मात्राए जहा रहती है, वही परम ज्योति 'ओम' है। अत मन एवं वाणी से सदा 'ओम' का जप करना चाहिए और शरीर मे सदा इसका अभ्यास करना चाहिए। जो पवित्र अवस्था में और अपवित्र अवस्था में सदा तत्पर होकर इसका जप करता है, वह ससार के पापों में वैसे ही लिप्त नहीं होता जैसे कमल का पता पानी मे रहने पर भी उससे भीगता नही है। वायु के चलने पर बिंदु भी चलता है तथा वायु के स्थिर होने पर यह भी स्थिर हो जाता है, अत योगी को स्थाणु (खभ के) समान स्थिर होकर (समाधि लगाकर) वायु

विपत्तिया आती है, मन मे बुरे विकार आते है तथा अनेकों इच्छाए उत्पन्न होती है। यह मनुष्य का सबसे बडा शत्रु है। इसके वश मे होकर मैने जिन विषयों का उपभोग किया, वे सब मिथ्या थे। अहंकार का न होना ही जीवन को सार्थकता देता है। इसी के कारण हमारा यह मन एक आवारा कुत्ते के समान दूर-दूर तक घूमता है। मैं भी इच्छा रूपी इस कुतिया के पीछे कुत्ते के समान जड होकर घूम रहा था। अब मै उसके प्रभाव से छूट गया हू। चित्त को वश मे करना अत्यत महत्त्व का कार्य है। यह कार्य सुमेरु पर्वत को उसकी जड से हिलाने से या समुद्र को पी जाने अथवा अग्नि को खाने से भी कठिन है। इस चित्त के नष्ट होने पर समस्त जगत प्रपंच का भी अंत हो जाता है, अत हर संभव प्रयत्न से इसे वश में करना चाहिए, तभी वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। (11-21)

'हे मुनियो मे श्रेष्ठ । मैने जो-जो भी श्रेष्ठ गुण प्राप्त किए हैं, उन्हे तृष्णा रूपी यह चुहिया तार के समान काट डालना चाहती है। यह तृष्णा चचल बंदरिया के समान है, जो अत्यत कठिन स्थानो पर भी पाव रखने को तैयार है, तृप्त हो जाने पर भी और अधिक-से-अधिक फलो को प्राप्त करना चाहती है तथा यह एक ही स्थान पर नही रह सकती। यह एक क्षण में आकाश मे घूमने लगती है, तो दूसरे ही क्षण पाताल पहुंच जाती है और उसी समय चारों दिशाओ में भी चक्कर लगा आती है। यह तृष्णा विश्व के सभी दु खो से बड़ी है। यह बडे-बडे भवनो मे रहनेवाले को भी सुख से नही रहने देती है। यह एक महामारी के समान है। चिताओं को छोड़ देने पर ही इससे मुक्त हुआ जा सकता है। यदि पल भर के लिए भी चिंता को त्याग दिया जाए, तो अत्यत सुख मिलता है और यदि थोड़ी-सी भी चिता हो, तो मन को दु:खी कर देती है। शरीर के समान मामूली, गुणरहित अन्य कोई भी चीज नही है। यह शोक करने योग्य है। इसी में गृहस्थ के समान यह अहकार रहता है। यह शरीर चाहे सदा ही जीवित रहे या अभी समाप्त हो जाए, मुझे इसकी तनिक भी चिता नही है। यह शरीर एक घर के समान है, जिसमे सभी इंद्रिया पशु के समान पक्ति लगाकरर खडी रहती है, जिसके आगन में यह चित्त चचल बंदरिया के समान है। मैं इस घर से तग आ गया हू। जिह्वा भी बंदरिया के समान है, जिससे मुख इतना डरा हुआ है कि उसकी हड्डियां (दात) दिखाई देने लगी है। (22-30)

'यह शरीर रूपी घर बाहर एव भीतर से मास एवं रक्त से बना हुआ है। इसके लिए हमें शोक करना चाहिए। आखिर इसमे क्या सुंदरता है ? यदि कोई इस बात को मान ले कि बिजली मे या गधर्वों के नगरो मे चंचलता नही होती है, तो तब भले ही वह इस शरीर को स्थिर (नाश न होनेवाला) मान ले और इस पर विश्वास करे। इस शरीर को भय-ही-भय है। बचपन में गुरु, माता तथा पिता का भय होता है। युवावस्था मे अनेक विकार आते हैं, अत. उनका भय होता है तथा वृद्धावस्था मे तो भय-ही-भय है। मनुष्य का शरीर कांपने लगता है, वह ठीक से चल-फिर भी नही सकता, अत स्त्रियां, पुत्र, वधु, सेवक आदि सभी उन पर हंसते है। शरीर की सामर्थ्य कम हो जाने के कारण इस अवस्था मे इच्छाए और भी अधिक वढ जाती हैं। यह अवस्था विपत्तियों की मित्र है। सासारिक प्राणी जिस सुख को चाहता है, वह सुख वस्तुत है ही कहा । समय तो हर पल कटता जाता है। यह समय छोटे से छोट तिनकों, धूल के कणों आदि से लेकर इंद्र या सुमेरु पर्वत तक को सरसों के दानों के समान कर देता है। यह सभी को समाप्त कर देता है, सभी को निगल जाता है, अत तीनों लोक

(सास) को रोकना चाहिए। वायु के शरीर में रहते हुए जीव इसे छोड नही सकता, क्योकि शरीर से इसके निकल जाने पर मृत्यु हो जाती है, अत. वायु को रोक देना चाहिए। (81-90)

वायु के शरीर मे स्थित रहने तक जीव छूट नही सकता। यदि दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच में स्थिर कर दिया जाए, तो मृत्यु का भय भी नही रहता। अकाल मृत्यु से बचने के लिए ब्रह्मा भी प्राणायाम की साधना करते है। अत· योगी और मुनि भी इस क्रिया से प्राणों को रोक ले। प्राणायाम करते समय हस छब्बीस अगुल बाहर आ जाता है। अत· बाए और दाहिने दोनो ही स्वरो से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। जब दूषित नाडियों का समूह प्राणायाम से शुद्ध हो जाता है, तो योगी अपने प्राणो की रक्षा करने मे समर्थ हो जाता है। योगी पद्मासन लगाकर बैठ जाए और चद्र स्वर (बाए) से पूरक करे। तब जितनी देरी तक सभव हो, कुंभक करे। बाद मे सूर्य स्वर से (दाहिने छिद्र से) रेचक करे। प्राणायाम करते समय अमृत के सागर के समान तथा गाय के दूध के समान सफेद चद्रमा के बिब की कल्पना करने से योगी को सुख मिलता है। इसी प्रकार प्राणायाम के समय लपलपाती ज्वालाओ वाले सूर्य मडल का हृदय में ध्यान करने से भी योगी सुखी होती है। पहले इडा से (चद्र या बाए स्वर से) पूरक और पिंगला से (सूर्य या दाहिने स्वर से) रेचक करे। इसके बाद पिगला से पूरक तथा इडा से रेचक करे। इस प्रकार सूर्य एवं चद्र दोनों बिदुओं के अभ्यास से दो मास के अंदर नाडिया शुद्ध हो जाती है। अधिक-से-अधिक समय तक कुभक करने से जठराग्नि (भूख) तेज होती है। साथ ही नाडियो के शुद्ध होने पर नाद भी सुनाई देने लगता है और रोगों का नाश हो जाता है। प्राण वायु जब तक शरीर में स्थित रहती है, तब तक अपान वायु को भी रोक दे तब एक श्वासवाली मात्रा हृदय के आकाश मे ऊपर और नीचे जाने लगती है। (91-100)

पूरक, कुभक और रेचक, ये तीनों प्रणव के ही रूप हैं। इस प्रकार प्रणव बारह मात्राओं के समय में ही करना चाहिए। यह बारह मात्राओवाला प्राणायाम सूर्य और चद्रमा है, योगी इन दोनो को समस्त दोषों को नष्ट करनेवाला समझे। फिर पूरक को बारह मात्राओ के समय, कुंभक को सोलह मात्राओ तक और रेचक को दस मात्राओं में करने से जो प्राणायाम होता है उसे ओकार प्राणायाम कहते है। बारह मात्राओवाला प्राणायाम प्रथम प्राणायाम है, चौबीस मात्राओवाला मध्यम प्राणायाम कहलाता है और छत्तीस मात्राओं के समय तक किया जानेवाला प्राणायाम उत्तम प्राणायाम कहा गया है। अधम (निम्न स्तरीय) प्राणायाम में पसीना आता है, मध्यम प्राणायाम मे शरीर कापने लगता है तथा उत्तम प्राणायाम मे आसन उठने लगता है। इस प्रकार वायु को रोकना चाहिए। योगी को पद्मासन पर बैठ जाना चाहिए। इसके बाद गुरु भगवान शिव को प्रणाम करना चाहिए। तब दृष्टि को नाक के अगले भाग में टिकाकर एकांत में प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। दृढ़ता के साथ शरीर के सभी नौ द्वारो (नाक, कान आदि छिद्रों) को रोककर वायु को बाधना चाहिए। फिर शक्ति के साथ अपान, अग्नि एवं कुडलिनी को ऊपर ले जाना चाहिए। आत्मा का ध्यान करते हुए इसे मस्तक मे रोकना चाहिए। इसे जितनी देरी तक रोका जाए, उतना ही अच्छा है। इस प्रकार का प्राणायाम पाप कर्मों को जलानेवाले ईंधन के समान कहा जाता है। साथ ही योगी लोग इसे ससार सागर से पार करनेवाले सेतु (पुल) के समान मानते है। आसन से रोग नष्ट होते है, प्राणायाम से पापो

इससे आतकित रहते है । यत्र के समान चचल स्नायु, अस्थि आदि से बने पुतली जैसे स्त्री का इस
देह में कौन-सी चीज सुदर है ? इस शरीर के त्वचा, रक्त, मास आदि अगों को पृथक्-पृथक् करके
देखो तव क्या ये सुदर लगते हैं ? यदि नही, तो फिर इनसे यह लगाव क्यों । (31-40)

'जो नारी सुमेरु पर्वत से गिरनेवाली गगा के समान कही जाती है; और जिसके स्तनों के ऊपर
सुदर मोतियों के हार सुशोभित रहते हैं, काल उसे भी कवलित कर जाता है । फिर कभी उसके इन
श्मशान में गिरे हुए स्तन के छोट से मास पिड को कुत्ते खाते हैं । सुदर केशसज्जावाली, आखों को
सुदर लगनेवाली ये नारिया छूने पर भी दु ख ही देनेवाली हैं । ये साक्षात भयकर अग्नि की ज्वाला
के समान हैं, जो पुरुष को तिनके के समान जला डालती हैं । ये नरक की आग की लकड़ियों के
समान सुदर दिखाई देती हे, जो दूर से सुदर दिखाई देने पर भी वस्तुत· नीरस होती हैं । कामदेव
शिकारी के समान है, जो मूर्ख पुरुषों रूपी पक्षियों को फसाने के लिए स्त्रियों को जाल बनाता है ।
स्त्री वासना की डोर में वधी हुई चोर के समान है, जो चित्त रूपी कीचड़ के भ्रम में फसे हुए पुरुष
रूपी मछलियों को मार डालती है । इस दोपमय सागर मे स्त्री रूपी रत्नों की शृखला है, जो पुरुषों
को नष्ट करने पर तुली है । स्त्री का होना भोगों का होना है । अत. स्त्री के न होने पर मनुष्य इस बुराई
से मुक्त हो जाता है । स्त्री को त्याग देना वस्तुत. सारे जगत के प्रपच को त्याग देने के समान है ।
अत. इसका त्याग ही सुखों को प्राप्त करना है । (41-48)

'समय आने पर दिशाए भी समाप्त हो जाती हैं, देश, तारे, पर्वत आदि नष्ट हो जाते हैं । समुद्र
सूख जाते है, ध्रुव, सिद्ध, दानव, ब्रह्मा, विष्णु आदि कोई नही रहते । ये सव नाश की ओर वैसे ही
दौडते हैं, जैसे वड़वानल जल की ओर दौड़ता है । क्षण में सपत्ति आती है और क्षण में विपत्ति भी ।
इसी प्रकार जन्म-मृत्यु होते है । सभी नश्वर हैं । कभी कायर भी वीरों को मार डालता है, कभी एक
ही अनेकों को समाप्त कर देता है । विपय विप से भी भयंकर हैं । विप तो एक ही जन्म को समाप्त
करता है, किंतु विषय अनेकों जन्मों को नष्ट कर देते है । मेरे चित्त के दोप समाप्त हो गए हे । अव म
इस मरीचिका में रहता हुआ भी भोगों से दूर हूं । हे पिता । मुझे ज्ञान दो, अन्यथा मैं मान, मत्सर आदि
से दूर होकर मौन लेकर भगवान का स्मरण करूगा । (49-57)

चतुर्थ अध्याय

'हे निदाघ । अव तुम्हारे लिए कुछ भी अज्ञात नही है । भगवान की कृपा से तुम स्वय सव कुछ
जान गए हो फिर भी बची हुई तुम्हारे चित्त की मलिनता को मैं दूर कर दूगा । मोक्ष के शम, विचार,
सतोष तथा सत्सग, ये चार द्वार है । इनमें एक को भी वश में कर लेने पर शेप स्वय ही अधीन हो
जाते हैं । पहले शास्त्र, सत्सग आदि से अपनी प्रज्ञा (वुद्धि) को वढाना चाहिए तभी मुक्ति होती है ।
फिर इन सबसे आत्मचितन का अभ्यास करना चाहिए—यदि तुमने इच्छाओं एव आशाओ को
त्याग दिया है, तुमने स्वत ही इसे प्राप्त कर लिया है । चित्त के प्रति तटस्थता ही कैवल्य तथा परम
शाति की अवस्था है, जो सभी पदार्थों के प्रति आत्मभाव (मेरा-परायापन) को त्यागकर गूगे-बहरे के
समान रहने पर ही प्राप्त होती है । शब्द-स्पर्श आदि से युक्त दृष्टि बिलकुल व्यर्थ है । यह समस्त
दिखाई देनेवाला प्रपंच वास्तव में प्रणव का ही रूप है । यह दिखाई देनेवाला विश्व उसी 'चित्त'
(चैतन्य) का अश ही है । अत इसे उससे भिन्न न समझो । (1-10)

का विनाश होता है तथा योगी को मन की बुराइयो से मुक्ति केवल प्रत्याहार से मिलती है। धारणा से योगी का मन विचलित नही होता, वह धैर्यवान बनता है और समाधि से अदभुत चैतन्य ब्रह्म को प्राप्त करता है फिर इससे योगी के शुभ-अशुभ कर्म नष्ट हो जाते है और वह मोक्ष को प्राप्त करता है। (101-110)

बारह प्राणायामो को प्रत्याहार कहा जाता है और बारह प्रत्याहारो से एक शुभ धारणा होती है। योग के ज्ञाता बारह धारणाओ को ध्यान तथा बारह ध्यानो को समाधि कहते है। समाधि मे परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है और इससे क्रिया-कर्म तथा पुनर्जन्म छूट जाता है। आसन मे बैठकर दोनो पावो को पायु मे से लगाए कान, आख और नाक अगुलियो से बद कर ले। मुह से वायु को खीचकर पेट मे भरे। इसके साथ अपान को भी पहले पेट मे, फिर मस्तष्क मे रोक दे, मन को उससे जोडे। इससे योगी सबको समान समझने लगता है तथा उसे विशेष तत्त्व की प्राप्ति होती है। वायु के आकाश मे पहुचने पर घंटे आदि वाद्यो की ध्वनि सुनाई देती है। इसे नाद का सिद्ध होना कहा जाता है। प्राणायाम से सभी रोग नष्ट हो जाते है। हिचकी, खासी, दमा, आख, कान का दर्द आदि रोग शरीर मे वायु के असतुलन से ही होते है। सिह, व्याघ्र, हाथी आदि पशुओ के समान ही वायु भी धीरे-धीरे वश में होता है। उल्टे-सीधे प्रकार से प्राणायाम साधक को नष्ट कर देता है। पूरक, कुभक एव रेचक सही ढग से होने चाहिए तभी सिद्धि मिलती है। नेत्रो आदि इद्रियो को उनके विषयो से लौटाना प्रत्याहार कहा जाता है। जैसे तीसरे प्रहर मे सूर्य का तेज कम हो जाता है, उसी प्रकार योगी को भी तीसरे अग मे स्थित होकर मन के विकारो को (बुराइयो को) दूर करना चाहिए। यही ज्ञान का सार है। (111-120)

□

'ससार के समस्त कार्यों को करते हुए भी सदा चित्त को प्रबुद्ध रखते हुए आत्मा को एक ही मानो । इस ज्ञान को पाकर समुद्र के समान रहो । यह ज्ञान अज्ञान को तिनको के समान जला डालता है । इसी को समाधि कहा गया है । केवल मौन रहना ही समाधि नही है । यो ही पडा रहना भी,जैसे रत्न प्रत्येक देखनेवाले को आकर्षित करता है,वैसे ही वह परम सत्ता भी समस्त विश्व को आकर्षित करती है । इसी आत्मा मे कर्तव्य (कार्य करने का स्वभाव) एव अकर्तृत्व दोनों है । कामनाओं से हीन होने के कारण यह अकर्ता है,किंतु एकमात्र कारण होने से यह कर्ता कहलाता है । अत जिसमे यह कर्तृत्व एव अकर्तृत्व दोनो है,उसी ब्रह्म को ग्रहण करो । मै सदा अकर्ता हू । ऐसी भावना हो जाने पर समता दृष्टि ही शेष रहती है,जो परम अमृत कही जाती है । इस सत्त्व मे विद्यमान रहनेवाले ही सच्चे गुणवान व्यक्ति है । वे सदा चद्रमा के समान बढ़ते जाते है । वे सुनहरे कमल के समान विपत्ति रूपी रात्रि मे भी धैर्य नही खोते,जो उन्हे सहजता से प्राप्त हो जाता है,उसके अतिरिक्त वे अन्य वस्तु की इच्छा नही करते तथा सदा शास्त्रो के अनुकूल आचरण करते है । उनमे मैत्री आदि गुण स्वाभाविक रूप मे रहते है । वे हर स्थिति मे समान रहनेवाले साधु स्वभाव के व्यक्ति होते हैं । ऐसे महान आशयवाले समुद्र के समान मर्यादावाले तथा सूर्य के समान एक निश्चित मार्ग पर चलनेवाले होते है । (11-20)

'मै कौन हू ?' 'विश्व कैसे उत्पन्न हुआ ?' इस पर विचार करते हुए साधना करे । कोई भी व्यर्थ कार्य न करे । अस्थि,मास आदि से बने इस शरीर की उपेक्षा करे । मोती की माला मे पिरोए गए तागे के समान सभी जीवो मे व्याप्त परमात्मा को देखे । अनुपयोगी वस्तु को त्याग दे,उपयोगी को ग्रहण करे । गुरु,शास्त्र आदि के ज्ञान तथा अपने अनुभवो मे ब्रह्म हू,इसे जानकर शोक को त्याग दे । तब साधक कठोर तलवारो के समान वारो को भी सह लेता है । अग्नि का प्रभाव भी उसके लिए शीतल जल मे स्नान के समान हो जाता है । अगारो पर लेटना ही उसे चदन के लेप जैसा लगता है । शरीर मे घातक बाणो की वर्षा भी शीतल जल की वर्षा जैसी लगती है । सिर का कटना भी आरामदायक नीद जैसा लगता है । गूंगा हो जाना मौन के समान तथा बहरापन उन्नति के समान सुखद प्रतीत होता है । यह अवस्था आसानी से नही प्राप्त होती,यह केवल वैराग्य तथा आत्मज्ञान से ही प्राप्त होती हैं । गुरु आदि के उपदेशो तथा स्वय के अनुभव से प्राप्त मानसिक पवित्रता से हुए आत्म साक्षात्कार का निरतर अभ्यास करते रहे । तब दिशा भ्रम के अज्ञान का नाश होने पर समस्त विश्व प्रपच समाप्त हो जाता है । धन,मित्र,पिता,पुत्र आदि व्यक्ति का उपकार नही कर सकते । देह के क्लेशो का नाश या तीर्थो मे जाने से भी कोई लाभ नही होता,केवल चिन्मात्र मे लय से ही परमपद की प्राप्ति होती है । संसार के सभी दु ख,तृष्णा आदि शात मनवाले मनुष्य मे सूर्य के समाने अधकार के समान नष्ट हो जाती है । शमवाले व्यक्ति का सभी मधुर या कठोर स्वभाववाले प्राणी विश्वास करते है । (21-30)

रसायनों के पीने से या अपार लक्ष्मी से वह सुख प्राप्त नही होता,जो शम (शाति) से प्राप्त होता है । जो सुनकर या भोगकर भी शुभ या अशुभ से हर्षित या दु खी नही होता वही शात कहा जाता है । जिसका मन चद्र के समान निर्मल होता है,जो उत्सव,युद्ध,मृत्यु आदि मे किसी प्रकार प्रसन्न या अधीर नही होता,वही व्यक्ति शात कहा जाता है । उसी व्यक्ति का यज्ञ करनेवालो,तपस्वियों,

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायतु ममागानि वाक्प्राण चक्षुप. श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषद माह ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरण मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि सतु ।

ॐ शाति शाति शाति ।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इद्रिया तथा बल पुष्ट हो । यह उपनिषद ब्रह्म-स्वरूप जानने योग्य हैं । मैं ब्रह्म का निराकरण न करू, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे, हमारा परस्पर अनिराकरण हो । उपनिषदों का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमें व्याप्त हो । दैहिक (शारीरिक), दैविक और भौतिक (प्राणियो द्वारा होनेवाला) तीनों प्रकार के ताप-कष्ट शात हों ।

प्रथम अध्याय

अब ब्रह्म-उपनिषद की व्याख्या की जा रही है । सृष्टि से पहले केवल नारायण ही थे । न ब्रह्म थे, न ईशान, न अग्नि, न जल, न सोम, न आकाश, न पृथ्वी, न नक्षत्र, न सूर्य और न चंद्रमा ही । उस नारायण को अकेलापन अच्छा नही लगा । तब उन्होंने मन-ही-मन में ध्यान किया । यह ध्यान यज्ञस्तोम कहा गया । इस ध्यान से चौदह पुरुप एव एक कन्या की उत्पत्ति हुई । ये चौदह पुरुप वस्तुत दस इद्रिया, मन, तेज, अहकार एव प्राण थे और कन्या बुद्धि थी । फिर पाच तन्मात्राए और पाच महाभूत उत्पन्न हुए । फिर एक पुरुप बना, जो पच्चीसवां था । इस पुरुप में विराट नारायण ने प्रवेश किया । सवत्सरो की उत्पत्ति कालरूपी सवत्सर से हुई, वे इस पुरुप से उत्पन्न नहीं हुए । (1-6)

उस नारायण ने फिर मन से ध्यान किया और उसके ललाट से एक तीन आखोंवाला व्यक्ति उत्पन्न हुआ, जो अपने हाथ मे शूल लिया हुआ था । साथ ही उस व्यक्ति मे श्री, यश, सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, वैराग्य, मन, ऐश्वर्य, प्रणव सहित व्याहृतिया, ऋक्, यजुप, साम एव अथर्ववेद तथा सभी छद भी थे । इसलिए उस पुरुष को महादेव और ईशान नाम दिए गए । नारायण ने पुन: मन से ध्यान किया । उनके ललाट से पसीने की बूदें गिर पडी । यह पसीना जल के रूप मे फैल पडा । इससे सुनहरे तेजवाला एक अडा पैदा हुआ । इससे चार मुखोंवाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए । ब्रह्मा ने पूर्व दिशा को मुख करके 'भू' व्याहृतिया, गायत्री, छंद, ऋग्वेद तथा अग्नि देवता का ध्यान किया । पश्चिम को मुख करके 'भुव' व्याहृति, त्रिष्टुप छद, यजुर्वेद तथा वायु देवता का ध्यान किया । उत्तर को मुख करके 'स्व' व्याहृति, जगतीछंद, सामवेद और सूर्य देवता का तथा दक्षिण को मुह करके 'मह' व्याहृति, अनुष्टुप छद, अथर्ववेद तथा सोम देवता का ध्यान किया । (7-9)

फिर उन्होने हजारो सिरो और आखोंवाले समस्त विश्व के ईश्वर भगवान नारायण हरि

राजाओ, विद्वानो आदि मे भी सम्मान होता है। सतोप के अमृत को पीकर शात और तृप्त बने महात्मा आत्मा मे रमण करते है। उन्हें ही परमपद मिलता है। जो प्राप्त वस्तु के प्रति भी सतुष्ट रहे तथा मिली वस्तु की चिता न करे, सदा समान रहे, वही व्यक्ति सतुष्ट कहा जाता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने आगन में ही संतुष्ट रहती है, जो मिल जाए उसी मे सतुष्ट रहती है, इसी प्रकार की अनत आनददायक अवस्था जीवन्मुक्त अवस्था कही जाती है। जब तक आत्मविश्राति प्राप्त न हो जाए तब तक समय, देश एव शास्त्र के अनुसार कार्य करते हुए तथा सत्सग करते हुए मोक्ष के मार्ग पर विचार करते रहना चाहिए। तुरीयावस्था में गृहस्थ हो या सन्यासी हो, वह ससार चक्र से छूट जाता है, उसे इस भ्रमजाल मे पडने की आवश्यकता ही नही रहती तथा उसके लिए वेदो, स्मृतियो आदि का पालन भी व्यर्थ हो जाता है। वह आत्मा मे स्थित होकर समुद्र के समान स्वय ही सब कुछ प्राप्त कर लेता है। (31-41)

सर्वात्ममय वेदन (ज्ञान) के प्राप्त होने पर समय एव दूरी से बधा समस्त विश्व केवल 'चित्त' रूप ही लगता है। तब आत्मा जहा और जिस रूप में भी हो, वहा वैसे ही अत्यत उल्लास के साथ स्थित हो जाता है। सुषुप्ति मे लीन होने पर स्वप्न की तरह यह समस्त चराचर जगत-प्रलय मे नष्ट हो जाता है। ज्ञानी लोगो ने इस आत्मा को परमब्रह्म, सत्य तथा यज्ञ का स्वरूप कहा है। जैसे ककण केवल सोना ही होता है, उससे भिन्न नही, उसी प्रकार ब्रह्म ने इस जगत को भी बनाया है, यह उससे भिन्न नही है। इस दृश्य जगत मे डूब जाने से द्रष्टा को बधन हो जाता है। दृश्य के समाप्त हो जाने पर ही मोक्ष होता है। यह 'तेरा' और 'मेरापन' वाली सृष्टि ही दृश्य जगत है। इस समस्त माया का प्रपच मन के कारण ही होता है। अत मुक्ति के लिए मन की इच्छा का समाप्त होना आवश्यक है। स्वय उत्पन्न हुए ब्रह्मा ने भी इस विश्व को मन से ही उत्पन्न किया है। (42-50)

वास्तव मे मन का 'सत' रूप मे बाहर या भीतर, कही भी अस्तित्व नही है। विषयों का बोध होना ही मन कहलाता है। इच्छाए करना ही इसका रूप है। अत. मन सकल्प (इच्छा) के अतिरिक्त कोई और वस्तु नही है। आज तक कोई भी मन एव सकल्प को एक-दूसरे से अलग नही कर पाया है। सकल्पों के नष्ट हो जाने पर केवल आत्मा ही शेष रहता है। 'मै' और 'तुम' इस भाव के समाप्त होने पर ही कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त होता है। प्रलय के समय समस्त दिखाई देनेवाले प्रपच का नाश हो जाने पर केवल शात आत्मा ही रह जाता है। जो आत्मा सूर्य के समान कभी अस्त नही होता, वह निरामय देव ही परमब्रह्म है। वाणी आदि उसे बिना प्राप्त किए ही लौट आती है। उसी की आत्मा तथा रूपों की कल्पना की जाती है। वही रूप आदि से रहित परमात्मा है। चित्त आकाश, चिद आकाश तथा यह दिखाई देनेवाला आकाश, ये तीन आकाश हैं। चिदाकाश अत्यंत सूक्ष्म है। एक देश से दूसरे देश में जाने के बीच चित्त की सूक्ष्म उपस्थिति ही चिदाकाश है। इसमे समस्त सकल्पो के अस्तित्व को नष्ट कर देने पर उस सभी के आत्मा स्वरूप पद की प्राप्ति हो जाती है। (51-60)

इस चिदाकाश मे स्थित होने पर उदार और वैराग्यमय आनद देनेवाली अवस्था ही समाधि है। उस समय—समस्त दृश्य जगत एक शून्य प्रतीत होता है और राग, द्वेष आदि समाप्त हो जाते हैं। इसके अभ्यास से चित्त को एकाग्र करके प्रसन्न रहने की शक्ति पैदा हो जाती है। दृश्य की सत्ता की सारहीनता ज्ञात होना ही ज्ञान है। यही आत्म कैवल्य है। उसके अलावा

(विष्णु) को देखा, जो समस्त विश्व के जीवन के आधार है, विश्व रूप है तथा सबके स्वामी हैं। पद्मकोश (बंद कमल) के समान लबे और नीचे को मुखवाले हृदय मे सीत्कार होता है, इसी हृदय के बीच मे चारो ओर मुखोवाली अग्नि है। इसी अग्नि की एक लौ कुछ ऊपर उठी हुई है, जो अत्यधिक पतली है। इसी के बीच मे वह परमात्मा रहता है। वह ब्रह्मा है, वही ईशान है, वही इद्र है, वही अक्षर (अविनाशी) परम विराट। (90-94)

द्वितीय अध्याय

स्वरूप के आनद मे लगे रहनेवाले मुनियो मे श्रेष्ठ शुक अत्यत तेजवाले थे। उन्हे सत्य-ज्ञान की प्राप्ति जन्म लेते समय ही हो गई थी। इसलिए इस महामुनि ने स्वय ही लबे समय तक विचार करने के बाद आत्मा के स्वरूप को जान लिया। वे इस विषय मे एक निश्चय पर पहुच गए कि आत्मा के विषय मे कोई भी व्यक्ति अपनी वाणी से वर्णन नही कर सकता; आखे उसे देख नही सकती, यह छठी इंद्रिय में बसा हुआ है। यह चिन्मात्र, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, यहा तक कि शून्य से भी छोटा है। इस प्रकार के इस सूक्ष्म अणु मे करोडो ब्रह्मांड धूल के कणो की तरह उत्पन्न होते हैं, स्थित रहते है तथा लय हो जाते है। आत्मा चैतन्य है, अत यह आकाश से भिन्न है, किंतु बाहरी रूप मे इसे भी कह दिया जाता है। यह कैसा है ? इस विषय मे कोई भी वर्णन नही कर सकता, अत इस दृष्टि से इसे कोई वस्तु भी नही कहा जा सकता। 'जो वस्तु' नही है उसका अस्तित्व भी नही होता, किंतु आत्मा का अस्तित्व है, अत इसे वस्तु भी कहा जा सकता है। प्रकाशमय होने से यह चेतन (जिसमे चेतना हो) है, किंतु इसके विषय में कुछ भी मालूम न होने के कारण यह पत्थर की शिला के समान है। अपनी आत्मा के आकाश मे यह अनेक प्रकार के दृश्य दिखाता है। यह सब कुछ उसी का अंश होने के कारण वह इससे अलग नही है। उसमे दिखाई देनेवाली भिन्नता भी उससे अलग नही है। उसमे दिखाई देनेवाली भिन्नता भी इससे अलग नही है। सभी कुछ मे चलने-फिरने के कारण उसका सभी से संबंध है, किंतु गतिहीन होने के कारण वह चलता भी नही, वह किसी पर आश्रित नही है, अत वह 'नास्ति' (नही है) कहा जाता है, किंतु उसी के समान होने के कारण उसका अस्तित्व है। उस ब्रह्म का रूप विशुद्ध ज्ञान एवं आनद है। मन की सभी इच्छाओ (सकल्पो) को त्यागने से ही वह मिल सकता है, जागृत अवस्था में उसकी प्रतीति (अनुभव) नही होती। उसके सिकुड़ने तथा खिलने पर ही प्रलय एव सृष्टि होती है। (1-10)

'जो वेदात के शब्दों की निष्ठा है और वाणी आदि इद्रिया जिस तक पहुच ही नही सकती, मै वह सत्त् (जिसका अस्तित्व है), चित्त (जो चेतन है अचेतन-निर्जीव नही है) और आनद स्वरूप ब्रह्म ही हूं, कोई अन्य नही, अपनी अत्यत पैनी बुद्धि से शुकदेव ने इस प्रकार के ब्रह्म को जान लिया। वे स्वय प्राप्त की हुई इस परम वस्तु में ही अपने मन को लगाकर रहने लगे। उन्हें विश्वास हो गया कि इस वस्तु के अतिरिक्त और कुछ है ही नही। जैसे मूसलाधार वर्षा से सतुष्ट चातक की चचलता दूर हो जाती है, उसी प्रकार उनका चित्त भी संसार के भोगो को देखकरर चचलता रहित होकर केवल मोक्ष में ही लग गया। एक वार उस शुद्ध बुद्धि वाले शुकदेव ने मेरु पर्वत के एकात में अपने पिता कृष्ण द्वैपायन (व्यास) से निवेदन किया कि इस ससार के प्रपच की उत्पत्ति कैसे हुई ? किसमे और

'ससार के समस्त कार्यो को करते हुए भी सदा चित्त को प्रवुद्ध रखते हुए आत्मा को एक ही मानो। इस ज्ञान को पाकर समुद्र के समान रहो। यह ज्ञान अज्ञान को तिनको के समान जला डालता है। इसी को समाधि कहा गया है। केवल मौन रहना ही समाधि नही है। यो ही पडा रहना भी,जैसे रत्न प्रत्येक देखनेवाले को आकर्षित करता है,वैसे ही वह परम सत्ता भी समस्त विश्व को आकर्षित करती है। इसी आत्मा मे कर्तव्य (कार्य करने का स्वभाव) एव अकर्तृत्व दोनो है। कामनाओ से हीन होने के कारण यह अकर्ता है,किंतु एकमात्र कारण होने से यह कर्ता कहलाता है। अत जिसमे यह कर्तृत्व एव अकर्तृत्व दोनो हैं,उसी ब्रह्म को ग्रहण करो। मै सदा अकर्ता हूं। ऐसी भावना हो जाने पर समता दृष्टि ही शेष रहती है,जो परम अमृत कही जाती है। इस सत्त्व मे विद्यमान रहनेवाले ही सच्चे गुणवान व्यक्ति है। वे सदा चंद्रमा के समान बढ़ते जाते है। वे सुनहरे कमल के समान विपत्ति रूपी रात्रि मे भी धैर्य नही खोते,जो उन्हे सहजता से प्राप्त हो जाता है,उसके अतिरिक्त वे अन्य वस्तु की इच्छा नही करते तथा सदा शास्त्रो के अनुकूल आचरण करते है। उनमे मैत्री आदि गुण स्वाभाविक रूप मे रहते है। वे हर स्थिति में समान रहनेवाले साधु स्वभाव के व्यक्ति होते है। ऐसे महान आशयवाले समुद्र के समान मर्यादावाले तथा सूर्य के समान एक निश्चित मार्ग पर चलनेवाले होते है। (11-20)

'मै कौन हू ?' 'विश्व कैसे उत्पन्न हुआ ?' इस पर विचार करते हुए साधना करे। कोई भी व्यर्थ कार्य न करे। अस्थि,मास आदि से बने इस शरीर की उपेक्षा करे। मोती की माला मे पिरोए गए तागे के समान सभी जीवो मे व्याप्त परमात्मा को देखें। अनुपयोगी वस्तु को त्याग दे,उपयोगी को ग्रहण करे। गुरु,शास्त्र आदि के ज्ञान तथा अपने अनुभवो मे ब्रह्म हू,इसे जानकर शोक को त्याग दे। तब साधक कठोर तलवारो के समान वारो को भी सह लेता है। अग्नि का प्रभाव भी उसके लिए शीतल जल मे स्नान के समान हो जाता है। अंगारो पर लेटना ही उसे चदन के लेप जैसा लगता है। शरीर मे घातक बाणो की वर्षा भी शीतल जल की वर्षा जैसी लगती है। सिर का कटना भी आरामदायक नीद जैसा लगता है। गूंगा हो जाना मौन के समान तथा बहरापन उन्नति के समान सुखद प्रतीत होता है। यह अवस्था आसानी से नही प्राप्त होती,यह केवल वैराग्य तथा आत्मज्ञान से ही प्राप्त होती है। गुरु आदि के उपदेशो तथा स्वय के अनुभव से प्राप्त मानसिक पवित्रता से हुए आत्म साक्षात्कार का निरतर अभ्यास करते रहे। तब दिशा भ्रम के अज्ञान का नाश होने पर समस्त विश्व प्रपच समाप्त हो जाता है। धन,मित्र,पिता,पुत्र आदि व्यक्ति का उपकार नही कर सकते। देह के क्लेशों का नाश या तीर्थो में जाने से भी कोई लाभ नही होता,केवल चिन्मात्र मे लय से ही परमपद की प्राप्ति होती है। ससार के सभी दु ख,तृष्णा आदि शात मनवाले मनुष्य मे सूर्य के समाने अंधकार के समान नष्ट हो जाती है। शमवाले व्यक्ति का सभी मधुर या कठोर स्वभाववाले प्राणी विश्वास करते है। (21-30)

रसायनो के पीने से या अपार लक्ष्मी से वह सुख प्राप्त नही होता,जो शम (शाति) से प्राप्त होता है। जो सुनकर या भोगकर भी शुभ या अशुभ से हर्षित या दु खी नहीं होता वही शात कहा जाता है। जिसका मन चंद्र के समान निर्मल होता है,जो उत्सव,युद्ध,मृत्यु आदि से किसी प्रकार प्रसन्न या अधीर नहीं होता,वही व्यक्ति शात कहा जाता है। उसी व्यक्ति का यज्ञ करनेवालो,तपस्वियो,

ब्रह्मविंदूपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

परमात्मा हम दोनों (गुरु एव शिष्य) की एक साथ रक्षा करे,एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो,हम द्वेष न करें।

शुद्ध एवं अशुद्ध,मन दो प्रकार का होता है। इच्छाओंवाला अशुद्ध तथा इच्छारहित न शुद्ध मन होता है। विषयों में लगा मन वधन और विषयरहित मन मोक्ष देता है। अत मोक्ष का इच्छुक मन को विषयरहित करे। इस मन को हृदय में रोककर उन्मन अवस्था के वाद परमपद प्राप्त होता है। मन के नाश होने तक इसे रोकना चाहिए तभी मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसा न करने पर वधन का ही विस्तार होता है। मोक्ष होने पर चितन-अचितन से परे निष्पक्ष ब्रह्म प्राप्त होता है। अत. साधक स्वरों की साधना करे। वही योगसिद्धि का मार्ग है। तव 'मै निष्कल,निर्विकल्प,निरजन ब्रह्म हू' ऐसा ज्ञान होता है। इस प्रकार के कारणरहित ब्रह्म को (जो अप्रमेय है),जानकर विरोध,जन्म,वधन, माया,मोक्ष की इच्छा तथा मुक्ति की भी कामना नही रह जाती है। (1-10)

जागृत,स्वप्न एवं सुषुप्ति में एक ही आत्मा मानना चाहिए। एक ही आत्मा प्रत्येक प्राणी मे विभिन्न जलों में दिखाई देनेवाले एक ही चद्रमा के समान रहता है। शून्य में घडा होने पर उसमें भी शून्य होता है,किंतु फूटने पर शून्य नष्ट नही होता; अत. शरीर के नाश पर परमात्मा का नाश नही होता। शब्द एव ब्रह्म दोनों अक्षर (नाश न होने वाले) है। अत शब्द के नष्ट होने पर जो शेष रहता है,महात्मा उसी का ध्यान करें। 'शब्द ब्रह्म' एव 'परम ब्रह्म' दो ब्रह्म है। 'शब्द ब्रह्म' (वेदादि) मे कुशलता पाने के बाद परम ब्रह्म को जानें। ज्ञान प्राप्त होने पर विद्वान व्यक्ति धान लेने पर पुआल को छोडने के समान ग्रथों को त्याग दे। अनेक रगोंवाली गायों में अधिक दूधवाली का चयन करने के समान विद्वान का वेश न देखकर ज्ञान देखना चाहिए,दूध में घी के समान ही प्राणियो में ब्रह्म रहता है,अत उसे मन से मथकर प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान की प्राप्ति पर निष्कल,निर्मल,शात 'वह ब्रह्म मै हूं' ऐसा मानना चाहिए। सभी प्राणियों में रहनेवाला और उनका निवास स्वरूप 'ब्रह्म मै ही हू' ऐसा समझना चाहिए। (11-22)

☐

राजाओं, विद्वानो आदि मे भी सम्मान होता है। सतोष के अमृत को पीकर शात और तृप्त बने महात्मा आत्मा मे रमण करते है। उन्हे ही परमपद मिलता है। जो प्राप्त वस्तु के प्रति भी सतुष्ट रहे तथा मिली वस्तु की चिता न करे, सदा समान रहे, वही व्यक्ति सतुष्ट कहा जाता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने आगन मे ही सतुष्ट रहती है, जो मिल जाए उसी मे सतुष्ट रहती है, इसी प्रकार की अनत आनददायक अवस्था जीवन्मुक्त अवस्था कही जाती है। जब तक आत्मविश्राति प्राप्त न हो जाए तब तक समय, देश एव शास्त्र के अनुसार कार्य करते हुए तथा सत्सग करते हुए मोक्ष के मार्ग पर विचार करते रहना चाहिए। तुरीयावस्था मे गृहस्थ हो या सन्यासी हो, वह ससार चक्र से छूट जाता है, उसे इस भ्रमजाल मे पडने की आवश्यकता ही नही रहती तथा उसके लिए वेदो, स्मृतियो आदि का पालन भी व्यर्थ हो जाता है। वह आत्मा मे स्थित होकर समुद्र के समान स्वय ही सब कुछ प्राप्त कर लेता है। (31-41)

सर्वात्ममय वेदन (ज्ञान) के प्राप्त होने पर समय एव दूरी से बधा समस्त विश्व केवल 'चित्त' रूप ही लगता है। तब आत्मा जहा और जिस रूप मे भी हो, वहा वैसे ही अत्यत उल्लास के साथ स्थित हो जाता है। सुषुप्ति मे लीन होने पर स्वप्न की तरह यह समस्त चराचर जगत-प्रलय मे नष्ट हो जाता है। ज्ञानी लोगो ने इस आत्मा को परमब्रह्म, सत्य तथा यज्ञ का स्वरूप कहा है। जैसे ककण केवल सोना ही होता है, उससे भिन्न नही, उसी प्रकार ब्रह्म ने इस जगत को भी बनाया है, यह उससे भिन्न नही है। इस दृश्य जगत मे डूब जाने से द्रष्टा को बधन हो जाता है। दृश्य के समाप्त हो जाने पर ही मोक्ष होता है। यह 'तेरा' और 'मेरापन' वाली सृष्टि ही दृश्य जगत है। इस समस्त माया का प्रपंच मन के कारण ही होता है। अत मुक्ति के लिए मन की इच्छा का समाप्त होना आवश्यक है। स्वयं उत्पन्न हुए ब्रह्मा ने भी इस विश्व को मन से ही उत्पन्न किया है। (42-50)

वास्तव मे मन का 'सत' रूप मे बाहर या भीतर, कही भी अस्तित्व नही है। विषयो का बोध होना ही मन कहलाता है। इच्छाए करना ही इसका रूप है। अत. मन सकल्प (इच्छा) के अतिरिक्त कोई और वस्तु नही है। आज तक कोई भी मन एव सकल्प को एक-दूसरे से अलग नही कर पाया है। सकल्पों के नष्ट हो जाने पर केवल आत्मा ही शेष रहता है। 'मै' और 'तुम' इस भाव के समाप्त होने पर ही कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त होता है। प्रलय के समय समस्त दिखाई देनेवाले प्रपच का नाश हो जाने पर केवल शात आत्मा ही रह जाता है। जो आत्मा सूर्य के समान कभी अस्त नही होता, वह निरामय देव ही परमब्रह्म है। वाणी आदि उसे बिना प्राप्त किए ही लौट आती है। उसी की आत्मा तथा रूपों की कल्पना की जाती है। वही रूप आदि से रहित परमात्मा है। चित्त आकाश, चिद आकाश तथा यह दिखाई देनेवाला आकाश, ये तीन आकाश हैं। चिदाकाश अत्यंत सूक्ष्म है। एक देश से दूसरे देश में जाने के बीच चित्त की सूक्ष्म उपस्थिति ही.चिदाकाश है। इसमें समस्त सकल्पो के अस्तित्व को नष्ट कर देने पर उस सभी के आत्मा स्वरूप पद की प्राप्ति हो जाती है। (51-60)

इस चिदाकाश मे स्थित होने पर उदार और वैराग्यमय आनंद देनेवाली अवस्था ही समाधि है। उस समय—समस्त दृश्य जगत एक शून्य प्रतीत होता है और राग, द्वेष आदि समाप्त हो जाते है। इसके अभ्यास से चित्त को एकाग्र करके प्रसन्न रहने की शक्ति पैदा हो जाती है। दृश्य की सत्ता की सारहीनता ज्ञात होना ही ज्ञान है। यही आत्म कैवल्य है। उसके अलावा यह समस्त प्रपच झूठ

अत प्रपच भाव को त्यागकर श्रेष्ठ बुद्धि से मन को नियत्रित करते हुए 'चित्त' मात्र में स्थित होओ। वैराग्य का आश्रय और उसकी सहायता से चित्त को अचित्त बनाकर हृदयाकाश मे ध्यान करे। चित्त के चक्र की धार से मन को मारकर नि शक हो जाओ। 'अपने-पराए' की भावना का नाश करने से मन का स्वय ही नाश हो जाता है। शरद ऋतु में वायु से टकराकर छिन्न-भिन्न बादल आकाश में ही लय हो जाते है, वैसे ही सद विचारो से मन भी लय हो जाता है। चाहे सारे समुद्र एक होकर वर्षा दे, चाहे प्रलयकालीन उनचासों वायु पूरे वेग से बहने लगे या चाहे बारहो आदित्य एक साथ चमकने लगें, जिसका मन लय हो जाता है, उसे कोई हानि नही होती। सकल्पहीनता सभी सिद्धियो का उपाय है। अत इस अवस्था मे रम जाओ। मन का धर्म चचलता होने से सभी जगह चंचल मन ही दिखाई देता है। चंचल शक्तियुक्त स्पदन शक्ति चित्त का कार्य है। यह शक्ति विश्व प्रपच का ही रूप है। चंचलता से रहित मन ही अमरता है। उसी को शास्त्र मोक्ष कहते है।(91-100)

यह मन की चचलता ही वासनात्मक अविद्या है। अत इसका विचारों से नाश करे। जिस लक्ष्य में मन को लगाते हो, उसे प्राप्त करने के लिए निर्विकल्पक समाधि लगाओ। चित्त को चित्त से ही प्रयत्नपूर्वक वश मे करके शोक एव आतक से मुक्त होकर स्थिर होओ। विषयहीन मन ही मन को रोक सकता है क्योंकि सत्ताधारी राजा ही किसी राजा को हरा सकता है। तृष्णारूपी ग्राह द्वारा पकड़े गए, संसार सागर मे फसकर किनारा पाने मे असमर्थ तथा भवर जाल मे पडे लोगो को विकारहीन नौका रूपी मन ही पार लगा सकता है। अत इस शक्तिशाली मन के द्वारा प्रपच को नष्ट करके संसार सागर से पार हो जाओ, दूसरा कोई इससे पार नही करा सकता। अतःकरण को ढकनेवाली मनरूप वासना को त्यागना ही बुद्धिमान का परम कर्तव्य है। इससे अविद्या का अधकार नष्ट हो जाता है। पहले भोग रूप वासना का फिर भेद रूप का तथा इसके बाद भाव-अभाव रूप का त्याग करना ही उचित है। इससे निर्विकल्पक समाधि से सुख प्राप्त करो। मन के अनुभवों में चित्त को मत लगाओ। आस्था का त्याग मोक्ष तथा इसका सहारा बधन है। प्रज्ञावान से अविद्या दूर रहती है। (101-110)

सासारिक भ्रमजाल काटों से ओत-प्रोत है। जब तक इसे नष्ट करनेवाली आत्म साक्षात्कार की भावना दृढ़ नही होती, तब तक यह भ्रम मे डालता रहता है। इस भावना के दृढ़ होने पर यह नष्ट हो जाता है। अविद्या रूपी इच्छा का नष्ट होना मोक्ष है। सकल्पों के नाश पर ही इच्छाओ का भी नाश होता है। कलि रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए चित्त के आकाश में वासना रात्रि को नष्ट करने हेतु चेतना सूर्य का उदय आवश्यक है। विषयहीन और सब ओर जानेवाली मन की अवस्था वर्णन से बाहर होती है। यह निश्चय ही अव्यय, नित्य एवं चित्त रूप ब्रह्म है, इसके अतिरिक्त कुछ भी नही है। वह केवल भ्रम नही है, वह दृश्य का विकार अस्तित्व से रहित है। इस जगत मे न तो कोई जन्म लेता है और न मरता है, सब मिथ्या प्रपच है। केवल सर्वव्यापक अव्यय आभास रूप एव चित्त के विकारो से परे रहनेवाला आत्मा ही सत्य है। यह आत्मा नित्य व्यापक, निरुपद्रव, शुद्ध, निर्विकार तथा शमरूप में स्थित है। (111-120)

इसमें चित्त सकल्प रहित हो जाता है, चित्त की यही अवस्था मन कहलाती है, जो स्वय निर्दोष होता है। अत मन सकल्प द्वारा ही नष्ट हो जाता है। अपने को ब्रह्म से भिन्न मानना ही बधन मे

है। जैसे धूल के कण के बराबर छिद्र मे मच्छरों एवं सिहों का युद्ध मदोन्मत्त ऐरावत को सरसो के बराबर छिद्र में बांधना या कमल की पंखुडी में रखे हुए सुमेरु पर्वत को भंवरे के बच्चे द्वारा निगला जाना, ये सब मिथ्या कथन है, वैसे ही यह विश्व भी झूठ है। इसका अस्तित्व है ही नही। राग-द्वेष आदि से युक्त चित्त ही विश्व है। इन दोषों से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है। मन द्वारा शरीर की इच्छा होने पर ही आत्मा देहमय बनता है। देह का भ्रम दूर होने पर वह फिर निर्लिप्त हो जाता है। मन ही कल्प को क्षण तथा एक क्षण को कल्प बना देता है, अत यह सब विश्व केवल मन की कल्पना ही हैं। जो एकाग्र चित्त तथा शांत मन नही होता और इसके विपरीत होता है, उसे कभी आत्मज्ञान प्राप्त नही होता। अपने को उस अद्वैत आनंदस्वरूप सत-चित्त धन निर्गुण ब्रह्म के समान समझ लेनेवाला कभी भयभीत नही होता। (61-70)

'मै परम से परम, महान से महान, कवि, पुराणपुरुष, तेजोमय स्वरूप शिव, सर्वेश्वर, सभी देवताओं द्वारा पूजित ब्रह्म हूं' ऐसा ज्ञान ही मोक्ष का श्रेष्ठ उपाय है। ममता के कारण ही प्राणी बधन में पड़ता है तथा ममता से रहित होना मोक्ष के मार्ग पर चलना है। ब्रह्म की इच्छा से लेकर इच्छा के त्याग तक यह समस्त ईश्वर की कल्पना है। जागृत अवस्था से मोक्ष प्राप्ति तक यह सब प्राणी की कल्पना है। कठोपनिषद् की त्रिनाचिकेत अग्नि से श्वेताश्वतर के योग तक सब ईश्वरीय भ्राति है तथा चार्वाक के मत से कपिल मुनि के साख्य सिद्धात तक दर्शन का आधार जीव की भ्राति है। मुक्ति प्राप्ति का इच्छुक जीव एव ईश्वर के वाद-विवाद से भ्रमित न हो। उसे दृढता से ब्रह्म तत्त्व का मनन करना चाहिए। ज्ञानी व्यक्ति दृश्य जगत को भी चित्त रूप ही माने। वही शिव, ब्रह्म तथा विष्णु है। विषयो के त्याग के समान ही ज्ञान प्राप्त करना भी अत्यंत कठिन है। सच्चे गुरु की कृपा के बिना सहज अवस्था दुर्लभ है। सब कर्मों को त्यागकर बोध-शक्ति को जगाने से सहज अवस्था स्वत ही प्राप्त हो जाती है। इसमे थोड़ी-सी भिन्नता रहने तक भय-ही-भय है। सर्वमय सच्चिदानंद के दर्शन केवल ज्ञान की आखों से ही हो सकते है। इनके अभाव में उसे अधे द्वारा सूर्य-दर्शन के समान ही परम ब्रह्म के दर्शन कदापि नही हो सकते। (71-80)

ब्रह्म प्रज्ञान रूप है तथा सत्य का भी लक्षण ज्ञान ही है। मरणशील व्यक्ति ब्रह्म के ज्ञान से ही अमरता प्राप्त करता है। ब्रह्म कार्य भी है और कारण भी। उसके साक्षात्कार से सारे सशय नष्ट हो जाते हैं। कर्मों के क्षय से हृदय की ग्रथियां खुल जाती है। सब कुछ आत्मा ही है, ऐसा मानते हुए ससार में निर्विकार और त्याग भाव से रहो। मरुस्थल में प्रतीत होनेवाला जल भी जैसे भूमि ही होता है, उसी प्रकार तीन अवस्थाओं (स्वप्न आदि)वाले इस विश्व को 'चित्त' ही समझना चाहिए। लक्ष्य-अलक्ष्य को त्यागकर आत्मा में निष्ठावाला प्राणी शिव रूप ही है, जो मन-वाणी द्वारा अगम्य एव नित्य, सर्वगत, सूक्ष्म, अविनाशी है—यह विश्व सर्वशक्तिमान परमात्मा का मनोविलास ही है। सयम-असंयम से अंत में सांसारिक प्रपंच शात हो जाता है। मैं मन के विकारो को शात करने का उपाय तुम्हें बताता हू। मन जिस वस्तु की इच्छा करे, उसके त्याग से मोक्ष प्राप्त होता है। जो इच्छा को नही त्याग सकता, एकातप्रिय नही हैं तथा आत्मा के अनुसार नही चलता उस मनुष्य रूपी कीडे को इच्छित वस्तु का स्वयं ही प्रयत्न करके त्याग करने से मन की शाति प्राप्त होती है। (81-90)

सकल्प-शून्यता रूपी शस्त्र चित्त को काट देता है। तभी सर्वगत शात ब्रह्म प्राप्त होता है।

डालना है। ब्रह्म को सब कुछ मानने से मन मुक्त हो जाता है। शरीर की तथा सासारिकता की चिता ही व्यक्ति को बंधन मे डालती है, इससे दूर रहने वाला सदा मुक्त रहता है। जो स्वय को केवल हड्डी एवं मास का पुतला न मानकर कुछ अन्य (ब्रह्म का अश) मानता है, उसकी अविद्या नष्ट हो जाती है। अभ्यास एव वैराग्य से भोगो की इच्छा को दबाकर निर्विकल्पक बन जानेवाला ही सच्चा सुखी हो जाता है। मेरा पुत्र, मेरा धन इत्यादि सब माया का भ्रम है। अत समस्त मोह का त्याग कर देना चाहिए। अज्ञानी मत बनो, अनात्म (मिथ्या भ्रम) में आत्मभाव मत रखो। यह मूर्खता है। इस जड शरीर से तुम्हारा कोई सबध नही है। यह घोर अपवित्र, गूगा, मास का पिड है। व्यर्थ मे इसके लिए दु खी न होओ। आश्चर्य की बात है कि प्राणी परम सत्य ब्रह्म को भूलकर इस देह के जाल मे पड जाता है। ज्ञानवान बनो। सासारिक कर्तव्यों को पूरा करते हुए भी इसमे लिप्त न होओ। अस्तित्त्वहीन अविद्या ने ससार को मूर्ख बनाया हुआ है। तिनके के समान तुच्छ जागृत एव सुषुप्त अवस्थावाला विश्व इसी के कारण वज्र के समान कठोर प्रतीत होता है। (121-131)

पंचम अध्याय

ऋभु ने अपने पुत्र से कहा, 'ज्ञान एवं अज्ञान, दोनों के सात-सात पद है। इन दोनो के बीच मे असंख्य भूमिकाए उत्पन्न होती है। अह स्वरूप को गिरा देनेवाला है। स्वरूप मे स्थित रहने से ही मुक्ति मिलती है। जो शुद्ध आत्मा को जानकर उससे विचलित नही होते, उन्हे राग-द्वेष आदि विकार प्रभावित नही कर सकते। इसे छोड़कर वासनाओ मे चित्त को डुबा देना सबसे बडा मोह है, जिससे बडा न कभी हुआ और न कभी होगा ही। मन के एक विषय से दूसरे विषय मे जाने के मध्य की स्थिति मे स्थित रहकर ही ध्वस्त मन को समझा जा सकता है। सभी सकल्पो के शात हो जाने पर पत्थर के समान चेष्टा रहित स्थिति परास्वरूप स्थिति कही जाती है। इस स्थिति मे चित्त शात, चेतन एक भेदभाव से शून्य हो जाता है। बीज जागृत, जागृत, महाजागृत, जागृतस्वप्न, स्वप्न, स्वप्न जागृत तथा सुषुप्ति, मोह की यही छः अवस्थाए होती है। इनके परस्पर मिलने से अनेक भेद हो जाते है। इन सातो के लक्षण इस प्रकार है—प्रथम बीज जागृत अवस्था मे चित्त नाम आदि से रहित निर्मित होता है। यह चेतन अवस्था है। ज्ञाता की यह एक नई अवस्था है। (1-10)

'मोह की दूसरी अवस्था जागृत है। इसमें 'मेरा-तेरा' भाव विद्यमान रहते है। महाजागृत अवस्था मे 'यह मै हू', 'वह मेरा है' इत्यादि पूर्वजन्मों के संस्कारों से युक्त भावनाए होती है। चौथी जागृत स्वप्नावस्था होती है। इसका परंपरा से या मनोमय दृष्टि से अपना एक निश्चित रूप है। इसमें एक के स्थान पर दो चद्रमा का, सीप के स्थान पर चादी का आभास होता है अर्थात मरीचिकावाली अवस्था है। इस आभास के कारण इसके अनेक भेद हो जाते है। स्वप्नावस्था में देखा हुआ दृश्य जागने पर नही दिखाई देता केवल उसकी स्मृति शेष रहती है। इसके बाद स्वप्न जागृत अवस्था है। इसमे जागृत अवस्था में भी स्वप्न दिखाई देते है। विभिन्न कार्यों के साथ ये देर तक टिके रहते है। इस अवस्था के बाद सुषुप्ति अवस्था होती है। यह अतीत के दु खो का बोध करानेवाली जड़ात्मक अवस्था है। इसमे विश्व आतरिक अज्ञान मे लय हो जाता है। ये मोह की सक्षिप्त सात अवस्थाए है। सूक्ष्म भेद करने पर प्रत्येक के सैकडो भेद हो जाते हैं। (11-20)

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभ्य शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिर्भिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शांति शांति शाति ।

हे देवताओ, हम कानो से कल्याणकारी वचन सुनें, आंखों से कल्याणकारक देखे, समस्त अगों सहित शरीर से देवताओ के समान आयु को प्राप्त करे । यशस्वी इद्र हमारा कल्याण करे, सूर्य हमारा कल्याण करे तथा अरिष्टनाशक बृहस्पति हमारा कल्याण करें ।

परमात्मा तीन रूपो मे पैदा हुआ—आत्मा, अतरात्मा एव परमात्मा । शरीर के त्वचा, मास, बाल आदि उत्पन्न होते तथा मर जाते है, यहां आत्मा है । पृथ्वी, अग्नि आदि इच्छा-द्वेष, सुख-दु ख, स्मृति, लिग, हस्व-दीर्घ, नृत्य, गीत, देखने-सुनने, सूंघनेवाला विज्ञान, आत्मा पुरुष, पुराण, न्याय, मीमासा आदि शास्त्र, इन सबमे विद्यमान— यही अतरात्मा है । परमात्मा अक्षर उपासना करके योग्य होता है । प्राणायाम, प्रत्याहारर, धारणा, ध्यान एव समाधि योग द्वारा आत्मचितन से बाल के हजारवे भाग की कल्पना से भी सूक्ष्म 'सोऽहम्' भावना से जाना जाता है अन्यथा यह प्राप्त नही होता । न यह मरता है, न सूखता, जलता, भीगता आदि है । यह निर्गुण, ममता, शब्द-स्पर्श आदि से रहित है । यह सर्वव्यापक, अचितनीय एव अवर्णनीय, अशुद्ध-अपवित्रों को पवित्र करता है । वह निष्क्रिय तथा ससाररहित है । (1-4)

ब्रह्म शुद्ध, शिव, एकमात्र आभासमान है । विद्या-अविद्या और भाव-अभाव भी वही है । गुरु-शिष्य का भेद भी वही है । वस्तुत विद्या-अविद्या या जगत की कोई भी वस्तु सत्य नही है । यह सब एकमात्र ब्रह्म ही है । जैसे सामने रखी वस्तु का ज्ञान बिना प्रमाण के हो जाता है, वैसे ही इस आत्मा से ब्रह्म के लिए प्रमाण की आवश्यकता नही है । जैसे देवदत्त नाम के किसी व्यक्ति को अपने नाम के लिए प्रमाण की आवश्यकता नही होती, वैसे ही 'सोऽहं' का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है । सूर्य से ससार के समान उसी ब्रह्म के तेज से ब्रह्मांड प्रकाशित है । अत. उसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नही है । वेद, शास्त्र आदि उसी के कारण अर्थवान हैं, जैसे बालक खिलौने को देखकर भूख, प्यास आदि भूलकर उसके साथ खेलने लगता है, उसी प्रकार ममता, अहकार आदि से रहित विद्वान सुखी रहता है । आत्मज्ञानी निर्धन होने पर भी सतुष्ट और असहाय होने पर भी स्वय को बलवान समझता है । न खाने पर भी तृप्ति अनुभव करता है । कुछ न करने पर भी क्रियाशील रहता है तथा भोक्ता न होने पर भी फलों का भोग करता है । शरीर होने पर भी शरीरहीन होता है । पृथक् होने पर भी सर्वव्यापक होता है तथा सबको समान समझता है । (5-14)

'ज्ञान की भी सात भूमिकाए है। इनका ज्ञान न होने पर प्राणी मोह के कीचड मे डूब जाता है। यद्यपि इन योग भूमिकाओ के अनेकों भेद बताए गए हैं, तथापि यही सात महत्त्वपूर्ण भेद है, जो परम कल्याणमय है। इनसे प्राप्त बोध ही ज्ञान कहा जाता है। इनके बाद मिलनेवाली मुक्ति ही ज्ञेय (जानने योग्य) कहलाती है। इन सातो ज्ञान भूमिकाओं के नाम क्रमश इस प्रकार हे शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसी, सत्त्वापत्ति, ससक्ति, पदार्थ, भावना तथा तुर्यगा। इनसे मुक्ति प्राप्त होने पर शोक सदा के लिए छूट जाते है। वैराग्य से पूर्व शास्त्राध्ययन एव सत्सग से सासारिकता के प्रति ग्लानि होना शुभेन्छा है। इसके पश्चात इस प्रकार के अध्ययन से वैराग्य की प्रवृत्ति उत्पन्न होना विचारणा है। इस अवस्था के प्राप्त होने पर विषयो के प्रति आसक्ति नष्ट हो जाती है। यही अवस्था तनुमानसी कहलाती है। इन तीनो भूमिकाओं का अभ्यास पूर्ण होने पर वैराग्य प्रवल हो जाता है, जिससे चित्त 'सत्त्व' स्वरूप मे स्थित हो जाता है। इसी अवस्था को सत्त्वापत्ति कहते हे। (21-30)

'चारो अवस्थाओ के अभ्यास से जो अससर्ग कला सत्त्व मे स्थित होती है, उसे आसक्ति कहते है। अब पाचो अवस्थाओ के अभ्यास से साधक अपने ही आत्मा मे रमण करने लगता है। उसके लिए बाह्य एव अभ्यतरिक (भीतरी) सभी प्रकार की पदार्थ भावना नष्ट हो जाती है। यही पदार्थ भावना है। छ भूमिकाओं के अभ्यास से उसकी सभी प्रकार की भेद बुद्धि (अन्य वस्तुओ को परमात्मा से पृथक् मानने की बुद्धि) नष्ट हो जाती है और वह अभेदात्मक आत्मभाव मे ही पूर्णतया एकनिष्ठ हो जाता है। इसी अवस्था को सातवी तुर्यगा अवस्था कहा जाता है। यह केवल जीवन्मुक्त साधको को ही प्राप्त होती है। इसके बाद विदेहमुक्ति तुर्यातीत अवस्था होती है। जो परम भाग्यशाली तुर्यगा अवस्था मे पहुच जाते है, वे अपने आत्मा मे ही रम जाते है। वे महान पद को प्राप्त करके सुख-दु ख से दूर होकर जीवन्मुक्त बन जाते है। वे सासारिक कार्यो को करते हुए भी उनमे लिप्त नही होते। वे साथियो द्वारा जगाए गए मनुष्य के समान श्रेष्ठ सासारिक एव सनातन कार्यो को करते रहते हैं। इन सातो भूमिकाओ को कोई मेधावी ही प्राप्त करता है। इन्हे यदि नीच, म्लेच्छ या पशु भी प्राप्त कर ले, तो वे भी देह त्यागने पर मुक्त हो जाते है। हृदयग्रथि के खुलने पर ही यह अवस्था मिलती है। तभी मुक्ति भी मिलती है।(31-40)

'जो सासारिक पदार्थ आत्मा से भिन्न है, उन्हें वास्तविक रूप मे देखने पर ही मृग-मरीचिका के नष्ट होने पर आत्मबुद्धि का उदय होता है। (ऐसा न होना ही अविद्या है) इस प्रकार अविद्या के नाश पर ही मुक्ति होती है। आत्म साक्षात्कार मे लगे रहने पर ही व्यक्ति इन भूमिकाओ को प्राप्त करता है। मन ही पूर्ण शाति का उपाय कहा गया है। इन सब भूमिकाओ का लक्ष्य ब्रह्मपद को प्राप्त करना है। 'तेरा', 'मेरा' आदि भेदभाव का नष्ट होना ही ब्रह्मपद है। सासारिक पदार्थो का अस्तित्व आत्मा की संवेदना ही है, अत इस अवस्था मे भावनात्मक बुद्धि भी शेष नही रहती है और ईश्वर का चिंतन भी नही होता। ब्रह्म, आशास्वरूप, शिव, शाश्वत, दोष, आलबन-कारण-वर्णन रहित है, उसका आदि, मध्य या अत नही है, वह 'सत', 'असत' से परे है। मन, वाणी आदि इद्रिया उसे ग्रहण नही कर सकती, वह परम सुख रूप तथा आत्म-साक्षात्कार रूप है, अत वह आत्मसवेदन मे भी नही आता। द्रष्टा (देखनेवाला) और दृश्य के वीच मे दृष्टि का स्वरूप, द्रष्टा, दृश्य एव दर्शन से भिन्न

को पुन. पुन. रागयुक्त करने पर प्राज्ञ लज्जित क्यों नही होता ? चित्त एव विषयो का योग बधन है, इनसे छुटकारा ही मुक्ति है। वेदात का सार यही हे कि विषयों से युक्त चित्त ही आत्मा है। इसे सत्य समझकर स्वच्छ अतःकरण से स्वय का अवलोकन करो। इससे आनद स्वरूप पद मिलेगा। ये लोक दिशाए, आकाश सब 'चित्त' ही है। दृश्य एव दर्शन से मुक्त होकर निर्मल रूपी साक्षी चिदात्मा आभासरहित होकर प्रकट हुआ है और यही द्रष्टा वन गया हे। (70-81)

'मैं महान सवित मात्र पूर्णज्योतिस्वरूप सवेदनमुक्त तथा 'चित्त' रूप हू।' समस्त सकल्पो को शांत और कामनाओं को त्यागकर निर्विकल्प पद मे इसी प्रकार स्थित होओ। जो ब्रह्मवेत्ता इस उपनिषद का नित्य अध्ययन करता है, वह अश्रोत्रिय हो, तो श्रोत्रिय हो जाता है तथा अनुपनीत उपनीत हो जाता है। वह अग्नि, वायु, सूर्य, चद्रमा, सत्य तथा सभी अन्य देवताओं के समान पवित्र हो जाता है। वह सभी देवताओं का ज्ञाता, सभी तीर्थों में नहाए के समान, सभी देवताओं का कृपापात्र तथा सभी यज्ञो को करनेवाले के समान हो जाता है। उसे हजारो गायत्री जप का फल मिलता है, इतिहास, पुराण तथा रुद्रीय के हजार पाठ जप के तथा प्रणव के दस हजार जप के फल की प्राप्ति होती है। उसकी दृष्टि जहा तक देखती है, वहा तक सब पवित्र हो जाते हैं। वह अपनी सात-सात पिछली और आनेवाली पीढ़ियो को पवित्र कर देता है। इसके जप से अमरता प्राप्त होती है। ऐसा भगवान हिरण्यगर्भ ने कहा है।'

□

साक्षात्कार रूप में स्थित होता है। चित्त की एक स्थान से दूसरे स्थान मे जाने के बीच की स्थिति मे सदा तन्मय रहना चाहिए। अपने जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति से भिन्न जड-चेतन से शून्य सनातन रूप में स्थित रहो और उसी में लीन रहो। (41-50)

'जड़ता शिला के समान अवस्था है, अत इसे त्यागकर अमनस्क स्थिति मे स्थित रहो। चित्त को त्यागकर जो अवस्था होती है, उसी मे स्थित रहो। परम आत्मा से सर्वप्रथम मन ही उत्पन्न हुआ है। संसार उसी मन का विकल्परूप है, शून्य से शून्य उत्पन्न होता है। शून्य आकाश से सुदर नीलापन प्रकट होता है। संकल्प नाश होने पर चित्त की वृत्तियां भी गल जाती है। फलस्वरूप सांसारिक मोह भी गल जाता है। तब शरद ऋतु के स्वच्छ आकाश के समान वह सभी प्राणियो-पदार्थो का जन्म-स्थल, अजन्मा 'चित्त' मात्र रूप ही आभासित होता है। तब बिना रगो और कलाकार के आकाश चित्रित जैसा लगता है। द्रष्टा न होने पर भी निद्रा रहित स्वप्न जैसा दिखाई देता है। यह 'चित्त' आत्मा के समान निर्विकल्पक साक्षी रूप तथा निर्मल दर्पण के समान है। इच्छा न होने पर भी उसमे तीनो लोक प्रतिबिंबित होते है। वह सभी के स्वरूपवाला, चिदाकाश रूप, अखड तथा एक है। इस प्रकार की भावना करने से चित्त चपलता त्याग देता है। शिला पर खिची रेखा एव उपरेखा के समान तीनो लोको युक्त ब्रह्म के दर्शन करने चाहिए। 'चित्त' मात्र के अतिरिक्त किसी कारण से इस विश्व की उत्पत्ति नही हुई। इस अनुभूति के बाद माया से दूर तथा संशयों से रहित होकर केवल चिन्मात्र के दर्शन करो। 'जो जानना था जान लिया; जो देखना था देख लिया, लंबे समय से थकने के बाद अब मुझे आराम मिला है'। इस प्रकार परम पद की प्राप्ति पर सकल्पों एवं काल को अर्थहीन कर देनेवाले साधक दोषो से मुक्त होकर ब्रह्म पद को प्राप्त करते है। (51-60)

'जिसका चित्त शांत हो तथा जो अमनस्क हो गया हो उसकी मेधा (बुद्धि) वृद्धि को प्राप्त होती है। मन की वृत्तियों के नष्ट होने पर मानसिक सकल्पो के त्याग के अभ्यास से परिपक्व मनवाले वेदांत के मनन में लगे रहते है। तब वे हेय (अनुपयोगी) तथा उपादेय दोनों ही पदार्थों का त्याग कर देते हैं। जो प्रपंच को नही देखते, जानने योग्य परमतत्त्व मे लीन रहते हैं, ससार के नीरस तथा सरस सभी का त्याग करके विरक्त हो गए है, इस मोहमय जगत के प्रति सोए जैसे हो गए है, जिन्होंने प्रबल वैराग्य से सासारिक जाल को चूहे के समान काट डाला है और जिनकी हृदय ग्रथि खुल गई है, वे सुदर परिणामवाले जल के समान शुद्ध हो जाते हैं। पिजडे से मुक्त पक्षी के समान जब मन मोहपाश से मुक्त हो जाता है तब वह द्वंद, आलब, राग आदि से रहित हो जाता है। देह के दुरात्म भाव के शात तथा प्रपच से मुक्त व्यक्ति का चित्त पूर्ण चद्रमा के समान सुशोभित होता है। जो यह सोचता है कि 'न तो मै हू न कोई अन्य वस्तु ही है केवल एक ब्रह्म ही सर्वत्र है,' वही वास्तव मे, 'सत' एव 'असत' को पहचाननेवाला है। जैसे मन अनुराग न होने पर भी दर्शन, द्रष्टा एव दृश्य की ओर खिच जाता है, ज्ञानी लोग वैसे ही अनासक्त भाव मे सासारिक कर्तव्य पूर्ण करते है। (61-70)

'जैसे उपकार किए जाने पर चोर मित्रता का निर्वाह करता है, उसी प्रकार भली प्रकार से भोगे हुए भोग भी सतुष्टि प्रदान करते है। जहा की आशा न हो उस गाव में आ जाने पर जैसे पथिक उसे आश्चर्य से देखता है, वैसे ही ज्ञानी भोगमय ऐश्वर्यों को देखते है। वश में हुआ मन थोडे भोगो को

71. त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शाति. शांति शाति ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, उस पूर्ण से ही इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अत पूर्ण से पूर्ण को ले लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के ताप शात हो।

त्रिशिखी ब्राह्मण आदित्य लोक पहुचा और उसने भगवान आदित्य से पूछा 'भगवान । देह, प्राण, कारण तथा आत्मा क्या है ?' इसके उत्तर मे आदित्य बोले, 'इस सबको शिव ही समझना चाहिए। वही नित्य, शुद्ध, निरजन, विभु, अद्वय, शिव अपने एक प्रकाश से तपाए गए लोहे के पिड के समान सबको अनेक रूपों में बनानेवाला है। यदि यह कहा जाए कि वह प्रकाश करनेवाला कोन है ? तो इसका उत्तर होगा कि अविद्या से संयुक्त ब्रह्म ही 'सत' कहा जाता है। ब्रह्म से अव्यक्त, अव्यक्त से महत, महत् से अहकार, अहकार से पाच तन्मात्राएं, तन्मात्राओ से पाच महाभूत तथा इन पाच महाभूतो से यह जगत उत्पन्न होता है, वह सपूर्ण भूतो के विकार से उत्पन्न विभाग ही हे। यदि प्रश्न किया जाए कि भूतों के विकार से एक ही पिड अनेक रूपो मे किस प्रकार विभक्त होता है ? तो समाधान यह है कि इनके कार्य-कारण भेद रूप से कार्य-कारण, वाच्यस्थान तथा देवता कोश विभाग होते है। अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहकार, ये पाच आकाश हैं, समान, उदान, व्यान, अपान एव प्राण, ये पांच वायु है, श्रोत (कान), त्वचा, चक्षु (आख), जिह्वा एव घ्राण, ये पाच अग्नि हे, शव्द, स्पर्श, रूप, रस एव गध, ये जल है, वाणी, पाव, हाथ, पायु (गुदा) एव उपस्थ (जननेंद्रिय), ये पाच पृथ्वी हैं। (1-5)

'ज्ञान, सकल्प, निश्चय, अनुसधान ओर अभिमान आकाश के कार्य तथा अतःकरण के विषय है। समीकरण, आख खोलना, पकडना, सुनना एव सास लेना, ये वायु के कार्य तथा प्राण आदि के विपय हैं। शव्द, स्पर्श आदि अग्नि के कार्य और ज्ञानेद्रियों के विपय हे। बोलना, लेना आदि पृथ्वी के कार्य तथा कर्मेद्रियो के विपय है। मन, वुद्धि, चित्त एवं अहकार, ये अतर्भूत हे। अवकाश, हटाना, दर्शन आदि सूक्ष्म तन्मात्राओं के विपय हें। आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक वारह प्रकार के अग हैं। यहा चद्रमा, ब्रह्मा, दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, इद्र, विष्णु, प्रजापति और यम इद्रियो के देवता हे। प्राण वारह नाडियों मे स्थित रहते हैं। इन अगो का ज्ञान ही ज्ञाता है। आकाश, वायु, अग्नि, जल एव अन्न इनका पचीकरण इस प्रकार है—समान के योग से कानो द्वारा शव्दो के गुण वाणी में, आकाश में स्थित हैं। वुद्धि उदान के योग मे है। चक्षु द्वारा रूप पाद के आश्रय मे अग्नि में स्थित है। चित्त अपान के योग मे है। रस गुण जिह्वा द्वारा उपस्थ के आश्रय मे

भी अत्यधिक क्लेशकारक मानता है। अन्य राज्यों द्वारा आक्रमण न होने पर राजा अपने राज्य को भी तुच्छ-सा मानने लगता है, वही राजा बंदी बनाए जाने पर मुक्ति प्राप्त करके एक ग्रास को भी मूल्यवान समझता है। दातों से दातो को दबाकर हाथों से हाथों को मलकर तथा अगो को भीचकर मन को जीते। विश्वरूपी सागर मे इसे जीतने से बढकर अन्य उपाय नही है। घोर नरक मे दुष्कर्म गजराज जैसे घूमते है। आशा शस्त्रो से सजी हुई शत्रु रूपी इद्रियों को जीतना अति दुष्कर है। अहकार का दमन करके इन इद्रियो को जीत लेने पर भोगो के प्रति रुचि हेमत ऋतु मे कमल के समान सूख जाती है। मन की एकाग्रता के अभ्यास से हृदय की वासना दूर हो जाती है। विवेकी लोग अपने मन को सेवक के समान अपने अधीन कर लेते हैं, सपूर्ण इंद्रियो को वश मे कर लेनेवाला सामंत के समान है। मननशील व्यक्ति का मन लालन करनेवाली ललना के समान स्निग्ध तथा पालन करनेवाले पिता के समान होता है। (71-80)

'शास्त्रो के अनुकूल आचरण तथा स्वयं के अनुभव से प्राप्त बुद्धि के प्रकाश से मनरूपी पिता परम सिद्धि प्रदान करता है। आत्मगुणों से तेजोमय मनरूपी मणि हृदय मे शोभा पाता है। इस वासना के कीचड से कलकित मनोमणि को विवेक रूपी जल से शुद्ध करना चाहिए। विवेकपूर्ण बुद्धि से सत्य का दर्शन करो। इसी से इद्रिय शत्रु नष्ट होगे तथा ससार से पार हो जाओगे। संसार मे आशा ही दु खो की जननी है। विश्व के प्रति अनास्था ही सुख का कारण है। वासना मे बधे रहने से विश्व पुन-पुन प्रकट होता है। यह वासना अत्यधिक दु ख देनेवाली तथा सुखो का समूल नष्ट करनेवाली है। इसके पाश में धीर, कुलीन, महात्मा आदि जजीरों से सिह के समान बध जाते है। शास्त्रो के अनुकूल श्रेष्ठ आचरण करनेवाला कौन व्यक्ति सिद्धि नही प्राप्त करता? 'मै ही यह सपूर्ण विश्व हू, अच्युत परमात्मा हू मुझसे भिन्न कुछ भी नही है;' ऐसी भावना ही श्रेष्ठ है। 'मै इस सबसे अभिन्न हूं और मेरा साकार बाल की नोक से भी सूक्ष्म है;' ऐसी अनुभूति मुक्ति देनेवाली है, न कि बधन देनेवाली। जीवन्मुक्त पुरुष को ऐसा ही अनुभव होता है। (81-91)

'मै हाथ-पांव सहित देहवाला हू', यह एक तुच्छ सासारिक अनुभव है। अहकारयुक्त दुरात्म भाव ही सासारिक दु खो के वृक्ष की जड है। इसकी मार से जीव का पतन होता है। इस दु ख देनेवाले अहकार को छोडकर श्रेष्ठ अह (मै ब्रह्म हू) को प्राप्त करने से परम शाति के साथ ही कल्याण की प्राप्ति होती है। प्रथम दो अहंकारों में लगते हुए तीसरे अहकार का त्याग करे और साधना-शक्ति बढने पर उन दोनो को भी त्याग दे फिर अहकार रहित रहे। इसी से उच्च पद की प्राप्ति हो सकती है। किसी भी प्रकार के भोगों की इच्छा बधन ही है और इसे त्यागना ही मुक्ति है। मन के नाश से ही मन की उन्नति होती है। महान ज्ञानियों का ही मन नष्ट होता है। ज्ञानी लोग मन को न तो आनंदमय मानते हैं न आनंदहीन, न चल मानते है न अचल, न 'सत' न 'असत' और न ही इनके बीच की अवस्था ही। सभी सकल्पो एवं नामो से रहित इस अविनाशी चिदात्मा को स्व आत्मा कहा जाता है। (92-100)

'यह अद्वैत चेतन सत्ता सबमें व्याप्त होते हुए भी 'चित्त' मे स्थित सूक्ष्म आकाश के समान दिखाई नही देती। ज्ञानी लोग इसे आकाश से भी सौ गुने स्वच्छ रूप मे अवयवरहित देखते हैं, वे स्वय के ही रूप सपूर्ण जगत को देखते हैं। इस सत्ता का कभी उदय या अस्त नही होता। वह

मूल मे स्थित है। प्राण के योग से अहंकार है। घ्राण द्वारा गध गुण गुदा मे आश्रित तथा पृथ्वी मे स्थित है।' (6-9)

'प्रत्येक तत्त्व के आधे भाग और दूसरे तत्त्व की सोलह कलाओं के क्रम से अत करण, व्यान, आख, रस एव वायु अर्थात् आकाश आदि पाच तत्त्वो की स्थिति है। आकाश आदि प्रत्येक के मुख्य भाग मे शेष भूतों के चार-चार भाग रहते है। मुख्य भाग के ऊपर और नीचे के भाग को क्रमश सूक्ष्म एव स्थूल समझना चाहिए। ये इसी प्रकार एक-दूसरे के अश में सम्मिलित होते है और एक-दूसरे का आश्रय लेकर परस्पर मिले रहते है। इन्ही के योग से पृथ्वी चेतन तत्त्व से युक्त है। तब इस पृथ्वी से औषधि, अन्न, चारो प्रकार के पिड, रस, रक्त, मास, मेदा, अस्थि, वीर्य, मज्जा आदि धातुओं की उत्पत्ति हुई।'

'इनके योग से पिडो की उत्पत्ति भी होती है। नाभि-मडल मे अन्नमय पिड स्थित है। इसके बीच में नाल सहित पदमकोश के समान हृदय है। इसमे कर्तृत्व अहंकार युक्त देवता है। मोहरूपी तमोगुण पिड कंठ में आश्रित है, जो समस्त मिथ्या भूतमय जगत मे व्याप्त रहता है। प्रत्येक आनदमयी आत्मा परमपद मूर्छा मे स्थित है, यह अनत शक्ति से युक्त होकर जगत को प्रकाशित करता है। यह जागृत, स्वप्न एव जागृत अवस्था मे सर्वत्र विद्यमान रहता है, किंतु सुषुप्ति एव तुरीय अन्य अवस्थाओ में नही रहता। उत्तम फलों में रस के समान सर्वत्र शिव स्वरूप चार रूपो मे वर्तमान रहता है। अन्नमय कोश के अदर अन्य कोश स्थित हैं, जैसे कोश हैं, वैसा ही जीव तथा जैसा जीव है, वैसा ही शिव है। इन दोनो में अतर यह है कि जीव विकारोवाला है, कितु शिव निर्विकार है। कोश ही जीव के विकार तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओ को बनानेवाले हैं। जैसे दूध को मथने से झाग पैदा होता है, वैसे ही मन के मथन से बहुत से विकल्प पैदा होते है। कर्म मे लगे रहने से ही कर्मो की उत्पत्ति होती है। इसके त्याग से शाति मिलती है। दक्षिण अयन को प्राप्त होने से प्रपंच में लिप्त होना पड़ता है।' (10-15)

'अहकार युक्त होने पर परमात्मा शिव ही जीव बन जाता है। अविवेक एव प्रकृति का सयोग इसे मोहग्रस्त कर देता है। वासनाओ के वश मे पडकर यह अनेको योनियो मे जाता है और मछली के समान सर्वत्र भटकता रहता है। काल के कारण तब इसे आत्मज्ञान एव विवेक होता है और एक के बाद दूसरे स्तर को प्राप्त करता है। तब यह प्राणो को मूर्धा मे धारण करता हुआ योग का अभ्यास करता है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है तथा ज्ञान से योग मे प्रवृत्ति होती है। ज्ञान-योग मे मदा सलग्न रहनेवाला योगी नष्ट नही होता। वह विकारों मे सदा ही शिव को देखता है और निर्विकार शिव के ध्यान मे लगा रहता है। ऐसे ज्ञान से रहित योगी को सिद्धि प्राप्त नही होती। अत इसके अभ्यास से मन से प्राणो को निरुद्ध करे। आठ अगोवाले योग की साधना से प्राणमयी शिखा उत्पन्न होती है। ज्ञान एव कर्म के भेद से योग दो प्रकार का है। कर्म योग के अनुसार जिसका चित्त व्याकुल नही होता, वह विषयो के बधन से मुक्त रहता है। शास्त्रो के बताए कर्मो मे मन का निग्रह कर्म योग है, तथा चित्त को सदा आत्मकल्याण मे लगाए रखना ज्ञान योग है, जो सभी सिद्धियो को देनेवाला है। दोनों प्रकार के योगो मे निर्विकार मन से रहने पर श्रेष्ठ मोक्ष प्राप्त होता है। शरीर तथा इंद्रियों के प्रति विरक्ति तथा परम तत्त्व मे सतत अनुरक्ति क्रमश यम एव नियम है। सभी वस्तुओ

गमन-आगमन, उठने-बैठने से रहित है, वह आधार एव विकल्प से रहित निर्मल प्रकाश रूप है। शांति, दमन आदि से चित्त के अंतःकरणों को निर्मल बनाना गुरु का प्रथम कर्तव्य है। इसके बाद शिष्य को ब्रह्म का स्वरूप-बोध कराना चाहिए कि यह सब तथा तुम ब्रह्म ही हो। अज्ञानी या अर्धज्ञानी को ऐसा उपदेश देना उसे नरक मे धक्का देने के समान है। प्रबुद्ध, समाप्त भोगेच्छा वाले तथा आशा रहित को ही यह ज्ञान देना चाहिए। उसे समझाना चाहिए कि अविद्या या मन कुछ भी नही है। जैसे दीपक होने पर ही प्रकाश होता है, सूर्य उदय पर ही दिन होता है तथा पुष्प के होने पर सुगध होती है, वैसे ही चित्त के होने पर ही संसार है। वस्तुतः ससार है ही नही। जब चित्त का नाश हो जाएगा, तो संसार का भ्रम भी दूर हो जाएगा। यह केवल आभास है। ज्ञान होने पर जब आवरण (माया का) हट जाएगा, तब तुम स्वय ही अपने स्वरूप को जानकर उसमे स्थित हो जाओगे और तुम्हे मेरे उपदेश की सार्थकता मालूम हो जाएगी। (101-109)

'उत्कृष्ट अविद्या स्वार्थ को नष्ट करने के लिए तैयार है, इसी से सभी दोषो को नष्ट करनेवाली विद्या प्राप्त होगी। शस्त्र ही शस्त्र को काटता है, मल से मल ही घुलता है, विष ही विष को नष्ट करता है तथा शत्रु ही शत्रु को मारता है। इसी तरह यह भूतो की माया स्वय को ही नष्ट करके प्रसन्न होती है। इसका स्वभाव दिखाई नहीं देता, दिखाई पडते ही यह नष्ट हो जाती है। इसके अस्तित्व को न मानकर सब कुछ ब्रह्म ही है, ऐसा मानना मोक्ष प्राप्त कराता है। ऐसा न मानना ही अविद्या है, अत इस भेद को त्याग देना ही उचित है। जो नष्ट नही होता उसे अक्षय पद कहते है। माया की उत्पत्ति किसके द्वारा हुई इस पर तथा इसे कैसे नष्ट किया जाए इस पर विचार करो। जब यह नष्ट हो जाएगी, तभी अक्षय पद प्राप्त होगा। इस सबके लिए इसके कारण मन को ही वश मे करना होगा, जिससे यह तुम्हे बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में न डाल सके और चित्त रूपी समुद्र स्वय मार्ग दे। दृढ भावना के साथ 'चित्त' सत्ता की अखडता को मानो। वह चित्त-शक्ति चिन्मय सागर से कुछ क्षुभित हो रही है। इस सागर से निर्मल चिन्मय की लहरे उठ रही है। वायु स्वय ही जैसे आक.रा मे उद्वेलित होता है, वैसे ही स्वात्मा मे आत्मा तरगे लेता है। आत्मा सर्वशक्तिमान होने से इस प्रकार का स्फुरण क्षणमात्र के लिए होता है। (110-120)

'जिस आत्मशक्ति को देशकाल (समय एव दूरी) चलायमान नही कर सकते है, वह एक अनत एवं उच्च पद मे स्थित है। वह परिमित होने के कारण रूपभावना-वाली होती है। रूप की भावना के कारण नाम सख्या आदि से जोड़ दिया जाता है। चित्त शक्ति का यही रूप देश, काल एव आधार है। यह विकल्पो को धारण करनेवाला है और क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यही वासना की कल्पना मे अहकार को धारण करता है। निर्दोष एव निश्चय करानेवाला अहंकार ही बुद्धि है। सकल्प रूप धारण करने पर बुद्धि ही मन बन जाती है। घोर विकल्पों मे पड जाने से शनैः-शनैः मन ही इद्रिय भी बन जाता है। ज्ञानी हाथ-पाव युक्त देह को ही इद्रिया कहते हैं। इस प्रकार सकल्प एव वासना की डोर मे लिपटा जीव दु खों के जाल से नीच गति को प्राप्त होता है। शक्तिमान चित्त भयकर अहकार के कारण रेशम के कीडे की तरह स्वय बधन मे पडता है। जजीरो मे बधे सिह के समान 'चित्त' शक्ति अपनी ही कल्पना के पाश मे बध जाता है और विवश हो जाता है। इस आत्मा को ही कही मन, कही बुद्धि, कही ज्ञान, कही क्रिया, कही अहकार, कही चित, कही प्रकृति, कही माया, कही मल,

के प्रति उदासीनता आसन है, जगत के मिथ्यापन का ज्ञान प्राणायाम है तथा चित्त का अतर्मुखी होना प्रत्याहार है ।' (16-30)

चित्त की निश्चलता धारणा है । 'मैं वही चिन्मात्र हू' यह भावना ध्यान है । ध्यान को भी भूल जाना समाधि है । अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, अल्प भोजन तथा शुद्धता, ये दस नियम है । तप, संतोष, दान आस्तिकता, आराधना, वेदांत श्रवण, लज्जा, मति एव जप ये व्रत है । स्वस्तिक आदि आसनो का वर्णन इस प्रकार है । दोनो पैरो के तलुओ को दोनों जाघो के बीच में रखकर बैठना स्वस्तिकासन है । पीठ मे बायी ओर दाहिनी तथा दाहिनी ओर बायी एडी को टिकाकर गाय के मुख जैसा गोमुख आसन होता है । एक पांव को दाहिने तथा दूसरे को बाए जाघ पर रखने मे वीरासन बनता है । दाहिनी एवं बायी एडियो को क्रमश गुदा के बायी और दाहिनी तरफ लगाकर बैठने से योगासन बनता है । दोनो जाघो मे दोनों पैरो के तलुओ को लगाकर बैठना पद्मासन है, जो समस्त रोगो एवं विषो का नाशक है । पद्मासन में अच्छी तरह बैठकर दाहिने हाथ से बाएं पैर के तथा बाए हाथ से दाहिने पैर के अगूठे को पकडकर बैठना बद्ध पद्मासन कहा जाता है । (31-40)

'पद्मासन मे बैठकर दोनो हाथो को घुटनो और जाघो के बीच से भूमि मे टिकाकर शरीर को ऊपर उठाना कुक्कुटासन है । कुक्कुटासन मे दोनो भुजाओ से कधो को बाधकर कछुए के समान सीधा बन जाना उत्तान कूर्मासन है । पैरो के अगूठो को पकड़कर पीछे से कानो तक खीचना धनुरासन है । सीवनी को विपरीत ओर से दोनो एडियों से दबाकर दोनो घुटनो तथा हाथो को फेला लेना सिहासन है । अडकोश के नीचे सीवनी के दोनो ओर एडियो को लगाकर हाथो को बाधने पर भद्रासन कहा जाता है । सीवनी के दोनो ओर विपरीत एडियों से दबाकर बैठना मुक्तासन है । हथेलियो को भूमि से लगाकर कुहनियो को नाभि के दोनों ओर टिकाए फिर शरीर को सीधा इसके सहारे शून्य मे उठा लेने पर मयूरासन होता है । बायी जाघ के मूल मे बाए हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकडने से मत्स्यासन होता है । बायी एडी को सीवन पर तथा दाहिने पैर को उपस्थ के ऊपर लगाए । इस स्थिति में सीधा बैठने से सिद्धासन बनता है । पैरो को भूमि मे फैलाकर उनके अंगूठो को पकड़ें तथा सिर को घुटनों में रखे, यह पश्चिमोत्तान आसन कहा जाता है ।' (41-50)

' जिस स्थिति में बैठने से सुख और धैर्य मिलता है, उसे सुखासन कहते है । निर्बल लोग इसी का अभ्यास करें। आसनों में प्रवीणता तीनों लोको को जीतने के समान है । यम, नियम तथा आसनो से नाडी शुद्धि के बाद प्राणायाम करे । मानव देह उसकी छियानवे अगुलियो के बराबर होता है । प्राण इससे बारह अगुल अधिक होता है । शरीर की वायु को इसी की अग्नि मे कम या समान करने मे ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होता है । देह के मध्य मे तपे सोने के समान त्रिकोण अग्नि है । पशुओं एव पक्षियों में यह अग्नि क्रमश चतुष्कोण तथा गोल होता है । सर्पादि मे छ कोणवाला तथा स्वेदजो मे (जूओ आदि मे) आठ कोणवाला अग्नि होता है । मानव शरीर मे नौ पर नौ अगुलियों के बराबर दीपक समान प्रकाशवाला एक कद होता है, जो चार अगुल चौडा होता है । पशु-पक्षियो मे यह अडाकार होता है । इसके मध्य में नाभि है । वहा बारह अरोंवाले चक्र मे विष्णु आदि की मूर्तिया है । ब्रह्म इस चक्र को अपनी माया मे घुमाता है । इन अरो मे जीव [illegible]

कहीं कर्म, कही बंधन, कही पुर्यष्टक, कहीं विद्या तथा कही इच्छा कहा गया है। यही समस्त आशामय ससार पाश का निर्माता है, जैसे बिना फल का वट का बीज विशाल वृक्ष को अपने मे धारण करता है, वैसे ही यह भी जगत को धारण करता है। (121-133)

'यह मन चिता की अग्नि में जला हुआ, क्रोध के अजगर द्वारा चबाया हुआ एव कामरूपी समुद्र के भवर मे फसा हुआ अपने पितामह आत्मा को भी भूल गया है। अत: सर्वप्रथम दलदल मे फसे हुए इस हाथी का उद्धार करो। ब्रह्म की कल्पना से असख्य जीव, अनेक भेदो से उत्पन्न हो रहे हैं। जैसे झरने मे जल के छीटे उत्पन्न होते हैं, वैसे ही ये भविष्य मे भी उत्पन्न होते रहेगे। कुछ भाव सैकडो बार उत्पन्न हो चुके है, कुछ दो-तीन बार तथा कुछ प्रथम बार ही जन्म ले रहे हैं। इन्होने अनेको नाम एव रूप धारण किए है। कुछ किन्नर, गधर्व, यक्ष, नाग के रूप मे, कुछ चद्रमा, सूर्य, वरुण आदि रूपो मे, कुछ ब्राह्मण, राजा, वैश्य आदि में, कुछ औषधि, मूल, फल आदि मे, कुछ पर्वत, समुद्र, दिशा आदि-आदि रूपो मे उत्पन्न हुए है। इधर-उधर उछाली जाती हुई गेद के समान, कुछ बार-बार मृत्यु द्वारा प्रताडित हो रहे हैं। अनेको ऊपर उठकर पुन. गिर रहे है। कुछ विवेकी होकर भी अच्छे कर्म न करने से हजारो जन्म लेने पर भी इससे नही छूट रहे है। दिशा एव काल के प्रभाव से तथा आत्मशक्ति से जब यह आत्मतत्त्व शरीर धारण करता है, तब यही वासना से प्रभावित सकल्पो की ओर जानेवाला चपल मन हो जाता है। तब मन शक्ति संकल्पो से तुरत आकाश के समान स्वच्छ भावनावाला तथा शब्द रूपी अकुरित बीजयुक्त हो जाता है। (134-145)

'फिर इसमे सघनता आने से स्पंदन होता है और स्पर्श का अकुर फूट पडता है। दृढ अभ्यास से अब शब्द एव स्पर्श रूप आकाश की उत्पत्ति होती है। इसके वायु के साथ टकराने से अग्नि पैदा होती है। इस तन्मात्र के सहयोग से यह त्रिगुण युक्त हो जाता है। तीनो गुणो के साथ मन पुन तन्मात्रा की इच्छा करता है और शीतल गुण को विचारता हुआ जल का अनुभव करने लगता है। फिर चारो से संयुक्त होकर गध तन्मात्रा युक्त तथा पृथ्वी तत्त्व का अनुभव करता है। पाचो तन्मात्राओं से युक्त होकर सूक्ष्मता को त्याग देता है तथा आकाश मे चिगारियों के समान चमकते हुए शरीर को देखता है। वह शरीर अहकार एव बुद्धि युक्त पुर्यष्टक कहलाता है, जो प्राणियो के हृदय कमल मे घूमनेवाले भवरे के समान है। पकने पर मोटे बने बेलफल के समान सूक्ष्म शरीर तेजस्वी भावना से स्थूल हो जाता है। फिर स्वभाव के अनुसार इसमे ऊपर सिर, नीचे पाव, बगलो मे भुजाए तथा बीच मे उदर के समान हो जाता है अर्थात पूर्ण शरीर प्राप्त हो जाता है। वही यह शरीर बुद्धि, बल, उत्साह, ज्ञान एव ऐश्वर्य से युक्त होकर लोक पितामह ब्रह्मा बन जाता है। (146-157)

'ब्रह्मा त्रिकालदर्शी है। उन्होने अपने सुंदर शरीर को देखकर चिन्मात्र परमाकाश के विषय मे सोचा कि अब इसमे सर्वप्रथम क्या किया जाए ? उन्हे आत्मदृष्टि से अतीत की अनेको सृष्टिया दिखाई दी। उन्होने मानसिक सकल्प से अनायास ही अनेक रूप-रगोवाले प्राणियो को पैदा किया। उनके धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय) के लिए उन्होने विभिन्न प्रकार के आचार-विचार, शास्त्र, स्वर्ग, नरक आदि बनाए। यह मन ब्रह्म रूप ही है, क्योकि यह कल्पना से ही ससार मे स्थित है, अत. ब्रह्मा के जीवन पर ही इसका जीवन भी है। ब्रह्मा की आयु समाप्त होने पर

के समान घूमता रहता है।' (51-60)

'जीव प्राण पर चढ़कर ही घूमता है। इसके ऊपर नाभि के वगल में कुडली का स्थान है। यह आठ कुडलियों की प्रकृति वाली है और वायु तथा अन्न-जल आदि के सचार को रोकती है। यह ब्रह्म रध्र के मुख को अपने मुख से ढके रखती है। योग काल मे यह वायु एव अग्नि से प्रवुद्ध होकर नाग के समान उज्ज्वल होकर हृदयाकाश में चमकने लगती है। अपान से दो अगुल ऊपर तथा मेढ्र से नीचे मानव शरीर का मध्य भाग होता है। चौपायो में तथा अन्य प्राणियो मे यह स्थान क्रमश हृदय तथा नाभि में होता है। अनेक नाडियो से ढकी हुई सुषुम्ना देह में चार प्रकार से सुशोभित है। कद मध्य मे यह कमल नाल के समान ऊपर को जाती है। ब्रह्म विवर मे वैष्णवी ब्रह्मनाडी विद्युत के समान प्रकाशित होकर निर्वाण प्राप्त कराती है। इसके दोनों ओर इडा एव पिंगला है। इडा कद से बायी नासिका तक तथा पिगला दक्षिण नासिका तक है। गाधारी तथा हस्तजिह्वा ये दो नाडिया उनके सामने तथा पीछे से वाम एव दक्षिण आख तक पहुचती है।' (61-70)

'पूषा एव यशस्विनी नाडिया वही से वढकर वाए एव दाहिने कान तक पहुचती है। अलम्बुषा नाडी नीचे मेढ्र के अत तक गई है। कौशिकी नाडी कद से पैर के अगूठे तक है। ये दस मुख्य नाडिया कद से निकली है। इनसे वहत्तर हजार स्थूल एवं सूक्ष्म नाडिया उत्पन्न होती है। इनके अतिरिक्त भी पीपल के पत्ते की शिराओं के समान देह मे असख्य नाड़िया है, जिनकी गणना सभव नही है। नाडियो में प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनजय, ये दस वायु चलते है। इनमे प्रथम प्राण आदि मुख्य हैं। प्राण एव अपान सर्वाधिक महत्त्व के है, जो जीव को धारण करते है। मुख, नासिका मध्य, हृदय, नाभिमडल एव पाव का अगूठा प्राण के मुख्य स्थान है। अपान, पायु, उपस्थ, जाघ तथा घुटनों मे, समान सव अगों में तथा उदान हाथो, पैरो एव जोडों मे रहता है।' (71-80)

'व्यान, कान, जांघ, कमर, एडी, कधे तथा गले में रहता है। नाग, कृकर आदि पाच उपवायु अस्थि, त्वचा इत्यादि में रहते है। आमाशय में अन्न, जल, रस आदि को प्राण वायु अलग-अलग करता है और स्वयं पृथक् रहता है। मल-मूत्र त्याग कार्य अपान वायु करता है। प्राण, अपान आदि की चेष्टाए व्यान के सयोग से होती है। उदान इन्हें ऊर्ध्वगामी करता है। समान वायु शरीर का पोषण करता है। डकार आदि नाग के, आखें खोलना, वद करना कूर्म के, भूख लगना कृकर का, निद्रा आदि देवदत्त के तथा मृत देह की शोभा आदि धनजय के कार्य हैं। नाडियो एव वायुओ के स्थानो और चेष्टाओं को सही रूप मे जानना चाहिए। इस प्रकार से नाडियों के शुद्ध हो जाने पर सव प्रकार की आसक्ति को छोडकर एकात स्थान में योग के साधन जुटाने चाहिए, जव तक दोनो ओर से समानता न हो तव तक लकडी, कुश या कृष्ण मृग के चर्म आदि के आसन में बैठकर रुचि के अनुसार स्वस्तिक आदि आसन लगाकर आसन साधना करनी चाहिए।' (81-90)

'आसन मे शरीर को सीधा रखें। दृष्टि नाक के आगे हो, दात मिले हुए न हो। जिह्वा तालु से लगाकर प्रसन्नचित्त बने। सिर को थोडा सकुचित योग मुद्रा मे हाथो को वाधकर प्राणायाम करे। रेचक, पूरक तथा वायु की शुद्धि करें। वायु को चार प्रकार चलाना प्राणायाम है। दाहिने हाथ से एक छिद्र को दबाकर पिगला से रेचक करे। फिर सोलह मात्राओं में इडा से पूरक तथा चौसठ मात्राओ तक कुभक के बाद बत्तीस मात्राओ मे पिगला से रेचक करें। इस प्रकार बार-वार विपरीत स्वरो से

यह भी समाप्त हो जाता है। वस्तुत. किसी का भी जन्म या मरण नही होता। सभी दृश्य जगत मिथ्या है। यह आशामय सर्पो की पिटारी त्यागने योग्य है। इसे असत मानकर रहना चाहिए। अनेक प्रकार से सजाए हुए या न सजाए हुए इस मायायुक्त जगत को त्यागना ही उचित है। धन, पत्नी आदि सब माया एव दु.ख देनेवाले है। इनकी वृद्धि से किसे सुख मिला ? (158-168)

'अज्ञानियों को जिनसे अनुराग होता है, उनसे ज्ञानी विरक्त रहते हैं। अत जिस वस्तु का अभाव है उसकी इच्छा न करो। जो वस्तु सरलता से प्राप्त हो जाए, उसी को ग्रहण करो। अप्राप्त भोगों को न चाहना तथा प्राप्त का उपभोग करना ही विद्वान का लक्षण है। 'सत' एव 'असत' के बीच शुद्ध पद का ज्ञान एव उसका आश्रय लेकर सभी दृश्यो को त्याग देना ही कर्म है। इच्छा-अनिच्छा को समान माननेवाले ज्ञानी इसमें वैसे ही लिप्त नहीं होते, जैसे कीचड मे उगने पर भी कमल का पत्ता उससे दूर रहता है। यदि तुम्हारे हृदय को इंद्रिय विषय विचलित नही करते, तो तुम नि सदेह जानने योग्य (ज्ञेय) को जानकर भवसागर से पार हो जाओगे। वासनायुक्त पुरुषो के संपर्क मे रहकर भी यदि चित्तवृत्ति को उनसे शीघ्र हटा लिया जाए, तो उच्च पद प्राप्त हो सकता है। ससार सागर वासना-जल से भरा है। ज्ञानी प्रज्ञा की नाव से इससे पार हो गए। माया को जाननेवाले इस जगतव्यवहार को न तो त्यागते है और न अपनाते ही है। विद्वान सकल्प के अकुरित होने को भी चेतन का विषयों की ओर उन्मुख होना ही मानते है। (169-178)

'शनै-शनै सकल्पों के दृढ होने पर चित्त आकाश को ढककर जड़ बना देते है। तब वह चेतन विषयों से स्वय को पृथक मानता हुआ सकल्प रूप मे स्थित हो जाता है। इससे उसकी क्रिया स्वय प्रकट होकर शीघ्र बढने लगती है, किंतु यह क्रिया दु खद होती है। अत· चित्त मे सकल्प-क्रिया को रोको। यदि यह हो भी जाए, तो इसमे पदार्थ-भावना न आने दो। सकल्पो को नष्ट करने के लिए तत्पर लोग उसे क्रियात्मक होने ही नही देते। भावना के नष्ट होने पर सकल्प स्वयमेव नष्ट हो जाते है। मन से मन को तथा सकल्प से सकल्प को नष्ट करके आत्मरूप मे स्थित होकर कुछ भी दुष्कर नही है। आकाश के समान ही यह जगत भी शून्य है। जैसे चावल प्राप्त करने एव ताबे की कालिमा दूर करने के लिए कर्म किया जाता है, वैसे ही साथ ही उत्पन्न हुए मन को भी शुद्ध किया जाता है, अत उद्योग करो। (179-186)

षष्ठ अध्याय

'आतरिक आस्था तथा भावो-रूपी सपत्ति को त्यागकर यथार्थरूप मे जगत मे रहो। स्वय को कर्ता न मानते हुए अमृत नामक परम समता ही शेष रहती है। खेद एव उल्लास दोनो को ही स्वकल्पित मानने से समता को धारण करने पर पुनर्जन्म चक्र छूट जाता है। या कर्तव्य को त्यागकर मन को पीकर स्थिर वनो, फिर सर्वस्व का त्यागकर दो। तव चेतन प्रकाश और अधकार दोनो वन जाता है; क्योंकि यही मानसिक सकल्पो का रूप धारण करता है। अत वासनाओ के मूल कारण को त्यागकर व्याकुलता को पास भी न फटकने देनेवाला ही मुक्त है। वह भ्राति से दसो दिशाओ में सब कुछ देखता है। इसके लिए ससार गाय के पद के समान है। आत्मा देह मे अदर-बाहर, ऊपर-नीचे सर्वत्र है, सभी दिशाओं में है तथा विश्व कही भी आत्मा से रहित नही है। (1-10)

अभ्यास करे। कुंभक में देह को घड़े के समान भरें। इससे नाड़ियों में भरकर वायु अच्छी तरह चलने लगते है। हृदय कमल खिल जाता है और उसे परम शुद्ध भगवान के दर्शन होते है। प्रात, दोपहर, सायं तथा मध्य रात्रि में इसी प्रकार अस्सी मात्राओं तक कुंभक का अभ्यास करना चाहिए।' (91-100)

'इस विधि से एक दिन भी प्राणायाम करने से सभी पापो से मुक्ति मिल जाती है, तीन वर्ष तक इसका अभ्यास योगसिद्धि देता है। ऐसा योगी वायु और इंद्रियो को जीत लेता है। वह कम भोजन करनेवाला, कम सोनेवाला तथा तेजस्वी एवं बलवान होता है। उसकी अपमृत्यु नष्ट हो जाती है तथा दीर्घ आयु प्राप्त होती है। प्राणायाम में अधम, तथा उत्तम स्तरों में क्रमश पसीना, कपन तथा भूमि से ऊपर उठ जाना इनके लक्षण हैं। अधम प्राणायाम व्याधि एवं पापों का तथा मध्यम प्राणायाम महाव्याधि, पाप एवं रोगो का नाश करता है। उत्तम प्राणायाम में मल-मूत्र घट जाते है, शरीर हल्का हो जाता है, भोजन कम हो जाता है, इद्रियां एवं बुद्धि तेज हो जाती है तथा तीनों कालो का ज्ञान हो जाता है। पूरक एवं रेचक को त्यागकर जो केवल कुभक ही करने लगता है, उसके लिए तीनो कालो में कुछ भी दुर्लभ नही रह जाता। प्रयत्नशील साधक नाभिकंद में, नासाग्र मे तथा पाव के अंगूठे मे मन से प्राण को धारण करे। इससे योगी सभी रोगों एवं दुखों से मुक्त होता है। नाभिकद मे प्राण को धारण करने से कुक्षि रोग नष्ट होते है, नासाग्र मे धारण करने से शरीर हलका तथा दीर्घायु प्राप्त होता है। ब्राह्म मुहूर्त में जीभ से खीचकर वायु पीने से तीन मास में वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। छ मास तक ऐसा करने से महारोगों से छुटकारा मिलता है।' (101-111)

'जो भी अंग रोगवाला हो, उसी में वायु को धारण करने से रोग नष्ट हो जाता है। मन को धारण करने से वायु भी धारण होता है। मन के स्थापन में प्राण साधन है। इंद्रियों को विषयो से हटाकर अपान वायु को ऊपर खीचकर धारण करे और कानों को हाथों से बद रखे इससे मन वश मे होता है। मन के वश में होने पर प्राण वायु भी वश में होकर नासिका में क्रम से आने लगता है। योगियो के नासिका स्वर समान रूप से चलते है। इस प्रकार प्राण वायु के चलने पर वह प्राणो को जीत लेता है। तव वह दिन, रात्रि, पक्ष, मास, अयन आदि को अतर्मुखी होकर जानने लगता है। शरीर के अगूठे आदि अगो मे स्फुरण बंद हो जाने पर अपने जीवन का अत समय समझना चाहिए।' (112-120)

'इन अशुभ सूचक सकेतो को समझकर योगी मोक्ष साधना में लग जाए। जैसे हाथ-पावों के अगूठे में स्फुरण समाप्त हो जाए, उसका जीवन एक वर्ष के भीतर समाप्त हो जाता है। कलाई तथा गुल्फ (टखने) मे स्फुरण वंद हो जाने पर छ. मास में, कोहनी बद हो जाने पर तीन मास में, कुक्षि एव उपस्थ में वंद हो जाने पर एक मास में, नेत्रों में वंद हो जाने पर पद्रह दिन में, जठराग्नि (भूख) के द्वार वंद होने पर दस दिन में तथा ज्योति जुगनू के समान मद पड जाए, तो पाच दिन मे शरीर का अत हो जाता है। जीभ की नोक न दिखाई दे, तो तीन दिन में तथा ज्वाला का दर्शन न हो, तो दो ही दिन में शरीर का अंत समझना चाहिए। इन सबको समझकर अपने कल्याण हेतु जप एव ध्यान मे जुट जाना चाहिए। परमात्मा का ध्यान करते हुए उससे एकरूपता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। शरीर के अठारह भागों में धारणा की जाती है। एक स्थान से दूसरे स्थान को खींचना प्रत्याहार कहा जाता है। पैर का अगूठा, जाघ का मध्य भाग, उरु मध्य, गुदा मूल, हृदय, उपस्थ देहमध्य, नाभि, कठ, कोहनी, तालु मूल, नासिका मूल, नेत्र मडल, भ्रू मध्य, ललाट, मस्तक मूल, घुटने का मूल तथा हाथों का मूल, ये इस पच भौतिक शरीर के मर्मस्थल कहे जाते हैं।' (121-132)

जहा मै नही हू,वह स्थान ही नही है,ऐसी कोई वस्तु नही है,जिसमें आत्मा न हो,सब कुछ उसी से युक्त है । अत मैं किस अन्य वस्तु की इच्छा करू ? सब कुछ ब्रह्म ही है,मैं इससे भिन्न नही हू, ऐसी धारणा बनाकर भ्रांति को त्याग दो । ब्रह्म में कल्पनात्मक भाव नही है, इसमे शोक, मोह, वृद्धावस्था,जन्म आदि कुछ भी नही है । सहजता से प्राप्त वस्तु को भोगो,त्याग एव ग्रहण के भाव से रहित बनो । विरक्त चित्तवाला अपने अनुभवों से बताता है कि द्रष्टा की दृष्टि से मिलनेवाले सुखों की अनुभूति आत्मतत्त्व का स्पदन ही है, अत· यही उपासना करने योग्य है । हम 'हैं' और 'नही है' के बीच में स्थित प्रकाश के भी प्रकाशक है । हृदय में स्थित परमात्मा को छोडकर अन्य ईश्वर की उपासना के लिए जाना हाथ मे रखी हुई कौस्तुभ मणि को छोडकर अन्य रत्न की इच्छा करने के समान है । (11-20)

शत्रु रूपी इन इद्रियों के विषयों की ओर दौडने पर विवेक रूपी दड से इन्हें वैसे ही मारें जैसे इंद्र ने वज्र से पर्वतों को नष्ट किया । शरीर भ्रम है, ससार रात्रि का दु स्वप्न है, अत इसका फैलना पवित्रता से परे है । बाल्यकाल में अज्ञान दु.ख देता है, यौवन में वनिताए (स्त्रियो) दु खी करती है तथा आगे स्त्री, पुत्र आदि की चिता रहती है, ऐसा अधम अपना क्या भला करेगा ? 'सत' पर 'असत' चढ़ा हुआ है,रमणीयता को कुरूपता ने दबाया हुआ है तथा सुखों पर दु ख सवार है, अत किसका आश्रय लू । जिनकी पलक के उठने तथा गिरने मात्र से ससार की उत्पत्ति और प्रलय होता है,ऐसे लोग भी यदि नष्ट हो जाते है,तो मेरे जैसों की गिनती ही क्या है ? संसार दु खो की चरम सीमा है,अत इसमे जन्म लेकर सुख कैसे मिलेगा ? मै अच्छी तरह जान गया हू कि मेरी आत्मा को चुरानेवाला यह दुष्ट मन ही है । अत मै इसे मार डालूगा । हेय पदार्थों के लिए खेद तथा उपादेय के लिए आतुरता न दिखाकर तटस्थ रहो,क्योकि ज्ञानियो मे निराशयता,निर्भयता,नित्यता,समता,ज्ञान आदि गुण विद्यमान रहते है । वे वासनारहित होते है । (21-30)

'तुम तृष्णा भीलनी के वासना-जाल में फस गए हो, यह जाल चिता से चारों ओर फैल गया है । अत इसे ज्ञान अस्त्र की धार से काट डालो । वायु द्वारा बादलो के जाल को तहस-नहस करने के समान इसे नष्ट कर दो । वृक्ष के कुल्हाडी के समान मन को मन से काटकर पवित्र पद को प्राप्त करो । उठना, बैठना, चलना आदि सभी स्थितियो को असत मानते हुए इन्हे त्याग दो । दृश्य के आश्रय से चित्त बधन मे पडता है । इसके त्याग से चित्त मोक्ष का अधिकारी बनता है । तब 'न मै हू', और 'न ससार है',इस भावना से स्थिर हो जाओ । आत्मा एवं जगत के बीच तथा स्वय एव दृश्य के बीच स्वय आत्मा को दर्शन रूप मानो । स्वाद्य पदार्थ तथा स्वाद लेनेवाले से इन दोनो के मध्य मे स्वाद का ध्यान करते हुए परम आत्मा से युक्त होकर स्थिर रहो । अवलंबन एव निरालब के मध्य मे स्थिर रहो । रस्सी से बंधा मुक्त हो जाता है,किंतु तृष्णा से बधा नही । अत सकल्पो को छोडकर तृष्णा को त्याग दो । इसे अहं भाव की शून्यता रूपी छुरी से काट डालो और जन्म-मृत्यु के इसी भवसागर से मुक्त होकर परम लोक मे विचरण करो । (31-40)

'मैं इन पदार्थों का हू, ये मेरे जीवन है' तथा 'मै इनके बिना और ये मेरे बिना नही रह सकते', इस भावना को त्यागकर 'मन के साथ मै पदार्थो का या पदार्थ मेरे नही है' ऐसी भावनावाले बनो । वासना को त्याग दो । यही ध्येय है । सर्व समतामयी बुद्धि से वासना का क्षय करके ममतारहित हो

'यम, नियम आदि के द्वारा मन को धारण करना ही धारणा है। इससे मनुष्य भवसागर को पार करने मे समर्थ हो जाता है। घुटनो से पैरो तक पृथ्वी का स्थान है, यह पीतवर्ण, चतुष्कोण तथा वज्र के चिह्न से युक्त कही जाती है। वायु को पांच घड़ी तक धारण करके पृथ्वी का ध्यान करें। घुटनों से कमर तक जल का स्थान है। जल अर्धचद्राकार सफेद तथा रजत चिह्न युक्त है। दस घडी तक सास रोककर जल का ध्यान करे। देह मध्य से कमर तक अग्नि स्थान है, यह जलता हुआ और सिदूरी रग का है। पद्रह घड़ी तक वायु को रोककर इसका ध्यान करना चाहिए। नाभि से नासिका तक वायु का स्थान है। यह वेदी के आकारवाला तथा धुए के रग का है। इसका ध्यान बीस घडी तक कुभक की अवस्था मे करना चाहिए। नासिका से ब्रह्मरंध्र तक आकाश का स्थान है। यह नीले रंग की प्रभाववाला है। प्रयत्नवान साधक कुंभक से आकाश मे वायु को रोककर देह के आकाश अंश में मुकुटधारी चतुर्भुज हरि का ध्यान करके संसार से मुक्ति पाते हैं। जल के अंश मे नारायण का, अग्नि के अंश में प्रद्युम्न का, वायु के अश मे संकर्षण का तथा आकाश के अंश में परमात्मा वासुदेव का स्मरण करना चाहिए। इस अभ्यास से शीघ्र ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है। योगासन मे बैठकर हृदय स्थान में हृदय को स्थिर करके नासाग्र (नाक के आगे) दृष्टि जमाए, जिह्वा को तालु से सटाए, दोनो ओर के दातों को सटाएं नही, शरीर को सीधा रखें और शुद्ध आत्मबुद्धि से परमात्मा वासुदेव का चितन करे।' (133-146)

'अपने भीतर इस प्रकार के ध्यान से कैवल्य सिद्धि होती है। कुंभक करते हुए एक प्रहर तक वासुदेव का ध्यान करने से सात जन्मों के पाप नष्ट होते है। नाभि से हृदय तक जागृत अवस्था का स्थान है, स्वप्न का कठ मे, सुषुप्ति का तालु मध्य में, तुरीय का भ्रू मध्य में तथा तुरीयातीत का स्थान, ब्रह्मरध्र मे परमब्रह्म की ओर होता है। जागृत वृत्ति से ब्रह्मरध्र तक तुरीय रहता है तथा इसके बाद वह विष्णु कहा जाता है। तब साधक को करोडों सूर्यों के समान आभावाले सदा उदय ही रहनेवाले विश्वरूप विष्णु का ध्यान करना चाहिए। उस अनेक रूपों, मुखों, भुजाओं, आयुधों एवं वर्णोवाले देव रूप शात विष्णु के ध्यान से योगी की सभी मनोवृत्तिया नष्ट हो जाती है। हृदय कमल के बीच मे चैतन्य ज्योनिरूप, अनश्वर, कदब के समान गोल, तुर्यातीत परस्पर आदिब्रह्म का ध्यान करने से मुक्ति योगी के हाथ में आ जाती है। विश्वरूप देव के स्थूल, सूक्ष्म अथवा जो भी अन्य रूप हैं, उसका हृदय कमल में ध्यान करने से योगी उन्ही के समान बनकर अणिमा आदि सिद्धिया सहजता से पा जाता है।' (147-159)

जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों के ज्ञान के बाद 'मै ब्रह्म ही हूं' इस अवस्था की प्राप्ति ही समाधि है। उसमे समस्त वृत्तियां नष्ट हो जाती है। इसे प्राप्त करनेवाला योगी पुन इस ससार मे नही आता। योग-तत्त्व के शोधन से इस प्रकार योगी इच्छाहीन चित्त से ईधनरहित अग्नि के समान स्वत शात हो जाता है। मन-प्राणों के परमात्मा मे लीन हो जाने पर उसके लिए कुछ भी ग्रहण करने योग्य नही रह जाता। उसका जीव शुद्ध आत्मा तत्त्व में जल में नमक के समान लय हो जाता है। वह मोहग्रस्त इस संसार को स्वप्न के समान देखता है और निश्चल होकर सुषुप्ति की अवस्था मे रहने लगता है। वह निर्वाण पद को प्राप्त करके कैवल्य को प्राप्त होता है। यही ज्ञान का सार है। (160-165)

☐

जाने पर देह की वासना (बंधन) भी त्यागी जा सकती है। अहंकार वासना को छोडकर सरलता से ध्येय का भी त्याग कर देने वाला जीवन्मुक्त कहा होता है। सकल्पो को मूल सहित त्याग करने पर वासनाए शांत हो जाती हैं। ऐसा त्याग करनेवाला ब्रह्म ज्ञाताओ में श्रेष्ठ जीवन्मुक्त ही जाता है। योगी शम (शाति) एवं दम (इद्रिय दमन) से युक्त होता है। अत. वह सुख एवं दु ख मे रत नही होता। इच्छा-अनिच्छा से रहित सुषुप्त के समान आचरण करनेवाला जीवन्मुक्त होता है। वासनारहित पुरुष काम, क्रोध आदि के वश मे नही होता तथा सुख-दु ख को नही मानता। बाह्य विषयों से उत्पन्न तृष्णा बंधन देनेवाली होती है और सब प्रकार के विषय एव वासनाओ से मुक्त तृष्णा मुक्ति प्रदान करती है। (41-51)

'किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा दु खप्रद होती है। उसे भयंकर शृंखला के समान भय एवं दु ख प्रदान करानेवाली समझे। महात्मा अत 'सत' 'असत' सभी भावो का त्याग करके परम उदार पद को प्राप्त करते है। तव वे शात सागर के समान निश्चल हो जाते है। सज्जनो का निश्चय चार प्रकार का होता है, जो क्रमश इस प्रकार है—'मेरे शरीर की रचना माता-पिता द्वारा हुई', 'मै जगत के भावो से रहित बाल की नोक के समान सूक्ष्म आकारवाला आत्मा हू', 'मै समस्त विश्व के पदार्थों का आत्मा, सर्वरूप एव अनश्वर हूं' तथा 'मेरे सहित यह समस्त विश्व आकाश के समान शून्य है।' इनमे प्रथम निश्चय मे 'बधनकारक तृष्णा तथा अन्य तीनो मे पवित्र तृष्णा है। इन तीन प्रकार के निश्चयों में लगे लोग आत्मतत्त्व में लीन रहनेवाले जीवन्मुक्त होते है। इस धारणा से ये पुन-पुन. विषादों मे नही पडते। (52-60)

'आत्मा के नाम से जाना जानेवाला यह शून्य ही प्रकृति, माया, ब्रह्म, विज्ञान, शिव, ईशान, नित्य तथा आत्मा कहा जाता है। परमात्ममयी अद्वैत (एक) शक्ति ही द्वैत (दो) दिखाई देती है। माया अद्वैत से प्रकट पदार्थों से विश्व का निर्माण करती हुई बढ़ती है। इस प्रपच से दूर रहनेवाले सांसारिकता मे पडकर दु खी नही होते। मुक्त अपने प्राप्त कर्मों को करता हुआ शत्रु-मित्र को समान समझता है। वह इच्छा-अनिच्छा के विषय में न दु.खी होता है, न उनका चितन ही करता हे। सभी प्राणियों के आशय को समझकर सवका अभिमत बोलनेवाला विश्व में दु खी नही होता। आतरिक दृष्टि के होते हुए भी बाह्य पदार्थों को देखते रहो। प्रपंच रहित अवस्था मे स्थित पुरुष सभी आतरिक आशाओं के नष्ट होने पर भी बाहरी रूप में सभी आचरण करे। हृदय मे कोई आकुलता न होने पर भी आकुलता जैसी दिखाए। ऐसा व्यक्ति कभी दु खी नही होता। अत अहकार को त्यागकर कलकों से दूर रहो। आकाश के समान निर्मल मन से स्वच्छद विचरण करो। (61-69)

'उदार, शुद्ध आचरणवाला आसक्ति रहित वैराग्य धारण करके बाहर से श्रेष्ठ आचरण करे। 'यह मेरा अपना है' इस प्रकार का विचार कम बुद्धि लोग करते हैं, उदार लोग सपूर्ण विश्व को ही अपना परिवार मानते हैं। भाव-अभाव, जन्म-मरण की इच्छा से रहित जिनमे सभी सकल्प आश्रय लेते हैं, ऐसे ही परमपद में स्थित होना चाहिए। इसी को निर्मल ब्राह्मी स्थिति कहा गया है। इसमे स्थित साधक सकटों मे विचलित नही होता। वैराग्य, शास्त्र आदि द्वारा सकल्प के नष्ट होने पर मन नष्ट और वशवर्ती हो जाता है। निराशा के वश मे पडा मन बिना वैराग्य पूर्णता नही प्राप्त करता। आशा युक्त होने पर यह शरदकाल के स्वच्छ तालाब के समान रागमय हो जाता है। फिर मन

72. अद्वयतारक उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद· पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शाति शांति शाति ।

वह ब्रह्म पूर्ण है और यह जगत भी पूर्ण है । उसी पूर्ण सें इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अत पूर्ण से पूर्ण को पृथक् कर देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है ।

सन्यासियों, जितेद्रियो तथा शम, दम आदि गुणो से युक्त साधको के लिए अद्वयतारक उपनिषद कहा जा रहा है । आखो को बद या आधी खुली रखकर अतर्दृष्टि से भौहो के ऊपर 'मै चित्त स्वरूप हू' इस भावना से सच्चिदानंद तेज के रूप मे ब्रह्म का ध्यान करने से साधक ब्रह्मरूप हो जाता है । जो गर्भ, जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु आदि सासारिक भयो से तारण करता है, उसे तारक ब्रह्म कहते है । जीव और ईश्वर को मायायुक्त समझकर अन्य सबको 'ऐसा नही ऐसा नही' (नेति-नेति) कहने पर जो शेष रहता है, वही अद्वय ब्रह्म है । उसकी सिद्धि के लिए तीन लक्ष्यो का अनुसधान करना चाहिए । देह मध्य मे पूर्ण चद्रमा के समान आभावाली ब्रह्मनाडी सुपुम्ना है । वह मूलाधार से ब्रह्मरध्र को जाती है । उसके बीच मे करोडो बिजलियो के समान आभावाली कमल नालो के समान सूक्ष्म प्रसिद्ध कुडलिनी है । उसको मन से ही देखकर व्यक्ति सभी पापो के नष्ट होने से मुक्त हो जाता है । ललाट के विशेष मडल में स्फुरित तेज को तारक ब्रह्म से युक्त होकर देखनेवाला सिद्ध बन जाता है । तर्जनियो से दोनो कानो को बद करके सुनाई देनेवाले शब्द मे मन को स्थिर करने पर चक्षुओं के बीच मे अतर्दृष्टि से नीली ज्योति के दर्शन असीम सुख देते है । ऐसा ही दर्शन हृदय मे भी होता है । मुमुक्षु इन अतर्लक्षणो का अभ्यास करें । (1-5)

अतर्लक्षणो के वाद वाह्य लक्षणो का वर्णन है । नासिका के चार, छ , आठ, दस एव वारह अगुल पर क्रमश नीला, कालिमायुक्त, लाल भृगवर्ण एव पीला-सफेदपन लिए आकाश का ग[illegible] देखनेवाला योगी होता है । चलती दृष्टि से आकाश में ज्योति किरण को देखनेवाला भी योगी होता है । आखों के कोनों में ज्योति किरणों के दर्शन होने पर दृष्टि स्थिर हो जाती है । मस्तक म ऊपर वारह अगुल की दूरी पर ज्योति देखनेवाला अमरता प्राप्त करता है । सिर के ऊपर कही भी आकाश ज्योति के दर्शन करनेवाला योगी होता है । मध्य लक्षण इस प्रकार ह कि प्रात विचित्र वर्ण युक्त अखड सूर्यचक्र के समान, अग्नि की ज्वाला के समान तथा इनसे विहीन अतरिक्ष के समान देखना है, फिर उसी के आकार का वन जाता हे । पुन इसके दर्शन करने पर निर्गुण आकाश हो जाता है । चमकते तारे तथा गहन अधकार से युक्त परमाकाश होता हे । महाकाश कालाग्नि के समान प्रकाशमान होता हे । सबमे उत्कृष्ट परम प्रकाशमय तत्वाकाश होता हे । सूर्याकाश करोडो सूर्य के समान प्रकाशित होता है । इस प्रकार वाहर और भीतर ये पाच तारक आकाश होते है । [illegible]

इस प्रकार उसे शुभ-अशुभ एव प्रिय-अप्रिय छूते भी नही है। वह राहु द्वारा न ग्रसा हुआ होने पर भी ग्रसे हुए सूर्य के समान संसार में रहता हुआ भी इससे मुक्त होता है। वह साप की केचुल के समान देह को अपने से पृथक् समझता है। पानी में बहाई जाती हुई लकडियो के समान ही वह काल आने तक सासें लेता रहता है। जैसे भाग्य शरीर का उपयोग करता है, वैसे ही वह भी लक्ष्य-अलक्ष्य को त्यागकर स्थित हो जाता है। ऐसा श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता साक्षात शिव बन जाते है। वह जीवित रहते हुए भी मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है। वेश त्यागने पर पुन· अपने रूप में आए हुए नट के समान वह भी देह को त्यागकर ब्रह्म में मिल जाता है। घड़े के टूटने पर शून्य में मिल जाने के समान वह ब्रह्म मे मिलकर ब्रह्म ही बन जाता है। आत्मज्ञान से अविद्या के नष्ट हो जाने पर ब्रह्म भाव के बाद योगी दूध-में-दूध, तेल-में-तेल तथा जल में जल के समान ब्रह्म में मिल जाता है। तव उसका पुनर्जन्म नही होता। माया उसका स्पर्श नही कर सकती। रस्सी से साप का भ्रम दूर होने पर रस्सी ही शेष रहने के समान उसके लिए भी 'असत्' दूर होकर केवल सत् ही शेष रहता है। ब्रह्म की आवृत्ति नही होती, यदि ऐसा हो, तो वह ब्रह्म नही होता है। आत्मा को बधन या मोक्ष नही होते। उस कलाहीन, क्रियाहीन, शात आदि गुणों वाले ब्रह्म में आकाश के भेदों की तरह कल्पना नही हो सकती। सत्य तो यह है कि ब्रह्म जन्मा, अजन्मा, बद्ध, साधक, मुमुक्षु या मुक्त कुछ भी नही है। (15-31)

□

देखनेवाला मुक्त तथा इन्ही के समान हो जाता है। इस तारक का लक्ष्य ही अमनस्कता रूपी फल को देता है। पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध, यह दो प्रकार का तारक योग होता है। इनमें पूर्व को तारक तथा उत्तर को अमनस्क कहते है। (6-8)

आखो के भीतर सूर्य और चद्रमा का प्रतिफलन होता है। आंख के तारों से सूर्य-चद्रमडल एव ब्रह्मांड के समान अपने सिर रूपी ब्रह्माड में इनका निश्चय कर दर्शन करना चाहिए। दोनों को एक मानकर इनका मन से ध्यान करना चाहिए। यदि मन को इस भाव से नही जोड़ा जाएगा, तो इद्रियां अपने विषयो मे प्रवृत्त होने लगेंगी अतः अतर्दृष्टि से तारक का ही अनुसधान करना चाहिए। तारक मूर्त और अमूर्त दो प्रकार का होता है। इद्रियों के अतवाला मूर्त और भौंहो से बाहरवाला अमूर्त तारक है। सर्वत्र अत· पदार्थों के विवेचन मे मन को जोडने का अभ्यास करना चाहिए। सत्त्व दर्शनयुक्त मन से अत मे देखने से सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म ही दिखाई देता है। अत. उसे मन के साथ चक्षुओ की अतर्दृष्टि से देखो। इसी प्रकार अमूर्त तारक का ज्ञान भी होता है। यदि रूपो को ग्रहण करने मे मन आंखों के अधीन रहता है तो दोनों मिलकर बाहर के समान ही अदर के रूपों को भी ग्रहण कर लेते हैं। अत मन के साथ ही आंखों द्वारा तारक ब्रह्म का भी प्रकाशन होता है। (9-10)

तारक योगी का उद्देश्य भ्रूमध्य के ऊपर तेज का दर्शन करना है। उसके साथ मुक्त मन से तारक को जोड़कर प्रयत्न करके दोनो भौहों को कुछ ऊपर करें। यह तारक योग का पहला भाग है। दूसरे भाग में अमूर्त को अमनस्क कहा जाता है। तालु के ऊपरी भाग मे महाज्योति की किरणे है। इसका ध्यान करने से योगी अणिमा आदि सिद्धियो को प्राप्त करता है। अत. तथा बाह्य लक्ष्यो को देखनेवाली दृष्टि के स्थिर होने पर शाभवी मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से योगी अपने निवास की भूमि को पवित्र करता है और उसकी दृष्टि से सारे लोक पवित्र हो जाते है। इस प्रकार योगी की जो भी पूजा करता है, वह मुक्त हो जाता है। यह अतर्लक्ष्य ज्योति जलती हुई स्वरूपवाली है। परम गुरु के उपदेश से सहस्रदल कमल में यह ज्योति या बुद्धि गुहा स्थित ज्योति अथवा सोलह कला के अत मे स्थित तुरीय चैतन्य अतर्लक्ष्य होता है। यह सदाचार मूल दर्शन है। (11-13)

आचार्य वेदसंपन्न, विष्णुभक्त, मात्सर्यहीन, योगज्ञाता, योगनिष्ठ, योगात्मक पवित्र, गुरु का भक्त तथा परमात्मा को विशेष रूप से जाननेवाला, इस प्रकार के लक्षणो से सपन्न व्यक्ति ही गुरु कहा जाता है। 'गु' का अर्थ अधकार तथा 'रु' का अर्थ अंधकार का नाशक है। अत अज्ञान के अधकार का नाश करनेवाला ही गुरु है। गुरु ही परमब्रह्म, परमगति, परमविद्या, सबसे बडा घर, परमस्थिति तथा परमधन है। उपदेशक होने से वह महान से भी महान है। इसका एक बार उच्चारण करने से भी ससार से मुक्ति मिलती है, सभी जन्मो के पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते है, वह सभी कामनाओं को प्राप्त करता है तथा सभी पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष) की सिद्धि होती है। इसे जाननेवाला भी ऐसा ही हो जाता है। (14-19)

□

जनेऊ हस ही है । इस प्रकार जनेऊ के तागे ब्रह्म-यज्ञ ही हैं । यज्ञोपवीत एव ब्रह्म एक-दूसरे के पूरक है । मात्राएं इसके अग है । मनो यज्ञ का हंस यही सूत्र है । यह ब्रह्म यज्ञमय सूत्र (जनेऊ) प्रणव ही है । प्रणव के भीतर रहनेवाला हंस ही ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) है । अत· यह ब्रह्मयज्ञ मोक्ष का साधन है । मानसिक यज्ञ क्रिया ब्रह्म संध्या है । संध्या क्रिया मनोयज्ञ का लक्षण है । जो यज्ञ-मूत्र प्रणव और ब्रह्म यज्ञ की क्रिया मे लगा है, वही ब्राह्मण है । ब्रह्मचर्य द्वारा ही देवता विचरण करते हैं । हस और प्रणव एक ही हैं ।' (11-19)

'हस की प्रार्थना तीनों कालों में होती है । तीन काल तीन वर्प होते हैं । यह तीन अग्नियो से होता है । त्रि-अग्नि आत्मा स्वरूप ओंकार हस के अनुसधान का यज्ञ है । 'चित्त' से तन्मय होना तुरीय स्वरूप है । आतरिक सूर्य में हस की ज्योति रूप है । यज्ञ का अग ब्रह्म-सपत्ति है । अत· ब्रह्म-प्राप्ति हेतु प्रणव हस की साधना मुख्य है ।' बालखिल्य ने पुनः पूछा, 'हस सूत्र (जनेऊ) की सख्या कितनी है ? और प्रमाण (लबाई) क्या है ?' उत्तर मिला—'हृदय सूर्य की छियानवे किरणे है । चित्त सूत्र नाक से निकलनेवाले प्रणव की धारा भी इतनी ही है । वाए हाथ के पास कमर में दाहिने ओर से बीच में परमात्मा हस की रहने की जगह है । यह गोपनीय विपय है । इसका ज्ञाता केवल अमृतत्व प्राप्त व्यक्ति ही होता है, वे ही इस सर्वकाल प्रकाशक हस को जानते है । प्रणव हस के ध्यान के बिना मुक्ति नही होती (20-26) ।

'जो रगा हुआ नौ सूत्रीय जनेऊ पहनता है, उसको सव ब्रह्म समझकर उपासना करते हैं । मनुष्यों को भीतरी सूर्य का ज्ञान नही है । सूर्य को प्रकाश देनेवाला समझकर ही शुद्ध ज्ञान हेतु विद्वान उसकी पूजा करते है । वाजपेय यज्ञ पशुपति का रूप है । उसके देवता इद्र हैं, अहिसा परम धर्म है । परम हंस अध्वर्यु है, परमात्मा पशुपति देवता है । ब्रह्मवेत्ता उपनिपदों के ब्रह्म के उपासक हैं । इस महायज्ञ का ज्ञान ही अश्वमेध है । इसकी आज्ञा से ही वे ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं । यहा कहे गए सभी यज्ञ मुक्ति देनेवाले है ।' बालखिल्य बोले, 'ब्रह्म का ज्ञान हो गया है ।' इतना कहते ही ब्रह्मा अतर्ध्यान हो गए । उपनिषदो में वर्णित हसज्योति रुद्र है । वही प्राणियो का स्वामी और तारक ब्रह्म है । (27-32)

उत्तरकांड

'हस का जप ही वर्ण ब्रह्म है । यही ब्रह्म को प्राप्त करनेवाला है । परमात्मा और पुरुप भी यही है । जो आत्मज्ञान से ब्रह्ममय हो जाता है उसके विषय में कुछ भी कहने को नही रह जाता । उनका समय ब्रह्मज्ञान की चर्चा में व्यतीत होता है । हंस और आत्मा के एक हो जाने पर उनके लिए आत्मतत्त्व सब कुछ हो जाता है । भीतर होनेवाले नाद से ज्ञात प्रणव रूपी हस ही सब ज्ञान करानेवाला है । भीतरी अनुभव से बाह्य ज्ञान की प्राप्ति होती है । शति आत्मक शिव चिन्मय आनद से ज्ञात होता है । नाद, बिदु एव कला, इन तीन नेत्रों से ही विश्व चेष्टावान है । तीन अगो, तीन शिखाओं और दो या तीन आकृतियों से उसका ज्ञान होता है । इस प्रकार अतर्गूढ (अतर्धान) हो जाने पर आत्मा का ज्ञान वाह्य रूप मे भी होने लगता है । सूत्ररूप ब्रह्म को जानना चाहिए । हस रूप प्रणव (सूर्य) का ध्यान करना चाहिए । इसी ज्ञान से ज्ञान की चरम सीमा प्राप्त होती है । स्वत शिव

73. पाशुपत ब्रह्मोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः श्रृणुयाम. देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा. ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु ।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति न. पूषा विश्ववेदा.
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि. स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांति ।

हम कानों से कल्याणमय शब्द सुने और नेत्रो से कल्याणमय दृश्य देखे । स्वस्थ अगो से तुम्हारी स्तुति करें । देवताओं द्वारा दी हुई आयु का उपभोग करें । यशस्वी इद्र, सर्वस्व ज्ञाता पूषा, अमंगल नाशक गरुड़ तथा बृहस्पति हमारा कल्याण करे । तीनों तापों की शाति हो ।

पूर्वकांड

ब्रह्मा जी के मन में सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा हुई । तब कामेश्वर (रुद्र) और वैश्रवण (कुवेर) की उत्पत्ति हुई । एक बार कुबेर एव बालखिल्य ने ब्रह्मा से पूछा, 'जगत विद्या क्या है ? जागृत एव तुरीय अवस्था के देवता कौन है ? ये किसके वश में है ? काल का क्या कारण है ? सूर्य, चद्र आदि ग्रह किसकी आज्ञा से प्रकाशित होते है ? आकाश का स्वरूप किसकी महिमा है ? हम इन बातो को जानना चाहते है । आपके अतिरिक्त इसका उत्तर कौन दे सकता है ? कृपया इसे बताइए ।' इस पर ब्रह्मा बोले, 'समस्त जगतों की विद्या मातृका विद्या है । यह दो वर्ण (हस)वाली भी है, तीन वर्ण (ओम = अ + उ + म्) वाली भी है तथा दोनों वस्तुत. एक ही हैं । चार मात्राओंवाला 'ओम' मेरा ही रूप है । तीनों लोकों का मै ही स्वामी हूं । सारे युग भी मेरे ही अधीन है । दिन, रात आदि काल मुझसे ही जन्मे हैं। रवि, चंद्र आदि ग्रहों का तेज मेरा ही रूप है। आकाश मेरी ही तीन शक्तियोंवाली माया का रूप है; मुझसे भिन्न नही । रुद्र, विष्णु एव ब्रह्मा क्रमश. तमोगुण रूप माया, सत्त्व गुण रूप माया एव रजोगुण रूप माया हैं । इद्र आदि सभी तमोगुण एव रजोगुण दोनो से युक्त है, कोई भी सात्त्विक नही है । एक अघोर शिव ही साधारण स्वरूप है । (110)

'रुद् ही समस्त यज्ञों के कर्ता और देवता है, विष्णु अध्वर्यु हैं, इद्र 'होता' (हवन कर्ता) हैं । महेश्वर का मानस रूप ब्रह्मा ही यज्ञ का भोग करनेवाला है । मनुष्य ब्रह्मा का ही रूप है । 'हस सोऽहम' इसका तन्मयता से प्राप्त करने के लिए अनुसधान करनेवाला विकारमय जीव है । हस परमात्मा का स्वरूप हे । वह अंदर-बाहर विचरण करता रहता है । अदर जाने मे अनवकाश मे वह हस सुपर्ण, अर्थात् ईश्वर होता है । छियानवे ततुओं के रूप मे व्यक्त चित्त के तीन रूपो मे व्याप्त 'चिन्मय', नौ तत्त्वों मे तिगुना हो जाता है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपी तीन अग्नियों से सयुक्त और चित्त ग्रथियों से बधा, अद्वैत ग्रथियुक्त है । यह यज्ञ के बाह्य और भीतर को प्रकाशित करनेवाला

प्राणियों का स्वामी और साक्षी है। उसी की प्रेरणा से प्राण, वाणी, मन आदि अपने कार्य करते हैं। ये सब कार्य माया के कारण है; न कि वास्तविक रूप में। (1-10)

'कान, आंख, मन आदि सभी आत्मा पर आश्रित हैं। शिव ही इनमे प्रविष्ट होकर इनको सुनने, देखने, मनन करने आदि की शक्ति देते हैं। इसी प्रकार शिव सभी इंद्रियों को चेष्टासहित बनाते है। वह शिव, लोग उन्हे जैसा वताते है या इंद्रियां जिस रूप में उनकी कल्पना करती हैं, उससे सर्वथा भिन्न है। वही समस्त इंद्रियो को बनानेवाले है, अत ये सव उनके ज्योति रूप को प्राप्त नही कर सकती। परमात्मा को अंतःकरण के विषयों से भिन्न मानकर उसे विना तर्क या प्रमाण के अपने आत्मा में खोजनेवाला ही उसका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक आत्मा ही परम ज्योति है। माया महान अंधकार है। अत इन दोनो की एकता संभव नही है। तर्कों, प्रमाणों या अपने अनुभव से ज्ञान होता स्वय प्रकाश परमात्मा माया से मुक्त है। व्यावहारिक दृष्टि से ही विद्या एव अविद्या का अस्तित्व है, परमात्मा से इनका कोई सबंध नही है। तत्त्वतः तो विद्या एव अविद्या दोनो ही झूठ है, केवल परमात्मा ही सत्य है। व्यावहारिक दृष्टि से भी ऐसा ही आभास होता है। अत परमात्मा अद्वैत (केवल एक) है। (11-20)

'अत सब एक प्रकाश ही है। उसके विषय में कुछ भी नही कहा जा सकता, मौन ही उचित है। यह महाज्ञान जिसे प्राप्त हो जाता है, वह न तो जीव रहता है, न ब्रह्म ही और न कुछ अन्य ही। इसके लिए वर्ण-आश्रम, धर्म-अधर्म, नियम-निषेध कुछ भी नही रह जाता, सर्वत्र ब्रह्म ही प्रकाशमान रहता है। उसे दु.ख आदि का आभास बिल्कुल भी नही होता। इस जीवमय ससार को देखते हुए भी उसे ब्रह्म ही दिखाई पड़ता है। भेद-अभेद आदि भी परमात्मा से ही व्याप्त है, क्योंकि वही मदा से विद्यमान है तथा वस्तु-अवस्तु सव ब्रह्म ही है। ऐसे ज्ञानवाला किसी का भी ग्रहण या त्याग नही कर सकता। वह ब्रह्म उपमारहित है, मन, वाणी या दृष्टि उस तक नही पहुच सकते, वह गोत्र, रूप, नेत्र, हाथ, पांव आदि से रहित है, वह नित्य, विभु, सर्वगत, सूक्ष्म, अव्यय और अमर है तथा वही सबका स्थान एवं आश्रय है। उसके आगे-पीछे, दाएं-बाए सर्वत्र केवल ब्रह्मानद ही है। (21-30)

इस प्रकार के ज्ञान से युक्त पुरुष निर्भय होकर अपने अदर ही सबको देखता है और मुक्त हो जाता है। इस ज्ञान मे अज्ञानी भी मुक्ति प्राप्त करते हैं। यह परा विद्या सत्य, तप, ब्रह्मचर्य, धर्म आदि के साथ वेदांत के ज्ञान से प्राप्त होती है। अपने शरीर में हीं दोषों के नष्ट होने पर परमात्मा के दर्शन होते हैं, माया से घिरे लोग इसे नही देख सकते। जिस योगी को इस स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, वह पूर्ण हो जाता है और पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है। आकाश की तरह सर्वव्यापक हो जाने पर अपने स्वरूप का ज्ञाता कही भी नही जाता। न खाने योग्य पदार्थों को त्यागने मे हृदय की शुद्धि के बाद चित्त स्वयं विशुद्ध हो जाता है। तव क्रमश ज्ञान के वाद अज्ञान नष्ट हो जाता है और आत्मज्ञानी हो जाने पर अभक्ष्य (न खाने योग्य) का भी कोई बधन नही रहता, क्योंकि उसके लिए भेद-भाव नष्ट हो जाता है। अत. वह खाद्य को भी अपना ही स्वरूप समझता है। वह सभी को ब्रह्ममय और स्वयं में ही देखता है। अत ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि (जात-पात) की भावना को भी वह खा जाता है। वह ब्रह्म का ही रूप हो जाता है। अत उसके लिए समस्त विश्व भोज्य बन जाता है। (31-40)

जगत को अपना रूप अनुभव करने पर वह उसका तथा ब्रह्म सदा उस साधक का [illegible] ॥

59. पंचब्रह्मोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

परमात्मा हम दोनों (गुरु एव शिष्य) की एक साथ रक्षा करें, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करे।

'आरंभ मे क्या उत्पन्न हुआ ?' शालक के यह पूछने पर पिप्पलादि ने कहा, 'सद्योजात ब्रह्म'। शालक द्वारा इसके अन्य भेद पूछे जाने पर केवल 'अघोर' और 'वामदेव' ये दो भेद बताए। 'क्या इतने ही भेद है ?' यह पूछे जाने पर पिप्पलादि ने तत्पुरुष एव ईशान-दो भेद और बताए। ईशान सभी देवताओ का प्रेरक, भूत, भविष्य तथा शासक है। इसके कितने भेद है ? वर्ण है ? यह सब अयोग्य व्यक्तियो को नही बताना चाहिए। इस महादेव को नमस्कार हो। सद्योजात ससार की परम गोपनीय वस्तु है। यह सभी सिद्धियां देता है। यही पूषा, त्रिवृत्त सभी स्वर, ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, मंत्र संगीत के सातों स्वर, पीला वर्ण तथा क्रिया, शक्ति है। अघोर, जल, चद्र, गौ, सामवेद, नारदाभास स्वर, ये सब दक्षिणाग्नि के रूप है। पचास वर्णो सहित उनकी इच्छा तथा क्रियाशील रूपी अपनी विकल्प शक्ति से रक्षा करनेवाला अघोर सभी पापो-दुष्टो का नाश करके ऐश्वर्य देनेवाला है। (1-9)

वामदेव ज्ञान देनेवाला, अग्निरूपी, विद्या के प्रकाश से युक्त, करोडो सूर्यो के समान प्रकाशमान है। यह प्रसन्न, सामवेद स्वरूप आठ आकाशों से युक्त, धीर स्वरो के अधीन, श्रेष्ठ आह्वान करने योग्य ज्ञान एवं संहार, इन दो शक्तियोंवाला, शुक्ल वर्ण का, तमोगुण मिश्रित, पूर्ण ज्ञान करानेवाला, तीनों लोकों को शासित करनेवाला तथा इनसे युक्त है। लोगों को कर्मफल तथा सौभाग्य देनेवाला यह उनके हृदय के अष्टदल कमल में रहता है। 'सत्पुरुष' ब्रह्म वायुमडल से आवृत्त, पांच अग्नियोंवाला मंत्र शक्तियों का नियामक, पचास वर्णों के स्वरूपवाला, अथर्ववेद रूप, करोड़ों लोकों का स्वामी, ब्रह्मांडों के शरीरवाला, लाल रंग का, कामना पूरी करनेवाला, सभी रोगो की औषधि, सर्वशक्तिमान, सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का कारण तीन अवस्थाओं से भिन्न तथा ब्रह्मा आदि देवों द्वारा सेवित तुरीय ब्रह्म है। ईशान परम प्रेरक तथा वुद्धि का साक्षी है। यह आकाश स्वरूप 'ओम' से विभूषित, सर्वदेवमय, शांत, स्वरों से वाहर, अकार आदि स्वरों का पति, पाच कार्यों का शासक, पांच ब्रह्ममय, इसका निष्कर्ष, अपनी आत्मा में स्थित, अपनी माया से सभी वैभवों को अपने में रखने वाला तथा आदि-मध्य-अंतहीन स्वयं प्रकाशित है। (10-23)

देवता भी माया के कारण जगदगुरु, भगवान शंकर को नही जानते, उनके सामने कोई भी नही ठहरता। जो विश्व को प्रकाशित तथा लय करता है, 'मैं वही ब्रह्म हूं'। वही सद्योजात ब्रह्म है, ऐसा देखा-सुना जाता है। वह पचात्मक एवं पांचों में स्थित है। 'मैं वही पचब्रह्म हूं', ऐसे ज्ञान से ब्रह्म

है। जिसके आभास से यह जगत भोज्य रूप बन जाता है, उस आत्म रूप का ज्ञान होने पर वह नि सदेह ब्रह्म द्वारा खाया जाता है। अतः सब उसी का स्वरूप होने से ब्रह्म अपना ही भक्षण करता है। अस्तित्त्व ही सत्ता है। ब्रह्म के सिवा किसी की सत्ता नही है। माया वस्तुत है ही नही। योगी इसकी कल्पना अपनी आत्मा में करते हैं। उनके ब्रह्मज्ञान से विवश हो जाने पर वह उन्हे साक्षी रूप में देखती है। ब्रह्मज्ञान से सपन्न ज्ञानी जगत को देखता हुआ भी, नही देखता, अर्थात् वह उसे अपने से अभिन्न देखता है। (41-46)

☐

समाधि मे पहुचकर अमृत प्राप्त करते हैं। जैसे लकडियों को घिसने पर ही उनमे छिपी अग्नि प्रकट होती है, वैसे ही सतत अभ्यास से ही ज्ञान का दीपक प्रकाशित होता है। जैसे घडे मे रखा हुआ दीपक घडे को तोड देने पर ही बाहर प्रकाश कर सकता है वैसे ही शरीर रूपी घडे को गुरु के वाक्यो से भेदकर ब्रह्म-ज्ञान का प्रकाश प्रकट होता है। भवसागर से पार करनेवाला गुरु ही है। अभ्यास तथा श्रेष्ठ वासना शक्ति से ही भवसागर पार होते है। वाणी परा मे अकुरित, पश्यती में दो पत्तोवाली, मध्यमा में कली के समान तथा वैखरी मे खिल जाती है। इस क्रम से विपरीत प्रकार से इसका लय होता है। (12-20)

जो व्यक्ति स्वय को वाणी का बोध करानेवाला हो तथा परमदेव मानकर व्यवहार करनेवाले व्यक्ति से कोई चाहे अच्छे या नीच शब्द भी कहे, तो उसे इससे कोई प्रभाव नही होता। विश्व तैजस एवं प्राज्ञ, ये पिड के भेद है। विराट, हिरण्यागर्भ एव ईश्वर, ब्रह्माड के तथा भू:, भुव एव स्व ये तीन लोको के भेद हैं। ये अपनी उपाधि के लय होने पर प्रत्यगात्मा मे मिल जाते है। ज्ञान की अग्नि से तपने पर ब्रह्माड भी अपने कारण में मिल जाता है। परमात्मा मे मिलकर यह ब्रह्मरूप ही हो जाता है और इसमे इतनी गभीरता आ जाती है कि तब न तो इसे प्रकाश कहा जा सकता है, न अंधकार। तब 'सत' रूप अव्यक्त ही शेष रह जाता है। घडे के अदर दीपक के समान ही अत करण मे भी एक धुए से रहित ज्योति है। इसी मे कूटस्थ अव्यय का ध्यान करे। आत्मा मूलरूप मे विशुद्ध ज्ञानवान होता है, किंतु शरीर मे आने पर माया के कारण यह जागृत, स्वप्न एव सुषुप्ति अवस्था पाकर मोहित हो जाता है। कई जन्मो के सत्कर्म से इसे विकारो को जानने की इच्छा होती है। तब वह सोचता है 'मैं कौन हू ? यहा यह ससार कैसे आया ? जागृत-स्वप्न अवस्थाओ मे मै स्वय को कर्ता समझता हू, किंतु सुषुप्ति मे मेरी क्या गति होगी ?' इस प्रकार चिंतन करता हुआ वह अपने स्वरूप पर विचार करता है। (21-29)

चिदाभास से अज्ञान अग्नि मे रूई के ढेर की तरह जलने लगता है। सासारिक ज्ञान के मिटने पर प्रत्यगात्मा इस प्रकार विज्ञान को ही नष्ट कर देता है। मनोमय एव विज्ञानमय के सही मिलन से आत्मा अंत मे प्रकाशित होता है। ऐसे आत्मा का मृत्यु तक ध्यान करनेवाला ज्ञानी जीवन मुक्त होता है और धन्य हो जाता है। अत मे वह विदेह मुक्त बन जाता है। हवा का चलना बद होने के समान ही उसका अत होता है। अत मे शेष रहनेवाला ब्रह्म शब्द रूप आदि से रहित पचभूतो से परे, नित्य, अव्यय, आदि-अंतहीन, अटल, शुद्ध तथा विकार रहित है। (30-35)

□

प्राण अग्निहोत्रोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥

ॐ शांतिः शांतिः शातिः।

परमात्मा हमारी—गुरु-शिष्य की—एक साथ रक्षा एवं पालन करे। हम साथ ही वीरता दिखाएं और परस्पर द्वेष न करे। तीनो ताप शांत हों।

सभी उपनिषदो के निष्कर्ष के समान यह शरीर यज्ञ है। इसको जान लेने पर बिना अग्निहोत्र और बिना सांख्य ज्ञान ही ससार से निवृत्ति हो जाती है। सर्वप्रथम अपनी परपरा के अनुसार पृथ्वी में बनी वेदी में अन्न रखकर 'या ओषधय' तीन मंत्रों तथा 'अन्न पते' इन दो मत्रो से उसे अभिमत्रित करे। (1-2)

प्रथम तीन ऋचाएं (मंत्र) इस प्रकार है—जो सोम देवता प्रधान है, सैकड़ों प्रकार से विचक्षण है, जो अनेक शाखाओंवाली बृहस्पति से उत्पन्न औषधिया है, ये सब हमें निष्पाप करें। जो फलनेवाली हैं या न फलनेवाली है, पुष्पोंवाली है या बिना पुष्पवाली हैं, वे हमारी रक्षा करें। जीवन देनेवाली, जिसकी आयु नष्ट हो गई है उसकी भी रक्षा करनेवाली औषधियां हमारी रक्षा करें। इनके बाद अन्य दो मंत्र इस प्रकार है—हे ब्रह्म, तुम अन्नपति हो, मनुष्यों एवं पशुओं को अन्न देते हो। यह अन्न पिशाच आदि द्वारा प्रभावित भी हो, तो तुम इससे हमें अभय करना। मैं ईशान शिव को आहुति देता हूं। वह चारों ओर को मुखोवाला ब्रह्म प्राणियों की गुहा में रहता है। हे ब्रह्म, तुम्हीं यज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वषट्, जल, ज्योति, रस, अमृत, भू भुव. स्व हो, तुम्हें मेरा नमस्कार हो। जल, पृथ्वी, वृहस्पति एवं ब्रह्म मुझे पवित्र करे। यह भोजन जूठन आदि से दूपित हो या मैं दुश्चरित्र हू, तो इसे ग्रहण करनेवाले मुझे पवित्र करें। मै यह आहुति देता हू। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान एव ब्रह्म को आहुति देता हूं। मेरा आत्मा ब्रह्म में अमृतत्व प्राप्त करे (यह सब पूजा-पाठ आदि के मत्र है, जो योगी के भोजन के प्रसंग में यहां आए हैं)। (6-10)

कनिष्ठिका एवं अंगूठे से प्राण को, अनामिका से अपान को, मध्यमा से व्यान को, सभी अंगुलियो से उदान को तथा तर्जनी से समान को आहुति दे। मौन होकर एक आहुति प्राण को तथा दो आहुतियां अपान को (आह्वनीय अग्नि में) दे, दो आहुतिया दक्षिणाग्नि में, एक गार्हपत्य अग्नि में तथा एक प्रायश्चित्त रूप अग्नि में दे। अपिधान स्वरूप को अमाता के लिए छूकर ग्रहण करके पुन. स्पर्श करे। बाए हाथ में जल लेकर हृदय के पास इस प्रकार जप करे—प्राण ही अग्नि है, परमात्मा है तथा पाच वायु से ढका हुआ है। यह सभी प्राणियों से मुझे अभय करे। मुझे कोई भय न हो। हे प्राण। तुम विश्व हो, वैश्वानर हो तथा इस उत्पन्न जगत को धारण करनेवाले हो। तुम्हारे लिए यह विश्व आहुति रूप है। तुरीयावस्था में यह विलीन हो जाता है। (7-15)

76. ध्यानविंदु उपनिषद

शांतिपाठ :

> ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
> तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
>
> ॐ शांति. शांतिः शांतिः।

परमात्मा हम दोनो की रक्षा करे तथा एक साथ ही हमे भोग प्रदान करे। हम दोनो एक साथ वीरता के कार्य करे, और परस्पर द्वेष न करें। तीनों ताप शांत हो जाएं।

पर्वतों के समान योजनों तक फैले पापों को भी ध्यान योग ही नष्ट कर सकता है, दूसरा कोई नही है। वीजाक्षर परम विदु के ऊपर नाद है, जिसके अक्षर में लय होने पर शब्दहीन परम पद ही रहता है। अनाहत से भी भिन्न शब्द की प्राप्ति से योगी मोक्ष पाता है। वाल के दो लाखवें भाग का भी क्षय हो जाने पर वह परमात्मा वन जाता है। जैसे फूलों, दूध, तिल और पाषाणों मे क्रमश सुगध, घी, तेल और सोना होता है तथा जैसे माला में मोती पिरोए होते हैं, वैसे ही प्राणी अविचल परमात्मा में व्याप्त है। अत अविचल ज्ञानी व्रह्म को जानकर उसी में स्थित होता है। परमात्मा भी तिलो मे तेल इत्यादि के समान शरीर में सर्वत्र स्थित है। जैसे सारे वृक्ष को जान लेने पर छाया का अस्तित्व मालूम हो जाता है, उसी प्रकार कलारहित स्थान में परमात्मा रहता है। मुमुक्षु ओंकार एकाक्षर व्रह्म का ध्यान करते है। ओम के प्रथम अक्षर 'अ' में पृथ्वी, अग्नि, ऋग्वेद, भू तथा व्रह्मा लय होते हे। 'उ' में अतरिक्ष, यजुर्वेद, वायु, भुव. एव विष्णु का लय होता है। (1-10)

'म' मे द्युलोक, सूर्य, सामवेद, 'स्व' तथा महेश का लय होता है। 'अ' रजोगुणी पीले रग का, 'उ' सात्त्विक एवं सफेद तथा 'म' काले रंगवाला तमोगुणी है। यह ओंकार चार पावोंवाला, आठ अंगोंवाला, तीन नेत्रों तथा पाच देवताओंवाला है। ओंकार को न जाननेवाला व्राह्मण नहीं माना जाता। प्रणव (ओम्) धनुष, आत्मा तीर और व्रह्म लक्ष्य है। सावधानी से लक्ष्य को वेधने पर व्रह्म-ज्ञान से सभी कर्मों से मुक्ति मिल जाती है। देवता, स्वर तथा तीनों लोको के सभी चराचर प्राणी ओंकार से ही उत्पन्न हुए। इसकी ह्रस्व मात्रा पापों को हरती है और दीर्घ मात्रा सपत्तिया देती है। अर्धमात्रा से युक्त ओंकार मोक्ष देता है। प्रणव के अगले भाग मे लगातार गिरती तेल की धारा और घटे के शब्द समान नाद को जाननेवाला ही वेदों को जानता है। हृदय कमल की कर्णिका में दीपक के समान अगूठे के वरावर अचल ओंकार का ध्यान करें और वायु को पेट में भरकर शरीर के वीच में लपटोंवाले ओंकार का चिंतन करे। पूरक, कुभक और रेचक क्रमश व्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं, अत ये तीनों प्राणायाम के देवता हे। (11-21)

आत्मा एव ओंकार को क्रमश नीचे एव ऊपर की अरणी (यज्ञ की लकडी जिसमे आग जलाई जाती है) मानकर मथन करके व्रह्म का दर्शन करें। ओंकार के ध्यान के वाद रेचक मे नाद का लय होता है, इसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार करे। सासों मे स्थित तथा स्वय सासो से शून्य करो ता भूमां

तुम पाव के अगुष्ठ के आगे प्रतिष्ठित हो और प्रतिपल नए-नए रूप ' 'रण करते हो। इस भोजन के अत में अमृतत्व प्राप्ति के लिए मैं तेरा अभिषेक करता हूं। ये सब चेष्टाए हैं। अत. बाहरी आत्मा का ध्यान करे। यह प्रतिदिन प्राणरूप अग्निहोत्र करता है। इसका सभी पुत्र के ममान पालन करते हैं। तू ही मेरी आहुतियों का होम करता है। शरीर में ही यज्ञ की कल्पना की जाती है। इसमें चार अग्निया हैं। ये अत्यंत सूक्ष्म हैं। अर्धमात्रावाली हैं। इनमें सूर्याग्नि सूर्यमडल की आकृति का तेज किरणोंवाला है, जो सिर में रहता है। दर्शनाग्नि चार मुखवाले आहनीय रूप में होकर मुख में स्थित है। शरीराग्नि शरीर को क्षीण करता है और स्थूल प्रपच हवि महण करता है। यह अर्धचद्र समान दक्षिणाग्नि बनकर हृदय में निवास करता है। कोष्ठाग्नि खाए-पिए को पचाकर गार्हपत्य के रूप में नाभि में स्थित है। चित्त उपाधि स्वरूप के नीचे जागृत आदि तीन अवस्थाओं को प्रकाशित करनेवाला चद्रमारूप प्रभु सबकी उत्पत्ति का कारण है। (16-20)

यह शरीर यज्ञ यूप (खभा) के समान शोभावाला है। इस यज्ञ का यजमान कौन है ? पत्नी कौन है ? सदस्य, यज्ञपात्र, हवि, वेदी, कलश, रथ, पशु, अध्वर्यु, ब्रह्मा, प्रतिस्थापक, प्रस्तोता, मित्रावरुण, उद्गाता, पवन करनेवाला, कुश, स्रुवा, थाली आधार, इत्यादि (यज्ञ के उपकरण या भाग लेनेवाले) कौन या क्या हैं ? इसका यजमान साधक का आत्मा है, पत्नी बुद्धि है, वेद ऋत्विज हैं, अहकार अध्वर्यु है, चित्त 'होता' है, प्राण ब्रह्मा है, अपान, व्यान, उदान एव समान क्रमश. प्रतिष्ठाता, प्रस्तोता, उद्गाता एव मित्रवरुण हैं। शरीर, नाक, सिर, पैर, दाहिना हाथ, बाया हाथ, कान, आख, गर्दन, तन्मात्राए, पचभूत, जीभ, दात तथा तालु क्रमश· वेदी, अंतर्वेदी, दोना-कलश, रथ, स्रुवा, घी का पात्र, आधार, प्रोक्षणपात्र, घी, धारा, पवन करनेवाला, सदस्य, प्रयाज-अनुयाज, इड़ा, सूक्त वाक तथा शयोर्वाक है। स्मृति-दया-अहिंसा, ओम, आशा, मन, कामः काल, ज्ञानेंद्रिया, कर्मेंद्रिया, अहिंसा, त्याग और मृत्यु क्रमशः पत्नी संयाज, यज्ञस्तभ, रशना, रथ, पशु कुशाए, यज्ञपत्र, हवि, इष्टिकाए, दक्षिणा और अवभृथ स्नान हैं। सभी देवता इस प्रकार शरीर यज्ञ करनेवाले के शरीर में रहते हैं और मृत्यु पर वह स्वर्ग जाता है। किसी का देहात काशी में हो या इसके पढने से ही ब्रह्म को जाननेवाला इसी जन्म से मोक्ष पाता है। (21-22)

☐

के समान तेजस्वी सबके हृदय में रहनेवाले हंस ओंकार के दर्शनों से साधक पापमुक्त होता है। सृष्टि, स्थिति एव प्रलय के कारण मन का जहां लय होता है, वहीं विष्णु का परमपद है। बत्तीस केसरोंवाले अष्टदल कमल के बीच में सूर्य, चद्र और अग्नि हैं। चंद्रमा के बीच में अग्नि तथा अग्नि में प्रभा है। प्रभा में अनेक रत्नों का पीठ है, जिसमें विष्णु हैं, जो श्रीवत्स, कौस्तुभ आदि मणियों से सुशोभित हैं। शुद्ध स्फटिक एवं करोडों चंद्रों के समान महाविष्णु का विनम्रता से ध्यान करें। नाभि में अलसी फूल के समान विष्णु का पूरक करते हुए ध्यान करें। (22-30)

कुभक में हृदय स्थान में कमल पर वैठे लालिमायुक्त गोरे चार मुहवाले ब्रह्मा का ध्यान करें और रेचक में ललाट पर शुद्ध स्फटिक समान निष्कल पाप-नाशक तीन नेत्रोंवाले शिव का ध्यान करें। नीचे फूल तथा ऊपर नालवाले नीचे मुह किए हुए केले के फूल के समान शिव सभी देवों से युक्त हैं। सौ अरों, सौ पत्तों और फैली हुई पंखुडियोंवाले हृदयकमल में एक के ऊपर एक सूर्य, चद्र और अग्नि के दर्शन करें। कमल के विकसित होने पर सूर्य, चद्र और अग्नि के योग से इनके बीज को ग्रहण करने से स्थिर आत्मशक्ति की प्राप्ति होती है। तीन-तीन स्थान-मार्ग, ब्रह्मा, अक्षर, मात्रा, अर्धमात्रा एव वायु को जाननेवाला वेदों को जानता है। तेल की धार एव घंटे के शब्द जैसे प्रणव के अग्रभाग के नाद को जाननेवाला वेदों को जानता है। कमल की नाल से जल खींचने के समान वायु को खीचकर योगी स्थिर बने। अर्धमात्रावाले कमलकोश को नाल से खींचकर भ्रूमध्य में लय करें। भ्रूमध्य (भौंहो के बीच) ललाट और नासिका मूल को अमृत एव ब्रह्म का घर समझना चाहिए। (31-40)

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एव समाधि, योग के छः अंग हैं। जितनी योनिया है, उतने ही आसन भी हैं। इतने अधिक आसनों को केवल महेश्वर ही जानते हैं। सिद्ध, भद्र, सिंह एवं पद्म, ये चार मुख्य आसन हैं। आधार पहला तथा स्वाधिष्ठान दूसरा चक्र है। इन दोनों के बीच में कामरूप योनि स्थान है। गुदा में आधार चक्र में चार दलोंवाला कमल है। इसके मध्य में कामाख्या योनि है, जिसकी सिद्ध वदना करते हैं। योनि के बीच में पश्चिम को मुह वाला लिग है। इसके माथे की मणि को वेदवेत्ता जानते हैं। तपे सोने और विद्युत लेखा जैसे चमकते अग्नि स्थान से चार अंगुल ऊपर तथा मेद्र के नीचे शब्द युक्त प्राण है, स्वाधिष्ठान इसके आश्रय में है। अत. मेद्र को ही स्वाधिष्ठान चक्र कहते हैं। यह मणि के समान ततुओं (रेशों) और वायु से बने आकार का है। उस नाभिमडल को मणिपूरक कहा जाता है। बारह अरोंवाले महाचक्र में पाप-पुण्य से नियत्रित जीव तब तक घूमता रहता है, जब तक उसे ज्ञान नही होता। मेद्र से ऊपर और नाभि से नीचे पक्षी के अडे के समान कद से बहत्तर हजार नाडिया निकलती हैं। इनमें बहत्तर नाड़िया मुख्य हैं। (41-51)

बहत्तर नाडियों में भी प्राणों को धारण करनेवाली दस नाड़िया हैं। इनके नाम क्रमशः इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गाधारी, हस्तजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलबुषा, कुहू और शखिनी हैं। इस नाड़ी-चक्र से योनियों को जानना चाहिए। इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना बायीं, दाहिनी तथा मध्य में (दोनों स्वरों के चलने पर) हैं। चंद्रमा, सूर्य और अग्नि क्रमश· इनके देवता हैं। प्राण सदा इन्ही में चलता है। प्राण, अपान, उदान, समान एव व्यान, ये पांच प्राण कहलाते हैं तथा नाग, कूर्म, कृकर,

योग कुंडलि ी उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सहनौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शांति. शांति. शांतिः ।

परमात्मा हम दोनों गुरु-शिष्य की एक साथ रक्षा करे,एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम दोनों एक साथ पराक्रम के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम विद्वेष न करे। तीनों ताप शांत हों।

प्रथम अध्याय

चित्त की चंचलता के दो कारण हैं—वासना तथा वायु (मांस)। इनमें एक के नष्ट होने पर (वश में होने पर) दूसरा स्वत नष्ट (वश में) हो जाता है। अत. पहले वायु (प्राण) को वश में करना चाहिए। इसके लिए मिताहार (कम भोजन), आसन और शक्तिचालन करना चाहिए। यहां इनके लक्षण वताए जा रहे हैं। मधुर एवं स्निग्ध भोजन करते हुए एक चौथाई पेट को खाली रखना चाहिए। ईश्वर के उद्देश्य से किया गया भोजन ही कल्याणकारक है। पद्मासन एव वज्र आसन, दो मुख्य आसन हैं। दोनों तलुओं को एक-दूसरे पैर में रखने से पद्मासन वनता है, जो सभी पापों को नष्ट करनेवाला है। वायी एड़ी को कंद के नीचे और दाहिनी को ऊपर रखने पर सिर सहित शरीर को तना रखने से वज्रासन होता है। कुंडलिनी मुख्य शक्ति है। इसे साधक द्वारा भ्रूमध्य में ले जाना ही शक्ति-चालन है। इसे चलाने के दो उपाय है, सरस्वती-चालन तथा प्राणायाम। अभ्यास से लिपटी हुई कुंडली सीधी हो जाती है। सरस्वती को अरुंधती भी कहते हैं। सरस्वती के चालन मे कुडलिनी स्वयं चलने लगती है। इसके लिए इड़ा स्वर (वाया) चलने पर पद्मासन लगाकर वैठें। (1-10)

तव वारह अंगुल लंवे और चार अंगुल चौड़े आकाश के (कल्पित) टुकड़े कुडलिनी को लपेटें। फिर एक-एक नाक को वद करके दूसरे से पूरक और पहले से रेचक पुन-पुन करें। इस प्रकार मुहूर्त भर तक सरस्वती का चालन करते रहें। तव कुडलिनी के समीप रहनेवाली सुषुम्ना को कुछ ऊपर खीचें। इस प्रकार कुंडलिनी सुषुम्ना के मुख में चढ़ने लगती है तथा प्राण भी इस स्थान को छोड़कर स्वयं सुषुम्ना में चलने लगता है। पेट को ऊपर खींचकर कठ को सिकोडने से सरस्वती को चलाने के कारण वायु वक्षस्थल के ऊपर चला जाता है। सरस्वती-चालन में सूर्य (दाहिने) से रेचक करें और कंठ को सिकोडें। इससे वायु वक्षस्थल के ऊपर चला जाता है। ऐसे ही शब्दगर्भा सरस्वती को नित्य चलाना चाहिए। इससे योगी समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है। गुल्म, जलोदर, प्लीहा तथा उदर-रोग शक्ति-चालन से निश्चित ही नष्ट हो जाते हैं। शरीर में चलनेवाला वायु प्राण कहलाता है। इसे रोकना कुंभक है। यह दो प्रकार का है—सहित कुभक तथा केवल कुभक। केवल कुभक को सिद्धि तक सहित कुभक का अभ्यास करना चाहिए। (11-20)

देवदत्त एव धनंजय, ये पांच वायु है । जीव के समान ये हजारों नाडियां है । जीव, प्राण और अपान से सदा ऊपर-नीचे जाता रहता है । एक हाथ से दूसरे में फेंकी जाती हुई गेद के समान दाहिने-बाए मार्ग से चलनेवाला जीव चंचलता से दिखाई नही देता । प्राण अपान को खीचता है तथा अपान प्राण को, इस तरह खीचा जाता हुआ जीव आराम नही पाता । (52-60)

इस प्रकार डोर से बंधे पक्षी के समान ऊपर-नीचे खीचे जाते हुए इस प्राण को जाननेवाला ही योग ज्ञाता है । 'ह' अक्षर से यह बाहर आता है तथा 'स' से अदर जाता है, अत जीव सदा 'हस-हस' मत्र जपता है । एक दिन रात्रि मे यह जपसंख्या इक्कीस हजार छ सौ होती है, जिसे मोक्षदायिनी अजपा गायत्री कहते हैं । इसके सकल्प से ही मनुष्य पापहीन हो जाता है । इसके समान कोई विद्या, जप या पुण्य नही है । इससे बिना कठिनाई के ब्रह्म स्थान मिलता है । परमेश्वरी उस स्थान को मुह से ढककर सोती है । वह वह्नियोग से जागृत होती है, तब सुषुम्ना मे प्राण और मन सहित ऊपर जाती है, जैसे सुई तागे को ऊपर ले जाती है । जैसे चाबी से ताला खुलता है, वैसे ही कुडलिनी से मोक्ष द्वार खुलता है । पद्मासन में हाथो को सपुटित करके ठोडी से वक्षस्थल को दृढता से दबाए, ब्रह्म का ध्यान करते हुए अपान को ऊपर तथा प्राण को नीचे खीचे । इस प्रक्रिया से साधक कुडलिनी का प्रभाव अनुभव करता है । पद्मासन मे वायु को नाडियों मे भरकर कुभक करनेवाला योगी अवश्य मुक्ति प्राप्त करता है । (61-70)

इस अभ्यास में निकले पसीने का मालिश कर लें । कड़वा, खट्टा तथा नमकीन त्यागकर दूध ही पिएं । ऐसा योगी वर्ष-भर में ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है । कुडलिनी के कद से ऊपर रहने पर सिद्धि मिलती है । प्राण-अपान की एकता से मूलबध पर योगी का मल-मूत्र घट जाता है तथा वृद्ध भी युवक हो जाता है । एड़ी से गुदा को दबाकर सिकोडकर अपान को ऊपर खीचना ही मूलबध है । जैसे गरुड़ बिना थके लंबी उड़ान भरता है उसी प्रकार उदर को पश्चिम की ओर (नाभि की ओर) ऊपर को तानने पर उड्डीयाण बंध होता है । यह मृत्युरूप हाथी के लिए सिंह जैसा है । इसमें सिर के जल को ऊपर ही रोक देने से गले के कष्ट दूर हो जाते हैं । अमृत अग्नि मे नही गिरता । जीभ को लौटाकर कपाल कुहर में ले जाए, दृष्टि भ्रूमध्य में रखें । इसे खेचरी मुद्रा कहते है । यह रोग, मृत्यु, नीद, भूख एवं प्यास को जीत लेती है । (71-80)

खेचरी का ज्ञाता मूर्च्छा तथा रोगों से मुक्त होकर कर्मों में लिप्त नही होता और उसे मृत्यु नही बाध सकती । जिसका चित्त इसमें लगा रहता है, जिह्वा आकाश की ओर जाती है, उसे सिद्ध नमस्कार करते हैं । इस मुद्रा से जिह्वा ऊपर से विवर को ढक लेती है, अत कामिनी के आलिगन मे भी उसका वीर्य क्षय नही होता है, जब तक वीर्य शरीर में रहता है तब तक मृत्यु भय नही होता तथा जब तक यह मुद्रा रहती है, तब तक वीर्य शरीर मे ही रहता है । वीर्य क्षरित होकर योनि मडल मे भी चला जाए, तो योनि-मुद्रा से उसे बलात् ऊपर लाया जाता है । वीर्य सफेद एव लाल दो प्रकार के कणोंवाला होता है, जो क्रमश शुक्ल एवं महारज कहे जाते है । गूगे के समान रज योनि स्थान मे तथा शुक्ल चद्र स्थान में रहता है । इन दोनो का मिलन अत्यत कठिन है । शुक्ल शिव और चद्रमा तथा रज शक्ति और सूर्य रूप है । इन दोनों के मिलन मे ही परम शरीर मिलता है । वायु से शक्ति चालन द्वारा रज आकाश में सूर्य से मिलकर शरीर को दिव्य बनाता है । शुक्ल चद्रमा से और रज सूर्य से मिला हुआ (सयुक्त) है । (81-90)

सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली तथा भस्त्री, इन चार प्रकार के प्राणायामों के साथ कुभक किया जाता है। पवित्र, निर्जन, कंकड़ आदि रहित समतल भूमि में किसी सुखदायक आसन में पद्मासन लगाकर बैठे और सरस्वती चालन करें। दाहिने ओर से पर्याप्त पूरक करें और इड़ा से रेचक करें। कपाल-शोधन क्रिया में भी धीरे से रेचक करें। इससे चारों प्रकार के वात एवं कृमिदोष नष्ट होते हैं। यह सूर्यभेदन है, जिसका बार-बार अभ्यास करना चाहिए। अब मुख बंद करके दोनों नाकों से धीरे-धीरे पूरक करें, जिससे शब्द करता हुआ वायु कंठ से हृदय तक भर जाए। तब इससे पहले के समान सूर्य से पूरक तथा इडा से रेचक करें। इससे माथे की गर्मी, गले का कफ नष्ट होकर शरीर की उष्णता बढ़ती है। साथ ही नाड़ी रोग, जलोदर एव धातुरोग भी ठीक हो जाते हैं। इस उज्जायी कुभक को चलते-फिरते या रुककर सदा करते रहना चाहिए। शीतली, प्राणायाम में वायु को जीभ से खीचकर पहले के समान कुभक करें, फिर नासिका से रेचक करें। (21-30)

इससे गुल्म, प्लीहा, क्षय, पित्त, ज्वर, तृषा, विष आदि रोग-दोष नष्ट होते हैं। भस्त्री प्राणायाम में पद्मासन में गर्दन एवं उदर को सीधे रखें। मुख को बंद करके सावधानी से नाक से रेचक करें। फिर वेग से इस प्रकार वायु खीचें कि कठ, तालु, कपाल एव हृदय को उसका स्पर्श लगे। रेचक करके फिर वेग से लोहार की धौंकनी की तरह पूरक करें। शरीर में स्थित वायु को सावधानी से चलाएं। थकान होने पर सूर्य नाडी से पूरक करके तर्जनी के अतिरिक्त अगुलियों से नासिका को बीच में जोर से पकड़कर कुभक करें तथा बायी नाक से रेचक करें। यह अभ्यास गले की जलन एवं शरीर की शीतलता को दूर करता है। कुडलिनी को जगाता है, पाप-दु ख नष्ट करके सुख और आनद देता है। यह सुषुम्ना के मुख के कफ को नष्ट करके तीनों गुणों की ग्रथियों को काटता है। अत इस भस्त्री का विशेष अभ्यास करना चाहिए। इन चारों प्राणायामों के साथ योगी को तीन बधों को भी करना चाहिए। (31-40)

मूलबंध, उड्डीयाण बध एव जालंधर बध, ये तीन बध हैं। नीचे को गतिवाले अपान को गुदा को संकुचित करते हुए ऊपर ले जाना मूलबध है। ऊपर जाने पर यह अग्नि-मडल से मिलता है और अग्नि को तीव्र कर देता है। इससे सुप्त कुडलिनी जागृत हो जाती है तथा डंडे से आहत सांपिन के समान फुफकारती हुई सीधी हो जाती है। तब यह सुषुम्ना रूपी बिल में घुस जाती है। अतः योगी सदा मूलबध का अभ्यास करें। कुभक के तथा रेचक के बीच में उड्डीयाण बध किया जाता है। इसमे वज्रासन लगाकर हाथों से दृढता से पैरों को पकड़ें। टखने से कंद को दबाए। हृदय एवं गले को तना हुआ रखकर पेट को ऊपर को खीचें। इससे प्राण वायु पेट के जोड़ों में जाता है, जो समस्त उदर-दोषों को दूर करता है। अत इसका सदा अभ्यास करना चाहिए। (41-50)

जालधर बध में वायु को रोकने के लिए कंठ को सकुचित किया जाता है, अत. इसे पूरक के अत में करें। नीचे के भाग में मूलबध से गुदा को संकुचित करें। मध्य में उड्डीयाण से प्राण को खीचे। इस प्रकार सभी ओर से रोका हुआ प्राण सुषुम्ना में चढता है। पूर्वोक्त प्रकार से आसन में बैठकर सरस्वती को चलाकर प्राणों को रोकना चाहिए। प्रथम दिन चारों कुंभक दस-दस बार करें, दूसरे दिन पद्रह-पद्रह बार, तीसरे दिन बीस-बीस बार करें; अर्थात पाच-पाच कुभक प्रतिदिन बढ़ाते जाएं। इनका अभ्यास तीनों बधों के साथ करें। दिन की नीद, रात्रि जागरण, अधिक मैथुन, अधिक

इनकी एकरूपता को जाननेवाला योगवेत्ता है। मलों की शुद्धि के लिए सूर्य एव चद्रमा का सयोग कराया जाता है। रसों को सुखाने के लिए महामुद्रा है। ठोडी से वक्ष को तथा बायीं एडी से योनि स्थान को दबाए, फैले हुए दाहिने पैर को पकडकर दोनो बगलों को दबाए और सास भरकर धीरे-धीरे रेचक करे। यह पापनाशक महामुद्रा कही जाती है। (91-93)

आत्मा की व्याख्या की जाती है। हृदय स्थान के अष्ट दल कमल में गोल रेखा के रूप में ज्योतिरूपी अणु जैसा जीवात्मा रहता है। उसी मे सब प्रतिष्ठित है, वही सब कुछ जानता या करता है। वही सोचता है, 'मै कर्ता, भोक्ता, सुखी, दु खी, काना, गजा आदि हू।' इस कमल की पूर्वी पखुडी सफेद है, जिसमें रहने से मति भक्ति-धर्म मे होती है। अग्निकोण के लाल दल में रहने से निद्रा-आलस्य मे मति जाती है, दक्षिणी काले दल से द्वेष-कोप आदि मे, नीले रग के नैरऋत दल से पाप-हिसा आदि मे, स्फटिक समान पश्चिमी दल से क्रीड़ा-विनोद आदि मे, वायव्य दल मणि जैसा है, इसमे जाने से वैराग्य में, पीले रग के उत्तरी दल से सुख, शृगार आदि में, वैदूर्य के समान ईशान दल से दान-दया आदि मे मति होती है। सधियो मे जाने से वात, पित्त आदि रोग, मध्य मे जाने से ज्ञान होता है, गाता है, नाचता है आदि-आदि, नेत्रों में थकान होने पर यहां प्रथम रेखा में डुबकी लगाकर निद्रा हो जाती है। यह रेखा बधूक फूल के समान है। निद्रा में स्वप्नावस्था होती है। स्वप्न मे देखी, सुनी कल्पनाओ से थक जाने पर यह (जीव) दूसरी रेखा में डुबकी लगाता है, जिसका रग वीर बहूटी जैसा है तब सुषुप्ति अवस्था मे बुद्धि ईश्वर से सबध रखकर ज्ञानरूप होती है। इसी से बाद मे परमात्मा की प्राप्ति होती है। कमल पराग के समान अन्य रेखा मे डुबकी लगाने पर तुरीय अवस्था होती है। इसमे बुद्धि परमात्मा से सबध रखकर बोधरूप होती है। यहा पर साधक सबसे अलग होकर धैर्य से मन को आत्मा मे स्थिर करे। अन्य चितन छोड दे। इस पर प्राण-अपान को एक करके समस्त विश्व को अपना ही रूप समझे और उसी का लक्ष्य रखे। बाद मे तुरीयातीत अवस्था मे समस्त द्वद्व-भाव मिट जाता है और पूर्वजन्म के फलो को भोगने तक ही जीव शरीर मे रहता है। यही मोक्ष का तथा आत्मदर्शन का मार्ग है। वह परमात्मा से मिल जाता है। तब चारो भागो से युक्त महाद्वार में जानेवाले वायु के साथ स्थित होकर अर्ध त्रिकोण में अच्युत परमात्मा दिखाई देता है। (94)

पूर्वोक्त त्रिकोण स्थान के ऊपर पाच रगो के पृथ्वी आदि पाच तत्त्व ध्यान करने योग्य है। बीज, वर्ण एव स्थान सहित पाच वायुओ का ध्यान करे। वायु रूप प्राण का बीज 'य' नीले बादल जैसा है। 'र' अग्निरूपी अपान का बीज सूर्य जैसा, 'ल' व्यान का पृथ्वी रूप बीज बधूक पुष्प जैसा, 'व' उदान का जीव रूप बीज शख जैसा तथा 'ह' 'समान' का आकाशरूप बीज स्फटिक जैसे रग का है। हृदय, नाभि, नाक, कान और पैर का अगूठा 'समान' वायु के स्थान है। यह बहत्तर हजार नाडियों तथा शरीर के रोयों (रोमों) मे भरा हुआ है। समान प्राण एक जीव ही है। चित्त को आस्वस्त करके पूरक, कुभक एव रेचक तीनो करे। धीरे-धीरे वायु को खीचकर हृदय कमल के कोटर मे (भीतर) प्राण एव अपान को रोककर 'ओम' का उच्चारण करे। कठ एवं लिग को सिकोडकर मूलाधार से कमल नाल के समान निकलनेवाली सुषुम्ना को सिकोडे। वीणा के समान नाद प्रतीत होता है, जिसके बीच मे शख ध्वनि जैसी होती है। कपाल कुहर के बीच मे चारो द्वारो का केंद्र है।

चलना,मल-मूत्र रोकना,आसन की विषमता आदि दोषों से युक्त अभ्यास करने पर शीघ्र रोग होते हैं। यदि कोई कहे कि उसे इस अभ्यास से ही रोग हुआ,तो समझें कि अभ्यास को रोकना ही प्रथम विघ्न है। संशय,लापरवाही,आलस्य,अधिक सोना,प्रसन्न न रहना,भ्राति,विषमता,बिना कहा तथा योग तत्त्व का न मिलना क्रमश दूसरा,तीसरा आदि विघ्न हैं। बुद्धिमान इन सबको समझकर इनका अभ्यास से पूर्व ही त्याग कर दे। (51-61)

प्राणायाम का अभ्यास सदा सात्विक बुद्धि से करना चाहिए। इससे चित्त सुषुम्ना मे दौडता है तथा वायु नही दौड़ता। मल शोधन के बाद जब प्राण चलने लगे,तो सावधानी से अपान की गति ऊपर को करनी चाहिए। गुदा का संकुचन मूलबंध है। इसमें अपान ऊपर अग्नि से मिलकर सुप्त कुंडलिनी को जागृत करता है। तब वह सीधी होकर सुषुम्ना के मुख में प्रविष्ट हो जाती है। रजोगुण से उत्पन्न ब्रह्मग्रंथि को भेदकर यह सुषुम्ना के भीतर विद्युत रेखा समान बढती है। शीघ्र ही हृदय स्थित विष्णु ग्रंथि को प्राप्त कर पुन· ऊपर जाकर रुद्र ग्रथि में पहुचती है। यहा से भ्रूमध्य को भेदकर चंद्र स्थान मे पहुंचती है। वहां सोलह दलोंवाला अनाहत चक्र है। यहा यह चद्रमा से उत्पन्न द्रव को सोख लेती है तथा सूर्य प्राण के वेर्ग से रक्त एवं पित्त को ग्रहण कर लेता है। (62-70)

चद्र-मंडल में द्रव का शोषण करने के बाद यह उसे उष्ण कर देती है और चद्रमा के सफेद रग को भी तपा देती है। स्वयं क्षुब्ध होकर ऊपर चढ़ती है। इसके प्रभाव से अभी तक बाहरी पदार्थों मे लगा चित्त परमार्थ में लगकर आनंदित होता है। तब आठ प्रकार क्री प्रकृति को प्राप्त कर यह कुंडलिनी शिव से मिलकर उसमें लीन हो जाती है। इसके नीचे का भाग रज तथा ऊपरी भाग शुक्ल मिलकर शिव में लीन हो जाते हैं और प्राण-अपान भी उसी मे लीन हो जाते है,क्योंकि ये दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं। यह भौतिक शरीर चाहे बड़ा हो या छोटा,उष्णता बढने पर वह इसमे वैसे ही सब जगह फैल जाती है, जैसे गर्म किए जाने पर सोने में फैलाव आ जाता है। इसके प्रभाव से भौतिक देह दैविक बनकर निर्मल सूक्ष्म शरीर समान बन जाता है,जडता त्यागकर चैतन्य स्वरूप वन जाता है,जबकि अन्य शरीर जड़ ही रह जाते हैं। ऐसे साधक का जन्म-चक्र छूट जाता है,काल भी उससे विवश हो जाता है तथा उसे स्वरूप का सच्चा ज्ञान हो जाता है। रस्सी में सर्पभ्रम,सीप में चांदी का भ्रम तथा स्त्री में पुरुष के भ्रम के समान वह अपने शरीर के भ्रम को भी समझ जाता है कि यह मिथ्या है। (71-80)

वह इस पिंड और ब्रह्म की तथा लिंगदेह और सूत्र आत्मा की एकता होने पर अपने आत्मा तथा स्वयं प्रकाश चिदात्मा में भी एकता समझने लगता है। कुडलिनी कमल की नाल के समान होती है,यह कमल के कंद के समान ही मूलकंद को फन के अगले भाग के समान देखकर अपनी पूंछ को मुंह में लिए सोती है। यह ब्रह्मरध्र के मुह को ढक देती है। पद्मासन में गुदा को सकुचित करते हुए कुंभक में वायु को ऊपर चढाएं। वायु की शक्ति से स्वाधिष्ठान चक्र की अग्नि को तीव्र करें। इस पर अग्नि एवं वायु दोनों के आघातों से सोई हुई कुडलिनी जागती है। तब यह ब्रह्म,विष्णु एवं रुद्रग्रंथियों को तथा षटचक्र को भेदती हुई सहस्त्र दलोंवाले कमल में जा पहुचती है। वहां शक्तिरूप में शिव से मिलकर आनंद प्राप्त करती है। यही अवस्था परम अवस्था है,जो मोक्ष देनेवाली है। (8-87)

वहां आकाश रंध्र से जाता हुआ नाद मोर की आवाज जैसा होता है। आकाश के समान ही यहा भी सूर्य है। ब्रह्मरंध्र में दो धनुषों के बीच शक्ति विराजमान है। योगी यही अपने मन को लय करके अपने आत्मा को देखते हैं। यही रत्नो की ज्योति जैसे नाद, बिंदु और महेश्वर का स्थान है। इसे जाननेवाला पुरुष कैवल्य प्राप्त करता है।

□

द्वितीय अध्याय

खेचरी विद्या के ज्ञाता वृद्धावस्था एवं मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं। मृत्यु जरा (वृद्धावस्था) एव व्याधिग्रस्त लोग विश्वास के साथ इसका अभ्यास करें। इसके लिए किसी ऐसे व्यक्ति को गुरु बनाना चाहिए, जो ग्रथो से, भावों से और अभ्यास से इसका ज्ञाता हो। यह खेचरी विद्या अत्यत कठिन है तथा इसका अभ्यास भी कठिन है। इसका अभ्यास तथा योग (मेलन) दोनों एक साथ सिद्ध नही होते। अभ्यास में ही लगे रहने पर मेलन भी सिद्ध नही होता। अभ्यास तो किसी भी जन्म में हो सकता है, किंतु मेलन सौ जन्म में भी प्राप्त नहीं होता। अनेक जन्मों के अभ्यास से ही मेलन सिद्ध होता है। गुरु के मुख से मेलन-मत्र मिलने पर शास्त्रों के अनुकूल सिद्धि मिलती है। शास्त्राध्ययन से अर्थ को समझकर मेलन प्राप्त करके साधक ससार से मुक्त होकर शिवत्व प्राप्त करता है। शास्त्र के बिना गुरु भी इसका बोध नही करा सकते। अत. यह शास्त्र प्राप्त होना अत्यत दुर्लभ है। (1-10)

शास्त्र की प्राप्ति तक इसके लिए घूमते रहें। शास्त्र प्राप्त हो जाने पर सिद्धि हाथ मे ही समझें। शास्त्र के अभाव में तीनों लोको मे कही सिद्धि नहीं मिलती, अत मेलन का देनेवाला, शास्त्र का अभ्यास करानेवाला तथा शास्त्र देनेवाला गुरु भगवान का रूप है। इस भावना से उससे प्राप्त शास्त्र को किसी से प्रकट नही करें, हर प्रकार से गुप्त रखें और जहां भी इस दिव्य योग का देनेवाला गुरु मिले, वही जाकर खेचरी विद्या प्राप्त करें, इसका सही रूप मे अभ्यास करे। इस विद्या से योगी खेचरी शक्ति प्राप्त करता है। खेचरी में खेचरी को सयुक्त करके खेचरी बीज के योग से साधक देवता बनकर उनके बीच रहता है। खेचर का प्रतीक 'ह', अग्नि का 'र', धारणा का 'ई' तथा जल का 'म' है। इनसे 'ह्रीम' बनता है, जो खेचरी का बीज मंत्र है। इसी से खेचरी योग सिद्ध होता है। सोम 'चद्रमा' का अश 'स' है। इससे उलटे क्रम में (पूर्व वर्ण) नवां 'भ', बाद में इसी क्रम मे आठवा 'म' वर्ण होता है। फिर 'म' से उलटा पाचवां (प) तथा पुन चद्र का अश (स) के बाद अनेक अक्षरवाला (क्ष) वर्ण रखने से यह मंत्र बनता है (ह्री, भ, स म, पं स, क्ष)। यहा इसे कूट (साकेतिक) रूप मे बताया गया है। (11-20)

गुरु के उपदेश से ही सिद्ध होनेवाला यह खचेरी मंत्र सभी सिद्धियों को देनेवाला है। जो नित्य इसका बारह जप करता है, उसके अंतःकरण में शरीर विषयक माया का प्रभाव नही होता। श्रद्धा सहित इसके पाच लाख जप से खेचरी की सिद्धि होती है। उसके सभी विघ्न दूर होकर देवताओ को प्रसन्नता प्राप्त होती हैं। इससे शरीर की झुर्रिया निश्चय ही मिट जाती है। इसको अच्छी तरह समझकर ही इसका अभ्यास करें, अन्यथा सिद्धि के स्थान पर हानि ही होती है। नियम सहित जप से भी सिद्धि न मिले तो गुरु के निर्देश के अनुसार नित्य जप करते रहे। योग्य गुरु के बिना इसकी सिद्धि कदापि नही होती। उचित शास्त्र ज्ञान होने पर सिद्धि मिलने में देरी नही लगती। सर्वप्रथम सात दिनों तक गुरु के आदेश से तालु के मूल को घिसकर साफ करें फिर थूहर के पत्ते के समान तेज धारवाले चिकने एवं साफ चाकू से इस स्थान को बिलकुल ही थोड़ा-सा (बाल के बराबर) काटे। कटे स्थान पर सेंधा नमक और हर्र का चूर्ण डालते रहें। सात दिन बाद फिर इसी प्रकार काटे। (21-30)

77. अक्षमालिका उपनिषद

शांतिपाठ ·

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठतमाविराम ऐधि, वेदस्य न आणीस्थ श्रुत मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्सदधाम्यमृत वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मायवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।

ॐ शाति शाति शाति ।

'मेरी वाणी मन में और मन वाणी में स्थित हो। हे प्रकाशस्वरूप, मेरे समक्ष प्रकट होओ। हे वाणी और मन । तुम हमारे वेदज्ञान के आधार हो, अत· हमारे वेद ज्ञान पर प्रहार न करो। मैं इन्ही के अध्ययन मे रात-दिन लगा रहता हू। मै सत्य और ऋत वचन बोलूगा। मेरी रक्षा करो। वक्ता की रक्षा करो। हम दोनों की रक्षा करो। तीनों पाप शांत हों।'

प्रजापति ने गुह से पूछा, 'अक्षमाला के भेद एव विधि बताइए। इसके क्या लक्षण है ? कितने भेद है ? कितने सूत्र है ? कैसे पिरोया जाता है ? कितने वर्ण है ? क्या महत्त्व है ? अधिदेवता कौन है ? तथा इसका क्या फल है ?' गुह ने बताया 'प्रवाल (मूग), मोती, स्फटिक, शख, चादी, सोना, चदन, पुत्रजीवा, कमल एवं रुद्राक्ष दस प्रकार की माला होती है। ये 'अ' से लेकर 'क्ष' तक अक्षरों की भावना से ग्रहण की जाती है। इसके लिए सोने, चांदी एवं ताबे के सूत्र (तार) है। इसके विवर मे सोना, बायी ओर चांदी, मुख में मुख एवं पूछ में पूछ भीतरी सूत्र हैं। ब्रह्म ही उसका अत सूत्र है। इसका दाहिना भाग, बायां भाग, मुख, पूंछ, सिर एवं गांठ क्रमश शैव, वैष्णव, सरस्वती, गायत्री, विद्या एव प्रकृति हैं। इनमें (दाने) सफेद हैं, वे स्वर हैं, जो पीले है, वे स्पर्श है तथा जो लाल है, वे 'पर' है। (1-3)

धारण करने से पूर्व इन्हे पचगव्य एव पांच गायों के (नंदा आदि विशेष लक्षणोवाली) दूध से शोधकर फिर इसी दूध एव सुगधित जल से स्नान कराएं, पत्तों के कूर्च से (इस समय ओम् का उच्चारण करें) स्नान कराए। अष्टगध पोतें। फिर मणिशिला पर रखकर पुष्प चढाए। अब एक-एक दाने को 'अ' से 'क्ष' तक अक्षरों से इस प्रकार मत्र पढ़ते हुए अभिमत्रित करें—हे ओम् 'अ', तुम मृत्युजय एव सर्वव्यापक हो। इस पहले अक्ष (मोती) में आओ। 'आ', तुम आकर्षणात्मक एव सर्वगत हो। दूसरे अक्ष मे आओ। ओम् 'इ', तुम पुष्टि देनेवाले तथा क्षोभरहित हो। इस तीसरे अक्ष में आओ इत्यादि, इस प्रकार ऋ, ॠ, लृ, लृ, अं, अ· सहित सोलह स्वरों, चौतीस व्यंजनो द्वारा उनचास अक्षों तथा पचासवें सुमेरु मे आह्वान किया जाता है। (प्रत्येक मोती में आह्वान के लिए मत्र पढे जाते हैं।) यह समस्त अनुष्ठान विस्तृत कर्मकांड सबधी है। इसका अर्थ देना यहां युक्तिसगत नही है, क्योंकि पूजा-अर्चना मे वैसे भी मूल मंत्र का ही पाठ किया जाता है। अत जिज्ञासु पाठकों से निवेदन है कि वे मूल पाठ ही देखें। (4-5)

इसके बाद इस तरह प्रार्थना करे, 'पृथ्वी में विचरण करनेवाले देवताओं को नमस्कार है। आप

निरंतर इस अभ्यास से छ मास में इससे जीभ का संबध कट जाएगा। फिर जीभ के अगले भाग को कपडो से लपेटकर धीरे-धीरे खीचे। पुन छ मास के इस अभ्यास से जीभ भोंहों के बीच तक ठोड़ी के नीचे तक तथा कान के छेद तक पहुंचने लगती है। तीन वर्ष तक अभ्यास करने से जीभ बालो तक कधे तक तथा गले तक पहुचने लगती है। अगले तीन वर्ष तक अभ्यास करने से जीभ ब्रह्मरंध्र को ढक लेती है, गले के नीचे तक तथा गर्दन के पीछे तक पहुंच जाती है। शनै-शनै यह ब्रह्मरंध्र को भेद लेती है। बीजाक्षर सहित यह विद्या अत्यंत कठनि है। पूर्वकथित छ बीजाक्षरो से षडंगन्यास एव करन्यास करने से ही सिद्धि मिलती है। अभ्यास अत्यत सावधानी से तथा धीरे-धीरे करना चाहिए। जल्दी कदापि न करें, इससे शरीर को हानि होती है। जब जीभ बाहर से ब्रह्म बिल तक जाने लगे, तो अगुली से इसे उसके भीतर कर दें।(31-41)

तीन वर्ष तक इसी प्रकार करने से जीभ ब्रह्म द्वार में चली जाएगी। प्रवेश कर लेने पर इसका अच्छी तरह मंथन करें। मत्र सिद्धि होने पर मथन अनिवार्य नही है। फिर भी जप एव मथन दोनों करने से शीघ्र फल मिलता है। मथन के लिए सोने, चादी या लोहे की सीक के सिरे पर दूध में भिगोया तंतु लगाकर उसे नाक के अंदर डालें। फिर प्राण को हृदय में रोककर सुखासन मे बैठे। आखो को भौहो में लगाकर धीरे-धीरे मंथन करे। यह अभ्यास छ मास तक करने से अपना प्रभाव दिखाता है। तब साधक की स्थिति सोए हुए बालक के समान होती है। मथन नित्य न करके मास मे एक बार करना चाहिए, ऐसे ही जीभ को भी बार-बार ब्रह्मरंध्र में प्रविष्ट न करें। बारह वर्ष तक इस अभ्यास को करने से अवश्य सिद्धि होती है। तब योगी समस्त विश्व को अपने अदर देखने लगता है, क्योंकि जीभ के ब्रह्मरंध्र मे जाने के मार्ग मे ही ब्रह्मांड भी स्थित है। (42-49)

तृतीय अध्याय

ब्रह्मा बोले, 'मत्र इस प्रकार है—'ह्री भं स म प क्षम। अमावस्या, प्रतिपदा तथा पूर्णिमा का वास्तविक रूप मे क्या अर्थ है ? प्रतिपदा का अर्थ सूर्य, पूर्णिमा का अर्थ चद्रमा तथा अमावस्या का अर्थ सूर्य-चद्र दोनो का अभाव है। कामनाओ से विषयों की इच्छा तथा विषयो की इच्छा से कामनाए बढती है, अत परमात्मा का सहारा लेकर दोनो का त्याग दें। स्वय के कल्याण हेतु अन्य वस्तुओं का भी त्याग कर देना चाहिए और मन को शक्ति के मध्य में स्थिर कर देना चाहिए। मन से मन को देखना ही परम पद की प्राप्ति है। मन ही उत्पत्ति एवं स्थिति का बिंदु (कारण) है। दूध से घी के समान यह बिंदु मन से ही पैदा होता है। इस बिंदु में कोई बधन नही है, जो कुछ भी बधन है, वह मन का ही है। चद्र और सूर्य के बीच में स्थित शक्ति ही बंधन रूप है। अत सुषुम्ना को जानकर भीतर प्राण वायु को चलाना चाहिए। बिंदु स्थान में प्राण वायु को रोककर स्थिर करना चाहिए। यही प्राण वायु, बिंदु, सत्त्व एवं प्रकृति का स्थान है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र इन छ चक्रों को जानकर सुखी बनें। गुदा आधार चक्र है, लिंग स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर नाभि में है, अनाहत हृदय में तथा आज्ञाचक्र मस्तक में है। (1-11)

इन छ चक्रों को जानकर वायु को ऊपर खींचकर रोकते हुए सुख मडल मे प्रवेश करे। इस प्रकार अभ्यास से वायु ब्रह्माड मे स्थित हो जाता है। वायु, बिंदु चक्र एव चित्त के अभ्यास से योगी

इस माला में स्थित हों। इसे अपना अनुमोदन दें। इसकी शोभा के लिए पितृगण भी इसे अनुमोदित करें (अपनी स्वीकृति दें)। इस ज्ञान से युक्त अक्षमाला को अग्निष्वात आदि पितर अपना अनुमोदन दें। आकाश में रहनेवाले देवताओं को नमस्कार, वे इस ज्ञानमयी माला की शोभा के लिए इस माला का अनुमोदन करें। पितर इसका अनुमोदन करें। स्वर्ग में रहनेवाले देवो ! तुम्हें नमस्कार, इस ज्ञानमयी माला के लिए अनुमोदन करो। पितर इसकी शोभा के लिए अनुमोदन करें। जितने भी मंत्र और विद्याएं हैं, उन्हें नमस्कार। उन सवकी शक्तियां इस माला में स्थित हों। सगुण ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र को नमस्कार, उनके तेज को नमस्कार। वह तेज इस अक्ष माला में प्रतिष्ठित हो। (6-10)

'सांख्य आदि दर्शनों के तत्त्वों को नमस्कार, आप इस माला में स्थित हों। सैकडों-हजारो की संख्या में विद्यमान वैष्णवों और शाक्तों को वार-वार नमस्कार आप अनुमोदन से इस माला पर अनुग्रह करें। मृत्यु की प्राणरक्षक शक्तियों को पुन-पुन नमस्कार। वे प्रसन्न हों, प्रसन्न हों।' फिर इस माला को सव गुणों से संपन्न मानते हुए दानों को पिरोएं। इसी प्रकार पूरे विधान से पुन पचास दानों पर आह्वान करते हुए उन्हें भी पिरोया जाता है। शेष आठ दानों में अ, क, च, ट, त, प, य तथा श, इन अक्षरो मे पहले की तरह अभिमंत्रित करें और इस पकार एक सौ आठ दानो की माला वनाएं। (11-14)

माला वन जाने पर उठकर उसकी प्रदक्षिणा करके प्रार्थना करें—मा भगवती अक्षमाला ! तुम सवको वश में करती हो, तुम्हें नमस्कार हो। मंत्रों की मां माला ! तुम सवको स्तंभित करती हो, तुम्हें नमस्कार। मंत्रों की मा अक्षमाला ! तुम उच्चाटन (मन को व्यग्र कर देना) करनेवाली हो, तुम सवकी मृत्यु हो, मृत्युंजय स्वरूप (मृत्यु को जीतने वाला शिव) हो, सवको उद्दीप्त करनेवाली हो, सारे लोक की रक्षक हो, प्राण देनेवाली हो, सव कुछ उत्पन्न करनेवाली हो, दिन तथा रात्रि करनेवाली हो, एक नदी से दूसरी नदी में, एक देश से दूसरे देश में, एक द्वीप से दूसरे द्वीप में तथा एक लोक से दूसरे लोक में जानेवाली हो। तुम सदा प्रकाश देती हो और हृदय में रहती हो। परारूपवाली तुझे नमस्कार। हे पश्यंती रूप, तुझे नमस्कार। हे मध्यमा रूप, तुझे नमस्कार (परा, पश्यती, मध्यमा एवं वैखरी वाणी के रूप हैं।) तथा हे वैखरी रूप, तुझे नमस्कार। हे सवकी आत्मा रूप, सभी विद्यारूप, सभी शक्तिरूप, सभी देवरूपवाली माला, तुझे नमस्कार। मुनि वसिष्ठ द्वारा तेरी आराधना की गई है तथा विश्वामित्र द्वारा तेरी सेवा की गई है, अत तुझे मैं नमस्कार करता हू (15)।

इसका प्रातःकाल अध्ययन करने से रात्रि के पाप नष्ट हो जाते हैं। सायकाल अध्ययन करने से दिन में किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। सायं-प्रात· दोनों समय पढने वाला पापी भी पापों से रहित हो जाता है। भगवान गुह ने वताया कि इस प्रकार पूरे विधान से वनी माला से जपा हुआ मंत्र शीघ्र ही सिद्धि देता है। (16)

☐

अमृत का आस्वाद तथा मुक्ति मिलती है। इस पंचाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) के आदि में 'न' तथा अत मे 'य' है, इसका जप करना चाहिए। यह सब पचब्रह्म का ही स्वरूप है। इस परमात्मिकी विद्या को पढनेवाला स्वय इसी के समान बनकर उसी में मिल जाता है। यह उपदेश स्वयं गालव को महादेव ने दिया था। गालव इससे लीन हो गए थे। इसको सुनने मात्र से न सुना हुआ सुने के ममान, न जाना हुआ जानने के समान हो जाता है तथा अज्ञात का भी ज्ञान हो जाता है। जैसे मिट्टी के एक बर्तन से मिट्टी का पता लग जाता है, वैसे ही इस विद्या का ज्ञान सबके ज्ञान के समान है। (24-35)

जैसे नाखून काटने के यत्र से उसके लोहे का ज्ञान हो जाता है, वैसे ही यदि जगत को उसके कारण ब्रह्म के समान माना जाए, तो यह सत्य नही होगा। वह कारण एक ही होने पर भी भिन्न भी है, अभिन्न भी तथा दोनों तरह का भी। यह भेद केवल स्वरूप के आरोप के कारण है। इस सबका कारण केवल चैतन्य ब्रह्म ही है। हृदयाकाश के दहर पुडरीक (कमल) में ही इस शिव को मुमुक्षु देखे। यह सबका साक्षी तथा ससार को मुक्ति देनेवाला इस हृदय में रहता है। अत इसे हृदय (वधन से छुडानेवाला) कहते हैं। (36-41)

□

78. रुद्राक्ष जाबालोपनिषद

शांतिपाठ ·

ॐ अप्यायतु ममागानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणिच सर्वाणि सर्व ब्रह्मोपनिषद् माह ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोवनिराकरण-मस्त्वनिराकरणं मेस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सतु। ते मयि सतु।

ॐ शाति: शाति शाति ।

'मेरे अग, वाणी, प्राण आदि पुष्ट हों। सभी उपनिषद् ब्रह्म है। मै इस ब्रह्म का तथा ब्रह्म मेरा निराकरण (परित्याग) न करे। हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदों के धर्म मे रत रहते हुए यह धर्म मुझमे प्रतिष्ठित हो। तीनो प्रकार के (दैहिक, दैविक तथा भौतिक) ताप शात हो।'

कालाग्नि रुद्र से भुसुड ने पूछा, 'रुद्राक्ष की उत्पत्ति कैसे हुई ? तथा इसके धारण करने से क्या फल मिलता है ?' इस पर कालाग्नि रुद्र ने बताया, 'त्रिपुर असुर के वध के लिए विचार करते समय मैने आखे बद कर ली थी। उनसे आसू टपककर भूमि पर गिर पड़े, यही रुद्राक्ष बन गए। सभी पर कृपा करने के लिए मै इतना ही बताता हू कि इसका केवल नाम ही लेने से दस गायो के दान का फल तथा दर्शन और स्पर्श करने से इसका दुगुना फल मिलता है, इससे आगे मै कुछ नही बता सकता। केवल सक्षेप मे यही है कि वह कहा स्थित है ? क्या नाम है ? मनुष्य इसे कैसे धारण करता है ? इसके मुख्य भेद कितने हैं और किन मंत्रो से यह कैसे धारण किया जाता है ? इसका उत्तर यही है कि देवताओं के हजार वर्षो मे मेरे द्वारा आखें खोले जाने पर भूमि मे आखो से जल की बूदे गिर पडी। वे आसू की बूदे ही महारुद्राक्ष के वृक्ष बन गई तथा भक्तो पर कृपा करने के लिए स्थावर (अचल) हो गई। यही वर्णन है। (1-5)

'इसको धारण करने से यह भक्तो के रात-दिन दोनो समय किए गए पापो को हर लेता है। इसके दर्शन से लाख गुना पुण्य तथा धारण करने से अरबो गुना फल मिलता है। रुद्राक्ष को धारण करके इससे जप करने पर मनुष्य को जप के लाख-करोड गुना अधिक फल मिलता है। धात्री फल (आवले) के बराबर रुद्राक्ष श्रेष्ठ होता है। बेर के बराबर आकारवाला मध्यम माना जाता है तथा चने के समान आकारवाला रुद्राक्ष अधम (घटिया) माना जाता है। शिव की आज्ञा से इसके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र, चार वर्णो के वृक्ष उत्पन्न हुए। सफेद रग का रुद्राक्ष ब्राह्मण, लाल रग का क्षत्रिय, पीले रग का वैश्य तथा काले रग का रुद्राक्ष शूद्र होता है। अत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र को क्रमश सफेद, लाल, पीला एव काला रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। समान आकारवाले, चिकने, कठोर तथा काटेदार रुद्राक्ष शुभ होते है। कीड़ो के खाए हुए, टूटे-फूटे, बिना काटोवाले, घाववाले एव भद्दे, ये छ दोषोंवाले रुद्राक्ष ग्रहण नही करने चाहिए। जिस रुद्राक्ष मे स्वय ही छेद हो, ऐसा रुद्राक्ष उत्तम माना जाता है। जिसमें ताकत लगाकर छेद करना पडे, ऐसा रुद्राक्ष मध्य माना जाता है। एक समान आकारवाले, चिकने, मजबूत तथा मोटे रुद्राक्षो को ही तागे मे पिरोकर धारण करना चाहिए। (10-15)

शाति प्राप्त होती है, धारण करने से मिलनेवाली शाति के विषय मे तो कोई संशय करना ही नही चाहिए। ग्यारह मुखी रुद्राक्ष के देवता ग्यारहों रुद्र माने जाते हैं। अत इसे धारण करने से ये देवता उसे सौभाग्य प्रदान करते है। बारह मुखोवाला रुद्राक्ष भगवान विष्णु या बारहों आदित्यो का स्वरूप माना जाता है। अत. इनके उपासक इसे धारण करते हैं। तेरह मुखोवाला रुद्राक्ष सभी इच्छाओ को पूर्ण करनेवाला तथा शुभ माना गाया है। इसको धारण करने मात्र से भगवान कामदेव धारण करनेवाले पर प्रसन्न होते है। रुद्र के नेत्रों से उत्पन्न चौदह मुखों का रुद्राक्ष सभी रोगो को दूर करनेवाला तथा नीरोगता देनेवाला है। इस चौदह मुखी रुद्राक्ष को धारण करनेवाले को शराब, मास, लहसुन, प्याज, सहजन, लसौडा एव विडवराह (एक सब्जी) आदि खाद्य पदार्थों को त्याग देना चाहिए। ग्रहण लगने पर, विषुवत सक्राति में, अयन बदलने पर, अमावस्या में, पूर्णिमा में तथा जब रात और दिन बराबर होते है (मेष एव तुला सक्राति), ऐसे समय मे रुद्राक्ष धारण करने से व्यक्ति उसी समय पापों से छूट जाता है। रुद्राक्ष का मूल भाग ब्रह्मा, अंदर का छिद्र विष्णु, इसके मुख रुद्र तथा बिदु सभी देवताओ से युक्त माने जाते हैं। (37-45)

सनत्कुमार ने भगवान कालाग्नि रुद्र से निवेदन किया कि वह इसे धारण करने की विधि भी बताए। तभी उनके चारो ओर से निदाध, जड़ भरत, दत्तात्रेय, कात्यायन, भरद्वाज, कपिल, वसिष्ठ, पिप्पलादि ऋषि भी बैठ गए। कालाग्नि रुद्र द्वारा उनसे उनके आने का कारण पूछे जाने पर उन्होने भी यही कहा कि वे सभी रुद्राक्ष को धारण करने की विधि जानने के लिए ही वहा आए है। तब कालाग्नि रुद्र ने कहना प्रारंभ किया कि रुद्र के नेत्रों से उत्पन्न होने के कारण ससार मे यह रुद्राक्ष (रुद्र की आंख) कहा जाता है। भगवान सदाशिव प्रलय के समय सृष्टि कां नाश करके नाश करनेवाले अपने नेत्रों को मुकुलित (झुकी हुई) कर लेते है। इन्ही आखो से रुद्राक्ष पैदा होते है। यही रुद्राक्ष का स्वरूप है। इस रुद्राक्ष का मुख से उच्चारण करने पर ही दस गायो को दान करने का फल मिलता है। इसी को (रुद्राक्ष को) भस्म ज्योति रुद्राक्ष भी कहा जाता है। इसे हाथ से छूकर ही धारण कर लेने से दो हजार गाएं दान करने का फल मिलता है। इसे दोनो कानो मे धारण करने से ग्यारह हजार गोदान का फल तथा एकादश (ग्यारह) रुद्रों की प्राप्ति होती है। इन्हें सिर मे धारण करने से करोड़ गोदान का फल प्राप्त होता है। इन्हें किन-किन स्थानों पर धारण किया जाए, यह सब मै बता ही नही सकता। (46-48)

जो नित्य इस रुद्राक्ष जाबाल उपनिषद का पाठ करता है, बालक हो या युवक हो, वह ज्ञानी और महान हो जाता है। वह सबका गुरु तथा सभी मंत्रों का उपदेश देनेवाला हो जाता है। इन्ही से होम करना चाहिए और इन्ही से पूजा। राक्षसो का नाश करनेवाले तथा मृत्यु को दूर करनेवाले इन रुद्राक्षो को गुरु से प्राप्त करके कठ, बाजू या चोटी मे धारण करना चाहिए। इसे प्राप्त करने पर गुरु को यदि दक्षिणा में सातों द्वीपोवाली पृथ्वी को भी दे दिया जाए, तो यह भी कम ही है। अत श्रद्धा से जो भी गाय दे दी जाए, वही दक्षिणा पर्याप्त है। जो ब्रह्म का ज्ञाता इस उपनिषद का प्रातःकाल पाठ करता है, वह रात्रि में किए हुए पापों को नष्ट करता है। सायकाल इसका पाठ करने पर दिन मे किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। मध्य दिन में (दोपहर में) पढ़ने से छ जन्मो के पाप नष्ट होते है। साय एव प्रात दोनों समय पढ़ने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट होते हैं, साठ करोड़ गायत्री जप का फल प्राप्त

'ये सौम्य (सुदर) आकार के एव एक जैसे होने चाहिए। सोना परखनेवाली कसौटी मे सोने की रेखा के समान रेखावाला रुद्राक्ष उत्तम होता है। शिव की पूजा करनेवाले को इसे धारण करना चाहिए। सिर मे, चोटी में, एक तथा सिर मे ही माला में तीन रुद्राक्ष धारण करे। गले मे छत्तीस, बाजुओ मे सोलह-सोलह, मणिबंध (कलाई) मे बारह, कंधे में पद्रह तथा गले मे जनेऊ की तरह एक सौ आठ दानो की माला पहननी चाहिए। दो, तीन, पांच या सात लडियो की माला भी गले मे पहनी जाती है। मुकुट, कुंडल, कान की बाली या गले के हार के रूप में भी रुद्राक्ष धारण किया जाता है। बाजूबंध या बगलबंध मे भी विशेष प्रकार से बधे रुद्राक्ष को सोते-जागते प्रत्येक समय धारण करना चाहिए। तीन सौ रुद्राक्षों को धारण करना अधम, पाच सौ धारण करना मध्यम तथा एक हजार धारण करना उत्तम माना गया है। इस रीति से रुद्राक्ष धारण करे। 'ईशान०' मत्र से सिर मे, 'तत्पुरुषेण०' मंत्र से कठ मे तथा 'अघोरेण०' मंत्र से गले मे एव हृदय मे रुद्राक्ष धारण किया जाता है। बुद्धिमान व्यक्ति अघोर बीज मत्र से हाथो मे रुद्राक्ष धारण करे। वर्णमाला के पचासो अक्षरो को इनके छिद्र मे लिखकर (इससे पूर्व अक्षमाला उपनिषद के अनुसार एक-एक अक्षर को) शिव के पाच अक्षरो वाले मत्र से (नम शिवाय से) अभिमत्रित करे। फिर मूल मत्र से इनकी माला बना ले और तीन, पाच या सात मालाएं धारण करे। (16-25)

भगवान कालाग्नि रुद्र से भुसुंड ने पुन· पूछा, 'रुद्राक्षो के भेद से किस रुद्राक्ष का क्या फल होता है ? इनके फल क्या है ? इनसे अमगलनाश कैसे होता है ? तथा इच्छित फल कैसे प्राप्त होता है ? कृपया इस विषय मे बताए।' भगवान कालाग्नि रुद्र ने बताया कि एक मुख वाला रुद्राक्ष पमतत्त्व (ब्रह्म) का ही रूप है। इसको धारण करने से मनुष्य की इद्रिया वश मे हो जाती है तथा उसी परम तत्त्व मे वह पुरुष लय हो जाता है। दो मुखो वाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर (आधा शरीर शक्ति तथा आधे शिव के शरीरवाला भगवान का रूप) का स्वरूप होता है, इसे धारण करने से भगवान अर्धनारीश्वर धारण करनेवाले पर सदा प्रसन्न रहते है। तीन मुखोवाला रुद्राक्ष गार्हपत्य, आह्वनीय एव दक्षिणाग्नि, इन तीनो अग्नियों का स्वरूप है। इसे धारण करनेवाले पर अग्निदेव सदा प्रसन्न रहते है। चतुर्मुख (चार मुखोवाला) रुद्राक्ष ब्रह्मा का रूप है, इसके धारण करने वाले पर सदा ब्रह्मा की कृपा होती है। पाच मुखोवाला रुद्राक्ष पचमुख शिव का रूप है। इसे धारण करने से भगवान की कृपा से धारण करनेवाले के हाथों कभी किसी व्यक्ति की हत्या नही होती। छ मुखी रुद्राक्ष भगवान कार्तिकेय का रूप है। इसे धारण करने से अत्यधिक धन-सपत्ति तथा रोगो के नाश होने पर सुदर स्वास्थ्य प्राप्त होता है। विद्वान इस छ· मुखोवाले रुद्राक्ष को भगवान गणेश का रूप भी मानते है, अत इसको धारण करने से सुदर मति, सपत्ति तथा पवित्रता प्राप्त होती है। सात मुखी रुद्राक्ष ब्राह्मी आदि सात लोक माताओ का स्वरूप माना जाता है। इसके धारण करने से भी महान सपत्ति तथा आरोग्य (स्वास्थ्य) प्राप्त होता है। यदि इसे पवित्र भावना से किया जाए, तो महान ज्ञान की संपत्ति प्राप्त होती है। आठ मुखोंवाला रुद्राक्ष आठ भगवतियो का अथवा आठ वसुओं का रूप माना जाता है तथा इसे धारण करने से गगा भी प्रसन्न होती है। (26-36)

नौ मुखोवाले रुद्राक्ष के देवता नौ शक्तिया मानी जाती है। अत इसे धारण करने से ही ये शक्तिया प्रसन्न होती है। दशमुखी रुद्राक्ष यमदेव का रूप कहा गया है। इसे केवल देखने से ही

होता है तथा ब्रह्महत्या, सुरापान, सोने की चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि सभी पापो से छूटकर पवित्रता मिलती है। उसे सभी तीर्थों का फल मिलता है, वह पतित भाषण से मिले पापो से छूटकर पवित्र हो जाता है, वह हजारो लोगो को पवित्र करनेवाला बन जाता है तथा भगवान शिव के पास जाता है। उसका इस ससार मे पुनर्जन्म नही होता। (49)

□

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विमावहै।

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करें, एक साथ हम उपभोग प्राप्त करें। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करें।

पृथ्वी, आकाश आदि महाभूतों का समूह ही शरीर है। इनमें कठिन अंश पृथ्वी, द्रव जल, उष्ण तेज, चलनेवाला वायु तथा खाली अंश आकाश का है। कान आदि ज्ञानेंद्रियां हैं। आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी में क्रमश कान, त्वचा, नेत्र, जीभ तथा नाक हैं। वाणी, हाथ, पांव, गुदा तथा जननेंद्रिय, कर्मेद्रियां हैं। इनके कार्य क्रमश बोलना, लेना, चलना, मल विसर्जन तथा संभोग हैं। ये क्रमश पृथ्वी आदि से उत्पन्न है। मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त ये चार अंतकरण हैं। इनके विषय क्रमश संकल्प विकल्प, निश्चय, अभिमान तथा अवधारणा है। मन, बुद्धि, अहकार एव चित्त के स्थान क्रमश गले का अंत, मुख, हृदय एवं नाभि हैं। अस्थि, चर्म, मास, नाड़ी एव रोम पृथ्वी के, मूत्र, रक्त, कफ एवं पसीना जल के, भूख, प्यास, आलस्य, मोह एवं मैथुन अग्नि के दौडना, चलना आदि वायु के तथा काम, क्रोध, मोह आदि आकाश के अंश हैं। (1-5)

शव्द, स्पर्श, रूप, रस एव गध पृथ्वी के गुण हैं, जल के प्रथम चार अग्नि के प्रथम तीन, वायु के दो तथा आकाश का एक ही गुण शव्द है। सत्त्व, रजस एवं तमस तीन गुण हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अक्रोध आदि गुण विशेषत सत्त्वगुणी व्यक्ति के हैं। 'मैं करनेवाला हू', 'भोगनेवाला हूं' इस प्रकार का अभिमान रजोगुणी व्यक्ति का लक्षण है। निद्रा, आलस्य, चोरी, मैथुन ये तमोगुण के चिह्न हैं। सत्त्व, रजस एवं तमस क्रमश श्रेष्ठ, मध्यम और अधम माने जाते हैं। सही-सही ज्ञान सात्त्विक, धर्म ज्ञान रजस तथा अज्ञान तमस है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय चार अवस्थाएं हैं। जागृत अवस्था में पांच कर्म की तथा पांच ज्ञानेंद्रियां और चार अतकरण, कुल चौदह रहते है, स्वप्न में चार अंतकरण, सुपुप्ति में केवल चित्त और तुरीय में आत्मामात्र रह जाता है। खुले जीव तथा वंद परमात्मा के मध्य जीव क्षेत्रज्ञ होता है। (6-15)

पांच-पांच ज्ञान की, कर्म की इंद्रियां एवं पांच प्राण, मन तथा बुद्धि का सूक्ष्म रूप लिग कहलाता है। मन, वुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, जल एवं पृथ्वी, ये त्वचा प्रकृति के आठ विकार हैं। सोलह विकार और कहे गए हैं। कान, शव्द, जिह्वा, नासिका, गुदा, उपस्थ, हाथ, पाव, वाणी, स्पर्श, रूप, रस एव तेईस गंध, ये तत्त्व है। प्रकृति चौवीसवी तथा पच्चीसवीं अव्यक्त या प्रधान है, पुरुष इससे भिन्न है। (16-20) □

79. राम पूर्वतापिनी उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभि श्रृणुयाम देवा भद्र पश्येमाताक्षिर्भिर्यजत्रा
वासस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शाति शाति शाति ।

'हम कानो से शुभ सुने और आखो से शुभ देखें । हे ईश्वर ! स्वस्थ शरीर से तेरी स्तुति करे और देवो द्वारा दी हुई आयु का भोग करे । बलशाली इद्र सर्वज्ञाता पूषा, अबाध गतिवाला गरुड एव बृहस्पति हमारा कल्याण करे । तीनो प्रकार के ताप शात हो ।'

प्रथम खंड

भगवान विष्णु ने पृथ्वी लोक मे श्रेष्ठ रघुवशीय राजा दशरथ के यहा जन्म लिया, तब वह राम बने । विद्वानो ने राम शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि पृथ्वी पर रहकर संतो की सभी कामनाए पूर्ण करनेवाले राजा के रूप में शोभा पानेवाले ही राम है । कुछ विद्वान अभिराम (सुदर) होने के कारण उन्हे राम कहते है । दूसरे विद्वान राम का अर्थ अपने पराक्रम से पृथ्वी मे प्रसिद्ध होनेवाला करते है । राहु जैसे चद्रमा को शोभा से रहित कर देता है, वैसे ही राक्षसो को प्रभावहीन कर देनेवाले राम है । कुछ लोग राम शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते है कि जो राज्य के योग्य राजाओ के लिए अपने धार्मिक चरित्र से धर्म का मार्ग दिखाता है, ध्यान करनेवाले को वैराग्य एव नाम जपनेवाले को ज्ञान तथा उनकी पूजा करनेवाले को ऐश्वर्य देता है, इन गुणो से पृथ्वी मे वह राम कहा जाता है । वह राम अद्वितीय, चिन्मय, निष्कल देहरहित ब्रह्म है । अपने उपासको की इच्छाओ के लिए ही वह मनुष्य शरीर धारण करते है । वास्तव मे जिस नित्य आनदस्वरूप चिदात्मा मे योगी रमण करते है, वही परम ब्रह्म राम है । देवताओ के रूपो मे स्त्री-पुरुष, अग, अस्त्र आदि की कल्पना की गई है । भगवान के विभिन्न अवतारो मे दो, चार, छ , आठ, दस, बारह और सोलह हाथो तक उनमे शख, चक्र आदि का वर्णन किया गया है । उनके लिए हजारो वर्णों, वाहनो, शक्तियो तथा सेना आदि की कल्पना की गई है । दुर्गा आदि देवताओ के रूप में उनके लिए पाच महाभूतो के शरीर और सेना आदि की भी कल्पना इसी प्रकार की है । (1-10)

यह राम शब्द ब्रह्मा आदि सभी देवताओ का वाचक है, अर्थात यह निराकार एव साकार ईश्वर के दोनों रूपो को बताता है । यह मत्र है । इसके जप से भगवान प्रसन्न होते है । यह मंत्र सभी प्रकार के अर्थो से पूर्ण है । मंत्र का अर्थ है—'जिसके मनन करने से त्राण मिलता है' मत्र सभी अर्थो को देता है । स्त्री या पुरुष किसी भी रूप में देवता की पूजा के लिए उसके शरीर के रूप मे मत्र की

81. कृष्ण उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभि शृणुयाम देवा भद्र पश्येमाताक्षिर्भिर्यजत्रा
स्थिरैरगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धाश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि स्वस्ति न बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति. शाति शाति ।

'हम कानो से कल्याणमय वचन सुने, नेत्रो से कल्याणमय चीजों को देखे और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे । इद्र हमारा कल्याण करे, पूषा हमारा कल्याण करे । अमगल नाशक गरुड और बृहस्पति हमारा कल्याण करे । दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के दु ख शात हो ।'

सच्चिदानद स्वरूप महाविष्णु के सभी अगो से सुदर रामचद्र भगवान को देखकर वनवासी मुनियो को अत्यत विस्मय एव आनद हुआ । उन्होने भगवान के शरीर के स्पर्श की इच्छा की । तब भगवान ने उनसे कहा, कि जब इसके बाद मै कृष्ण का अवतार लूगा, तो आप सब गोपिया बनकर मेरा स्पर्श करेंगे । अत सभी ने गोपियो एव ग्वालो के रूपो मे पैदा होने की इच्छा की । एक बार विष्णु ने देवताओं को मनुष्य के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेने की आज्ञा दी, कितु देवता उनके साथ को छोडकर जन्म लेने को तैयार नही हुए । तब भगवान ने उनसे कहा कि मै कृष्ण के रूप मे तुम्हारे साथ ही रहूगा, अत वे सब भी गोपिया एव ग्वाले बन गए । देवता अत्यत प्रसन्न एव कृतकृत्य हुए । नद एव यशोदा के रूप मे क्रमश भगवान का आनदवाला अश एव मुक्तिदेवी ने अवतार लिया । माया तीन प्रकार की कही जाती है—सात्त्विकी, राजसी एव तामसी । राक्षसो मे तामसी माया प्रविष्ट हुई । इस विचित्र माया से, जो वैष्णवी माया भी कही जाती है, जीत पाना अत्यत कठिन है । इसे प्राचीनकाल मे ब्रह्मा भी नही जीत सके । देवता इसकी सदा स्तुति करते है । यही वैष्णवी माया देवकी के रूप मे प्रसन्न हुई । जो वेद भगवान की सदा स्तुति करते हैं, वे ही वसुदेव बने । वेदो के अर्थ अर्थात भगवान विष्णु ही कृष्ण एव बलराम का अवतार बने । यही वेदो का अर्थ पृथ्वी मे अवतरित हुआ और इसने गोपो एव गोपियो के साथ क्रीडाए की । उन भगवान कृष्ण की ये गोपिया एव गाए वेदो की ऋचाए है । उनकी लाठी एव वशी के रूप मे क्रमश ब्रह्मा एव रुद्र ने अवतार लिए । इद्र सीगा के रूप मे पैदा हुए । सारे गोकुल में बैकुठवासियो ने ही जन्म लिया । तपस्वी लोग वहा वृक्षों के रूप में उत्पन्न हुए तथा लोभ, क्रोध, मोह आदि विकार असुरो के रूप में पैदा हुए । काम, क्रोध आदि विकार कलियुग में भगवान कृष्ण का नाम लेने से ही नष्ट हो जाते हैं । (1-9)

साक्षात भगवान विष्णु ने गोप के रूप में मायामय शरीर धारण किया । यह जगत माया द्वारा

कल्पना की जाती है। बिना मंत्र के पूजा किए जाने पर देवता प्रसन्न नही होता। अत साकार पूजा में मत्र अवश्य हो। (11)

द्वितीय खंड

साकार ईश्वर स्वयं अपनी इच्छा से रूप धारण करता है, इसका अन्य कोई कारण नही होता। अत वह स्वयंभू कहा जाता है। वह अपने ही प्रकाश से ज्योतिवाला है। शरीरवाले होते हुए भी वह अनत होता है। उसकी उत्पत्ति, स्थिति या लय नही होती। वही अपनी 'चित्त' शक्ति से सत्त्व, रजस एव तमोगुण द्वारा विश्व का कारण है। जैसे छोटे से बीज मे वट का महान वृक्ष छिपा हुआ होता है, वैसे ही राम रूपी बीज में यह समस्त चराचर जगत व्याप्त है। राम शब्द के 'र' मे आठ मूर्तियां एव तीनो शक्तिया है। इस 'राम' मंत्र मे सीता प्रकृति तथा राम पुरुष है। इन्ही से चौदह भुवन उत्पन्न हुए थे, इन्ही मे स्थित है तथा इन्ही मे लय भी होते है। अपनी माया के कारण ही राम ने मानव रूप मे जन्म लिया है। जगत के प्राणों रूपी इस आत्मा को नमस्कार। इस प्रकार स्वय को राम से एकतावाला कहना चाहिए। (1-4)

तृतीय खंड

'रामाय नम' (राम के लिए नमस्कार), इस मत्र मे राम शब्द परमात्मा को बताता है, 'नमस्कार' जीव को तथा 'के लिए' इन दोनो की एकता सूचित करता है। इस मत्र मे राम का ही कथन है। इससे उपासको को उनका मनचाहा फल मिलता है। जैसे किसी व्यक्ति का नाम लेने पर वह सामने आ जाता है, वैसे ही इस बीज मत्र से पुकारे जाने पर भगवान राम साधक के सामने आ जाते हैं। मनोकामना सिद्धि के लिए इस मत्र के बीज का दाहिने स्तन मे, शक्ति का बाए स्तन मे तथा कीलक का इनके मध्य मे सकल्प करके न्यास करे। सभी मत्रों का साधारणतया यही क्रम है। यहा राम का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए—राम अनंत रूप एवं तेज से अग्नि के समान हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त है। सीता के साथ होने पर वह अग्नि एव ईषात्मक तथा चद्रिका (चादनी) के साथ चद्रमा के समान है। अपनी प्रकृति के साथ वह श्यामवर्णवाले है, इनके वस्त्र पीले रग के है, सिर मे जटाए, कानो मे कुडल, गले में रत्नो की माला तथा हाथों में धनुष है। वे अत्यत धैर्यवान तथा दो भुजाओंवाले हैं। वे प्रसन्नमुख, अणिमा आदि आठो ऐश्वर्यों से सपन्न तथा जगत की योनि (कारण) परमेश्वरी प्रकृति (सीता) से सुशोभित है। वह दो भुजाओं, सोने जैसी आभा, अलकारों तथा हाथो मे कमलों से सुशोभित हैं। पुन उनके हाथो मे धनुष है और दाहिनी ओर गोरे रग के लक्ष्मण हैं, ये तीनों एक त्रिकोणात्मक सौंदर्य को उत्पन्न कर रहे है। (1-10)

इस बीज के बाद इसका शेष मत्र इस प्रकार है कि एक बार ऐसे त्रिकोण रूप वाले भगवान राम के पास सभी देवता उनके दर्शनों के लिए आए। उन्होंने कल्प वृक्ष के नीचे बैठे भगवान राम की स्तुति की कि 'हे भगवान राम, आप कामरूप हैं, मायामय हैं, वेदों आदि के रूप हैं, ओंकार हैं, रमा को धारण करनेवाले हैं, आत्मा मूर्ति हैं, सीता से सुशोभित हैं, राक्षसों को नष्ट करनेवाले तथा शुभ अंगोंवाले हैं। आपके सभी रूपों को नमस्कार। हे कल्याणकारक रघुवीर। रावण के मृत्युरूप।

मोहित किया हुआ है। फलत भगवान की माया को समझ पाना बड़ा ही कठिन है। भगवान की इस माया को देवता भी नही जान पाते। इसी माया में पड़कर ब्रह्मा को लाठी एव रुद्र को वंशी बनना पड़ा, तब भगवान श्री हरि की उस माया का ज्ञान मनुष्यों को कैसे हो सकता है ? देवताओ के बल एवं ज्ञान का माया क्षण-भर मे हरण कर लेती है। शेषनाग बलराम के रूप मे तथा स्वयं साक्षात शाश्वत ब्रह्म कृष्ण के रूप मे पैदा हुए। भगवान की सोलह हजार एक सौ स्त्रियां वेदो की ऋचाए तथा उपनिषद् है। इसके अलावा ब्रह्मरूप वेद की ऋचाए गोकुल की अन्य स्त्रियां है। चाणूर वस्तुत द्वेष, मुष्टिक मत्सर, कुवलयापीड दर्प, तथा आकाश मे उडनेवाला राक्षस बकासुर गर्व है। माता रोहिणी दया है। पृथ्वी ने सत्यभामा के रूप मे अवतार लिया है। अघासुर महाव्याधि के रूप मे तथा कलियुग कस के रूप मे पैदा हुआ है। शम ने सुदामा के रूप मे, सत्य ने अक्रूर के रूप मे और दम ने उद्धव का रूप धारण किया है। शख स्वय विष्णु का रूप है। यह शख मेघ के समान शब्द करनेवाला क्षीर सागर से पैदा हुआ है। भगवान कृष्ण ने जो दही-दूध के मटके फोडकर दही-दूध की नदियां बहाई थी, वह इसी क्षीर सागर का प्रवाह था। दूध-दही के क्षीर सागर मे भगवान पहले के समान क्रीड़ा कर रहे हे। दुष्टो के सहार एव संतो की रक्षा मे वह सदा लगे रहते है। धर्म एव प्राणियो की रक्षा के लिए ही भगवान ने मानव के रूप मे अवतार लिया था। उनका वह ब्रह्म के समान चक्र उनके हाथो मे शोभा दे रहा है। (10-19)

वायु भगवान कृष्ण की वैजयती माला एवं धर्म चवर बना महेश्वर ने चमकते हुए खड्ग का, कश्यप ने नद के घर मे ओखल का तथा माता अदिति ने रस्सी का रूप बनाया। सब वर्णों के ऊपर अनुस्वार के समान सुशोभित सब प्राणियो के ऊपर रहनेवाला आकाश ही भगवान कृष्ण का छत्र है। आदिकवि वाल्मीकि एव व्यास ने जितने देवताओं के जिन-जिन रूपों का वर्णन किया और देवताओ के जिन भी रूपो को प्राणी नमस्कार करते है, वे सभी रूप भगवान कृष्ण मे ही रहते हैं। शत्रुओं का नाश करनेवाली काली ही साक्षात उनकी गदा है। वैष्णवी माया ने उनके शार्ङ्ग धनुष का तथा प्राणनाशक काल ने बाण का रूप बनाया है। विश्व के सहार का बीज उनके हाथ मे कमल बनकर शोभा पाता है। गरुड़ वटभाडीर है और नारद सुदामा है। साक्षात भक्ति वृंदा के रूप मे प्रकट हुई। समस्त प्राणियो को कर्म का ज्ञान करानेवाली बुद्धि भगवान की क्रिया शक्ति है। अत ये सब गोप, गोपी आदि भगवान से अलग नही हैं। सभी स्वर्ग एव बैकुठ के देवताओ को भगवान ने ही पृथ्वी पर अवतरित किया है। इस रहस्य को जाननेवाला सभी तीर्थों के फल को प्राप्त करता है तथा देह के बधन से मुक्त हो जाता है। (20-25)

□

शुभ शरीरवाले । महान धनुर्धर । राजाओं में श्रेष्ठ । आप हमारी रक्षा करो, हमें ऐश्वर्य दो ।' देवता यह स्तुति कर ही रहे थे कि भगवान राम खर नामक राक्षस को मारने मे लग गए। तब देवताओं तथा ऋषियो ने उनकी स्तुति की। भगवान ने सेना सहित खर को मार डाला। तब बाद में अपनी निवृत्ति (मुक्ति) के लिए रावण वन से उनकी पत्नी को हर ले गया। वन से राम की पत्नी का हरण करने के कारण (राम का रा और वन) रावण कहा जाता है, अथवा ससार को रुलाने के कारण भी उसे रावण कहा जाता है। एक बार रावण ने कैलाश पर्वत को उठा लिया था, तब भगवान शकर ने पर्वत को इतना भारी कर दिया कि वह रव करने लगा (चिल्लाने लगा) अत रव करने के कारण भी उसे रावण कहा जाता है। इसके बाद राम एव लक्ष्मण सीता की खोज मे निकल पडे। इसी बीच उन्हे कबंध नामक राक्षस का सामना करना पडा। उन्होंने उस राक्षस को मार डाला। तब वे शबरी के आग्रह पर उसके आश्रम मे गए। इसके बाद वायु पुत्र हनुमान से मिले। भक्त हनुमान ने उनकी पूजा की तथा वानरो के राजा सुग्रीव को बुलाकर उससे उनकी मित्रता कराई। राम-लक्ष्मण ने अपना सारा वृत्तांत उसे बताया। (11-20)

सुग्रीव को राम की वीरता पर सदेह हुआ। तब उसने वाली द्वारा मारे गए दुंदुभि नामक राक्षस का शरीर दिखाया। राम ने बातो-ही-बातों में उसे दूर फेंक दिया तथा एक ही बाण से सात वृक्षो को भेद डाला। इस पर सुग्रीव का सदेह दूर हो गया और उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। तब वह सुग्रीव के साथ बाली की राजधानी पहुंचे। सुग्रीव ने भयकर गर्जना के साथ बाली को युद्ध के लिए ललकारा। बाली भी इसी प्रकार गरजता हुआ युद्ध के लिए आ गया। दोनो के युद्ध मे बाली राम द्वारा मारा गया। राम ने सुग्रीव का राज्याभिषेक कराया। सुग्रीव ने वानरो को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम सभी दिशाओं से भली-भांति परिचित हो, अत· तुम सीता की खोज करो और आज ही उनका समाचार लाकर राम को बताओ।' इस पर हनुमान समुद्र को लाघकर लंका पहुंच गए। वहा उन्होने सीता को देखा। अनेक राक्षसो को मारकर तथा लका को जला राम के पास आकर सारा विवरण राम को बताया। तब भगवान राम अत्यंत क्रोधित हुए और वानरों को साथ लेकर लका की ओर चल पडे। आक्रमण के लिए पहले लका को अच्छी तरह देखा गया और रावण पर आक्रमण कर दिया गया। इस युद्ध में कुंभकर्ण, इंद्रजीत मेघनाद, रावण आदि मारे गए। विभीषण को लका का राज्य सौपकर सीता को अपनी बायी ओर सुशोभित कर वानरों के साथ राम अयोध्या को चल पडे। वहा वह सिंहासन पर बैठे। वह रघुनदन राम प्रसन्न आत्मावाले धनुर्धर तथा सभी आभूषणो से सुशोभित हैं। (21-30)

उनके दाहिने हाथ में ज्ञानमयी मुद्रा तथा बाए हाथ मे तेज प्रकाशित करनेवाली मुद्रा है। इस प्रकार व्याख्यान में लगे हुए भगवान राम चिन्मय परमेश्वर है। शत्रुघ्न एवं भरत उनके उत्तर-दक्षिण मे तथा हनुमान हाथ जोडे सामने खडे है। यह एक त्रिकोण बनता है। भरत एवं शत्रुघ्न के क्रमश नीचे की ओर सुग्रीव एवं विभीषण खडे है। उनके (राम के) पीछे हाथों मे छत्र एव चवर लिए लक्ष्मण खडे हैं। भरत एव शत्रुघ्न के हाथो में ताड़पत्र के चवर हैं। इस प्रकार लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न भी एक त्रिकोण के आकार में खडे है। यह सब मिलाकर भगवान श्री राम अपने इन दो त्रिकोणों अर्थात छ कोणों के दीर्घ अगो से बैठे है (यह छ कोणों का पहला आवरण है)। इस पहले घेरे के बाद पूर्व

82. गणपति उपनिषद

शांतिपाठ .

ॐ भद्र कर्णेभि. शृणुयाम देवा भद्र पश्येमार्तक्षिर्भिर्यजत्रा ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ॥
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि स्वस्ति न बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शाति शाति शाति. ।

'हम कानो से कल्याणमय वचन सुने, नेत्रो से कल्याणमय चीजो को देखें और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इद्र हमारा कल्याण करे, पूषा हमारा कल्याण करे, अमंगलनाशक गरुड और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दु ख शात हो ।'

भगवान गणेश को नमस्कार। हे भगवान गणेश ! तुम प्रत्यक्ष तत्त्व हो। समस्त सृष्टि के केवल तुम्ही बनानेवाले, पालन करने वाले तथा प्रलय करनेवाले हो। यह समस्त जगत ब्रह्म भी तुम ही हो। तुम साक्षात आत्मा हो। मै न्यायपूर्वक सत्य कहता हू। मुझ शिष्य की तथा गुरु की रक्षा करो। श्रोता, दाता एव धारण करनेवाले की रक्षा करो। सामने से, दाहिनी ओर से, पीछे से, बायी ओर से, ऊपर से तथा नीचे की ओर से मेरी रक्षा करो। मेरी चारो ओर से रक्षा करो। तुम वाणी रूप, चिन्मय, आनदमय, ब्रह्ममय, सच्चिदानद, अद्वितीय, प्रत्यक्ष ब्रह्म, ज्ञानमय तथा विज्ञानमय हो। (1-5)

यह समस्त जगत तुमसे ही उत्पन्न होता है, तुममे ही स्थिर है तथा तुम्ही मे लय हो जाता है। यह समस्त जगत तुम्हारे कारण ही प्रतीत होता है। तुम्ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एव आकाश हो। तुम्ही वाणी के परा, पश्यती, मध्यमा एव वैखरी, ये चारों रूप हो। तुम सत्त्व, रजस एव तमस, इन तीनों गुणों से, स्थूल, सूक्ष्म एव कारण, इन तीनो शरीरो से तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान, इन तीनो कालों से परे हो। तुम सदा मूलाधार चक्र में स्थित रहते हो। ज्ञान, क्रिया एवं इच्छा, ये तीनों शक्तियां तुम्हारा ही स्वरूप है। योगी नित्य तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। तुम्ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम, इद्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चद्रमा, ब्रह्म, भू, भुव, स्व तथा 'ओम' हो। (6)

गणेश का बीज मत्र—इसका प्रथम अक्षर 'ग', दूसरा 'अ', तीसरा 'अनुस्वार'( ) है। इस प्रकार 'ग' गणेश का बीज मत्र है। 'ग' इसका पूर्व रूप, 'अ' मध्य रूप तथा अनुस्वार अत रूप है। उत्तर रूप नाद, बिदु, अनुसधान, संहिता एव सधि हैं। यही गणेश विद्या है। इसके ऋषि, छंद एव देवता क्रमश गणक, नृचद गायत्री एवं महा गणपति हैं। 'एकदत को हम जानते है, वक्रतुड का चिंतन करते है तथा एकदत हमे प्रेरणा दे', यह गणेश गायत्री है। उनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—'एकदत, चतुर्भुज, पाश एव अकुश धारण करनेवाले, अभय वरदान देनेवाले ~ ' मे चूहे के

अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य आदि आठों दिशाओं मे (भगवान राम के) वासुदेव आदि बैठे है। यह उनका दूसरा आवरण (घेरा) है। जब उनके साथ हनुमान, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अगद, शत्रुघ्न, जाम्बवत, धृष्टि, ज़यंत, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अशोक्, धर्मपाल और सुमत्र होते है, तो यह तीसरा आवरण बनता है। इद्र, अग्नि, धर्म, वरुण, वायु, चद्रमा, ईशान, निर्ऋति, ब्रह्मा एव अनत इन दसो दिक्पालों से घिरे रहने पर यह चौथा आवरण बनता है। इन दिक्पालों के बाहरी भाग मे आयुध (अस्त्र-शस्त्र) रहते है तथा उन्ही के साथ नल, नील आदि वानर रहते है। इस प्रकार वसिष्ठ एव मामदेव आदि मुनि (यंत्र बनकर) उनकी उपासना करते हैं। (31-39)

कामना सिद्धि हेतु राम-यंत्र का प्रयोग

ऊपर श्रीराम यत्र का संक्षिप्त वर्णन है। अब कामना पूर्ति के लिए इसका उपयोग कैसे हो सकता है, यहा इसी का वर्णन है। पहले दो समकोण त्रिभुज बनाए (जिनकी तीनो भुजाए बराबर हो)। इन दोनों के बीच मे ॐ लिखे हों। दोनो त्रिभुजो के केंद्र में बीज (र) को लिखे। बीज के नीचे कार्य (जो कर रहे हों) तथा ऊपर साधक का नाम लिखें। कार्य कर्मकारक मे तथा साधक सबध कारक मे लिखा जाए (जैसे राजा नामक व्यक्ति परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए यह अनुष्ठान करे, तो कार्य के स्थान पर 'परीक्षा को' और साधक के स्थान पर राजा को लिखा जाएगा)। बीज के दोनो बगलों मे 'करो' शब्द लिखें। यह जो कुछ भी लिखा गया हो, उसके आगे एव पीछे से ॐ लिखा जाए। फिर दोनो त्रिभुजो के छहों कोणो मे दीर्घ बीज (राम) लिखे। फिर प्रत्येक के साथ 'हृदयाय नम' आदि हृदयन्यास लिखे। कोणो के अगल-बगल मे 'श्री' 'ह्री' तथा 'क्ली' लिखे। कोण की नोक मे 'हु' तथा इसके दोनों ओर 'ऐ' (ऐं हुं ऐं) लिखें। अब तीन वृत्तो से अष्टदल कमल बनाए। फिर इसमे (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ) चौदह स्वरो एव 'क' से 'क्ष' तक ततीस व्यंजनो सहित कुल सैतालीस अक्षरो को कमल के आठों दलो मे लिखे। इन्हे प्रत्येक दल मे छ-छ अक्षर लिखने पर आठवे दल में पाच ही अक्षर रह जाएगे। बाद मे इसी प्रकार का एक कमल और बनाएं। इसके आठों दलों में क्रमश 'ॐ नमो नारायणाय' इस मत्र के एक-एक अक्षर को लिखे और इसके केसर में 'श्री' लिखें। इसके बाहर बारह दलोंवाला कमल बनाए तथा इसके प्रत्येक दल मे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मत्र के एक-एक अक्षर को लिखे। (40-47)

इस बारह दलवाले कमल के केसर मे 'अ' से 'क्ष' तक सभी अक्षरो को लिखे। इसके बाहर सोलह दलो का कमल बनाए। इसके केसर मे 'ह्री' लिखें। इसके सोलहो दलो मे 'हु फट् नम' तथा इससे पूर्व बारह अक्षरोंवाले मत्र के एक-एक अक्षर को लिखें (फट् एक ही माना जाएगा)। इसके दल के जोडो में हनुमान आदि वीरो के बीज मत्र (ह स भ्र इत्यादि सही-सही लिखे)। इसके बाहर नाद एव बिंदु से युक्त बत्तीस दलोंवाला कमल बनाए। इनमें मत्रराज (नृसिह मत्र) के बत्तीस अक्षरो को क्रमश लिखें और इन्ही में आठ वसुओ, ग्यारह रुद्रों, बारह आदित्यों एव ब्रह्मा को तथा वषटकार को लिखें और इनके बाहर से भूपुर यंत्र बनाए। इस यत्र के चारो ओर वज्र और कोणो मे शूल बनाए। भूपुर यत्र तीन रेखाओ मे मिला हुआ हो। ये तीन रेखाए सत्व, रजस एव तमस तीनो गुणों की प्रतीक हैं। इसमे द्वार भी होना चाहिए, इसे राशि आदि से सुशोभित करना चाहिए तथा

चिह्नवाले, ध्वज को धारण करनेवाला, लाल रगवाले, बड़े पेटवाले, सूप जैसे कानोवाले, लाल वस्त्रोंवाले,लाल चंदन लगाए हुए,लाल फूलों से पूजे गए, भक्तों पर कृपा करनेवाले, अच्युत,जगत के कारण,सृष्टि से पहले उत्पन्न,प्रकृति से तथा पुरुष से महान,इस प्रकार के गणपति का ध्यान श्रेष्ठ योगी ही करते हैं। (7-9)

व्रातपति को,गणेश को,प्रथम पति को,लबोदार को,एकदंत को,विघ्ननाशक को,शिव के पुत्र को तथा वरदान देनेवाली मूर्ति को बार-बार नमस्कार हो—इस अथर्वशिर को अध्ययन करनेवाला ब्रह्म को प्राप्त करता है। वह चारों ओर से सुख प्राप्त करता है। कोई भी विघ्न उसे हानि नही पहुंचाता। वह पांच महापापो से मुक्त हो जाता है। इसे सायकाल पढ़ने से दिन के पाप नष्ट होते है। प्रात पढने से रात्रि के पाप नष्ट होते है। साय-प्रात. दोनो कालों में पढने से पाठक निष्पाप हो जाता है और धर्म,अर्थ,काम तथा मोक्ष चारो पुरुषार्थो को प्राप्त करता है। इसका ज्ञान अशिष्य (जो शिष्य न हो) को नही देना चाहिए। भूल से भी ऐसा करने पर पापी बनता है। इसके एक हजार पाठ करने से हर इच्छा पूर्ण होती है। इससे गणपति का अभिषेक करनेवाला अच्छा वक्ता बनता है। चतुर्थी में निराहार रहकर जप करने से साधक विद्वान बनता है। ऐसा महर्षि अथर्वण ने कहा है। इस मंत्र से तप करनेवाले को कोई भय नही रहता। दूब के अकुरो से इसके साथ गणेश का पूजन करने पर मनुष्य कुबेर के समान हो जाता है। एक हजार लड्डुओ से पूजन करने पर वाच्छित फल मिलता है। घी एवं समिधा से हवन करने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। आठ ब्राह्मणो को सही रूप में इसकी दीक्षा देनेवाला सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है। सूर्य-ग्रहण मे किसी महान नदी मे बैठकर या देव प्रतिमा के सामने इसे पढने से मत्र सिद्ध होकर महान विघ्नो से भी मुक्ति मिल जाती हे ओर महादोष भी छूट जाते है। वह व्यक्ति सर्वज्ञाता हो जाता है।

□

इसमे फणी (शेषनाग) अनत, वासुकि, तक्षक वर्क पद्मक, महापद्म शख एव गुलिक इन आठ सर्पो को बनाना चाहिए। फिर इस यंत्र की दिशाओं एवं उपदिशाओं मे नरसिह बीज मत्र एव कोणों मे वराह वीज मत्र लिखें। नृसिह मंत्र अनुग्रह चद्र नाद शक्ति आदि से युक्त है। यही ग्रहों को शात करता है। अन्त्य वर्ण आड आदि से सपन्न 'हुम' वराह बीज मत्र है। (48-57)

राम के माला मत्र मे सर्वप्रथम प्रणव (ॐ), फिर नम. फिर क्रमशः निद्रा (भ), स्मृति भेद (ग), रुद्रयुक्त कामिका (व), अमर से अलंकृत (ते), अग्नि (र), मेधा (धु), अक्रूर युक्त दीर्घ कला (न), ह्लादिनी (द), दीर्घ युक्त काल (ना) तथा क्षुधा (य) है। इस प्रकार 'ॐ नमो भगवते रघुनदनाय' बनता है। (यह तत्रो की गोपनीय कूटाक्षर शैली है, इसका उद्देश्य सर्वसाधारण से तत्र को दूर करता रहा है। इसमे मत्र को न लिखकर कूट सकेत लिख दिए जाते है। जैसे 'नम' के लिए नति, 'ॐ' के लिए तारक 'भ' के लिए निद्रा आदि लिख दिया जाता है। यह मत्र इस उपनिषद मे इसी शैली मे है।) पूरा मत्र इस प्रकार है—'ॐ नमो भगवते रघुनंदनाय, रक्षोघ्नविशदाय, मधुर प्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नम ॐ।' यह श्री राम का सैतालीस अक्षरो का राज्याभिषिक्त माला मत्र है। इसे इसी क्रम में लिखना चाहिए। सगुण मत्र होने पर भी यह दैविक, दैविक, भौतिक तीनो कष्टों को नष्ट करता है। यही सर्वात्मिक है। इसे प्राचीन काल के विद्वानो ने कहा है। ऋषियों ने इससे अपनी साधना की है। इसकी उपासना करने वालो को नीरोगता, दीर्घायु तथा मोक्ष प्राप्त होता है। इसकी साधना से पुत्रहीनो को पुत्र प्राप्त होते है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, समिति आदि सभी इच्छाए इससे पूरी होती है। इसकी साधना से शीघ्र मनोकामना पूर्ण होती है। यह अत्यत गोपनीय रहस्य है। अयोग्य पात्रो को इस मत्र की दीक्षा नही देनी चाहिए। (58-67)

चतुर्थ खंड

प्रसन्नता के साथ द्वारपूजा करके पद्मासन-पचभूत आदि की शुद्धि करे। श्री राम की पूजा मे सिंहासन का पीठ, नीचे का भाग, ऊपर का भाग तथा अगल-बगल का भी पूजन किया जाता है। पीठ के ऊपर मध्य में अष्टदल कमल की भी पूजा करें। रत्नजटित सिंहासन पर मधुर कोमल बिस्तर की कल्पना करके उस पर ईश्वर रूपी आचार्य का पूजन करें। पीठ के नीचे के भाग मे भगवान के आसन के नीचे आश्रय शक्ति, कूर्म, नाग और पृथ्वीवाले दो कमलो की कल्पना करे। इन सबकी पूजा करें। विघ्न, दुर्गा, क्षेत्रपाल एवं वाणी, इनके पहले बीज लगाकर इनके आगे के लिए (विघ्न के लिए आदि) लगाए। तब इनकी पूजा पीठ के चारों पायो मे क्रमश धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की आग्नेय आदि कोणों मे तथा क्रमश अधर्म, अनर्थ, अकाम एव अमोक्ष की पूर्व आदि दिशाओ मे पूजा करें। पीठ के ऊपर बीच मे सूर्य, चद्र एवं अग्नि की पूजा एव यंत्र में स्थित तीनों गुणो के प्रतीक बीज सहित तीन वृत्तों का ध्यान एव पूजन करें। इसके बाद कमल के आठ दलों की पूजा करें। मध्य दल के अग्निकोण में आत्मा-अंतरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा की और पूर्व आदि दिशाओ मे विद्या, अविद्या, कला एवं परतत्त्व की, फिर विमला आदि शक्तियों की, फिर मुख्य देवकी आह्वान सहित, अगव्यूह, धृष्टि, लोकपाल आदि की उनके अस्त्र-शस्त्र सहित, वसिष्ठ आदि आठ मुनियो की तथा फिर नील आदि, इन सबकी पूजा करें। बाद में चंदन आदि सुगधित लेपनों के साथ तथा अलकार आदि द्वारा श्री राम की पूजा करें। इसके बाद जप आदि तथा निम्नलिखित ध्यान करे। (1-7)

83. नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद

शांतिपाठ ·

ॐ भद्र कर्णेभि. शृणुयाम देवा भद्र पश्येमातक्षिभिर्यजत्रा
स्थिरैरगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा: स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा·
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि: स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति. शाति. शाति ।

प्रथम खंड

यह सब जल-ही-जल था। उस जल से कमल के पत्ते में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उनके मन में इच्छा हुई कि मैं सृष्टि करू। व्यक्ति पहले मन से सोचता है, फिर बोलता है तथा अंत में उस कार्य को करता है। कहा जाता है कि सृष्टि के आरभ में काम की उत्पत्ति हुई। ज्ञानी लोग सदा मन में रहनेवाले आत्मा को खोजते रहते हैं। वे काम को आत्मा के लिए बंधन मानते हैं । उनके मत के अनुसार मन में काम की उत्पत्ति होती है। सृष्टि के पूर्व केवल जल ही था, अत: वही विश्व का कारण है, यह जाननेवाला विद्वान जो भी इच्छा करता है, उसे उसकी चाही गई वस्तु मिल जाती है। प्रजापति ने तपस्या प्रारंभ की तब उन्हें अनुष्टुप छंद में उत्पन्न मंत्रराज नरसिंह मंत्र प्राप्त हुआ। इसी मत्र के प्रभाव से उन्होंने उस दिखाई देनेवाले विश्व की रचना की। इसीलिए इस विश्व को मंत्रराज अनुष्टुपमय कहा जाता है। इसी से समस्त भूत पैदा हुए। इसी के कारण प्राणी जीवित रहते हैं तथा इस लोक को त्यगाने पर इसी में लीन हो जाते हैं। यह अनुष्टुप वाणी ही लोकों को बनानेवाली है। वाणी से मनुष्य जन्म मृत्यु को प्राप्त होते हैं और वाणी अनुष्टुप ही है। यह अनुष्टुप छंद अन्य छदों में श्रेष्ठ है। (1)

इस मत्र का प्रथम चरण का रूप सागर, पर्वत, सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीवाला है। दूसरा चरण यक्ष-गधर्व-अप्सराओं से युक्त है। तृतीय चरण में वसु, रुद्र और आदित्य देवता सेवित द्युलोक और चतुर्थ चरण के रूप-माया रहित, पवित्र, परम व्योम युक्त ब्रह्म रूप है। इन सभी को जाननेवाला अमरता पद पाता है। इस मंत्र के चार चरण हैं, जो अपने अंगों सहित चारों वेद ही हैं। इसके ध्यान का क्या रूप है? इसका देवता, अग, गण, छंद और ऋषि यह मत्र क्या और कौन हैं? इसके समाधान में ब्रह्मा बताते हैं कि 'बीज से युक्त इस आठ अक्षरों के प्रत्येक चरणवाले मंत्र को जो साम का ही अग मानता है, वह संपत्ति से युक्त होता है। सभी वेदों के आरंभ में प्रणव है, अत: जो इसे प्रणव का और सोम का अंग मानता है, वह तीनों लोकों में विजय प्राप्त कर लेता है। चौबीस अक्षरों वाले महालक्ष्मी मत्र को यजुर्वेद एवं साम का अंग माननेवाला आयु यश, कीर्ति, ज्ञान एवं ऐश्वर्य प्राप्त करता है। अंगों सहित साम को जाननेवाला अमृतत्व प्राप्त करता है। अत: इसे अगों सहित

शंख, चक्र, गदा एवं कमल धारण करनेवाले सच्चिदानंद स्वरूप भगवान श्रीराम अत्यत महिमावाले तथा संसार के आश्रय हैं। वे सांसारिक बंधनों को नष्ट करनेवाले है। 'उन परमेश्वर भगवान को मै नमस्कार करता हूं।' इस प्रकार स्तुति करनेवाले उपासक नि सदेह मोक्ष पाते है। अपनी लीला को समेटकर भगवान राम शंख, चक्र, गदा एवं पद्म के साथ अंतर्धान हो गए। अपने वास्तविक रूप को धारण करके सीता एवं लक्ष्मण के साथ वे अपने लोको में चले गए। उनके साथ ही उनका परिवार, उनकी प्रजा, विभीषण आदि भी उसी परम धाम मे पहुच गए। उनके भक्त मनचाहे भोगों को प्राप्त करते है। अत में उन्हें परमपद मिलता है। ये ऋचाए समस्त कामनाओ तथा अर्थो को देनेवाली है। इनके पढ़नेवाले पवित्र होकर मोक्ष प्राप्त करते है।

□

जानना चाहिए। ज्ञानी प्रणव, गायत्री एवं यजुष के रूप महालक्ष्मी मत्र को कुपात्रों को नही बताते, क्योंकि इसे जान लेने पर भी इन्हे अच्छी गति नही मिलती। अत इस विषय मे सावधान रहना चाहिए। ऐसे लोगों को मंत्र देनेवाला गुरु नीच गति को प्राप्त करता। (2-3)

संपूर्ण विश्व, प्राणी, इद्रियां, पशु, अन्न, अमृत, सम्राट, स्वराट एवं विराट् इस मत्रराज साम का प्रथम चरण मानें। चारों वेद, सूर्य एवं इसके मंडल में स्थित पुरुष को इसका द्वितीय चरण समझे। तृतीय चरण समस्त औषधियो, तारों तथा चंद्रमा को समझना चाहिए। ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इद्र, अग्नि और अक्षर ब्रह्म इसका चौथा चरण समझा जाए। इसे जाननेवाला अमृतत्व प्राप्त करता है। इसके प्रथम चरण का प्रथम अश 'उग्र', द्वितीय चरण का प्रथम अश 'ज्वल', तृतीय चरण का 'नृसिह' तथा चौथे चरण का प्रथम अंश 'मृत्यु' है। इन्हें साम समझना चाहिए। इसका ज्ञाता अमृतत्व पाता है। अत· यह मत्र जिसे देना हो, उसकी अच्छी तरह परीक्षा लेनी चाहिए। इसका उपदेश केवल सदाचारी शिष्य या पुत्र को देना चाहिए। (4)

क्षीर सागर मे सोया हुआ भगवान का रूप परम पद है। इसे योगियो के लिए समझना चाहिए। इसका ज्ञाता अमृतत्व पाता है। इसे अनुष्टुप मत्र के प्रथम चरण के पूर्वार्ध (पहले आधे) भाग का अतिम अश 'वीर' दूसरे चरण के पूर्वार्ध का अतिम 'त', तीसरे के पूर्वार्ध का अतिम 'भी' तथा चतुर्थ चरण के पूर्वार्ध का अतिम अश 'मृत्युम्' है। इस जानने योग्य साम का ज्ञाता अमृतत्व पाता है। आचार्य के मुख से इसका ज्ञान पानेवाला इसी शरीर से भवसागर से पार हो जाता है और उसके सपर्क में आनेवाले लोगो को भी वह इस बधन से मुक्त करता है। ससार की माया मे पडा हुआ प्राणी भी इसे सुनकर मुक्ति की इच्छा करता है। इस मत्र के जप से इसी शरीर से भगवान नृसिह के दर्शन होते है। कलियुग मे मुक्ति का इससे सरल उपाय नही है। अत इसे उचित रीति से जाननेवाला अमृतत्व पाता है। (5)

भगवान नृसिह ऋत एवं सत्य ब्रह्म हैं। वे काले-पीले रग के सिह एव पुरुष की मिली-जुली आकृतिवाले है। वे भयंकर आंखोंवाले नीले लोहित शकर हैं, उमापति, पशुपति, पिनाकी तथा अनंत तेजवाले है। वे सभी विद्याओ और प्राणियों के स्वामी है। वे देवताओ एव ब्रह्मा के भी पति है। यजुर्वेद का अर्थ उन्ही का रूप है। उन्हें साम ही समझना चाहिए। ऐसा ज्ञाता अमृतत्व पाता है। मंत्रराज अनुष्टुप के प्रथम चरण के उत्तरार्ध (बादवाला आधा भाग) का पहला अश 'महा', दूसरे चरण के उत्तरार्ध का पहला अश 'सर्वतो', तृतीय के उत्तरार्ध का प्रथम अश 'पण' तथा चतुर्थ का 'नमा' है। इसका ज्ञाता अमरता पाता है। अत इसे साम समझें। यह साम सच्चिदानद रूप है इसे जाननेवाला इसी शरीर से अमृतत्व पाता है। इसे अगों सहित जानना चाहिए। इस ज्ञान से बधनों से मुक्ति एव अमरता प्राप्त होती है। (6)

विश्व की रचना करनेवाले प्रजापति ने इसी मत्र से जगत की रचना की। अत वे विश्व के रचयिता बने। यह विश्व साम से ही प्रकट हुआ। इस रहस्य को जाननेवाला ब्रह्मलोक तथा उसके पद को प्राप्त करता है। इसे अगों सहित जाननेवाला ससार चक्र से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करता है। इस मत्र के प्रथम चरण का अतिम शबद 'विष्णु', द्वितीय चरण का अंतिम शब्द 'मुख', तृतीय का 'भद्र' तथा चतुर्थ का अंतिम शब्द 'म्यहम्' है। इसका ज्ञाता अमृतत्व पाता है। प्रजापति

80. गोपाल पूर्वतापिनी उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभि शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमातक्षिभिर्यजत्रा
वासस्तुभिर्व्यशेम देवहित यदायु. ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शाति. शाति. शाति· ।

'सच्चिदानंदस्वरूप, सरलता से सारे कार्य करनेवाले वेदात द्वारा जानने योग्य बुद्धि के साक्षी एव गुरुरूपी भगवान श्री कृष्ण को मै नमस्कार करता हूं ।' एक बार मुनियों ने ब्रह्मा से पूछा, 'कौन परम देव है ? मृत्यु किससे डरती है ? किसे जान लेने पर संपूर्ण ज्ञान हो जाता है ? और यह विश्व किसकी आज्ञा से घूमता है ?' इस पर ब्रह्माजी ने उत्तर दिया, 'कृष्ण ही परम देवता है । मृत्यु उन्ही से डरती है । गोपियों के प्रिय कृष्ण को जान लेने पर समस्त ज्ञान हो जाता है । स्वाहा (माया) विश्व को घुमाती है ।' ऋषियों ने फिर पूछा, 'गोविद, गोपी वल्लभ और स्वाहा, ये कौन है ?' ब्रह्मा बोले—'पापों को नष्ट करनेवाले तथा गाय, भूमि एव वेदों को जाननेवाले गोविद श्री हरि ही है । वही माया और सकल परम ब्रह्म है । जो उन्हें जानता है और उन्हें भजता है, वह अमर हो जाता है ।' ऋषियों ने पूछा, 'भगवान कृष्ण के किस रूप का ध्यान करना चाहिए ? उनके नाम का अमृत रस कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? और उनका भोजन कैसे करें ?' ब्रह्मा बोले, 'उनके ग्वाले के रूप का ध्यान करना चाहिए । उनका रग नए नीले बादल के समान है, किशोर अवस्थावाला है और वह दिव्य कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हुए है । वे गोपियों एवं ग्वालो से घिरे हुए और अत्यत सुदर है । यमुना की लहरो से शीतल बनी वायु उनकी सेवा कर रही है । ऐसे रूप का ध्यान करनेवाला ससार के वधनो से छूट जाता है । (1-3)

'उनके मत्र के आरभ में काम (क्ली) है, पहला पद कृष्णाय, दूसरा गोविदाय तथा तीसरा पद गोपीजनवल्लभाय है । (पूरा मत्र 'क्लीकृष्णाय गोविदाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा') इसके अत मे स्वाहा का उच्चारण करने से शीघ्र ही भगवान कृष्ण से मिलन एवं मुक्ति होती है । इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नही है । इसी का भजन करना भक्ति है । अपनी समस्त कामनाओ को त्यागकर मन आदि को उन्ही में समर्पित कर देना भजन है । यही वास्तविक सन्यास भी है । वेदज्ञ उनका अनेक प्रकार से भजन करते हैं । भक्त गोविद नाम से उपासना करते हैं, वे ही गोपीजनवल्लभ संसार के पालक हैं, जो अपनी स्वाहा से जगत का निर्माण करते हैं । जैसे एक ही वायु शरीरो मे पाच रूपों मे रहता है, वैसे ही समस्त जगत में एक कृष्ण ही व्याप्त है । इस मंत्र मे उनके पांचों नाम एक ही कृष्ण को वताते हैं ।' मुनियों ने पूछा, 'जगत के आश्रय कृष्ण की उपासना कैसे की जाती है ?' ब्रह्माजी ने वताया, 'सोने का एक आठ दलोंवाला कमल बनाए । इसके बीच में परस्पर संपुटित दो त्रिकोण

ने इन तत्वो को जाना। इस अनुष्टुप की स्थिति ब्रह्म मे ही है। इसे इसी प्रकार जाननेवाला ज्ञानी अमृतत्व पाता है। स्त्री हो या पुरुष जो भी इस लोक मे सदाचार से आनद मे स्थित होना चाहते है, उन्हें भगवान नृसिह समस्त ऐश्वर्य प्रदान करते है। परमात्मा को प्राप्त करने का इच्छुक चाहे कही भी मृत्यु को प्राप्त हो,उसे इस तारक मत्र का जप करना चाहिए। प्रजापति साम के अग है। अत वही तारक मंत्र है। उन्होने ही इसके प्रथम बार दर्शन किए। इस सबको सच्चा साधक जानता है। इसे जानकर पुरश्चरण करनेवाला साक्षात महाविष्णु ही बन जाता है। (7)

द्वितीय खंड

मृत्यु,पाप एव संसार से डरे हुए देवता ब्रह्मा के पास पहुचे। ब्रह्माजी ने उन्हे मत्रराज अनुष्टुप दिया। इस मत्र से उन्होने मृत्यु को जीत लिया,वे पापो से मुक्त हो गए तथा उन्होने ससार पर भी विजय प्राप्त कर ली अत मृत्यु,पाप एव संसार से डरा हुआ व्यक्ति इस मत्रराज अनुष्टुप को ग्रहण करे। इससे वह मृत्यु,पाप एव ससार-चक्र से पार हो जाता है। प्रणव भी इसी मत्र का अग है। प्रणव की प्रथम मात्रा का लोक पृथ्वी,वेद ऋग्वेद,देवता,ब्रह्मा तथा छद गायत्री है। यह वस्तु देवो का गण है तथा गार्हपत्य अग्नि का रूप है। ये सभी प्रणव की प्रथम मात्रा 'अ' मे स्थित है तथा ये ही साम का प्रथम चरण भी है। प्रणव की दूसरी मात्रा 'उ' में अतरिक्ष,यजुर्वेद,विष्णु एव रुद्र देवताओ का गण,दक्षिणाग्नि तथा त्रिष्टुप छद है। यही साम का दूसरा चरण है। प्रणव की तृतीय मात्रा 'म' है। इसमें द्युलोक,सामवेद,रुद्र-आदित्य गण जगती छद तथा आह्वनीय अग्नि है। यही साम का तीसरा चरण है। प्रणव की चौथी मात्रा नाद रूप अर्धमात्रा है इसमे चद्र लोक, ओकार ब्रह्म, अथर्ववेद, सवर्तक अग्नि,मरुत गण,विराट् छद एव ब्रह्मा ऋषि है। यह ब्रह्म रूप अत्यत प्रकाशमान मात्रा है। यही साम की चौथी मात्रा है। (1)

इसके प्रथम चरण मे आठ अक्षर है। शेष तीन चरणो मे भी आठ-आठ अक्षर है। इस प्रकार इसमे बत्तीस अक्षर होते है। इस समस्त जगत की उत्पत्ति अनुष्टुप से ही हुई तथा इसी मे इसका सहार भी होता है। चार चरण इसके चार अग है। प्रणव इसका पाचवा अग है,जो क्रमश हृदय, सिर,शिखा,कवच (कधे) एव अस्त्र रूप है। अत मनुष्य शरीर के समान ही इनका अगो से सयोग करें। सपूर्ण लोको के समान प्रणव एव अनुष्टुप मत्र के अग आपस मे मिले हुए है। प्रणव विश्व रूप है,अत अनुष्टुप के प्रत्येक अक्षर मे प्रणव (ॐ) का सपुट देना चाहिए, अर्थात इस मत्र के प्रत्येक अक्षर के आगे और पीछे ॐ लगाना चाहिए। ब्रह्म को जाननेवाले इसके प्रत्येक अक्षर के न्यास के विषय मे कहते है। (2)

इस मत्र का प्रथम शब्द 'उग्रम' है,इसका ज्ञाता अमृतत्व प्राप्त करता है। द्वितीय स्थान 'वीरम', तृतीय 'महाविष्णुम' चतुर्थ 'ज्वलंतम', पचम 'सर्वतोमुखम', छठा 'नृसिहम' सातवा 'भीषणम', आठवा 'भद्रम' नवा 'मृत्युमृत्युम', दसवा 'नमामि' तथा ग्यारहवा 'अहम' है। पूरा मत्र इस प्रकार बनता है ·

उग्र वीरं महाविष्णुम्

ज्वलंतं सर्वतोमुखम्।

वनाएं। कोणों की कर्णिका में 'क्ली' लिखें तथा प्रत्येक कोण में 'क्ली कृष्णाय नम' इस मत्र के एक-एक अक्षर को लिखें। फिर ब्रह्मा मत्र तथा काम गायत्री विधि सहित लिखकर इसके आठो ओर शूल वनाकर पृथ्वी मंडल वनाएं। इसे अंग,वासुदेव,रुक्मिणी,इद्र आदि के आठ घेरो से युक्त करे और पूजा करे। तीनों संध्याओ में सोलह उपचारों से इसकी पूजा करने से साधक को सव कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान कृष्ण एकमात्र ईश्वर,वशी,सवमें व्याप्त,प्रशंसनीय और अनेक रूपोंवाले हैं। इस पीठ की नित्य पूजा करने से सदा रहनेवाला सुख मिलता है। भगवान कृष्ण सभी साधकों की कामनाएं पूर्ण करते हैं। वे नित्यों मे नित्य एवं चेतनों मे चेतन है। जो इस गोप रूपवाले कृष्ण को जान लेता है,वह विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है। (4-8)

'कृष्ण ही सर्वप्रथम ब्रह्मा को पैदा करके उन्हे वेदो का ज्ञान देते है। वही समस्त प्राणियो को बुद्धि का प्रकाश देते है। मोक्ष के इच्छुक उन्ही की शरण मे जाए। भगवान कृष्ण के पाच पदोवाले मत्र मे 'ओम' का संपुट लगाकर जप करनेवाला शीघ्र उनके दर्शन करता है। अत मोक्ष प्राप्ति के लिए तथा शांति के लिए इसका नित्य जप करे। इसी पचपदी मत्र से अन्य मत्र भी पैदा हुए है,जो मनुष्य का हित करनेवाले है। इद्र आदि देवता इन्ही मंत्रों की साधना से ऐश्वर्य प्राप्त करते हे। (9)

ब्रह्माजी ने आगे वताया,'जब मेरी तीन चौथाई अवस्था परमेश्वर का ध्यान और स्मरण करते हुए वीत गई,तव मुझे दर्शन देकर उन्होने ज्ञान दिया। यह ज्ञान अठारह अक्षरो के मत्र का था। फिर उन्होने मुझे सृष्टि रचना की प्रेरणा दी। (क्ली कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) इस मत्र के 'क्लीम्' के 'क्,ल्,ई,म्' से मैने क्रमश जल,पृथ्वी,अग्नि,चंद्रमा की तथा 'क्लीम्' से सूर्य की रचना की। 'कृष्णाय' से आकाश एवं वायु की,'गोपीजनवल्लभाय' से स्त्री-पुरुष की तथा 'स्वाहा' से चराचर विश्व की रचना की। इसी मत्र से प्राचीनकाल में राजा चद्रध्वज को आत्मज्ञान हुआ था। इसी मंत्र से भगवान के गो-लोक की प्राप्ति होती है। (10)

'हे मुनियो । जैसे मै भगवान की स्तुति करता हू,वैसे ही आप लोग भी इस मत्र से भगवान कृष्ण की आराधना करे। इसी मे केवल परमपद की प्राप्ति होगी। वाणी,मन आदि उन तक कभी नही पहुच सकते। अत परमेश्वर कृष्ण का ही ध्यान करना चाहिए। उनके ही नाम का रस पीना चाहिए। नित्य उन्ही का भजन करना चाहिए।

□

नृसिह भीषण भद्रम्

मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

इसे जाननेवाला अमरता पाता है। यह अनुष्टुप ग्यारह शब्दोवाला है। इसी प्रकार समस्त जगत की रचना हुई। इसी के द्वारा सबका उपसहार भी होता है। अत यह सब इसी की महिमा है। इसका ज्ञाता अमरता प्राप्त करता है। (3)

इसमे 'उग्र' शब्द का देवताओ द्वारा कारण पूछे जाने पर ब्रह्मा बोले, 'नृसिह अपनी महिमा से सभी लोको, देवों, आत्माओ, प्राणियो एव भूतो को ऊपर उठाते है। वे ही सृष्टि, पालन, सहार तथा लय करते हैं। स्वय भी तथा दूसरो से भी अनुग्रह करते और कराते है। अत उन्हे उग्र कहा जाता है। ऋग्वेद मे कहा है कि वेद जिनको स्तुति करते है, उनकी स्तुति करो। वे हृदय मे रहनेवाले, युवा, सुदर, सिहरूप होने पर भी अभयकर, कृपालु एव दु ख हरनेवाले है, अत उग्र कहे जाते है।' 'वीर शब्द का कारण पूछे जाने पर ब्रह्मा ने बताया 'वे ही सभी लोक, देव, प्राणी आदि की सृष्टि, पालन तथा सहार के साथ ही अनेक प्रकार कर्म करते है। ऋग्वेद मे उन्हे वीर, भक्तो पर कृपा करनेवाला, सोमरस निकालनेवाला तथा देवताओ को बनाने की इच्छा करनेवाला कहा गया है। अत वे वीर है। उन्हें महाविष्णु क्यो कहा जाता है ? इसके विषय मे ब्रह्मा ने बताया, 'वे सभी लोको, देवो आदि मे व्याप्त है। मांस मे चिकनाई के समान वह सारे शरीर मे व्याप्त है।' प्रलय मे ससार भी लय हो जाता है। इस महिमा के विषय मे ऋग्वेद मे कहा गया है कि वह सर्वव्यापक ससार मे फैले है, प्रजापालक, उपास्य, अद्वितीय एव सोलह कलाओ के तेज वाले है। अत वह महाविष्णु कहे जाते है। (विष्णु का अर्थ व्यापक है)। 'ज्वलतम' शब्द का कारण इस प्रकार बताया गया है—'वे अपने तेज से समस्त लोको, देवो आदि को प्रकाशित करते हुए स्वय भी तेजयुक्त है। सूर्य आदि सब उन्ही के तेजवाले है। ऋग्वेद मे कहा है कि वे सविता (सूर्य) है, प्रसविता भी है। वे अपने प्रकाश मे अन्यो को प्रकाशित करते है तथा स्वय भी प्रकाशित रहते है। स्वय भी तपते है, अन्यो को भी तपाते है। सब प्रदार्थ उन्ही की शोभा से शोभावाले है। अत उनके लिए यहा ज्वलत शब्द आया है। (4)

देवताओ ने फिर सर्वतोमुख शब्द का कारण पूछा तब ब्रह्मा बोले—'वह सभी लोको, देवो आदि को इद्रियां न होने पर भी सब ओर से देखता है, सुनता है, प्राप्त करता है तथा सभी ओर को चलता है।' ऋग्वेद में कहा गया है कि वह सृष्टि से पूर्व अकेला था। स्वय ही इतने रूपो मे हो गया। वही उत्पन्न, पालन तथा सहार करता है। वह सर्वतोमुख (सब ओर मुखोवाला) है। हम उसे नमस्कार करते है। ऐसा वेदो मे भी कहा गया है (वेदो को सबसे बडा प्रमाण माना गया है) अत वह सर्वतोमुख है, 'नृसिह' का कारण इस प्रकार बताया है—मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है, पराक्रम मे सिह श्रेष्ठ है। उनमे ये दोनों श्रेष्ठताए है। उन्होंने इसीलिए ऐसा रूप धारण किया। वेदो मे कहा गया है कि विष्णु सिह का रूप धारण करके स्तुतिकर्ताओ के सामने प्रस्तुत होते है। सिह रूप रखने पर भी वह भक्तो के लिए भयकर नही होते इत्यादि कारणों से उन्हे नृसिह कहा जाता है। भीषण की सार्थकता ब्रह्माजी ने इस प्रकार बतायी है—इनकी भीषणता मे सभी लोक आदि भयभीत हो जाते है, पर यह किसी से नही डरते। वेदो मे आया है कि इन्ही के भय मे सूर्य समय पर उगता है। वायु, अग्नि, इद्र, मृत्यु आदि इन्ही के भय मे उचित कार्य करते है, इसीलिए यहा भीषण कहा गया है। 'भद्र' का

61. शाटयायनीयोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शाति शाति शाति ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है । उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अत उस पूर्ण ब्रह्म से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दें तो पूर्ण ही शेप रहता है ।

विपयी मन बंधन का तथा निर्विषयी मन मोक्ष का कारण है । मन जितना विपयो में लगता है उतना यदि ब्रह्म में लगे, तो मुक्ति अवश्यभावी है । विषयो में लगे चित्त को प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करने से सनातन ब्रह्म से तन्मय होता है । वेद को न माननेवाला ब्रह्म को भी नही मानता और उसे ब्रह्मधाम भी नही प्राप्त होता । तत्त्व का ज्ञाता उसको जानकर ज्ञानवान बनता है । निष्काम वेदज्ञ उस सत्य से भी ऊचे ब्रह्म को जानकर विषय रहित एव शात हो जाते है । वे मुनि किसी भी आश्रम मे क्यों न रहे, अंतिम सन्यास आश्रम मे पच मात्राओ को धारण कर मोक्ष प्राप्त करे । इसमे त्रिदंड उपवीत, कौपीन, शिक्य पवित्र को जीवन पर्यत धारण करें । ये ब्रह्म मात्राए है, इन्हे मृत्यु पर ही भूमि मे गाडना चाहिए । ये व्यक्त एवं अव्यक्त दो प्रकार के है, जिनमें से एक का भी त्याग करने पर पतन होता है । वेदों के अनुसार त्रिदंड वैष्णव चिह्न विप्रों को मुक्ति देनेवाला तथा सभी धर्मो का निर्वाण है । (1-10)

कुटीचक्र, बहूदक, हस एव परमहस चारों प्रकार के सन्यासी विष्णुचिह्न, शिखा, जनेऊ धारण करनेवाले शुद्ध चित्त, अपने को ब्रह्म माननेवाले, चित्तरूप की उपासना मे लगे नियमशील आदि से युक्त होते है । चारों प्रकार के संन्यासी जीवनचर्या के कारण ही भिन्न है । चिह्नों का त्याग कोई नही करता । सभी पंचयज्ञ करते है, ब्रह्म विद्या के वेत्ता होते है, ससार ब्रह्म को त्याग कर उसके मूल (ब्रह्म) के सहारे रहते है । कर्मकांड को छोडकर केवल रस-रूप विष्णु के साथ खेलते है, उन्हीं की अर्चना करते है । तीन प्रकार की शक्ति से स्नान, तर्पण, मार्जन आदि उन्हे अवश्य करने चाहिए । दस प्रणवो के साथ, चार पदवाली गायत्री का जाप सात व्याहतियों से तीनो सधियो से करना चाहिए, भगवान को गुरु मानकर योग यज्ञ करना चाहिए । मन-वाणी-कर्म से अहिसा तप यज्ञ है । नाना उपनिषदो का अभ्यास स्वाध्याय यज्ञ है । ब्रह्म रूप अग्नि मे 'ओम' उच्चारण से आहुति देना श्रेष्ठ ज्ञान यज्ञ है । ज्ञान रूपी शिखा-दड-उपवीत वाले का ब्रह्म ज्ञान ही सफल होता है, यह वेदो का मत है । काम, क्रोध, ममता, मान-अपमान आदि को त्यागकर वृक्ष की तरह अचल रहनेवाले सन्यासी इसी लोक में जीवन्मुक्त विदेह हो जाते है । ये पालन-पोषण के लिए पुत्रादि को नही देखते । सुख-दु ख को सहते हुए आत्मा की खोज मे घूमते रहते है । दड आदि युक्त जटाधारी अथवा मुडित, जनेऊ सहित देह ही इनका परिवार है । केवल प्राणो के लिए ही ये मांगकर या बिना मागे भिक्षा लेते है । (11-20)

कारण यह है कि भद्र का अर्थ कल्याण है। भगवान कल्याणस्वरूप है तथा दूसरो का कल्याण करते हैं। स्वय शोभा एव कातियुक्त है, दूसरों को भी शोभा एव काति देते है। वेदो में आया है कि देवताओं, हम कानों से कल्याणमय शव्द सुनें और आखों से कल्याणकारी दृश्य देखे। इत्यादि कारणों से भगवान को भद्र कहा गया है। मृत्युमृत्यु क्यों कहा गया है ? इस पर व्रह्मा वोले, 'वे अपने भक्तो के स्मरण पर उनकी मृत्यु एव अकाल मृत्यु को दूर करते है।' वेदों ने कहा है कि जिनकी आज्ञा को देवता मस्तक झुकाकर स्वीकार करते है, जिनकी छाया अमृत रूपी है, जो आत्मा को शक्ति देते हैं और जो मृत्यु की भी मृत्यु है, हम ऐसे भगवान की आराधना करते है। इसीलिए उन्हें मृत्युमृत्यु (मृत्यु की मृत्यु) कहा गया है। 'नमामि' शव्द के विषय मे उन्होने वताया कि भगवान को सभी देवता, मुमुक्षु, व्रह्मवेत्ता आदि नमस्कार करते हैं। वेद कहते है कि जिसे लक्ष्य करके व्रह्मा स्तुति करते हुए नमस्कार करते हैं वह व्रह्मा एव वेदों का रक्षक है। अत यहा नमामि शव्द आया हे। मत्र के अत मे आए 'अहम' शव्द के विषय मे व्रह्मा वोले कि वेदो में कहा गया है—'मै अमृत का स्रोत हू। देवताओं से पहले प्रकट हुआ हू। इस व्यक्त एव अव्यक्त ससार मे सर्वप्रथम हू। अत यहा अहम (मैं) शव्द आया है।'

तृतीय खंड

देवताओ ने प्रजापति से कहा, 'हमे मत्रराज अनुष्टुप की शक्ति एव वीज का उपदेश दीजिए।' व्रह्माजी वोले, 'इस विश्व की रचना, रक्षा एव विनाश करनेवाली माया ही इस मत्र की शक्ति है। अत यह माया ही शक्ति है। माया की इस शक्ति को जाननेवाला पाप, मृत्यु और ससार से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करता है तथा उसे महान सपत्तिया प्राप्त होती हे। व्रह्म को जाननेवाले जानते हैं कि यह माया ह्रस्व है, दीर्घ है अथवा प्लुत है। अत इसे ह्रस्व रूप में मानने वाला इसके द्वारा अपने समस्त पापों को भस्म करके अमृतत्व पाता है। इसके दीर्घ रूप को जाननेवाला महान ऐश्वर्य पाकर अमर होता है तथा इसके प्लुत रूप को जाननेवाला महान ज्ञाता वनकर अमृतत्व प्राप्त करता है। ऋषियों ने कहा है कि हे विदुमय स्वर। माया मे, ससार सागर से पार होने के लिए साधना के लिए दीर्घायु चाहता हू। अत मैं विष्णु आदि की लक्ष्मी, अविका, सरस्वती आदि शक्तियो का आश्रय लेता हू। तुम सभी शक्तियों से मेरी रक्षा करो। सभी प्राणी आकाश से ही जन्म लेते हैं, इसी के आश्रय मे रहते हैं और अपनी देह त्यागते है, अत आकाश ही वीज है। कहा गया है कि भगवान अपने परम धाम मे स्वय प्रकाशित हैं, वे अतरिक्ष मे रहते है, वे अतिथि, यज्ञवेदी की अग्नि, होता तथा आकाश में रहनेवाले है। इसे जाननेवाला अमरता प्राप्त करता है।

चतुर्थ खंड

प्रजापति से देवताओं ने निवेदन किया कि उन्हें मत्रराज अनुष्टुप के सहायक मत्रो को वताए। इस पर प्रजापति ने वताया, 'प्रणव, यजुर्लक्ष्मी, सावित्री तथा नृसिह गायत्री इस मत्र के अग (सहायक) मत्र हैं। 'ओंकार' अक्षर की महिमा ही यह सव जगत है। भूत, भविष्य और वर्तमान तथा इन तीनों से परे भी सव यही ओंकार है। जागृत अवस्था एवं स्थूल विश्वरूप, सातो लोकों के अंगोवाले

छ पत्तो मे षडक्षर सुदर्शन मत्र का, आठ दलो मे अष्टाक्षर नारायण मत्र का, बारह दलो मे बारह अक्षरोवाले वासुदेव मत्र का, सोलह दलो मे बिदु सहित मातृकाओ का तथा बत्तीस दलो मे मत्रराज अनुष्टुप का न्यास करना चाहिए। यह अनुष्टुप मत्र सभी कामनाओ को पूर्ण करनेवाला, मोक्ष देनेवाला तथा ऋक, साम एव यजुर्वेदमय है। अत यह अमृतमय है। इसके पूर्व, पश्चिम, उत्तर एव दक्षिण मे क्रमश आठ वसु, बारह आदित्य, विश्वेदेव तथा एकादश रुद्र रहते है। नाभि में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा बगलो मे सूर्य एव चद्र रहते है। ऋचाओ मे भी कहा गया है—'*भगवान नृसिह* परम व्योम मे रहते है और उन्ही मे सभी देवता स्थित है। अत जो इन्हे नही जानता, उसे ऋचा पढने से कोई लाभ नही है। इन्हे तथा इस महा सुदर्शन चक्र का ज्ञाता यदि बालक अथवा युवक भी हे, तो वह महान है और गुरु के समान है। अनुष्टुप मत्र से हवन तथा महाचक्र राक्षसो और मृत्यु के भय से रक्षा करता है। इसे गुरु से मत्र रूप मे लेकर कठ, बाजू या शिखा मे बाधे। इस मत्र के उपदेशक गुरु को दक्षिणा मे यदि सातो द्वीपोवाली पृथ्वी भी दे दी जाए, तो यह कम ही हैं। अत श्रद्धानुसार जो कुछ भी दिया जाए, वह उचित है। (2)

देवताओ द्वारा पूछे जाने पर प्रजापति ने इस मंत्र का फल इस प्रकार बताया कि इस मत्र को नित्य जपनेवाला अग्नि के समान, वायु के समान, आदित्य, सोम, सत्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सभी देवताओ के समान पवित्र हो जाता है। (3)

☐

उन्नीस मुखोंवाले वैश्वानर ही नृसिंह के प्रथम चरण हैं। स्वप्नावस्था और इससे प्रभावित विश्व इन्ही का स्थान है। आंतरिक संसार में इनका ज्ञान फैला हुआ है। वह सातों लोक रूपी अंगों, उन्नीस मुखोंवाले सूक्ष्म विश्व के कर्ता, भर्ता एव हर्ता हैं। ऐसा तैजस पुरुष उनका द्वितीय चरण है। सुषुप्ति में जब सोया हुआ पुरुष कोई स्वप्न नही देखता यह स्थान एकीभूत, प्रज्ञानघन आनदमय चैतन्य प्राप्त उनका तृतीय चरण है। यही सर्वेश्वर सभी प्राणियों में व्याप्त उनकी योनि उत्पत्ति का स्थान न होते हुए भी यह न तो अंतप्राज्ञ है, न बाहर प्राज्ञ है एवं दोनों ओर से भी प्राज्ञ नही है और न अप्राज्ञ ही है। यह रूप, रस आदि का विषय भी नही है। ऐसा अव्यक्त, चिन्मय, निराकार अद्वितीय ही उनका चतुर्थ चरण है। उसी को आत्मा समझना चाहिए। (1-2)

सावित्री मंत्र गायत्री छद में यजुर्वेद ही है। यह सर्व विश्व व्याप्त है। इसमें घृणि एव सूर्य दो-दो, आदित्य; तीन तथा श्रीबीज है। इस प्रकार इसमें आठ अक्षर हैं। ऋचाओं के अक्षर परम व्योम में स्थित देव में व्याप्त हैं। इस ब्रह्म के ज्ञान के बिना कोई लाभ नहीं होता। इसके ज्ञाता परम धाम में आनद पाते हैं। 'जो लक्ष्मी भू भुव स्व· और कालकर्णी नाम की हैं वह हमें प्रेरणा दे। यह यजुर्वेद की महालक्ष्मी गायत्री चौबीस अक्षरों की है। यह जगत गायत्री का ही रूप है। इसके ज्ञान से महान ऐश्वर्य प्राप्त होता है। 'हम नृसिंह को जानते हैं, उस वज्र समान नखोंवाले का ध्यान करते हैं। यह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे। यह नृसिह गायत्री ही इन समस्त देवो एव वेदों की कारण है। इसे जाननेवाला वेद रूप बन जाता है। (1-3)

देवताओं ने प्रजापति ने पूछा, 'किस मत्र से स्तुति किए जाने पर भगवान प्रसन्न होकर आत्मज्ञान देते हे ? तथा अपना दर्शन देते हैं ?' ब्रह्मा बोले, 'जो भगवान नृसिह ब्रह्मा, भू·, भुव, स्व हैं, विष्णु हैं, महेश्वर है, पुरुष हैं, ईश्वर हैं, सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी, प्रकृति, विद्या, ओंकार, चारों अर्धमात्राएं, वेद, वेदांग शाखाएं, इतिहास इत्यादि सभी हैं, उन भगवान को मैं बार-बार नमस्कार करता हूं। इस प्रकार बत्तीस मत्रों से जो भगवान की स्तुति करता है, उसे वह अपना स्वरूप दिखाते हैं। ऐसा ही करो। इसे जाननेवाला उन्हें प्राप्त करता है। यही महान ज्ञान का सार है।

पंचम खंड

देवताओं ने पुन· कहा, 'नृसिंह मंत्र के सभी इच्छाओं को पूर्ण करके मोक्ष देनेवाले महाचक्र के विषय में बताएं।' प्रजापति ने कहा, 'यह महाचक्र सुदर्शन चक्र है। यह छ अक्षरोंवाला है। इसमें छ पत्र हैं, जो छ ऋतुओं के प्रतीक हैं। इसकी नाभि से ये चक्र जुडे हैं। इसकी नेमि माया है। इसके आठ भागों की तुलना अष्टपदा गायत्री से की जाती है। माया ने इन्हे बाहर से घेर कर बारह घेरोंवाला चक्र बनाया है। इसकी समानता बारह अक्षरोंवाले जगती छद से की जाती है। फिर सोलह घेरोंवाला चक्र बनता है। भगवान भी सोलह कलाओं वाले हैं, अत यह साक्षात उन्हीं का रूप है। फिर बत्तीस घेरोंवाला चक्र बनता है, इसकी तुलना बत्तीस अक्षरोंवाले अनुष्टुप छद से होती है। यह बाहर से माया से घिरा है। वेद इसके अर हैं। छद पत्ते हैं, जिनमें यह सभी ओर घूमता है।
(1)

इस सुदर्शन चक्र की नाभि में एक अक्षरवाले नृसिह के तारक मत्र का न्यास करना चाहिए।

जाता है। इसी प्रकार इससे पूर्व मत्रराज नरसिह अनुष्टुप मंत्र में भी किया गया है। यह मंत्र इस प्रकार बनता है—

'ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तए मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा।'

'इसका ध्यान इस प्रकार करें—यह दक्षिणामूर्ति, चांदी एव स्फटिक की माला के समान स्वच्छ है। इसके हाथ में ज्ञान-मुद्रा तथा अमृत-कलश रूपी विद्या तथा मोतियों की माला है। इसके शरीर मे साप लिपटे हैं, सिर पर अर्धचंद्र है तथा तीन आंखें है। यह प्रशंसनीय दक्षिणामूर्ति विविध वेषो को धारण करती है। (8)

'**न्यास**—न्यास में पहले वेदों के आदि अक्षर अर्थात् 'ॐ' का उच्चारण करें। इस 'ओम' (अ उ म) में 'अ' के स्थान पर अ कहे अर्थात् इसे अ उम कहे। इसके बाद पचवर्ण का उच्चारण करे। ('दक्षिणामूर्ति' कहे)। फिर अतर के बाद अंत मे ॐ कहें। यही नौ अक्षरो का मनुमत्र है। (दक्षिणामूर्तिरतर ॐ)। (9)

'ऐसे आदि भगवान शंकर हमारी भावनाओ को शुद्ध करे जो शुकदेव आदि ऋषियो से घिरे रहते है, जिनका एक हाथ अभयदान की मुद्रा में रहता है, जिनके अन्य दो हाथो मे परशु एव हरिण है, जिनका एक हाथ जानु पर है, सर्पो से लिपटे हैं, जो वट के नीचे बैठे हुए हे, दूज के चद्रमा से जिनकी जटाए शोभा पा रही है, जो दूध के समान गोरे तथा तीन आखोवाले हैं। (10)

'फिर 'ॐ व्लूं नम' कहकर 'ह्रीं' 'ऐं' के वाद 'दक्षिणा' और 'मूर्तए' कहे। फिर 'ज्ञान' 'देहि' कहकर अत मे अग्नि पत्नी का नाम लें (स्वाहा कहे) पूरा मंत्र इस प्रकार होगा—'ॐ व्लू नम ह्रीं ऐं दक्षिणामूर्तए ज्ञानं देहि स्वाहा'— यह गोपनीय अठारह अक्षरोंवाला मनुमत्र है। इसका ध्यान इस तरह करें—जो भस्म से सफेद शरीरवाले, चद्र खड धारण किए हुए, ज्ञान मुद्रा तथा अक्षमाला धारण किए हुए है। वीणा, पुस्तक एव योगपट्ट से युक्त हैं। जो व्यास पीठ पर बैठे है और मुनि जिनकी सेवा कर रहे है, जो प्रसन्न है तथा सापो के निवास-स्थान हे, वह दक्षिणामूर्ति सदा हमारी रक्षा करें।(11-13)

'पहले तार (ॐ), परा (ह्रीं) तथा रमा वीज (श्रीं) कहें। फिर 'सावशिवाय' कहें। अव तुभ्य तथा अत मे अग्नि-पत्नी (स्वाहा) कहें। पूरा मत्र ऐसे बनेगा—'ॐ ह्री श्री साव शिवाय तुभ्य स्वाहा'। यह वारह अक्षर मनुमत्र है। इसमे इस प्रकार ध्यान करें—हाथों में वीणा, पुस्तक एव अक्षमाला धारण करनेवाले, नीले मेघ के समान शोभावाले, श्रेष्ठ सर्पों के निवास, शुकदेव आदि मुनियो द्वारा सेवित और वरगद के नीचे बैठे हुए शिव की स्तुति करता हू। (14-15)

इस मत्र के ऋषि, छद तथा देवता क्रमश. विष्णु, अनुष्टुप तथा दक्षिणा हैं। मत्र से इसका न्यास करना चाहिए। इसमें 'ॐ नमो भगवते तुभ्यं' के वाद क्रमश 'वट' 'मूल' तथा 'वासिने' कहे, फिर क्रमश 'वागीशाय', 'महाज्ञान', 'दायिने', 'मायिने' और 'नम' रखें। पूर्ण मत्र इस प्रकार होगा—'ॐ नमो भगवते तुभ्य वटमूलवासिने वागीशाय महाज्ञानदायिने मायिने नम।' यह सभी मत्रों मे श्रेष्ठ मत्रों का राजा अनुष्टुप मत्र है। इसका ध्यान इस प्रकार करें—मुद्रा, पुस्तक, अग्नि तथा नागों से सुशोभित हाथोंवाले, प्रसन्न मुख, मुक्ता हार के भूषणवाले, चद्रमा की चमकती कला के

मिट्टी, लकड़ी आदि का जैसा भी पात्र हो ग्रहण करे। तिनकों या छाल आदि की कथा (गुदडी) धारण करे। दो ऋतुओं के मिलने पर केवल सिर का मुंडन कराए। वर्षा के अलावा आठ महीनो मे घूमते रहे। मदिर, वृक्ष के तले या गुफा मे रहे। अपने आवरण को प्रकट न होने दे, आग बुझी लकडी के समान शात रहे। किसी को देखकर विचलित न हो। अपने को ब्रह्म रूप मे देख लेने पर कोई भी इच्छा शेष नही रहती। धैर्यवान ब्रह्मवेत्ता इसी ब्रह्म मे बुद्धि को लगाए। अधिक बात न करे। इस प्रकार ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नही है, इस निश्चय से वैराग्य को समझकर रहे। इस प्रकार सन्यास लेने पर जो ऐसा नही करता उसे वीर-हत्या, ब्रह्म-हत्या आदि महापाप लगते है। इस निष्ठा को अपनाकर त्यागने से व्यक्ति चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि पापो के समान पापी बनता है तथा सभी लोको से च्युत होता है। सन्यास के चिह्नों को छोडने से भी अनेक विपत्तिया आती है तथा अनत काल तक सद्गति नही होती। सभी आश्रयो का परित्याग कर धैर्यवान लबे समय तक मोक्ष आश्रम मे रहे। यदि यह आश्रम भ्रष्ट होता है, तो उसके लिए कही स्थान नही होता। (21-30)

सन्यासी बनकर जो उसके विपरीत आचरण करता है, वेद उसे पापी कहते है। जो सनातन धर्म वैष्णवी निष्ठा का पालन करता है, वह इंद्रियजयी, पुण्यवान, लोको का ज्ञाता, वेदात-ब्रह्म तथा सब कुछ जाननेवाला बनकर ब्रह्म को प्राप्त करता है। वह पितरों, भाइयो तथा सबधियो का तारण करता है। जिस वश मे ऐसे सन्यासी जन्म लेते है, उस वश की तीस पहले की, तीस बाद की तथा तीस इसके भी बाद की पीढियां तर जाती है। प्राणों के कठ मे आते समय भी सन्यास स्वीकार करने से पितरों की मुक्ति होती है, यह वेदो का अनुशासन (आज्ञा) है। इस सनातन वैष्णवी निष्ठा का सही पालन किए बिना उपदेश न दे। जो वेदात का ज्ञाता न हो, आत्मज्ञानी न हो, अविनीत हो, जिज्ञासु न हो तथा शुद्धचित्त न हो, उसे भी इसका उपदेश न दे। इस विषय में चार ऋचाए है। ब्राह्मण के पास आकर विद्या ने कहा, 'मै तुम्हारी निधि हू। मुझे दूसरों के दोष देखनेवाले को, ईर्ष्यालु, धूर्त, मूर्ख आदि को न दो। मेरी रक्षा करो। जो शुद्ध निरभिमान मेधावी ब्रह्मचारी हो उसी को यह वैष्णवी विद्या देनी चाहिए। पढाए जाने पर भी जो विप्र मन, वाणी एवं कर्म से गुरु का आदर नही करते तथा गुरु को भोजन नही कराते, उसके यहा योगी भी भोजन ग्रहण नही करते है। गुरु ही परम ब्रह्म तथा परम गति है। एकाक्षर ब्रह्म का उपदेश देनेवाले गुरु का जो अनादर करते है, उसका ज्ञान, तपस्या आदि कच्चे घड़े से जल के समान लुप्त हो जाते है। जिसकी देवताओं तथा गुरु में समान रूप से परम भक्ति होती है वही ब्रह्मवेत्ता परम पद को प्राप्त करता है। यह वेदों की शिक्षा है। (31-40)

□

मुकुटवाले, अज्ञान के नाशक, आदि पुरुष, अवर्णनीय, भवानी के पति, बरगद के नीचे रहनेवाले तथा परम गुरु रूपी दक्षिणामूर्ति का मै अपनी इच्छा को पूरा करने के लिए ध्यान करता हू। (16-19)

'शरीर के रहने पर ही 'सोऽहम्' के ज्ञान से जिस ब्रह्म का सकेत होता है, यही ब्रह्म निष्ठा है। यहा बताए गए मत्रो को इस ब्रह्म से अलग न मानकर इनका बार-बार उच्चारण करना ही शिव-तत्त्व की प्राप्ति का साधन है। चित्त को उससे एकरूप कर देना ही परिकर (उपकरण) है। इसके लिए की जानेवाली शरीर की चेष्टाए ही बलि है। स्थूल, सूक्ष्म एव कारण तीन धाम ही इसके लिए समय हे। हृदय का सहस्र दल कमल ही इसका स्थान है। (20-25)

श्रद्धा सहित उन ऋषियो ने पुन. पूछा, 'इसका उदय कैसे होता है ? इसका स्वरूप क्या है ? तथा इसका उपासक कौन है ? महर्षि मार्कडेय बोले, 'वैराग्यरूपी तेल से भरे हुए, ज्ञानरूपी पात्र मे भक्ति की बत्ती जलाकर इसे अपने आत्मा मे देखे। तब अज्ञानरूपी अधकार के नष्ट होने पर इसका उदय स्वय ही हो जाता है। वैराग्य को अरणी तथा ज्ञान को घिसनेवाली दूसरी अरणी बनाए। इन दोनो के घर्षण से मोह के नष्ट होने पर गोपनीय रहस्य स्वयं ही प्रकट हो जाता है। घने मोह के अधकार को नष्ट करने के लिए गूढ अर्थ का चितन करें तथा इससे ढके हुए विवेक रूपी सूर्य को प्रकट करे। अज्ञान के बंधन से बधे हुए इस भयभीत जीव को ज्ञान से ही उसके दर्शन होते है तथा ज्ञान पर वह अपने वास्तविक रूप मे स्थित हो जाता है। यह ब्रह्म का दर्शन करानेवाली बुद्धि ही दक्षिणा है। यही ब्रह्म का दर्शन कराने का मार्ग, अर्थात् मुख भी है। अत शिव दक्षिणामुख भी कहलाते है। सृष्टि से पूर्ण इस मूर्ति की उपासना से ही ब्रह्मा ने सृष्टि करने की शक्ति प्राप्त की। इसी से उनकी इच्छा पूर्ण हुई, अत वह इसी के उपासक है। जो इस परम रहस्य शिव-तत्त्व विद्या का अध्ययन करता है, वह सभी पापो से मुक्त हो जाता है। जो इसे जानता है, वह कैवल्य प्राप्त करता है।' (26-33)

□

रहनेवाले सूर्य की किरणो मे रहनेवाले, जल मे रहनेवाले, तथा वनस्पतियो मे रहनेवाले सर्पो को नमस्कार है । जो सर्प राक्षसो को बाणो के रूप मे रहते है, उन्हे भी नमस्कार है ।

तृतीय खंड

जो भगवान् शिव अपने भक्तो के लिए विष पीकर नील कठवाले हो जाते है । जो विश्व के कल्याण के लिए हरिरूप मे अवतार लेते है तथा अपने भक्तो के दु खो को दूर करने के लिए अरुधति रूप धारण करते है, उम कल्माष पुच्छ (काली पूछवाले) भगवान् केदार नाथ के लिए हे औषधि, शाति देनेवाली बनो ।

वह भगवान शिव पिगल रग के है । वह नीलकठ ही गभ्रू एव कर्ण है । वही वायु रूप मे सर्वत्र व्याप्त है । उसी भयकर नेत्रोवाले शिव द्वारा सभी प्राणियो एवं देवताओ का भी सहार हुआ । अत ससार के प्रत्येक कार्य मे उन्ही को देखना चाहिए ।

इस शिव से ही समस्त प्राणियो की उत्पत्ति हुई । हम उसी की स्तुति करते है । उस भव को नमस्कार है । उस कामदेव के शत्रु को नमस्कार है । इस विश्वरूपी सभा को बनानेवाले शिव को नमस्कार है । उमी से अश्व, खच्चर, गदर्भ आदि की उत्पत्ति हुई । उस नीले मुकुट धारण करनेवाले को नमस्कार है ।

□

जाता है। इसी प्रकार इससे पूर्व मंत्रराज नरसिंह अनुष्टुप मंत्र मे भी किया गया है। यह मत्र इस प्रकार बनता है—

'ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तए मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा।'

'इसका ध्यान इस प्रकार करें—यह दक्षिणामूर्ति, चादी एवं स्फटिक की माला के समान स्वच्छ है। इसके हाथ में ज्ञान-मुद्रा तथा अमृत-कलश रूपी विद्या तथा मोतियों की माला है। इसके शरीर मे साप लिपटे है, सिर पर अर्धचद्र है तथा तीन आंखें है। यह प्रशसनीय दक्षिणामूर्ति विविध वेषो को धारण करती है। (8)

'न्यास—न्यास में पहले वेदों के आदि अक्षर अर्थात् 'ॐ' का उच्चारण करे। इस 'ओम' (अ उ म्) में 'अ' के स्थान पर अ· कहें अर्थात् इसे अ उम कहे। इसके बाद पचवर्ण का उच्चारण करे। ('दक्षिणामूर्ति' कहे)। फिर अतर के बाद अंत मे ॐ कहें। यही नौ अक्षरो का मनुमत्र है। (दक्षिणामूर्तिरतर ॐ) । (9)

'ऐसे आदि भगवान शकर हमारी भावनाओ को शुद्ध करे जो शुकदेव आदि ऋषियों मे घिरे रहते हैं, जिनका एक हाथ अभयदान की मुद्रा मे रहता है, जिनके अन्य दो हाथों मे परशु एव हरिण है, जिनका एक हाथ जानु पर है, सर्पो से लिपटे हैं, जो वट के नीचे बैठे हुए है, दूज के चद्रमा मे जिनकी जटाए शोभा पा रही है, जो दूध के समान गोरे तथा तीन आखोंवाले हैं। (10)

'फिर 'ॐ ब्लूं नम' कहकर 'ह्री' 'ऐं' के बाद 'दक्षिणा' और 'मूर्तए' कहें। फिर 'ज्ञान' 'देहि' कहकर अत में अग्नि पत्नी का नाम लें (स्वाहा कहें) पूरा मंत्र इस प्रकार होगा—'ॐ ब्लू नम ह्री ऐ दक्षिणामूर्तए ज्ञानं देहि स्वाहा'— यह गोपनीय अठारह अक्षरोंवाला मनुमत्र है। इसका ध्यान इस तरह करें—जो भस्म से सफेद शरीरवाले, चद्र खड धारण किए हुए, ज्ञान मुद्रा तथा अक्षमाला धारण किए हुए है। वीणा, पुस्तक एवं योगपट्ट से युक्त हैं। जो व्यास पीठ पर बैठे है और मुनि जिनकी सेवा कर रहे हें, जो प्रसन्न हैं तथा सापो के निवास-स्थान हैं, वह दक्षिणामूर्ति सदा हमारी रक्षा करें।(11-13)

'पहले तार (ॐ), परा (ह्रीं) तथा रमा बीज (श्री) कहें। फिर 'साबशिवाय' कहें। अब तुभ्य तथा अत में अग्नि-पत्नी (स्वाहा) कहें। पूरा मत्र ऐसे बनेगा—'ॐ ह्री श्री साब शिवाय तुभ्य स्वाहा'। यह बारह अक्षर मनुमंत्र है। इसमें इस प्रकार ध्यान करें—हाथो में वीणा, पुस्तक एव अक्षमाला धारण करनेवाले, नीले मेघ के समान शोभावाले, श्रेष्ठ सर्पों के निवास, शुकदेव आदि मुनियों द्वारा सेवित और बरगद के नीचे बैठे हुए शिव की स्तुति करता हू। (14-15)

इस मत्र के ऋषि, छद तथा देवता क्रमश विष्णु, अनुष्टुप तथा दक्षिणा हैं। मत्र से इसका न्यास करना चाहिए। इसमें 'ॐ नमो भगवते तुभ्य' के बाद क्रमश 'वट' 'मूल' तथा 'वासिने' कहे, फिर क्रमश 'वागीशाय', 'महाज्ञान', 'दायिने', 'मायिने' और 'नम.' रखें। पूर्ण मत्र इस प्रकार होगा—'ॐ नमो भगवते तुभ्य वटमूलवासिने वागीशाय महाज्ञानदायिने मायिने नम ।' यह सभी मत्रों में श्रेष्ठ मत्रों का राजा अनुष्टुप मत्र है। इसका ध्यान इस प्रकार करें—मुद्रा, पुस्तक, अग्नि तथा नागों से सुशोभित हाथोंवाले, प्रसन्न मुख, मुक्ता हार के भूषणवाले, चद्रमा की चमकती कला के

90. रुद्र हृदयोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शाति: शाति. शाति· ।

'परमात्मा हम (गुरु-शिष्य) की साथ ही रक्षा करे। हम साथ-साथ उपभोग एवं वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम परस्पर विद्वेष न करें। तीनो प्रकार के दु:ख शात हो।'

रुद्र हृदय, कुडली, भस्म, रुद्राक्ष तथा गणति, ये पाच उपनिषद् प्रणव के मूल तत्त्व को कहनेवाले हैं। इन्हें महावाक्य तथा ब्रह्म-ज्ञान के अग्निहोत्र मंत्र भी कहा जाता है। एक बार अपने पिता महर्षि व्यास के चरणो में प्रणाम करके श्री शुकदेव ने निवेदन किया कि समस्त वेदों में किस ईश्वर की महिमा कही गई है ? सभी देवताओं में तथा सभी ओर कौन व्याप्त है ? तथा किस ईश्वर की भक्ति से सभी देवता उन पर (शुकदेव पर) प्रसन्न हो जाएगे ? उनके इन शब्दों को सुनकर महर्षि व्यास ने वताया, 'सभी देवताओं का आत्मा रुद्र है तथा सभी देवता शिव के ही अश हैं। उनकी दाहिनी ओर सूर्य, व्रह्मा तथा तीनों अग्निया हैं। बायी ओर उमा, विष्णु तथा चद्रमा है। ये तीनो एक ही हैं; उमा विष्णु हैं और विष्णु स्वयं चद्रमा हैं। जो गोविद को नमस्कार करते हैं, जो भक्तिपूर्वक विष्णु की पूजा करते हैं, वे शिव की पूजा करते है। दोनों में कोई अंतर नही है। जो शिव से द्वेष करते हैं, वे विष्णु से भी द्वेष ही करते हैं तथा जो रुद्र को नही जानते, वे केशव को भी नहीं जानते। रुद्र ही वीज को उत्पन्न करनेवाले हैं तथा विष्णु वीज योनि हैं। रुद्र स्वय व्रह्मा ही हैं और व्रह्मा ही अग्नि हैं। रुद्र मे व्रह्मा और विष्णु दोनों ही हैं और जगत अग्नि एव चद्रमय है। समस्त सृष्टि में सभी पुलिग (नर) शिव ही है तथा सभी स्त्रीलिग (मादा) उमा ही हैं। अत सभी चराचर सृष्टि उमा और रुद्र का ही रूप है। व्यक्त जगत (दिखाई देनेवाला) उमा का रूप है तथा अव्यक्त शिव का रूप है। उमा एव शकर का मिला-जुला रूप विष्णु कहा जाता है। अत. इस रूप को नमस्कार करने से प्राणी परमात्मा को प्राप्त करते है। (1-10)

आत्मा (विष्णु), परमात्मा (शिव) तथा अतरात्मा (व्रह्मा), इन तीनों आत्माओं को जानकर परमात्मा का ही आश्रय लेना चाहिए। सभी भूतों (प्राणियों) का सनातन आत्मा विष्णु ही है। ये तीनों एक वृक्ष के समान हैं, जिसकी शाखाए पृथ्वी तक फैली हुई हैं। इसका अगला, मध्य का तथा मूल भाग क्रमश विष्णु, व्रह्मा तथा महेश ही हैं। इसमें विष्णु कार्य रूप, व्रह्मा क्रिया रूप और महेश कारण रूप हैं। एक ही मूर्ति को इस विश्व के कार्य के लिए रुद्र ने तीन रूपोंवाली बनाया है। ससार विष्णु है, धर्म रुद्र है तथा ज्ञान व्रह्मा है। जो विद्वान सदा रुद्र नाम को जपता रहता है, वह सभी देवताओं को जपता है, अत. वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। रुद्र नर हैं और उमा नारी हैं। रुद्र व्रह्मा हैं और उमा वाणी (सरस्वती) हैं, रुद्र विष्णु हैं और उमा लक्ष्मी हैं। अत उन रुद्र को तथा उमा

मुकुटवाले, अज्ञान के नाशक, आदि पुरुष, अवर्णनीय, भवानी के पति, बरगद के नीचे रहनेवाले तथा परम गुरु रूपी दक्षिणामूर्ति का मै अपनी इच्छा को पूरा करने के लिए ध्यान करता हू । (16-19)

'शरीर के रहने पर ही 'सोऽहम्' के ज्ञान से जिस ब्रह्म का सकेत होता है, यही ब्रह्म निष्ठा है । यहा बताए गए मंत्रो को इस ब्रह्म से अलग न मानकर इनका बार-बार उच्चारण करना ही शिव-तत्त्व की प्राप्ति का साधन है । चित्त को उससे एकरूप कर देना ही परिकर (उपकरण) है । इसके लिए की जानेवाली शरीर की चेष्टाए ही बलि है । स्थूल, सूक्ष्म एव कारण तीन धाम ही इसके लिए समय हैं । हृदय का सहस्र दल कमल ही इसका स्थान है । (20-25)

श्रद्धा सहित उन ऋषियो ने पुन. पूछा, 'इसका उदय कैसे होता है ? इसका स्वरूप क्या है ? तथा इसका उपासक कौन है ? महर्षि मार्कंडेय बोले, 'वैराग्यरूपी तेल से भरे हुए, ज्ञानरूपी पात्र मे भक्ति की बत्ती जलाकर इसे अपने आत्मा मे देखे । तब अज्ञानरूपी अधकार के नष्ट होने पर इसका उदय स्वय ही हो जाता है । वैराग्य को अरणी तथा ज्ञान को घिसनेवाली दूसरी अरणी बनाए । इन दोनो के घर्षण से मोह के नष्ट होने पर गोपनीय रहस्य स्वय ही प्रकट हो जाता है । घने मोह के अंधकार को नष्ट करने के लिए गूढ अर्थ का चितन करें तथा इससे ढके हुए विवेक रूपी सूर्य को प्रकट करे । अज्ञान के बंधन से बधे हुए इस भयभीत जीव को ज्ञान से ही उसके दर्शन होते है तथा ज्ञान पर वह अपने वास्तविक रूप मे स्थित हो जाता है । यह ब्रह्म का दर्शन करानेवाली बुद्धि ही दक्षिणा है । यही ब्रह्म का दर्शन कराने का मार्ग, अर्थात् मुख भी है । अत. शिव दक्षिणामुख भी कहलाते है । सृष्टि से पूर्ण इस मूर्ति की उपासना से ही ब्रह्मा ने सृष्टि करने की शक्ति प्राप्त की । इसी से उनकी इच्छा पूर्ण हुई, अत वह इसी के उपासक है । जो इस परम रहस्य शिव-तत्त्व विद्या का अध्ययन करता है, वह सभी पापो से मुक्त हो जाता है । जो इसे जानता है, वह कैवल्य प्राप्त करता है ।' (26-33)

□

को बार-बार नमस्कार है। रुद्र सूर्य है और उमा छाया है। रुद्र चद्रमा है और उमा तारा है। रुद्र दिन है एव उमा रात्रि है। रुद्र यज्ञ है और उमा यज्ञ की वेदी है। अत. रुद्र तथा उमा को बार-बार नमन है। रुद्र अग्नि हैं,तो उमा स्वाहा है। रुद्र वेद है,तो उमा शास्त्र है। रुद्र वृक्ष है,तो उमा वल्लरी (लता) है। रुद्र गंध है,तो उमा पुष्प है। अत. इन दोनो को पुन-पुन. हम नमस्कार करते है। रुद्र अर्थ है तथा उमा शब्द है। रुद्र लिग है तथा उमा उसकी पीठ (आधार) है। अत सभी देवताओ के आत्मा रुद्र एव उमा को पृथक्-पृथक् नमस्कार करना चाहिए। मै भी मंत्रो से उमा एवं शिव को नमस्कार करता हू। जहा भी हो इस अर्धनारीश्वर मत्र को जपना चाहिए। जल मे खडे होकर इस मत्र का पाठ करने से ब्रह्महत्या आदि महापापो से भी मुक्ति मिल जाती है। (11-25)

वह सनातन ब्रह्म सभी का आश्रय,एकमात्र तथा सच्चिदानद रूप है। मन और वाणी भी उस तक नही पहुंच सकते। सबका आत्मा रूप होने से उस ब्रह्म के अलावा कोई भी वस्तु नही है। वह किसी से भिन्न नही है,अत उसे जान लेने पर समस्त ज्ञान हो जाता है। परा एव अपरा ये दो विद्याए हैं। ऋग्वेद आदि चारों वेदो,शिक्षा,कल्प,व्याकरण,निरूक्त,छद तथा ज्योतिष (वेदाग) इन सभी मे बौद्धिक ज्ञान है,अत ये अपरा विद्या कहे जाते है। जिस विद्या से आत्मज्ञान होता है,वह परा विद्या है। वही परम अक्षर (जिसका क्षर नाश नही होता) आत्मा है,जो न तो दिखाई देता है न पकड मे आता है। वह गोत्र रूप,हाथ,कान,पाव आदि से रहित है। वह नित्य,विभु,सभी मे व्याप्त,अत्यत सूक्ष्म और अव्यय है। प्राणियो के कारण रूपी इस आत्मा को ज्ञानी लोग अपने ही आत्मा मे देखते हैं। जो सर्वज्ञ,सर्वविद्यामय है तथा ज्ञान ही जिसके लिए तप है,उसी से यह जगत उत्पन्न होता है। जैसे रस्सी को सर्प समझ लिया जाता है,प्राणी वैसे ही इस विश्व को सत्य समझ लेते है। इस अक्षर ब्रह्म को जान लेने पर यह विश्व फिर मिथ्या लगने लगता है तथा इस ज्ञान से ज्ञानी मुक्त हो जाते है। ज्ञान से ही इस मिथ्या ससार का नाश (अज्ञान का नाश) होता है, न कि कर्म से। अत वेदो को जाननेवाले ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण मे जाना चाहिए। गुरु ही आत्मा का ज्ञान करानेवाली पराविद्या को देता है। साक्षात अक्षर ब्रह्म हृदय गुहा मे ही रहता है। तब अज्ञान की महाग्रंथि (गांठ) कट जाती हैं और शिव की प्राप्ति होती है। अत इस अमृत सत्य को मोक्ष की प्राप्ति के लिए अवश्य जानना चाहिए। ब्रह्म रूपी लक्ष्य (निशाना) को बेधने के लिए प्रणव धनुष तथा आत्मा बाण है। पूरी सावधानी से सब कुछ त्यागकर उसी मे तन्मय हो जाने पर ही यह लक्ष्य वेधा जा सकता है। यह लक्ष्य एक स्थान पर नही, अपितु सब जगह रहनेवाला है और बाण भी सर्वगत (सब जगह रहनेवाला) है अत इसे वेधने के लिए साधक को भी वैसा ही होना पडेगा। तभी शिव की प्राप्ति होगी,इसमे कोई सदेह नही है। (26-39)

उस ब्रह्म में चंद्रमा या सूर्य प्रकाश नही करते,वहां वायु और सभी देवताओ की भी पहुच नही है। वह विशुद्ध तथा स्वय प्रकाश रूप ब्रह्म साधक के चितन से उसे प्राप्त हो जाता है। शरीरवृक्ष के समान है,जिसमें जीव और ब्रह्म रूपी पक्षी दोनों ही रहते है। जीव अपने कर्मो से फलों को भोगता है,किंतु ब्रह्म केवल साक्षी के रूप में उसे देखता है। वास्तव मे जीव एव ब्रह्म दोनों एक ही है,किंतु माया के कारण इनमे भेद की कल्पना कर ली गई है। आकाश सब जगह एक ही होता है, किंतु घडे में उसे घड़े का आकाश (आकाश शून्य या खाली जगह ही है) कहा जाता है तथा मठ के

शरभ उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभि. शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाताक्षिर्भिर्यजत्रा।
स्थिरैरगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु.।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा. स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु।

ॐ शाति· शाति शाति ।

'हम कानों से कल्याणमय शब्द सुने और नेत्रो से कल्याणमय दृश्य देखे। स्वस्थ अगो से तुम्हारी स्तुति करे। देवताओं द्वारा दी हुई आयु का उपभोग करे। यशस्वी इद्र, मर्वस्व ज्ञाता पूपा, अमंगलनाशक गरुड तथा बृहस्पति हमारा कल्याण करें। तीनो तापो की शाति हो।'

पिप्पालादि ऋषि ने ब्रह्माजी से पूछा कि 'ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के बीच मे अधिक ध्यान करने योग्य कौन है ?' इस पर ब्रह्माजी ने बताया, 'मेरे शब्दो को ध्यान से सुनो। मैं जिस परमेश्वर के शरीर से उत्पन्न हुआ हू, वह अनंत पुण्यो के फलस्वरूप ही प्राप्त हो सकता है। विष्णु, इद्र आदि भी मोहवश उसे नही जानते। वही वरण करने योग्य है, वही सबका पिता तथा परम ईश्वर है, वही ब्रह्मा को धारण करता है। सभी वेदो का निर्णय करता है तथा वही सभी देवताओ का पिता है। वह मेरा और विष्णु का भी पिता है। वह प्रशसनीय अतकाल मे सभी लोकों का सहार करता है। वही एक सब पर शासन करनेवाला श्रेष्ठ तथा वरिष्ठ है। वही भयकर रूप धारण करनेवाला महेश्वर है, जिसने लोको के हत्यारे नृसिह को मार डाला। जब रुद्र हरि को पैर पकडकर ले जा रहे थे, तो देवताओ ने उनसे प्रार्थना की कि माधव पुरुष विष्णु का वध न करो, आप महान है। उन्होंने अपने नाखूनो से विष्णु को विदीर्ण किया। तब वह चर्म का वस्त्र पहननेवाले रुद्र महावीर एव वीरभद्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। (1-6)

'सभी कार्यो की सिद्धि के लिए एक रुद्र का ही ध्यान करना चाहिए। जो ललाट से उत्पन्न अग्नि से विश्व को भस्म करता है और पुन सृष्टि करके उसका पालन करता है, उस रुद्र को नमस्कार है। जिसने बाए पैर से काल को मार डाला तथा जलते हुए हलाहल विप को पी लिया उस रुद्र को नमस्कार है। जिसके बाए पैर मे विष्णु ने पूजा मे अपनी आख चढा दी और इस पर प्रसन्न होकर जिसने विष्णु को सुदर्शन चक्र दे डाला, उस रुद्र को नमस्कार है। जिसने दक्ष के यज्ञ मे देवताओं के समूह को जीतकर विष्णु को नागपाश से बाध डाला, उस रुद्र को नमस्कार है। जिसने सरलता से त्रिपुर को भस्म कर डाला, सूर्य, चद्रमा और अग्नि जिसकी तीन आखें है, जिसके सामने देवता भी पशुओं के समान आज्ञाकारी हो गए, अत वह पशुपति कहलाए। उस रुद्र को नमस्कार है। जो मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन आदि अवतारो के लिए विष्णु को क्रम देता है, जिसने पीडित किए जाने पर कामदेव को भस्म कर डाला, उस रुद्र को नमस्कार है। इस प्रकार देवताओ द्वारा स्तुति किए जाने पर नीलकठ महादेव ने दैविक, दैहिक तथा भौतिक, इन तीनों कष्टो, मृत्यु, वृद्धावस्था आदि दुखो मे देवताओ को मुक्त कर दिया। वही सभी प्राणियों का आत्मा है। वही भगवान शकर स्वर्ग लोक, प्रजा आदि सबके रक्षक हैं। (7-15)

ऊपर वह मठ का आकाश कहा जाता है, इसी प्रकार परमात्मा शिव और जीव मे भी कल्पना की गई है, जबकि दोनो एक ही है। यदि इन दोनो में भेद होता, तो दोनो का 'चित्' स्वरूप ही नष्ट हो जाता। यह भेद जड माया के कारण हुआ है। इन दोनो की एकता तर्क तथा प्रमाण दोनो से ही सिद्ध है। अत इस एकता का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य शोक एव मोह से मुक्त हो जाता है। तब वह अद्वैत परमानद केवल शिव को प्राप्त करता है। इस समस्त ससार के निवास स्थान चिद् धन ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर मुनि को 'सोऽह'—मै वही ब्रह्म हू, इस तत्त्व का ज्ञान हो जाता है, तब उसके सभी दु खो का अत हो जाता है। शरीर मे स्थित उस ज्योति रूप सबके साक्षी ब्रह्म को दोषरहित लोग ही देखते हैं, माया से घिरे हुए अन्य लोग नही। इस पूर्ण ज्ञान के हो जाने पर जो अपने रूप को जान लेते हैं, वे आकाश के समान पूर्णरूप और सर्वव्यापक हो जाते है, अत उन्हे कही आने-जाने की आवश्यकता नही रहती। उस परम ब्रह्म को जाननेवाला उसी मे स्थित होकर उसी के समान बन जाता है।

□

'विष्णु भी जिनके चरण कमलो को प्राप्त करने के लिए स्तुति करते है, वह भगवान महादेव मन एव वाणी से अगोचर है। ऐसे भगवान शकर नमस्कार करने पर विष्णु पर प्रसन्न हुए। जिसे प्राप्त न करके मन वाणी के साथ लौट आता है, उस आनदस्वरूप ब्रह्म को जाननेवाला विद्वान भयभीत नही होता। वह अणु से भी छोटा तथा महान हैं और प्राणियो की हृदय गुहा मे रहता है। उस साक्षी ब्रह्म को ईश्वर की कृपा से शोकरहित साधक देखता है। वशिष्ठ, शुकदेव, वामदेव आदि ऋषि तथा ब्रह्मा आदि सभी देवता हृदय मे उनका ध्यान करते है। सनत, सुजात आदि उनके नाम की स्तुति करते है। वह महेश, सत्य, साक्षी, नित्य, आनदस्वरूप तथा निर्विकल्प (जिनके स्थान पर किसी दूसरे को नही रखा जा सकता) है। अचितनीय शक्तिवाले उस भगवान गिरीश की अपनी बुद्धि के अनुसार सभी कल्पना करते है। (16-20)

'उनकी माया का मैं (ब्रह्मा) तथा विष्णु भी पार नही पा सकते। इस दुस्तर माया को उन्ही की कृपा से पार किया जा सकता है। विष्णु सारे जगत के कारण है, वह अपने-मेरे अशो से विश्व का पालन करते है। समय आने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है, अत यह समस्त जगत मिथ्या है। इस सब जगत को ग्रास बनानेवाले महादेव, शूलपाणि, महेश्वर, मृड (प्रशसनीय) रुद्र के लिए नमस्कार है। सृष्टि मे विष्णु सबसे पृथक और महान है। वे समस्त ऐश्वर्यो को प्राप्त करके प्राणियो के आत्मा में रहते हुए विश्व का उपभोग करनेवाले अविनाशी हैं। जिस विष्णु को क्रमश चार, चार दो और पाच आहुतिया दी जाती है, वह मुझ पर प्रसन्न हों। (21-25)

'हवि ब्रह्म है, जिसे ब्रह्मरूपी होता द्वारा ब्रह्मरूपी अग्नि मे ब्रह्म के लिए डाला जाता है। समाधि मे लगे हुए योगी के लिए ब्रह्म ही जानने योग्य है। समाधि भी ब्रह्म कर्म है। जीव ही 'शर' है, जिसमे भगवान हरि सदा प्रकाशित होते है। अत ब्रह्म ही शरभ है। वह साक्षात मोक्ष देनेवाला है। माया के कारण देवता भी मोहित रहते है। उसकी महिमा के विषय मे कोई भी लेशमात्र नही बता सकता। पर से परब्रह्म, परब्रह्म से परमहरि है। ईश्वर सबसे बडा है। उसके समान कोई भी नही है। एक शिव ही सदा रहनेवाला है, अन्य सब झूठ है, अत विष्णु आदि सभी देवताओं को त्यागकर सदाशिव का ही ध्यान करना चाहिए, वही ससार से मुक्ति देनेवाले है। उस महामहारक को नमस्कार है। (26-31)

'इस पैप्पलादि महाशास्त्र का उपदेश किसी को नही देना चाहिए। नास्तिक, अहकारी, निर्दयी, दुष्ट, असत्यवादी आदि को इसे कभी नही देना चाहिए। इसे सच्चरित्र, गुरुभक्त, सुशील, शात, दान सरल लोगो को देना चाहिए। शिवभक्त, ब्रह्मकर्म मे लगे हुए, उपकार माननेवाले लोग इसको प्राप्त करने के अधिकारी है। इसे देने योग्य पात्र न मिले, तो इसे गोपनीय रखना चाहिए। इस पैप्पालादि महाशास्त्र का अध्ययन करनेवाला तथा दूसरो को सुनानेवाला जन्म-मरण चक्र से मुक्त हो जाता है। इसका ज्ञाता अमृतत्व प्राप्त करता है। वह गर्भवास से मुक्त हो जाता है। सुरापान, सोने की चोरी, ब्रह्महत्या एव गुरुपत्नी-गमन, इन पाच महापापो से शुद्ध हो जाता है। उसे सभी वेदो के अध्ययन का फल मिलता है। वह सभी पापो से मुक्त हो जाता है। इन सभी पापो एव उत्पातो से मुक्त होकर वह भगवान शिव की समीपता प्राप्त करता है। वह फिर इस ससार मे जन्म लेकर कभी लौटकर नही आता।

☐

91. गरुड़ोपनिषद्

शांतिपाठ ·

ॐ भद्र कर्णेभि शृणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षभिर्यजत्रा
स्थिरैरगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति न बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शाति शाति शाति ।

'हम कानो से कल्याणमय शब्द सुने और नेत्रो से कल्याणमय दृश्य देखें। स्वस्थ अगो से तुम्हारी स्तुति करे। देवताओ द्वारा दी हुई आयु का उपभोग करे। यशस्वी इद्र, सर्वस्व ज्ञाता पूषा, अमगलनाशक गरुड तथा बृहस्पति हमारा कल्याण करे। तीनों तापो की शाति हो।'

गरुड विद्या को बताता हू। इस विद्या को ब्रह्मा ने नारद को, नारद ने वृहत्सेन को, वृहत्सेन ने इद्र को, इद्र ने भरद्वाज को तथा भरद्वाज ने जीवत्काम शिष्यो को बताया। इस श्री महागरुड ब्रह्मविद्या के ऋषि ब्रह्मा, छद गायत्री तथा भगवान् गरुड देवता है। श्री गरुड की प्रसन्नता तथा समस्त विषो के नाश के लिए जप इसका विनियोग है। यह समस्त उपनिषद् सर्प आदि के विष को दूर करने के लिए की जानेवाली सिद्धि है। अत यहा इसकी सिद्धि के लिए किए जानेवाले अनुष्ठान का परिचय दिया जा रहा है।

ॐ नम (अगूठो मे), श्री गरुडाय (तर्जनी मे), पक्षीद्राय (मध्यमा मे), श्री विष्णुवल्लभाय (अनामिका मे), त्रैलोक्यप्रपूजिताय (कनिष्ठिका में) तथा उग्रभयकरकालानलरूपाय (करतल पृष्ठ मे) इस प्रकार इस मत्र का अगन्यास एवं हृदयादि न्यास करना चाहिए। इसके पश्चात गरुड का ध्यान किया जाता है। 'स्वस्तिको दक्षिण पाद' इत्यादि आठ मत्रो का ध्यान मे पाठ किया जाता है। साराश मे इनका अर्थ इस प्रकार है—भगवान् गरुड का दाहिना पैर स्वस्ति की मुद्रा मे तथा बाया पैर कुचित है। भगवान् विष्णु को वह अत प्रिय है। अनत वाम कटक, यज्ञसूत्र, वासुकि, तक्षक उनके कटिसूत्र तथा हार कार्कट है। पद्म एव महापद्म उनके कानो मे है। पौड्र एव कालिक उन्हे हवा करते हैं। एक पुत्र आदि उनकी सदा सेवा करते है। उनका कपिल वर्ण तथा आभा सोने के समान है। उनकी भुजाए लबी तथा कधे चौडे है। उन्होंने अनेक आभूषण धारण किए हुए है। वे जाघो तक सोने के रग के, कमर तक आभावाले है। कठ तक उनका रग कुकुम जैसा है। मुख की शोभा सैकडो चद्रो के समान है। नासिका आगे से नीली तथा टेढ़ी है। सुदर कुडल पहने हुए है। मुख दातो से विकराल तथा उज्ज्वल मुकुटवाला है। सारा शरीर कुकुम की लालिमा लिया हुआ तथा मुख सफेद रग का है। हे विष्णु के वाहन, तुम्हे नमस्कार है।

तीनो सध्याओ मे इस प्रकार गरुड का ध्यान करने से समस्त विषों का नाश हो जाता है। इस ध्यान के वाद गरुड मत्रो का उनके पूरे नियमों के साथ अनुष्ठान किया जाता है। जो इस गरुड

विश्वमय ब्राह्मण शिव के पास जाता है। उसे पचाक्षर मंत्र (नम. शिवाय) का अनुभव होता है। ब्राह्मण शिव पूजा में लगा है। शिव भक्ति से विहीन ब्राह्मण, चांडाल या उपचांडाल के समान है। अधम चाडाल भी यदि शिव भक्त है, तो वह उस ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। ब्राह्मण त्रिपुड धारण करनेवाला होता है। शिव भक्ति से ही वह ब्राह्मण कहा जाता है। शिवलिग की पूजा करनेवाले चांडाल के हाथ की विभूति शुद्ध होती है। गृहस्थों को सफेद विभूति धारण करनी चाहिए। तपस्वी सभी प्रकार की विभूति धारण कर सकते है। शिव भक्ति से युक्त विभूति देवता भी धारण करते हैं।

अग्नि, वायु, भूमि, जल और आकाश सब भस्म के रूप मे हैं। इस रहस्य को समझकर इसे धारण करना चाहिए। वह ईश्वर विश्व (चारों ओर) आंखोंवाला, विश्व मुख, विश्व हस्त (चारो ओर हाथोंवाला) तथा विश्व पाद (चारो ओर पैरोंवाला) है। इस समस्त ब्रह्माड एव पृथ्वी को उत्पन्न करने वाला वह ईश्वर अपने हाथो से इसे झुका देता है। अत प्राण ही शिव है। जटा एव भस्म धारण करने पर भी वह प्राणलिग शिव श्रेष्ठ है। जंगम (चलनेवाले प्राणी) ही शिव तथा शिव ही जगम है। प्राणलिंगियों के पूज्य तपस्वियों में श्रेष्ठ शिव का भक्त है। चाडाल प्राणलिगी है, अत वह श्रेष्ठ है। इसे जाननेवाला शिव ही है। वह रुद्र या शिव कोई अन्य नही, प्राणलिगी ही है।

यह आत्मा परम अद्वैत शिव ही है। यही शिव गुरु तथा गुरुओं का भी गुरु है। यह समस्त विश्व, विश्व मंत्र समझकर ही धारण करना चाहिए। यह जगत दैव (प्रारब्ध) के अधीन है। दैव मत्रों को फैलाता है। अत यह दैव ही मेरा गुरु है। गुरु द्वारा दिया गया यह अन्न परम ब्रह्म है। ब्रह्म स्वय की अनुभूति द्वारा ही जाना जाता है। भगवान शिव गुरु हैं। गुरु शिव ही लिंग (ब्रह्म के सूचक चिह्न) हैं। दोनों के एक रूप मे होने से तथा प्राण रूप होने से शिव ही गुरु हैं। जहा गुरु हैं, वहा शिव है। शिव गुरुरूपी महान ईश्वर है। भ्रमर कीट के कार्य के समान, निरंतर शिव की पूजा में लगे हुए गुरु के समान पूजा करने से मुक्त होकर शिव के समान हो जाते हैं। भ्रमर कीट कार्य-भृगी नामक कीडा अन्य कीड़ों को पकडकर अपने घर में ले जाता है, अत. पकडकर लाया हुआ कीडा भय मे भृगी को देखता रहता है। धीरे-धीरे उसे देखते रहने से उसका भय दूर हो जाता है। शिवलिग को जल चढाने से सारे पाप धुल जाते हैं। उनको सतुष्ट रखना शिव को संतुष्ट रखना है। उनके साथ रहना भी पवित्रता देता है। उनका अनादर शिव का अनादर है। अत. परम आनद के घर शिव के पास जाना चाहिए। अत इस परम पावन गुरु रूप शिव की शरण लें।

□

महाविद्या का अमावस्या में अध्ययन करता है या इसे सुनता है,उसे जीवनपर्यत साप नही डसते। आठ ब्राह्मणो को इस मत्र की दीक्षा देनेवाला एक तिनके का स्पर्श कराकर ही सांप के विष को उतार देता है। सौ ब्राह्मणों को दीक्षा देनेवाले व्यक्ति के देखने से ही विष दूर हो जाता है तथा एक हजार ब्राह्मणों को इसकी दीक्षा देनेवाला मनुष्य मन से स्मरण करके ही दूर रहता हुआ भी विष के प्रभाव को नष्ट कर देता है।

□

88. कालाग्नि रुद्रोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शाति शाति शाति

इस कालाग्नि रुद्र उपनिषद के ऋषि, छंद और देवता क्रमश. संवर्तक अग्नि, अनुष्टुप, कालाग्नि रुद्र है। श्री कालाग्नि रुद्र की प्रसन्नता के लिए इसका विनियोग किया जाता है। कालाग्नि रुद्र से सनत्कुमार ने पूछा कि त्रिपुड की विधि एव तत्त्व क्या है ? इसमे क्या पदार्थ होता है ? कितना स्थान होता है ? कितना प्रमाण तथा कितनी रेखाए है ? इसके मत्र, देवता, शक्ति, कर्ता तथा फल कौन और क्या है ? इस पर भगवान कालाग्नि रुद्र ने बताया, 'अग्निहोत्र की भस्म ही त्रिपुंड का पदार्थ है। इसे 'सद्योजात' आदि पाच मत्रों से ग्रहण करना चाहिए। इसके बाद 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मत्र से इसे अभिमंत्रित करे फिर 'मानस्तोक' इस मत्र से अगुलियो मे ले और 'मा नो महान' इस मत्र से जल लेकर मिलाए 'त्रयायुष जमदग्ने' इस मत्र से इसे सिर, ललाट तथा वक्ष (सीने मे) मे लगाए। 'त्रयायुष' तथा त्रयंबक मंत्र से माथे से तीन रेखाएं लगाना ही शाभव व्रत कहा जाता है। इसका सभी वेद के जाननेवालों ने उल्लेख किया है। अत मोक्ष के इच्छुक पुनर्जन्म से छुटकारा पाने के लिए इसे धारण करे। (1-3)

फिर सनत्कुमार ने इसका प्रमाण कितना होना चाहिए, इस विषय मे पूछा तब कालाग्नि रुद्र ने बताया, 'त्रिपुड की तीन रेखाओं में प्रथम रेखा गार्हपत्य अग्नि, रजोगुण, ओम का 'अ' भूलोक, स्वात्मा, क्रियाशक्ति, ऋग्वेद, प्रात सवन तथा महादेवी का रूप है। दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि, ओम का 'उ' सत्त्वगुण, अतरात्मा, इच्छाशक्ति, माध्यदिन सवन, यजुर्वेद तथा सदाशिव का रूप है। तीसरी रेखा आह्वनीय अग्नि, 'म', तमोगुण, परमात्मा, ज्ञानशक्ति, सामवेद तृतीय सवन तथा महादेव रूप है। इस प्रकार कोई भी ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी भस्म धारण कर सकता है। ऐसा करने वाला सभी महापापो से छूट जाता है। वह तीर्थ स्नान का फल प्राप्त करता है। वह सभी वेदों तथा देवताओ का ज्ञाता हो जाता है। सभी भोगो को भोगने के बाद उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है। उनका फिर जन्म नही होता।' ऐसा कालाग्नि रुद्र ने कहा है। इसका अध्ययन करनेवाला उसी के समान बन जाता है। (4-9)

☐

92. लांगूलोपनिषद्

इस हनुमान साधना के घोर मूल मंत्र के ऋषि ईश्वर है। इसका छद अनुष्टुप है तथा श्रीराम एवं लक्ष्मण इसके देवता है। 'सो' बीज है, 'अंजनासूनु' शक्ति है, वायुपुत्र कीलक है तथा श्री हनुमान की प्रसन्नता तथा भू, भुव:, स्व, लोको मे आसीन तत्त्वपद के शोधन के लिए इसका विनियोग किया जाता है। 'ॐ भू नम' 'ॐ भुव नम', 'ॐ स्व. नम', 'ॐ मह नम:', 'ॐ जन नम.' तथा 'ॐ तप: नम', से करन्यास आदि किया जाता है। इसके पश्चात हनुमान का ध्यान किया जाता है, जो इस प्रकार है—वह भीमरूप हनुमान वज्र जैसे शरीरवाले है, उनकी आखे बडी-बड़ी है, उनके कानो मे सोने के कुडल है, जो कानो के नीचे तक लटके है। वह दु खी एव विवश प्राणियो के रक्षक है। समुद्र लघन के समय उनकी उद्यत पूछ समुद्र को चचल कर रही है। बदरो से घिरे हुए वह भगवान् राम का ध्यान करते हुए प्रसन्न एव शक्ति के सार लग रहे है।

इस मानसिक पूजा के पश्चात निम्नलिखित मत्रो से हनुमान की पूजा करके आहुतिया दी जाती है।

(1) ॐ नमो भगवते दावानल ह्री हू हु फट् घे घे स्वाहा।

(2) ॐ नमो भगवते चडप्रताप हनुमते ह्रा ह्री हू हुं फट, घे घे स्वाहा।

(3) ॐ नमो भगवते चितामणि हनुमते ल

(4) ॐ ह्री श्री क्ली ग्ला ग्ली ग्लू ॐ नमो भगवते पाताल गरुड

(5) ॐ नमो भगवते कालाग्नि रौद्र हनुमते

(6) ॐ श्रा श्री श्रू श्र श्रौ श्र: ॐ नमो भगवते भद्राजनिक रुद्र वेद सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा।

यह ज्ञान श्री रामचद्र ने श्री महादेव को दिया। वीरभद्र ने महादेव से इसे प्राप्त किया। इसे प्रात:कालीन संध्या, दिन की संध्या तथा सायकाल की सध्या, इन तीनों सध्याओ में पढने से व्यक्ति की सभी इच्छाएं पूर्ण होती है।

(यह उपनिषद् भी एक प्रकार से मत्रसिद्धि का अग है। मत्र को सिद्ध करने की दृष्टि से ही इसका महत्त्व है।)

89. नील रुद्रोपनिषद

प्रथम खंड

हे नीलकठ ! मैंने स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरते हुए आपको देखा। मैने आपको उग्र रूप मे मोरपंख का मुकुट पहनकर पृथ्वी मे उतरकर यही रहते हुए दुष्टो का सहार करते हुए देखा। इन भगवान का कठ नीला है। इनका वर्ण विशेप प्रकार से लालिमा लिया हुआ है। यही जल के रूप मे सभी औषधियो मे व्याप्त है तथा रोग रूपी पापो को नष्ट करते हे। यह प्राणियो के प्राण, सभी अमगलों को दूर करने तथा इच्छाओ को पूर्ण करने के लिए आपके पास आए।

हे समस्त विश्व के भावनास्वरूप ! ससार के क्रोध रूप ! तुम्हे हमारा नमस्कार है। तुम्हारी दोनो भुजाओं मे धारण किए हुए इस धनुष को भी हम नमन करते है। हे हिमालय वासी ! जिस बाण को हाथ मे रखते हुए आप विश्व को धारण करते हुए उसकी रक्षा करते हो, यह बाण केवल दुष्टो का विनाश करने के लिए है। इसे हमारे ऊपर मत छोड़िए। हे गिरीश ! हम अपनी मगलमयी वाणी से आपका यशोगान करते है। इसी से यह जगत समस्त दु खो से मुक्त होकर प्रसन्न रहता है।

हे मृड ! (प्रशसा करने योग्य, शिव) तुम्हारा वाण अत्यत कल्याणकारक है, तुम्हारा धनुष भी शिव (मगलमय) है। आपके धनुष की डोर भी शुभ करनेवाली है। इन सबसे आप हमे जीवन देते हैं। पर्वतो मे रहने पर भी आप सबका कल्याण करते है। आपकी जो घोर तथा पापनाशिनी मूर्ति हे, वह तावे के रग की, लाल, भूरी तथा विशेप लाल अनेक रगो की है। इससे आप चारो ओर प्रकाश कीजिए। हम इस मूर्ति की स्तुति करते हैं।

द्वितीय खंड

हे नीलकंठ शिव ! हमने आपके विलोहित (विशेप लाल) रूप को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरते हुए देखा। आपके उस अवतार को ग्वालो ने देखा फिर इस रूप को सभी प्राणियों ने देखा। इस नीली शिखाधारी कृष्ण अवतार को तथा हजारों नेत्रोंवाले वज्रधारी इद्र, इन दोनों रूपो मे आपको नमस्कार है। आपके शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों को भी नमस्कार है। आपके धनुप को भी नमस्कार है। इन्हे शांत रखिए। इस वाण को हाथ से हटाकर तरकस में रख लीजिए। अपने मगलमय साम्य तथा शिव स्वरूप में दर्शन दीजिए।

आप सैकड़ों वाणो को एक साथ छोड़ते हैं। इन पैने मुखोंवाले बाणों को आप हमारे शुभ के लिए ही धनुप पर चढाएं। शत्रुओं के संहार के पश्चात आपके धनुप की डोर ढीली हो जाए और तीर तरकस में शांत हो जाए। पर्वतों को भी आपके वाण चूर-चूर कर देते है। कृपया इन्हें शांत करें। ये हमारी चारो ओर मे रक्षा करते हैं। इनके द्वारा हमारे रक्षक रूप में है। पृथ्वी मे रहनेवाले सर्पों को नमस्कार। अतरिक्ष में तथा स्वर्ग मे रहनेवाले सर्पों को भी हम नमस्कार करते है। चारो ओर

93. गायत्री रहस्योपनिषद्

कल्याण हो। सिद्धि हो। ब्रह्म को नमस्कार हो। नमस्कर करने के पश्चात ऋषि याज्ञवल्क्य ब्रह्मा से पूछते है कि 'हे ब्रह्मा जी, गायत्री की उत्पत्ति कैसे हुई?' इसके बाद वसिष्ठ भी उनसे यही प्रश्न पूछते है। ब्रह्मा बोले, 'ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति की तथा प्रकृति की व्याख्या करता हू। वह स्वय उत्पन्न हुआ पुरुष कौन है? उसी पुरुष ने अगुली से मंथन किया, इससे जल उत्पन्न हुआ। जल से फेन की उत्पत्ति हुई। फेन से फिर बुलबुले पैदा हुए। इन बुलबुलो से एक अडा पैदा हुआ। अडे से ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्मा से सर्वप्रथम वायु का जन्म हुआ। वायु से अग्नि तथा अग्नि से ओकार हुआ। ओकार से व्याहृति, व्याहृति से गायत्री, गायत्री से सावित्री तथा सावित्री से सरस्वती उत्पन्न हुई। इस सावित्री से चारों वेद, चारो वेदों से सभी लोक तथा सभी लोको से अत मे प्राणियो का जन्म हुआ।

इसके बाद अब गायत्री एव व्याहृतिया है। गायत्री कौन है? व्याहृतिया कौन है? भू क्या है? भुव क्या है? स्व क्या है? इसी प्रकार मह, जन, तप, सत्य, तत्, सवितु, वरेण्य, भर्ग, देवस्य धीमहि, धिय, य, न तथा प्रचोदयात् क्या-क्या है?—'भू' का अर्थ भूलोक (भूमि) है। 'भुव' अंतरिक्ष लोक है। 'स्व' स्वर्गलोक है। 'मह' मह लोक है। 'जन' जन लोक है। 'तप' तप लोक है। 'सत्य' सत्य लोक है। 'तत्' का अर्थ तेजोमय अग्नि देवता है। 'सवितु' सविता अर्थात सूर्य को बताता है। सावित्री मे ही आदित्य है। 'वरेण्य' का अर्थ प्रजापति है। 'भर्ग' का अर्थ जल है। 'देवस्य' यह शब्द इद्र देवता है, जो परम ऐश्वर्यमय होने के कारण रुद्र नाम से प्रसिद्ध है। 'धीमहि' अतरात्मा को बताता है। 'धिय' दूसरे अतरात्मा, अर्थात ब्रह्म को बताता है। 'य' का अर्थ सदाशिव पुरुष है। 'न' का अर्थ हमारा है। 'प्रचोदयात्' का अर्थ प्रेरित करे है। इन सभी लोको का आश्रय, जो धर्म का ज्ञान कराए वह यही गायत्री है (यहा 'ॐ भूर्भुव स्व तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्', इस गायत्री मत्र के प्रत्येक शब्द का अर्थ बताया गया है)।

इस गायत्री का गोत्र कौन-सा है इसमे कितने अक्षर होते है? इसके कितने चरण (छद के पाद या चरण) होते है? कितनी काखे हैं? तथा कितने सिर हैं?—इसके गोत्र का नाम साख्यायन है। चौबीस अक्षरों वाली गायत्री के तीन या चार पाद होते है। फिर से इसके चार पाद, छ कुक्षिया (काखे) और पाच सिर होते है। इसके चरण, कुक्षिया तथा सिरो से क्या तात्पर्य है—ऋग्वेद इसका प्रथम चरण है। सामवेद दूसरा, यजुर्वेद तीसरा, तथा अथर्ववेद चौथा चरण है। अर्थात वेद ही इसके चरण है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व (ऊपर को) तथा अध (नीचे को) ये छ दिशाए इसकी क्रमश प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम तथा छठी कुक्षिया हैं। व्याकरण इसका प्रथम सिर है, शिक्षा द्वितीय, कल्प तृतीय, निरुक्त चतुर्थ तथा ज्योतिष इसका पाचवा सिर है (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष एव छद, ये छ वेदाग होते हैं, जिनमे प्रारभ के पाच वेदाग यहा गायत्री के सिर बताए गए है)। किस दिशा में किस रग की कौन-सी देवी स्थित है? उनका कितना विस्तार है? कौन उनके ऋषि हैं? क्या छद है? कौन शक्तिया है? कौन तत्त्व है? तथा कौन अवयव है?

62. याज्ञवल्क्योपनिषद

शांतिपाठ

ॐ पूर्णमद· पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शाति शांति शाति· ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है । उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई, अत उस पूर्ण ब्रह्म से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दें तो पूर्ण ही शेप रहता है ।

विदेह जनक ने याज्ञवल्क्य के पास जाकर उनसे सन्यास के विपयों मे समझाने का निवेदन किया । तव याज्ञवल्क्य बताने लगे कि 'ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ आश्रम है । इसकी समाप्ति पर वानप्रस्थ होता है । अंत मे सन्यास में प्रवेश होता है, किंतु सीधे ब्रह्मचर्य या गृहस्थ के बाद भी सन्यास लिया जा सकता है । व्रती हो या न हो, स्नातक हो या न हो या अग्नि की सेवा कर चुका हो अथवा न कर चुका हो, जब वैराग्य हो, सन्यास ले सकता है । तव प्राजापत्य यज्ञ किया जाता है । इसे न करने पर आग्नेय यज्ञ किया जाता है । अग्नि ही प्राण है । इससे प्राण पुष्ट होते है । त्रैधातीय यज्ञ भी हो सकता है । सत्त्व, रजस एव तमस ही तीन धातुए है । 'हे अग्नि । तुम्हें प्रकाशित करनेवाला कारण यही है, इसे पहचानकर तेज चलते हुए हमारी सपत्तिया बढाओ । इस मत्र से अग्नि को सूघे । अग्नि मूल कारण योनि है । अत. योनिरूप प्राण मे प्रवेश करो । (1-2)

'गाव से आग लाकर उसे जलाए । अग्नि न मिलने पर जल मे हवन करें । जल ही समस्त देवता है । मै इनको हवि देता हू ।' इस मत्र को पढकर 'स्वाहा' कहे फिर होम निकालकर थोडा खा लें । घी युक्त हवि रोगनाशक है । मोक्ष मत्र को इस प्रकार पढें—'वह ब्रह्म ही उपासना योग्य है' फिर शिखा को उखाडकर तीन बार 'मैंने सन्यास ले लिया है' कहे । सन्यास ग्रहण की यही विधि है ।' याज्ञवल्क्य से जनक ने पुन· पूछा कि 'बिना जनेऊ के ब्राह्मण कैसे रह सकता है ?' इसके समाधान मे याज्ञवल्क्य पुन. बोले, 'इस विधि के बाद सन्यासी वर्णहीन हो जाता है (अत वह ब्राह्मण आदि कुछ भी नही रहता) । वह मुडित सिर, पवित्र, अपरिग्रही तथा भिक्षाजीवी, ब्रह्म को प्राप्त होता है । सन्यास का यही मार्ग है । उसके लिए अग्नि-प्रवेश, जल-प्रवेश, वीरगति अथवा मोक्ष के बाद मृत्यु मार्ग भी ब्रह्म द्वारा बनाया गया है । इस मार्ग को सन्यासी ही जानते है । यह ब्रह्म ज्ञान का मार्ग है । (3-5)

'सन्यासियो मे श्रेष्ठ परमहस है । इनका कोई लिग (पहचान का चिह्न) नही होता, इनका आचरण भी गुप्त होता है । ये पागल न होकर भी पागलों जैसा व्यवहार करते है । सवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु दुर्वासा, ऋभु आदि परमहंस ही थे । ये स्त्रियो से विमुख, त्रिदंडी कमडलु वाले जल के समान पवित्र होते है । 'भू स्वाहा' कहकर शिखा एव जनेऊ का त्याग कर देते है । ये सुख-दु ख से दूर, कुछ भी सचय न करनेवाले, ब्रह्म तत्त्व को जाननेवाले, शुद्ध मन होते है तथा केवल प्राणो को रखने के लिए भिक्षा लेते है । इनके लिए लाभ-हानि समान है और हाथ ही पात्र है । ये कमडलु से

पूर्व की दिशा मे गायत्री है,जिसका वर्ण लाल है। दक्षिण मे सावित्री है,जो सफेद वर्ण की है। पश्चिम दिशा मे सरस्वती है,जो श्याम वर्ण की है तथा पृथ्वी,अतरिक्ष एव स्वर्ग तक इनका विस्तार है। गायत्री,सावित्री तथा सरस्वती क्रमश 'ओम्' की अ,उ तथा म् है और तीनो क्रमश उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वर रूपी है। (वेदों मे किसी भी स्वर को उदात्त,अनुदात्त तथा स्वरित,इन तीन रूपो मे उच्चारित किया जाता है।)

प्रातःकालीन सध्या हस पर बैठनेवाली ब्राह्मी है। मध्याह्न (दोपहर) की संध्या बैल पर बैठनेवाली माहेश्वरी है। सायकालीन सध्या गरुड वाहिनी वैष्णवी है। प्रात की सध्या गायत्री कुमारी, रक्त के वर्ण (लाल) की, ऐसे ही वस्त्रोवाली, लाल चदन से युक्त, लाल मालाए धारण करनेवाली, पाश, अंकुश, अक्षमाला तथा कमडलु आदि से सुशोभित हाथोंवाली, हस पर सवारी करनेवाली, ब्रह्मा देवतावाली तथा ऋग्वेद सहिता एव सूर्य के मार्ग पर चलनेवाली है। यही पृथ्वी पर निवास करती है।

मध्याह्नवाली सध्या युवती के रूपवाली सावित्री है। यह श्वेत (सफेद गोरे) रग की, सफेद वस्त्रो को धारण करनेवाली, सफेद चदन आदि सुगधित पदार्थो से युक्त तथा सफेद मालाए धारण करनेवाली है। यह हाथो मे त्रिशूल एव डमरू धारण करती है और इसका वाहन बैल है। इसके देवता रुद्र तथा वेद यजुर्वेद है। आदित्य पथ (सूर्य का मार्ग) से चलती हुई यह 'भुव' लोक मे स्थित होती है।

सायकालीन सध्यारूपी सरस्वती वृद्धा,काले रग की,काले ही वस्त्र धारण करनेवाली,काले सुगधित पदार्थो वाली तथा काली मालाए धारण करनेवाली है। इनके हाथो मे शख,चक्र तथा गदा है। ये सबको अभय देने की मुद्रा मे रहती है। इनका वाहन गरुड,देवता विष्णु तथा वेद सामवेद है। ये सूर्य के मार्ग से जाती हुई स्वर्गलोक मे स्थित होती है।

यह गायत्री अग्नि-वायु-सूर्यरूप,दक्षिणाग्नि-गार्हपत्य अग्नि-आह्वनीय अग्नि-रूप,ऋक्,यजु, साम रूप, भू-भुव-स्व-व्याहृति रूप,प्रात- मध्याह्न- सायकालीन सध्या रूप तथा सत्त्व-रजस्-तमस् तीनों गुणो का रूप है। यही जागृत,स्वप्न एव सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओ के रूपवाली भी है। वसु, रुद्र तथा आदित्य भी इसी के रूप हैं। यह गायत्री,त्रिष्टुप एव जगती छदों का रूप भी है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शकर रूप भी है। यही इच्छा-शक्ति,ज्ञान-शक्ति एव क्रिया-शक्ति का रूप भी है। यही स्वराट् विराट् एवं ब्रह्मरूप भी है।

गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं,इसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। अब इसका पहले से चौबीसवें तक कौन-सा अक्षर कौन-से देवता का रूप है यहां यही बताया गया है। इसके पहले अक्षर से चौबीसवे अक्षर तक प्रत्येक अक्षर के देवता क्रमश इस प्रकार है—अग्नि,प्रजापति,चद्रमा, ईशान, सविता, गार्हपत्य, मत्र, भग, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, पूषा, इद्राग्नि, वायु, वामदेव, मित्रावरुण, भ्रातव्य,विष्णु,वामन,विश्वेदेव,रुद्र,कुबेर,अश्विनी कुमार तथा ब्रह्मा।

इसी प्रकार देवताओं की ही तरह इसके प्रथम से चौबीसवें अक्षर तक प्रत्येक अक्षर के ऋषि इस प्रकार हैं—वसिष्ठ, भारद्वाज, गर्ग, उपमन्यु, भृगु, शाडिल्य, लोहित, विष्णु, शतातप, सनत्कुमार, वेदव्यास, शुकदेव, पराशर, पौंड्रक, ऋत, दक्ष, कश्यप, अत्रि, अगस्त्य, उद्दालक, आगिरस, नामकेतु,

94. सावित्री उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायतु ममागानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मोपनिषद् माह ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरण मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सतु। ते मयि सतु।

ॐ शाति शाति शांति।

'मेरे अग वृद्धि को प्राप्त हो। वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इद्रिया तथा बल समृद्ध हो। यह उपनिषद् ब्रह्म स्वरूप जानने योग्य है। ब्रह्म मेरा परित्याग न करे। मै ब्रह्म का परित्याग न करू। हमारा परस्पर अनिराकरण हो। मै उपनिषदो के अध्ययन मे निरत रहू, इनका ज्ञान मुझे प्राप्त हो। दैहिक, दैविक एव भौतिक तीनो प्रकार के ताप नष्ट हो।'

सविता कौन है और सावित्री कौन है ?—अग्नि ही सविता है और पृथ्वी ही सावित्री है, जहा अग्नि है, वही सावित्री है तथा जहां सावित्री है, वही सविता है। वे दो योनि और एक जोडा है। सविता कौन है तथा सावित्री कौन है ?—वायु ही सविता है तथा आकाश ही सावित्री है। जहा वायु है, वही आकाश है तथा जहां आकाश है, वही वायु है। अत दोनो दो योनि तथा एक मिथुन (जोडा) हैं। कौन सविता है एवं कौन सावित्री है ?—यज्ञ सविता है एव छद सावित्री है। जहा यज्ञ है, वही छद है एवं जहा छद है, वही यज्ञ है। दोनो दो योनि एव एक युगल है। सविता और सावित्री कौन है ?—गरजनेवाले बादल सविता है तथा विद्युत सावित्री है। जहा गरजनेवाले बादल रहते है, वही सावित्री रहती है और जहा सावित्री रहती है, वही गरजनेवाले बादल रहते है, अत दोनो दो योनि एव एक युगल है। कौन सविता है और कौन सावित्री है ?—आदित्य (सूर्य) सविता है तथा द्यौ (द्युलोक) सावित्री है। जहा आदित्य है, वही सावित्री है और जहां सावित्री है वही आदित्य है। दोनो दो योनि तथा एक युगल है। कौन सविता है और कौन सावित्री है ? चद्रमा सविता है और नक्षत्र सावित्री है। जहा चद्रमा है, वही नक्षत्र है और जहा नक्षत्र है, वही चंद्रमा है। दोनो दो योनि एवं एक युगल हैं। कौन सविता है और कौन सावित्री है ?—मन ही सविता है तथा वाणी ही सावित्री है। जहा मन है, वही वाणी है और जहां वाणी है, वही मन है। दोनों दो योनि एव एक जोड़ा है। कौन सविता है तथा कौन सावित्री है ?— पुरुष सविता तथा स्त्री सावित्री है अत जहा पुरुष है, वही स्त्री है, जहा स्त्री है, वही पुरुष है। दोनों दो योनि तथा एक युगल हैं। (1-9)

सावित्री का प्रथम चरण 'तत्सवितुर्वरेण्य' है। (उस सविता का वरण करने योग्य है)। अत· यहा अग्नि, जल एव चद्रमा ही वरण करने (अपनाने, स्वीकार करने) योग्य है। इस मत्र का द्वितीय चरण 'भर्गो देवस्य धीमहि' (देव के यश का ध्यान करते हैं) यहा भर्ग अर्थात यश का अर्थ पृथ्वी, अग्नि, आदित्य एवं चद्रमा हैं, अत इन्ही का ध्यान करना चाहिए। मत्र का तीसरा चरण 'धियो यो न प्रचोदयात्' (जो हमारी वुद्धियों को प्रेरणा दे) है। इसके अर्थ को जो स्त्री एवं पुरुष गृहस्थ में

मुद्गग तथा आगिरस विश्वामित्र । (सृष्टि प्रलय के बाद वेद भगवान् मे समा जाते है, तव इनके का जो ऋषि पहले दर्शन करता है, वही उस मंत्र का ऋषि कहा जाता है । इसी तरह गायत्री म चौवीस अक्षरो के दर्शन इन चौवीस ऋषियों को हुए, अत ये अपने द्वारा देखे गए अक्षरो के है ।)

गायत्री , त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पक्ति, वृहती एवं उष्णिक्, ये तीन चरणोवाले छद कहे हैं । प्रह्लादिनी, प्रजा, विश्वभद्रा, विलासिनी, प्रज्ञा, शाता मा, काति, स्पर्शा, दुर्गा, सरस्वती, वि विशालाक्षी, शालिनी, व्यापिनी, विमला, तमोहारिणी, सूक्ष्म अवयवा, पद्मालया, विरजा, विश्व भद्रा, कृपा तथा सर्वतोमुखी, ये चौवीस गायत्री की शक्तियां है । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आव गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, वाणी, पैर, पायु, उपस्थ, त्वचा, आंख, कान, जीभ, नाक, मन, बुद्धि, अह चित्त तथा ज्ञान, ये चौबीस गायत्री के प्रत्येक अक्षर के तत्त्व है ।

चंपक, अतसी, कुकुम, पिगल, नील, अग्निप्रभा, उगता सूर्य, विद्युत, तारक, सरोज, सफेद म मणि, शुक्ल, कुंद, चंद्रमा, शख, पाडुनेत्र, नीला कमल, चदन, अगरु, कस्तूरी, गोरोचन तथा कपू पदार्थो के समान ही गायत्री का प्रत्येक अक्षर अत्यत पवित्र है । इनका आश्रय लेने से समस्त पा (पाप), उपपातक, महापातक, अगम्य गमन (जिसका परस्पर शारीरिक सबध वर्जित होते हुए भी ऐसा करे, तो उससे लगनेवाला पाप), गोहत्या, व्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, वीरहत्या, मानवहत्या, सारे ज मे की गई हत्याए, स्त्रीहत्या, गुरुहत्या, पिता की हत्या, प्राणिहत्या, चर या अचर की हत्या, न र योग्य को खा लेने का पाप, दूसरे की सपत्ति के हरण का पाप, नीच के हाथ का खाना, शत्रुह चांडाल से शारीरिक सबंध आदि समस्त पापों से मुक्ति मिलती है ।

जिसके सिर मे ब्रह्मा है, चोटी के अग्र भाग में विष्णु है, ललाट मे रुद्र है, नेत्रों मे सूर्य-च कानों में शुक्र-वृहस्पति है, नासिका छिद्रों में अश्विनी कुमार हैं, दातो तथा होठो मे दोनो सध्या मुख में वायु, स्तनों मे वसु आदि है, हृदय मे पर्जन्य है, उदर में आकाश है, नाभि मे अग्नि है, व में इद्राग्नि है, जाघों मे प्रजापति है, उरु में कैलाश का मूल है, घुटनो में विश्वेदेव है, गुल्फ मे शि है, नाखूनों मे पृथ्वी, वनस्पतिया आदि है तथा नौ ग्रह ही जिसकी अस्थिया है । आते केतु, ऋतुए है, सधियां (जोड़) एव पलकों को झपकाना ही दिन एवं रात्रि है ।

जो इस गायत्री रहस्य का अध्ययन करता है, उसे हजारों यज्ञों को करने का फल मिलता जो इसको पढ़ता है, उसके रात्रि में किए हुए पाप नष्ट होते है । प्रात· और दोपहर मे पढ़ने से छ तक के किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं । सायकाल तथा प्रातकाल दोनो समय इसके अध्ययन जन्म-भर किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं । जो व्रह्म को जाननेवाला इस गायत्री रहस्य को पढता है, साठ हजार गायत्री जप का फल मिलता है । उसे समस्त वेदों के अध्ययन का तथा सभी तीर्थ स्नान का फल प्राप्त होता है । वह अपेय पान (न पीने योग्य पदार्थों को पीने मे लगा पाप) से प हो जाता है, अभक्ष्य भक्षण से पवित्र हो जाता है तथा दुराचारिणी स्त्री के साथ सहवास उत्पन्न से मुक्त हो जाता है । वह ब्रह्मचारी न भी हो, तो ब्रह्मचारी हो जाता है । हजार बार के अपेय पा भी पवित्र हो जाता है । आठ ब्रह्मवेत्ताओं को इसकी दीक्षा देने मे वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता ऐसा भगवान ब्रह्मा ने कहा है ।

रहकर संतान की उत्पत्ति करते हुए (या अन्य भी) जानते है, उनकी बार-बार मृत्यु नही होती, अर्थात् वे पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते है। (10-13)

बल एवं अतिबल नामक विद्याओं के ऋषि विराट् पुरुष तथा छद एव देवता दोनो गायत्री है। इसके बीज, शक्ति तथा कीलक क्रमश 'अ', 'उ' एव 'म्' है। भूख से मुक्ति के लिए इसका विनियोग होता है। इसका अगन्यास केवल 'क्ली' से किया जाता है। इसमे ध्यान जिसके हाथो मे अमृत है जो सजीवनी शक्ति से युक्त है, जो पापो को दूर करने मे कुशल है, जो वेदो के सार है, जो किरणों के समान है, अविकारी प्रणव तथा सूर्य के समान आकारवाली बल-अतिबल नामक देवताओं का मै सदा ही अनुभव करता हू। (इस प्रकार के ध्यान के बाद 'ॐ ही बले' इत्यादि मत्र का अनुष्ठान किया जाता है। इससे व्यक्ति को भूख नही सताती, वह उसके वश मे हो जाती है) इन विद्याओं को जाननेवाला धन्य हो जाता है। वह सावित्री के लोक को प्राप्त करता है।

□

पानी पीते है, इसमे अन्न जमा नही करते। कमडलु के अतिरिक्त सभी जल-भूमि इनके पात्र है। सारी भूमि इनका घर है। खडहर, मदिर, घास-फूस, दीमकों की बाबी, वृक्ष तल, कुम्हार का छप्पर, यज्ञशाला, नदी-तट, पर्वतो की गुफाए आदि इनके घर है। ये प्रयत्नपूर्वक अपने शुभ-अशुभ कर्मो को नष्ट करते हुए देह त्याग करते है। (6-8)

'आशांवर (दिगबर-वस्त्र रहित) संन्यासी किसी को नमस्कार नही करता। वह स्त्री, पुत्र आदि से मुक्त तथा लक्ष्य आदि से रहित होता है। वह परमेश्वर बन जाता है। सन्यासी अपने से पहले संन्यासी बने व्यक्ति को अपने धर्म के अनुसार नमस्कार करे, किसी अन्य को नही। आलसी, चचल, चुगलखोर तथा झगडालू—ऐसे सन्यासी भी होते हैं, जिन्हे वेदो ने दूषित माना है। नाम, रूप आदि से ऊपर ब्रह्म को जाननेवाला सन्यासी सभी को अपना ही रूप समझता है, अत वह किसे प्रणाम करे ? या वह चाडाल, गाय, गधे आदि मे भी ईश्वर को देखकर उन सबको दडवत् प्रणाम करता है। मांस से बनी नसो-हड्डियो से युक्त स्त्री शरीर चंचल पिटारी ही है, इसमे क्या सुदरता है ? इस शरीर से त्वचा, मास आदि को जरा अलग-अलग करके देखो, तब कौन-सी चीज सुदर लगती है ? फिर इससे लगाव क्यो ? (9-15)

'स्त्री के स्तन की उपमा मेरु पर्वत की चोटी से गिरनेवाली गंगा से दी जाती है। श्मशान मे कटकर गिरा हुआ तथा कुत्ते द्वारा खाया जाता हुआ वही स्तन लोथड़ा लगता है। कजरारे चचल नयनोवाली सुंदरिया बडी मनोहर लगती है, किंतु ये भयकर अग्नि के समान पुरुष रूपी तिनको को जला डालती है। दूर से ही चित्त चुरानेवाली नारियां बडी ही रसमय लगती है, वस्तुत ये नरक के अग्नि की सुंदर लगनेवाली ईधन है। बहेलिए कामदेव ने पुरुष रूपी पक्षियो को फसाने के लिए स्त्रियो को जाल बनाया है। जन्म तलैया है, मनुष्य मछली है, उसका चित्त कीचड है, वासनाए रस्सी है तथा स्त्रिया मछली पकडने का काटा है। स्त्री सभी दोषो की पिटारी है तथा दु खो की जजीर है। स्त्री भोग है। स्त्री को छोड़ना जगत को छोडने के समान है, जगत (माया) को छोडकर कौन सुखी नही होता। पुत्र भी दु ख देनेवाला है। न हो तो दु ख, गर्भपात हो तो दु ख, प्रसव मे मा को कष्ट, बीमार हो जाए, तो दु ख, धूर्त हो तो दु ख, जनेऊ हो जाने पर भी मूर्ख रहे तो भी दु ख, क्योंकि विवाह होना भी कठिन हो जाता है। यही नही, पुत्र यदि युवक होने पर परस्त्री से भोग करे या दरिद्र हो और अधिक सतानवाला हो या धनी भी हो यदि मर जाए तो सब प्रकार से दु ख-ही-दु ख। पुत्र से मिलनेवाले दु खों का अत नही है। (16-26)

'संन्यासी के हाथ-पांव, नेत्र तथा वाणी चचल नही होने चाहिए। उसे इंद्रियों को जीतकर ब्रह्मचारी होना चाहिए। वह सासारिक बधन के कारण अपने शरीर को तथा शत्रु को भी समान समझता है, अत अपने अगो के समान वह किसी पर क्रोध नही करता। अपकार करनेवाले मे क्रोध करने के स्थान पर क्रोध से ही क्रोध क्यों न किया जाए, क्योंकि क्रोध धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, सबका शत्रु है। अपने आधार (व्यक्ति) को ही नष्ट करनेवाले हे क्रोध ! तुझे नमस्कार करता हू। मुझे वैराग्य और ज्ञान देने वाले को भी नमस्कार। लोगो के सोने पर ज्ञानी जागता है, जब वे जागते है, तब यही योगी सो जाता है (लोगों के विषयों मे डूबने पर भी यह सावधान रहता है)। 'मै आनद चिन्मय हूं, यह सृष्टि भी वही है,' योगी ऐसी ही भावना करे। यही परमपद का उपदेश है।' (27-33)

□

95. सरस्वती रहस्योपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराम ऐधि वेदस्य न आणीस्थ. । श्रुत मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात् सदधाम्यमृत वदिष्यामि। सत्य वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु । अवतु माम्अवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।

ॐ शांति शांति शांति ।

'हे परमात्मा, मेरी वाणी मन मे प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ । मुझे वेदो का ज्ञान दो । मै सुने हुए ज्ञान को न भूलूं । इस अध्ययन मे मै रात-दिन एक कर दू, मैं ऋत एव सत्य बोलू । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनो की रक्षा करो । दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शात हो ।'

ऋषियो ने भगवान् आश्वलायन की पूजा करके उनसे पूछा, 'भगवन्, वह कौन-सा ज्ञान है, जिससे 'तत्' शब्द से सूचित किए जानेवाले उस परम ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है ? उस ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार होती है ? और आपको किस विधि से उपासना करने पर यह तत्त्व ज्ञान हुआ ? कृपया इस विषय मे विस्तार से बताए ।' इस पर आश्वलायन ने बताया, 'हे ऋषियो ! मैने बीज मत्र और ऋचाओ के सहित दस श्लोकोंवाली सरस्वती की स्तुति की है और इसी के जप से यह सिद्धि प्राप्त की है ।' इस उत्तर को सुनने पर ऋषियो ने पुन: पूछा, 'हे सुंदर व्रत करनेवाले आश्वलायन ऋषि ! इस सरस्वती के मत्र को आपने कैसे प्राप्त किया ? किसके ध्यान से इसकी प्राप्ति हुई ? जिससे आपने भगवती सरस्वती को प्रसन्न किया ?'

इन प्रश्नो के उत्तर मे ऋषि आश्वलायन ने बताना आरभ किया, 'इस दस श्लोकी सरस्वती महामत्र का ऋषि मै आश्वलायन स्वय हू, इसका छद अनुष्टुप् है तथा इसकी देवता भगवती वागीश्वरी है। इसका बीज 'वाक्', शक्ति (देवीवाच) एव कीलक 'प्रणोदेवी' है। भगवती वागीश्वरी को प्रसन्न करने के लिए इसका विनियोग किया जाता है । इस उपासना मे श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धारणा, वाग्देवता एवं महा सरस्वती इन शब्दो से करन्यास, अगन्यास आदि किया जाता है । (1-4)

'हिम, कपूर, मोती या चद्रमा की प्रभा के समान शोभावाली, शुभ करनेवाली, सोने के समान पीले रग के चपा के पुष्पों की माला से सुशोभित, उभरे हुए पुष्ट स्तनोवाली ! सुंदर अगोवाली वाणी (सरस्वती) देवी को मै सिद्धि प्राप्त करने के लिए नमस्कार करता हू। इस प्रकार ध्यान करना चाहिए।

(1) 'प्रणो देवी' इस मत्र के ऋषि भरद्वाज, छद गायत्री तथा देवता सरस्वती है । प्रणव (ॐ) ही इसका बीज, शक्ति तथा कीलक है । मनोकामना की पूर्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है । मत्र से ही इसमें अगन्यास आदि किया जाता है ।

98. सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद्

शांतिपाठ .

ॐ वाड्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराम एधि, वेदस्य न आणीस्थ श्रुत मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्सदधाम्यमृत वदिष्यामि । सत्य वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवसु । वक्तारमवतु वक्तारम् ।

ॐ शांति. शाति शाति ।

'हे परमात्मा, मेरी वाणी मन मे प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ । मुझे वेदों का ज्ञान दो । मै सुने हुए ज्ञान को न भूलूं । इस अध्ययन मे मै रात-दिन एक कर दू, मै ऋत एव सत्य बोलूं । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनो की रक्षा करो । दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनो प्रकार के ताप (कष्ट) शांत हो ।'

प्रथम खंड

देवताओ ने भगवान आदिनारायण से सौभाग्यलक्ष्मी विद्या के विषय मे जानना चाहा, तो भगवान बोले, 'आप सब सावधान होकर सुने । यह तुरीय ही नहीं, अपितु तुरीयातीत अवस्था से भी परे सबसे भयंकर मंत्ररूपी आसन पर बैठनेवाली है, जो पीठो एव उपपीठो पर सुशोभित देवताओं से घिरी हुई है । इस प्रकार की चार भुजाओवाली लक्ष्मी का श्री सूक्त की पद्रह ऋचाओ से ध्यान करना चाहिए । इन ऋचाओ के ऋषि अंगिरा, आनद, कर्दम और विचलित है । प्रथम तीन ऋचाओ मे अनुष्टुप् फिर चौथे मे वृहती, पांचवे-छठे मे त्रिष्टुप्, सातवे से चौदहवे तक अनुष्टुप् तथा पद्रहवे में प्रस्तार पंक्ति छद है । सभी का देवता श्री और बीज अग्नि है । इनमे 'का सोऽस्मि' शक्ति है । 'हिरण्मयायै', 'चद्रायै', 'रजतस्रजायै', 'हिरण्यस्रजायै', 'हिरण्यवर्णायै', 'हिरण्यायै', इन शब्दो के प्रारभ में 'ॐ तथा अत मे 'नम ' लगाकर न्यास करना चाहिए । फिर इस प्रकार ध्यान करना चाहिए—लाल कमल पर विराजमान कमल के पराग के समान रग की लक्ष्मी अभय मुद्रा मे है । उनके हाथो मे ताजे कमल है और वह मणि आदि से अलंकृत है, ऐसी समस्त भुवनो की माता सरस्वती हमारी श्री को बढाएं ।

पीठ में कर्णिका के अंदर साध्य (कार्य) तथा श्री बीज लिखें । आठ, बारह तथा सोलह दलो के वीज मे श्री सूक्त की आधी-आधी ऋचा लिखे । भूमि पर बने वृत्त मे फलश्रुति ऋचा लिखे और सोलह दलों के कमल के बीच से 'अ' से 'स' तक वर्णो को लिखे । सबसे ऊपर वषट् एव त्वरिता के वीज के साथ श्री बीज लिखे । पहले आवरण की पूजा यत्रों द्वारा, दूसरे की पद्मनिधियो द्वारा, तीसरे की लोकपालों द्वारा तथा चौथे आवरण की पूजा वज्र आदि आयुधो द्वारा होती है । फिर ऋचाओ से आह्वान के वाद सोलह हजार जप से पुरश्चरण किया जाता है । इस सौभाग्यलक्ष्मी के एकाक्षर मंत्र में भृगु ऋषि, नीचृद गायत्री छद तथा श्री देवता हैं । वीज भी श्री है तथा इसी से अगन्यास भी होता है । 'यथाद०' इस श्लोक से ध्यान किया जाता है । इसमे भी तीन वृत्तों का

'वेदांत का तत्त्व ही जिसका स्वरूप है,नाम एवं रूप दोनों प्रकार का जगत् जिससे आत्मावाला है,वह सरस्वती मेरी रक्षा करे। विभिन्न विद्याओ का दान देने से शोभा युक्त वह सरस्वती स्तुति करनेवालों की रक्षा करती है। वह अन्न की स्वामिनी है। वह साधकों को अन्न एवं बुद्धि प्रदान करे।

(2) 'आ नो दिव' इस मंत्र के ऋषि अत्रि हैं,इसमें छद त्रिष्टुप् है और देवता सरस्वती है। इस मत्र में वीज, शक्ति तथा कीलक तीनो 'ह्री' हैं। मनोकामना पूर्ण करने के लिए इसका विनियोग होता है। मंत्र से ही अंगन्यास किया जाता है।

'अपने अंगों एवं उपागों के साथ चारो ही वेदों में जिसका गुणगान किया जाता है,वह अद्वैत ब्रह्म की शक्ति माता सरस्वती मेरी रक्षा करे।'

'हमारी उपासना से देवी सरस्वती ज्योतिर्मय स्वर्गलोक से पर्वतों के समान बादलो के वीच से होकर हमारे यज्ञ में आएं और हमारे प्रजा के स्तोत्रों से प्रसन्न हों। वह अपनी अच्छा से इन सुख प्रदान करनेवाले स्तोत्रों को सुने।'

(3) 'पावकान.',इस मत्र के ऋषि मधुछदा है,छंद गायत्री है तथा देवता सरस्वती है। 'श्री' इस मंत्र मे वीज,शक्ति एव कीलक है। कामना की सिद्धि के लिए इसका विनियोग किया जाता है। इसी मंत्र द्वारा इसमें भी अंगन्यास किया जाता है।

'जो सरस्वती अक्षरों में,शब्दों में तथा वाक्यो मे उनके अर्थ सहित व्याप्त है,जिनका आदि (उत्पत्ति) एव अंत नही है तथा जो अनंत रूपोंवाली हैं,वह देवी मेरी रक्षा करें।'

'जो सवको पवित्र करनेवाली है,जो अन्न और कर्म द्वारा प्राप्त होनेवाले धन की कारण हे,वह देवी सरस्वती हमारे यज्ञ में आने की इच्छा करें।

(4) 'चोदयित्री०' इस मत्र के ऋषि मधुछदा हैं,छंद गायत्री है और देवता सरस्वती हे। इसमे वीज,शक्ति एवं कीलक तीनों ही 'व्लूम' है। इच्छा-पूर्ति के लिए ही इसका विनियोग किया जाता है तथा अगन्यास इसी मंत्र से किया जाता है।

'जो सरस्वती देवताओ के लिए भी अध्यात्म एवं अधिदेवस्वरूपा हे तथा जो हमारे ऊपर वोलनेवाली शक्ति के रूप मे विद्यमान हैं,वह सरस्वती हमारी रक्षा करे।'

'जो सुंदर एव प्रिय वोलने की प्रेरणा देती हे और जो सुंदर वुद्धिवाले श्रेष्ठ लोगो के कर्तव्य का वोध कराती है,वह सरस्वती हमारे इस यज्ञ को धारण करें।'

(5) 'महो०' इस मंत्र के ऋषि मधुच्छदा हैं, छद गायत्री है तथा देवता सरस्वती है। वीज, शक्ति एवं कीलक 'सौः' है। इसी मत्र मे न्यास किया जाता है।

'जो अतर्यामी आत्मा के रूप म तीनों लोकों को नियत्रित करती हैं तथा जो रुद्र,आदित्य आदि सभी देवताओं के रूप में स्थित हैं,वह सरस्वती देवी मेरी रक्षा करें।'

'नदी के रूप में उत्पन्न होकर प्रवाह से वह सरस्वती अपने कार्यों का परिचय देती हैं तथा अपने समुद्र के समान जल को व्यक्त करती हैं। यही सरस्वती सवको कर्तव्य वुद्धि प्रदान करती हैं।'

रमापीठ बनाकर अष्टदल कमल की कर्णिका में साध्य के साथ श्री बीज लिखें। फिर ओकार एवं अंत में 'यै' लगाकर विभूति,उन्नति आदि नौ शक्तियों की पूजा करें। अंगन्यास द्वारा प्रथम आवरण की पूजा करे,द्वितीय आवरण में वासुदेव सकर्षण आदि की क्रमश. पूजा करें, तृतीय आवरण में बालक्य आदि की तथा चतुर्थ में इंद्र आदि की पूजा करें। इसमे बारह लाख जप होता है। (1-14)

श्री लक्ष्मीवरदा,विष्णुप्रिया आदि नामो से शक्ति पूजा की जाती है। निष्काम उपासकों को ही श्री विद्या की सिद्धि होती है,किसी कामना से उपासना करने पर कभी सिद्धि नही मिलती।

द्वितीय खंड

देवताओं द्वारा तुरीय माया द्वारा बताए गए तत्त्वों के विषयों में पूछे जाने पर भगवान आदिनारायण बोले,'योग से ही योग की वृद्धि होती है,अत योग से ही योग को जानना चाहिए। योग के प्रति सावधान रहनेवाला योगी लबे समय तक सुख प्राप्त करता है। निद्रा को वश मे करके अल्प भोजन करनेवाला योगी सुविधावाले एकांत स्थान में विरक्त होकर प्राणायाम का अभ्यास करता है। मुख से वायु को खींचकर नाभि में अपान के साथ इसका संयोग करते है। फिर अंगूठों, अगुलियों तथा हथेलियो से कानो, आंखो एवं नाक को बंद करके प्राणायाम में प्रणव का चितन करता हुआ योगी आत्मा से साक्षात्कार करता है। इस अभ्यास से एक अवस्था आने पर सुषुम्ना से प्रणव का आहत नाद सुनाई देता है। अनाहत चक्र मे ध्वनि सुनने पर अनेक घोष सुनाई देते है। तब शरीर में दिव्यता, सुगध आदि लक्षण आ जाते हैं। शून्य में ध्वनि सुनने पर योगाभ्यास करने से इच्छा शक्ति मे प्रेरित होकर प्राण स्वाधिष्ठान चक्र को भेदकर सुषुम्ना मे चला जाता है। पद्मासन के दृढ़ होने पर विष्णु ग्रंथि के भेदन से परम आनद मिलता है। प्राण के नाडी से घर्षण पर भेरी का तथा मणिपूरक चक्र को भेदने पर मृदंग का शब्द होता है। प्राण वायु के महाशून्य मे जाने पर सभी सिद्धिया तथा इसके द्वारा तालुचक्र के भेदन से चित्त का आनद मिलता है। (1-9)

'साधना के अत मे शब्द रूप मे प्रणव स्वय प्रकट होता है। तब चित्त उसी में लीन हो जाता है। मायामय शरीर ब्रह्मा को समर्पित हो जाता है। जो योगी आत्मा को सर्वव्यापक मानता हो योग पर विजय प्राप्त करे। निर्विकल्पक समाधि से कैवल्य में स्थिति हो। यहा योगी अहभाव तथा माया से मुक्त होकर शोक मुक्त हो जाता है। पानी मे नमक के समान आत्मा का परमात्मा मे लीन हो जाना ही समाधि है। मन, बुद्धि आदि की शून्यता तथा दु खहीन अवस्था समाधि है। शरीर के चलने पर भी चित्त की निश्चलता एवं ध्यानमय अवस्था समाधि है। इस स्थिति में मन जहा भी जाता है,उसे ब्रह्म ही देखता है,उसके लिए सर्वत्र ब्रह्म ही है। (10-19)

तृतीय खंड

देवताओं द्वारा नौ चक्रो के विषय में पूछे जाने पर आदिनारायण बोले, 'मूलाधार मे स्थित ब्रह्मचक्र तीन घेरोवाला है। वहा मूलकद में अग्नि के समान कुडलिनी शक्ति का ध्यान करे। वहीं कामरूप पीठ है,जो सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है। इसके मध्य में छ. दलवाले कमल में पश्चिम को मुखवाले लाल लिंग का ध्यान करे। वहीं जगत् को आकर्षित करने की सिद्धि देनेवाला उड्डयाण पीठ है। तीसरा सर्प के समान टेढा नाभि-चक्र है। उसमे बिजली तथा करोड़ों उगने सूर्यों के समान कुडलिनी का ध्यान करें। जागृत् होने पर यह अत्यत शक्तिशाली

(6) 'चत्वारि वाक्॰' इस मत्र के ऋषि दीर्घतमा, छंद त्रिष्टुप् तथा देवता सरस्वती है। इस मत्र में बीज, शक्ति तथा कीलक 'ऐं' है। इसी मत्र से अगन्यास किया जाता है।

'जो सरस्वती ज्ञानरूपी आतरिक नेत्रोंवाले प्राणियों के समक्ष अनेक रूपो में प्रकट होती है, इस प्रकार सर्वव्यापक वह सरस्वती मेरी रक्षा करें।

'परा, पश्यंती, मध्यमा एवं वैखरी वाणी के ये चार चरण है। ज्ञानी लोग इन्हें सही रूप में जानते हैं। परा, पश्यती एव मध्यमा हृदय गुहा में स्थित रहती है, अतः ये प्रकट नही होती। केवल वैखरी ही बोलने के रूप में प्रयोग में आती है।'

(7) 'यद्वाग्वदति॰' इस मंत्र के ऋषि भार्गव, छद त्रिष्टुप् तथा देवता सरस्वती है। इसमे बीज, शक्ति तथा कीलक 'क्ली' है। इसी मत्र से न्यास किया जाता है।

'जो आत्मा निर्विकल्पक होते हुए भी नाम, जाति, गुण आदि आठ रूपो मे प्रकट होती है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे।'

'जो सरस्वती दिव्य (अलौकिक, स्वर्गीय) भावों को व्यक्त करती है, देवताओ को आनद प्रदान करती है तथा अज्ञानियो को ज्ञान देती है, इस प्रकार यज्ञ में विराजमान होनेवाली सरस्वती सभी दिशाओं को सपन्न करती है। ऐसी सरस्वती का परम स्थान कहा है?

(8) 'देवी वाचम्॰' इस मत्र के ऋषि भार्गव, छंद त्रिष्टुप तथा देवता सरस्वती है। बीज, शक्ति एव कीलक 'सौः' है। इसी मंत्र से अगन्यास किया जाता है।

'व्यक्त एव अव्यक्त वाणियो मे सभी वेद आदि जिसके यश के गीत गाते है, वह सभी इच्छाओ को पूर्ण करनेवाली कामधेनु-रूपी सरस्वती मेरी सभी इच्छाओं को पूरा करती हुई रक्षा करें।'

'वह सरस्वती वाणी रूप मे देवताओ से उत्पन्न होनेवाली है। इसी का प्राणी अनेक रूपो मे उच्चारण करते हैं। वह कामधेनु के समान हैं, वह सुख-संपत्तियां प्रदान करती है। इन श्रेष्ठ स्तुतियो से वह हमारे समक्ष प्रकट हों।'

(9) 'उतत्व॰' इस मंत्र के ऋषि बृहस्पति, छद त्रिष्टुप् तथा देवता सरस्वती है। इसमे बीज, शक्ति एव कीलक तीनों ही 'स' है। इसी मंत्र से अंगन्यास एव करन्यास किया जाता है।

'जिसके ज्ञान से सारे सासारिक बंधन मिथ्या प्रतीत होने लगते हैं और योगी बंधनो से मुक्त होकर परम ब्रह्म को प्राप्त करते है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करें।'

'इस वाणी देवी को कुछ लोग देखकर भी अनदेखा कर देते हैं और कुछ सुनकर भी अनसुना कर देते है। कुछ विरले ही ऐसे भाग्यशाली होते हैं, जिनके सामने वह पति की कामना करनेवाली पत्नी द्वारा समस्त वस्त्रों को उतार देने के समान अपने स्वरूप को प्रकट कर देती हैं।'

(10) 'अंबितम॰' इस मंत्र के ऋषि गृत्समद हैं, छंद अनुष्टुप् है तथा देवता सरस्वती है। इसका बीज, शक्ति और कीलक 'ऐं' है। इसमें इसी मत्र से करन्यास आदि किया जाता है।

'इस नाम रूपात्मक जगत् में सर्वत्र उसी को देखते हुए जिस ब्रह्मरूपिणी सरस्वती का योगी लोग ध्यान करते हैं, वह मेरी रक्षा करें।'

सभी सिद्धिया देती है। चौथा मणिपूरक या हृदय-चक्र है। इसमे ज्योतिर्मय लिग जैसी हंस कला का ध्यान करें। यह सारे लोको को वश में करती है। कठचक्र चार अगुल का है। इसके बाए इडा, दाए पिंगला एव दोनों के बीच सुषुम्ना का चितन करें। तालुचक्र अमृत के प्रवाह वाला है। इसमे शून्य के ध्यान से चित्त शून्य मे रत होता है। सातवा अंगूठे जैसा भ्रू चक्र है। वहा ज्ञानमय दीप शिखा का ध्यान करने से वाणी की सिद्धि होती है। ब्रह्मरध्र निर्वाण चक्र है। वहा सुई की नोक के समान धुए की लकीर का चितन करें। यही मोक्ष देनेवाला जालधर पीठ भी है। नौवा आकाश चक्र है। वहा ऊपर मुखवाले सोलह दलोवाले कमल के बीच तीन मुखोवाली कर्णिका मे झुकी हुई शक्ति का ध्यान करे। यही पूर्ण गिरि पीठ है। इस उपनिषद के नित्य अध्ययन से साधक अग्नि एव वायु के समान पवित्र होकर सभी धन, संपत्ति, स्त्री, पुत्र, पशु, सेवक आदि प्राप्त करके मोक्ष पाता है।

□

'हे सरस्वती ! तुम माताओं में, नदियों में तथा देवियों में सबसे बडी हो, तुम हमें प्रशंसा योग्य तथा सम्पत्तिशाली बनाओ। (5-35)'

(महर्षि आश्वलायन को इन्हीं दस मत्रों से तत्त्वज्ञान हुआ था, जिसका उपनिषद् के प्रारंभ मे उल्लेख हुआ है। इनमें मंत्र के ऋषि, छद आदि के वाद सरस्वती का ध्यान तथा बाद मे मन्त्र दिए गए हैं।)

'हे सरस्वती ! तुम ब्रह्मा के मुखरूपी कमलों के वन में हंस-वधू के समान घूमती रहती हो, अत· हे सफेद अंगोंवाली सरस्वती, तुम नित्य मेरे मानस में विचरण करो। हे शारदा देशवासिनी, मैं नित्य तुम्हारी स्तुति करता हूं, मुझे विद्या का दान दो। अक्षमाला, सूत्र अकुश एव पास धारण करनेवाली तथा मोतियों के हारों से सुशोभित सरस्वती सदा मेरी वाणी में विद्यमान रहे। शख के समान कंठवाली सभी आभूषणों से युक्त वह महासरस्वती मेरी जिह्वा के अग्र भाग मे सदा निवास करें। जो श्रद्धा, धारणा, मेधा तथा ब्रह्मा की प्रियतमा हैं, वह शाति आदि गुणों को देनेवाली सरस्वती अपने भक्तों की जीभ में सदा निवास करती है। जिनके कुंतल (बाल) चंद्रलेखा से अलकृत है, उन सांसारिक संतापों को शांत करनेवाली नदी के समान सरस्वती को मै नमस्कार करता हू। जो कवित्व शक्ति, भय से मुक्ति, भोग या मोक्ष चाहता है, वह ऊपर कहे गए दस श्लोको से नित्य सरस्वती की पूजा करता है। उसे नित्य इस प्रकार सरस्वती की अर्चना करने से केवल छ मास मे ही काय में सिद्धि प्राप्त होती है। इसके परिणामस्वरूप मधुर ललित अक्षरोंवाली गद्य एव पद्य दोनो ही रूपोंवाली वाणी उसके मुख से स्वत ही फूटने लगती है। सरस्वती की कृपा से साधक विना किसी से सुने या पढ़े ही सभी ग्रथों के अर्थों को समझने लगता है। इसमें कोई सदेह नही हे। सरस्वती ने स्वयं इस संवंध में ये शव्द कहे है। मैने (आश्वलायन ने) यह सनातन आत्म विद्या को स्वयं ब्रह्मा से प्राप्त किया है, अत मै सदा ब्रह्म ज्ञान से संपन्न रहता हूं। यही मेरी सिद्धि का रहस्य है। (36-46)

'सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीन गुणों की प्रधानता से प्रकति रची गई। जैसे दर्पण में प्रतिविंब होता है, वैसे ही इस प्रकृति में चेतन की छाया सत्य जैसे लगती है। उसी चेतन के प्रतिविंब से यह तीन प्रकार की प्रतीत होती है। प्रकृति के कारण ही तुम्हें यह शरीर मिलता है। सत्त्व गुण का अश अधिक होने से प्रकृति माया कही जाती है। उस माया में दिखाई देनेवाला प्रतिविंब ही चेतन अर्थात् अजन्मा ब्रह्म है। यह माया सर्वज्ञाता ब्रह्म की आज्ञा का पालन करती है। माया को अपने अधीन रखना अद्वितीय तथा सवका ज्ञाता होना ही ब्रह्म की पहचान है। यह ब्रह्म सभी लोको का साक्षी है। यही सृष्टि को वनाने, न वनाने या अन्य कार्य करने में पूर्ण रूप में समर्थ है। माया की विक्षेप एव आवरण नाम की दो शक्तिया हैं। इनमे विक्षेप शक्ति लिंग शरीर से ब्रह्माड तक सवकी सृष्टि करती है तथा दूसरी आवरण नामक शक्ति द्रष्टा एवं दृश्य तथा ब्रह्म को ढक लेती है, जो ससार का कारण है। वह लिंग देहरूपी वंधन देनेवाली है। इस कारणरूपी प्रकृति मे जव चेतन का प्रतिविंब पडता है, तो जीव की उत्पत्ति होती है। इस आवरण शक्ति के नष्ट हो जाने पर जीव इस अनर को जान जाता है, अत वह जीव नहीं रह जाता (वास्तविकता ज्ञात होने पर वह अपने स्वरूप को जान जाता है तथा ब्रह्म में मिल जाता है)। सृष्टि एव ब्रह्म को ढक लेनेवाली आवरण शक्ति के कारण इसके वश

99. त्रिपुरोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठिमाविराम एधि, वेदस्य न आणीस्थ श्रुत मे प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात् संदधाम्यमृत वदिष्यामि । सत्य वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।

ॐ शांति शांति. शांति. ।

'हे परमात्मा,मेरी वाणी मन मे प्रतिष्ठित हो,मेरा मन वाणी मे प्रतिष्ठित हो,तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ । मुझे वेदों का ज्ञान दो । मै सुने हुए ज्ञान को न भूलू । इस अध्ययन मे मै रात-दिन एक कर दू,मै ऋत एव सत्य बोलू । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनो की रक्षा करो । दैहिक, दैविक तथा भौतिक,तीनो प्रकार के ताप (कष्ट) शात हों ।'

अज्ञान के कारण माने गए स्थूल,सूक्ष्म एव कारण शरीर,तीन पुर है । ज्ञान,विज्ञान एव सम्यक् ज्ञान तीन पथ है । अ से क्ष तक अक्षर है । इन सबको किसी महान् और सदा रहनेवाली शक्ति के अधीन समझना चाहिए । नौ शक्तिया,नौ चक्र,योग की नौ अवस्थाए तथा इनकी नौ योगिनिया इसी परमात्मा से प्रकाशित होती है । इन चक्रो के आधार नौ भद्राए तथा नौ मुद्राए भी इसी पर आश्रित है । सर्वप्रथम नौ भद्राओ के रूप मे एक ही प्रधानता थी । इंद्रियां,प्राण,अंत करण के उन्नीस तत्त्वो के रूप मे भी यही थी । फिर चालीस शक्तियों के रूप में भी यही विद्यमान थी । यह माता के समान ब्रह्मज्ञान के लिए मुझमे प्रवेश करे । इस माया प्रपच के पहले यही ज्योति होती है । इसके नाश होने पर भी वही ब्रह्मरूप शेष रहता है । अपने से अलावा कुछ भी न देखकर स्वय को ब्रह्म रूप मे देखनेवाला योगी परम प्रकाश से आनदित होता है । तब वह अद्वैत परमात्मा मे स्थित हो जाता है । क्रिया,ज्ञान एव इच्छा-शक्ति रूपी रेखाएं है,जागृत् आदि अवस्थाए स्थान है, लोचन, कठ,हृदय एव सहस्रसार चक्र है, भू , भुव , स्व लोक है । सत्त्व आदि गुणो मे पुन प्रत्येक के तीन भेद है और इनका आश्रय परमात्मा है,उसके साथ रहनेवाली चित् शक्ति कामरूप मे विद्यमान है । इसके साथ तदतिका,मानिनी,मगला आदि पद्रह आवरण देवता है । इन्हे जाननेवाला योगी श्रीचक्र को तृप्त करके शरीर अत मे परमधाम प्राप्त करता है ।

यह मूल विद्या काम,योनि,कामकला,इंद्र,वायु आदि रूपोवाली विश्व माता है । इस विद्या के ज्ञान से योगी अमृतत्व तत्त्व को प्राप्त करता है । यही क्षण से लेकर कला तक के समय को तथा ईश्वर को धारण करती है । योगी इसी के आश्रय से चित्त को शुद्ध करते है । हृदय-कमल मे सूर्य-चद्र से युक्त स्तनबिबवाली, नीचे मुखवाली तथा सभी सुदर अगोवाली परमात्मा की कामकला का ध्यान करने से इच्छाएं पूर्ण होती हैं,कितु सकाम ध्यान से पुनर्जन्म नही छूटता । इस प्रकार भोग बुद्धि को त्यागकर सभी वर्ण के साधक पुण्यलोक प्राप्त करते है । ऐसा न करने पर विश्वमाता उससे अपनी सिद्धियो को गुप्त रखकर जन्मचक्र में घूमते रहने के लिए छोड देती है ।

में हुआ ब्रह्म अपने वास्तविक रूप मे नही जान पड़ता, आवरण हटते ही ब्रह्म और सृष्टि का अतर स्पष्ट हो जाता है। वस्तुत विकार ब्रह्म मे नही आता, केवल सृष्टि में ही आता है। 'आस्ति' (है), 'भाति' (सुशोभित है), 'प्रिय' 'नाम' और 'रूप' ये पाच अश हैं, इनमे 'आस्ति', 'भाति' तथा 'प्रिय'—ये प्रथम तीन ब्रह्म के स्वरूप है तथा 'नाम' एव 'रूप', ये दो जगत् के स्वरूप है। इन जगत् के भेदो से सबंध रखने पर ही ब्रह्म विश्व के रूप मे प्रकट होता है। (47-58)

'साधक सदा बाहरी-भीतरी दोनों रूपों में समाधि में रहें। हृदय मे सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकार की समाधि होती है। दृश्यानुविद्ध एवं शब्दानुविद्ध के भेद से सविकल्प समाधि दो प्रकार की होती है। चित्त मे समाधि मे काम आदि विकार उत्पन्न होते है। ये सब विकार दृश्य हैं और आत्मा उनका साक्षी होता है। यही दृश्यानुविद्ध सविकल्पक समाधि कही जाती है। जब समाधि मे साधक सोचने लगता है कि मै अद्वैत स्वरूप हूं, आसक्ति रहित तथा स्वयं प्रकाश हूं—इस प्रकार का चितन शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि कही जाती है। निर्विकल्प समाधि मे साधक की स्थिति वायु रहित स्थान में रखे हुए अविचल दीपक के समान हो जाती है। इस हृदय के भीतर होनेवाली समाधि के दो रूप है। ऐसे ही बाहर भी किसी वस्तु मे चित्त एकाग्र हो जाने पर समाधि लग जाती है। द्रष्टा एव दृश्य की बुद्धि से प्रथम प्रकार की समाधि लगती है। जिससे प्रत्येक वस्तु मे उसके नाम एव रूप से अलग केवल चेतन ही प्रतीत होता है, वह दूसरे प्रकार की समाधि है। जिसमें चैतन्य के रस से स्तब्ध अवस्था होती है, वह तीसरी समाधि है। इन्ही समाधियों मे समय बिताना चाहिए। देह का अभियान नष्ट हो जाने पर परमात्मा के ज्ञान से मन जहा-जहा जाता है, वही परम तत्त्व प्रतीत होता है। तब हृदय के सारे बधन नष्ट हो जाते है सारे सदेह मिट जाते हैं और उस सुख के समुद्र के दर्शनो से सारे कर्मो का भी नाश हो जाता है। जो ज्ञानी जीव एव ब्रह्म के इस माया के कारण कल्पित भेद को जान जाता है, वह मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नही। (59-68)

☐

नेष्काम भावना से इस शक्ति का ध्यान करने से मोक्ष प्राप्न होती है। ऐसे उपासको की ज्ञान आदि
की हवि से तृप्त होकर उपासको को अपने मे मिलाकर स्थित हो जाती है। चारो वेद तथा चौसठ
कलाएं जिस शक्ति का गान करती है, वही इस उपनिषद मे वर्णित है। यह श्रेष्ठ विद्या है।

□

96. देवी उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्र पश्येमाताक्षिर्भिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनुभिर्व्यशेम देवहित यदायु.।
स्वस्ति न इंद्रोवृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा. विश्ववेदा.
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नः वृहस्पतिर्दधातु।

ॐ शातिः शांतिः शातिः ।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगलनाशक गरुड़ और वृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दु ख शात हों।'

सारे देवताओं ने देवी के पास जाकर पूछा, 'हे महादेवी, आप कौन हैं ?' इस पर देवी वोली, 'मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूं। यह प्रकृति एवं पुरुषवाला जगत् मेरे कारण ही उत्पन्न हुआ है। मै शून्य (कुछ भी नहीं) भी हूं और अशून्य भी हूं। मैं आनंदरूपिणी भी हू तथा अनानदरूपिणी भी। मैं विज्ञान भी हूं और अविज्ञान भी हूं। मैं ब्रह्म भी हूं और उससे भिन्न भी हूं। मैं आकाश, पृथ्वी आदि पाच महाभूत भी हूं और इनसे भिन्न भी हूं। मैं ही समस्त जगत् हूं। मैं वेद भी हूं और अवेद भी हू। मै ही विद्या और अविद्या हूं। मैं अजा (उत्पन्न न होनेवाली) भी हू और अनजा भी हूं। मे ही रुद्रो, वसुओं, आदित्यों तथा विश्व देवों के रूपों से संचरण करती हू। मे ही मित्रावरुण, इद्राग्नि तथा अश्विनी कुमारों का पालन करती हू। मैं ही सोम, त्वष्टा, पूषा, भग, तेजस्वी विष्णु, ब्रह्मा, प्रजापति आदि को धारण करती हू। मैं हवि प्रदान करने वाले यजमान के लिए संपत्तियों को धारण करती हू। मैं धनों के साथ चलनेवाली राष्ट्री नामक देवता हूं, मैं ही विश्व का कारण हू तथा समुद्रो मे व्याप्त जल मेरा ही रूप है। इस रहस्य का ज्ञाता देवी के लोक को प्राप्त करता है। (1-7)

तब वे देवता वोले, 'हे देवी। महादेवी। कल्याणमयी। तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रकृति हो, समस्त शुभ कार्यों को करनेवाली तथा एक नियत स्थितिवाली हो, तुम्हे नमस्कार है। वह देवी तप से जलते हुए अग्नि के वर्ण की है। सुकर्म फलों की प्राप्ति के लिए हम उसकी प्रार्थना करते हैं। हम अज्ञान के नाश के लिए उस दुर्गा देवी की शरण में जाते हैं। उस देवी ने वाणी के सभी रूपो को उत्पन्न किया है। प्राणी इसके एक भेद का उच्चारण करते हैं। यह कामधेनु के समान सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली भगवती हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमारे पास आए। काल का नाश करनेवाली, जिसकी वेदों ने स्तुति की है, वैष्णवी, स्कद की माता (शिव शक्ति), सरस्वती, अदिति तथा दक्ष-पुत्री नाम से विख्यात उस पवित्र तथा कल्याणमयी देवी को हम नमस्कार करते हैं। हम उस महालक्ष्मी को जानते हैं, उस सर्वसिद्धि का ध्यान करते हैं और वह देवी हमारी बुद्धि को अच्छी

100. सीता उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभि शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिर्भिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु ।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न. पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति न बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांति· शाति शाति ।

'हम कानो से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रो से कल्याणमय चीजों को देखे और दृढ़ व स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे। इद्र हमारा कल्याण करे, पूषा हमारा कल्याण करे। अमंगलनाशक गरुड और बृहस्पति हमारा कल्याण करे। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के दु:ख शात हो।'

देवताओ ने प्रजापति ने पूछा, 'सीता कौन हैं ? उनका क्या रूप है ?' तब प्रजापति बोले, 'सीता मूल प्रकृति है। सीता शब्द तीन शक्तियो को बताता है। 'स' सत्य, अमृत, सोम एवं प्राप्ति सूचक, 'ता' विस्तार एव लक्ष्मी रूप तथा 'ई' सपूर्ण विश्व के कारण विष्णु की योगमाया है। यह माया अपने अनेक आभूषणो से युक्त होकर व्यक्त होती है। प्रसन्न होने पर यह बुद्धि बनकर बोध कराती है। वह अपने व्यक्त रूप मे पृथ्वी से जनक के हल के अग्र भाग से प्रकट हुई। इसका प्रथम रूप शब्द ब्रह्मरूप है। तीसरा 'ई' का रूप अव्यक्त रूप है, यह शौनकीय तत्र का वर्णन है। सदा भगवान राम के समीप रहने के कारण सीता जगत् की आधार है। वही सभी प्राणियो की उत्पत्ति, स्थिति एव सहार करनेवाली है। ब्रह्मवादी इन्हे प्रणव रूप मूल प्रकृति कहते है। वह सभी वेदों, देवों, लोको, धर्मो आदि के रूप में तथा सबकी आधार है। वही महालक्ष्मी है। वही चेतन-अचेतन प्राणियो मे आत्मा रूप मे है। अपने गुणों के विभाग से वही देवता, ऋषि, मनुष्य, गधर्व, असुर, राक्षस आदि रूपों मे है। वही महाभूतो, इद्रियों, मन, प्राण आदि के रूप मे कही जाती है। (1-10)

वही इच्छा, क्रिया तथा साक्षात् शक्ति के रूप मे प्रकट होती हैं। इच्छा शक्ति रूप में भी वह तीन रूपो मे है। श्री, भू एव नीला देवी के रूप में वे मंगल रूपिणी, प्रभाव रूपिणी तथा सोम-सूर्य-अग्नि रूपिणी है। सोम रूप में वह औषधियो आदि को प्रकट करती है। देवताओं को यज्ञ का फल देती है। देवताओ को अमृत से तथा प्राणियों को अन्न आदि से जीवन देती है। वही सूर्य आदि लोको को प्रकाश देती हैं। वही घड़ी, पल, दिन, पखवाडा, वर्ष आदि से मनुष्य को दीर्घायु बनाती है। पल से कल्प तक जगत् चक्र को वही वश मे रखती है। अत. वही प्रकाश और काल के रूप मे भी है। वही प्राणियो में अग्नि, अन्न, भूख, प्यास आदि रूपों मे, देवताओ मे, सुख के रूप मे तथा औषधियो मे शीत-उष्ण आदि रूपो में बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं। देवी के रूप मे वह लोको को रक्षा करती है और लक्ष्मी रूप में प्रकट होती हैं। सागरों एवं सात द्वीपोवाली पृथ्वी के रूप मे

प्रेरणा दे । हे दक्ष, आपकी कन्या अदिति ने अमर देवताओ को जन्म दिया । काम, -ेनि, कमला, इद्र, गुहा, वर्ण, मातरिश्वा, मेधा, यह समस्त जगत भगवती की मूल विद्या है । यही भगवती परमात्मा की शक्ति है । यही विश्व को मोहित करनेवाली है । यही श्री महाविद्या है । जो इसे जानता है, वह शोक मुक्त हो जाता है । हे मा भगवती ! हम तुझे नमस्कार करते है, हमारी सब प्रकार से रक्षा करो । (8-17)

'यह भगवती ही आठो वसु, नौ रुद्र, बारह आदित्य तथा सोमपान करनेवाले तथा न करनेवाले विश्वेदेव है । यही राक्षस, असुर, पिशाच, यक्ष एव सिद्ध है । यही सत्त्व, रजस् एव तमोगुण है । यही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र है । प्रजापति, इंद्र एव मनु है । यही ग्रह, नक्षत्र एव ज्योति है । यही कला, काठ आदि एव कालरूपिणी है । यह दु खो को हरनेवाली, मुक्ति एव मुक्ति देनेवाली है । यह अनत, विजय रूप, शुद्ध, शरण देनेवाली तथा कल्याणमय है । इस देवी का बीज मंत्र 'ह्री' है, जो सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला है । इसी एक अक्षर का शुद्ध चित्तवाले ज्ञान के भंडार योगी सदा ध्यान करते है । भगवती का नवार्ण मत्र (ॐ) ऐं ह्री चामुंडायै विच्चै) महान् आनंद देनेवाला है । मै हृदय कमल के मध्य मे रहनेवाली प्रातःकालीन सूर्य के समान आभावाली, पाश एव अकुश धारण करनेवाली, वरदान तथा अभय की मुद्रावाली, तीन नेत्रोवाली, लाल वस्त्र पहननेवाली और भक्तो की इच्छाए पूर्ण करनेवाली भगवती का ध्यान करता हू । हे महान् भयो और कष्टो का नाश करनेवाली करुणामूर्ति ! मै तुम्हे नमस्कार करता हू । ब्रह्मा आदि भी नही जानते अत वह अज्ञेया कही जाती है, उसका अत नही मिलता, अत अनंता कही जाती है, उसके जन्म का पता नही है, अत अजा कही जाती है, एक ही होकर सर्वत्र व्याप्त होने से 'एका' तथा अनेक रूपोवाली होने से नैका (अनेका) कही जाती है । अत वह अज्ञेया, अनता, अलक्ष्या अजा, एका एव नैका कही जाती है । (18-26)

'मह भगवती मत्रों की मातृका, शब्दो का अर्थ, ज्ञानो मे चिन्मय अती तथा शून्यो मे शून्यसाक्षिणी है । जिससे बढकर कुछ नही है, वही यह दुर्गा है । बुराइयों का नाश करनेवाली दुर्गा को मैं भवसागर से पार होने के लिए नमस्कार करता हूं । इस उपनिषद् का प्रातःकाल का अध्ययन रात्रि के, सायंकाल का दिन के पापो को नष्ट करता है । दोनो बार पढनेवाला निष्पाप हो जाता है । आधी रात मे पढ़ने से वाणी को सिद्धि मिलती है । नई मूर्ति मे पढने से देवता पास रहते है । प्राण-प्रतिष्ठा मे जपने से मूर्ति मे प्राण प्रतिष्ठा होती है । मगलवार की अमावस्या में महादेवी के पास जप से महामृत्यु से तारण होता है । इसे जाननेवाला महामृत्यु से तर जाता है । (27-32)

□

वह भूदेवी हैं और वही प्रणव की आत्मा है। नीला देवी के रूप मे वह सभी औषधियो एव प्राणियो का पोषण करती है। वही पृथ्वी के नीचे इसके आधार जल के रूप मे है। उनका क्रिया-शक्तिवाला रूप विष्णु के मुख से नाद-शक्ति के रूप मे प्रकट हुआ। नाद से बिदु, बिदु से ओकार तथा ओकार से राम वैखानस पर्वत हुआ है। उससे कर्म एव ज्ञान की अनेक शाखाए निकलती है। (11-20)

'ऋक्, यजु एव साम तीन वेद है। कार्य सिद्धि के लिए चार नाम कर लिए गए है। यज्ञ मे तीनो ही वेदो का उपयोग होता है। अथर्ववेद इन्ही तीनो का रूप है। ऋग्वेद की इक्कीस, यजुर्वेद की एक सौ नौ, सामवेद की एक हजार तथा अथर्ववेद की पाच शाखाए मानी जाती है। वैखानस प्रत्यक्ष दर्शन है। अत. ऋषि लोग इसी को श्रेष्ठ मानते है। कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष एव छद ये छ वेद के अंग है। इनका भी वेदो के साथ ही अध्ययन होता है। इतिहास-पुराण को अनुपाग कहा गया है। वास्तुवेद, धनुर्वेद, गाधर्व वेद, दैविक तथा आयुर्वेद को उपवेद कहा जाता है। दडनीति, वार्ता आदि भी स्वयं प्रकाशित विद्याएं है। (21-31)

'विष्णु की वाणी तीन वेदो के रूप मे वैखानस ऋषि के हृदय मे प्रकट हुई। वैखानस ने इसे तीनो वेदों के रूप में व्यक्त किया। यह ब्रह्मरूपी क्रिया-शक्ति है। यह भगवान की इच्छा मात्र से अनेक रूपो को प्रकट करती है। दिखाई देनेवाला विश्व इसी का रूप है। यह शात, तेजोमयी, व्यक्त-अव्यक्त का कारण है। इसके रूपों का वर्णन नही किया जा सकता। यह भगवान से अभिन्न उनकी आज्ञाकरिणी तथा उत्पत्ति, पालन एव संहार का कारण है। इच्छा-शक्ति भी तीन प्रकार की है, यही योग शक्ति बनकर प्रलयकाल मे भगवान के दाहिने वक्षस्थल पर श्रीवत्स के रूप में विश्राम करती है। भोग-शक्ति के रूप में यह कल्प वृक्ष आदि नौ निधियो मे विश्राम करती है। भक्तों एव योगियो को यह विभिन्न प्रकार के भोग प्रदान करती है। यही पूजा की सामग्रियो, तीर्थो, जलों आदि को उत्पन्न करती है। वीर शक्ति चार भुजाओवाली वर मुद्रा एव कमल से युक्त है। मुकुट, आभूषणों से सुशोभित इस रूप का सफेद हाथी रत्नजडे अमृत कलशो से अभिषेक करते हैं। ब्रह्मा आदि देवता चारो ओर खडे होकर वेदों सहित उसकी स्तुति करते है। यह अणिमा आदि से युक्त है। अप्सरा आदि इसकी सेवा करती है। भृगु आदि ऋषि पूजा करते है। सूर्य एव चंद्रमा दीपक के समान उसके समीप प्रकाश करते है। यह दिव्य सिहासन पर कमल मे बैठती है। सभी देवताओ द्वारा पूजित प्रसन्न मुख यह समस्त कार्यों की कारण रूपी वीर लक्ष्मी है'। (32-37)

□

97. बहु ऋचोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराम एधि। वेदस्य न आणीस्थ श्रुत मे मा प्रहासीरनेनाधीतेना-होरात्रात्सदधाम्यमृत वदिष्यामि।. सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु। वक्तारवतु वक्तारम्।

ॐ शाति. शांति· शाति·।

सृष्टि से पूर्व केवल देवी ही थी। उन्होने जगत् की रचना की। वही काम-कला एव शृगार कला नाम से जानी जाती है। उन्होने ही विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, गांधर्व, मरुदगण, अप्सराए एव किन्नरो की रचना की। उन्होने ही सभी योग्य पदार्थ, सभी प्रकार के प्राणी, स्थावर-जगम (चराचर-सृष्टि) तथा मानव की रचना की। वही अपरा शक्ति है। वही शाभवी आदि विद्या है। वही अक्षर तत्त्व है। वही तीनो प्रकार के शरीरो (स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण) तथा तीनों अवस्थाओं (स्वप्न, जागृति एव सुषुप्ति) में व्याप्त हैं। देश, काल (समय एवं दूरी) एवं वस्तु में विद्यमान होने पर भी ये उनका स्पर्श नही कर सकते। वही सवमें चेतना रूप मे है। केवल वही आत्मा है, अन्य सव असत्य है। वही ब्रह्म का ज्ञान करानेवाली तथा सत्, चित् एव आनंद रूप है। वही त्रिपुरसुदरी, वाहर-भीतर व्याप्त तथा स्वयं प्रकाश रूप है। मै, तुम, विश्व, देवता आदि सव वही त्रिपुरसुदरी हैं। भगवती ललिता ही सत्य है, वही परम व्रह्म है। अस्ति, नास्ति आदि को त्यागकर स्वरूप को ग्रहण करने पर जो शेष रहता है, वही परम तत्त्व कहा जाता है। (1-6)

प्रकृष्ट (श्रेष्ठ) ज्ञान ही व्रह्म है। 'मै व्रह्म हू' इत्यादि वाक्यों मे उसी व्रह्म को वताया जाता है। 'तत्त्वमसि'—तुम वह हो, 'अयमात्मा व्रह्म'—यह आत्मा व्रह्म है आदि वाक्यो में उसी परम विद्या का वर्णन किया जाता है। यही षोडशी श्री विद्या या पद्रह अक्षरोवाली देवी के ही श्री महात्रिपुरसुंदरी, वाला, अविका, वगला, मातगी, स्वयवर कल्याणी, भुवनेश्वरी, चामुडा, चडी, वाराही, तिरस्कारिणी, राजमातगी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, अश्वारूढा, प्रत्यगिरा, धूमावती, सावित्री सरस्वती, गायत्री, व्रह्मानद कला इत्यादि नाम हे।

कभी नष्ट न होनेवाले परम आकाश में जहा देवता निवास करते है, वही ऋचाए भी विद्यमान है। जो इसे नही जानता, वह यदि ऋचाओं का अध्ययन करता भी है, तो यह व्यर्थ है। इसको जानने पर, वही स्थान भी प्राप्त होता हैं।

□

101. राधा उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शांति . शाति · शांति :।

'वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत् भी पूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत्) की उत्पत्ति हुई है, अत उस पूर्ण ब्रह्म से यदि इस पूर्ण (जगत्) को पृथक् भी कर दे तो पूर्ण ही शेष रहता है।'

सनक आदि ऋषियों ने उपासना करने के बाद ब्रह्मा से पूछा, 'भगवन् ! कौन परम देवता है ? उसकी क्या-क्या शक्तियां है ? तथा इनमें कौन शक्ति सृष्टि का कारण है ?' इस पर ब्रह्मा बोले, 'पुत्रो ! यह परम गोपनीय रहस्य है। इसे प्रत्येक व्यक्ति को नही वताना चाहिए। आस्थावान्, गुरुभक्त ब्रह्मचारी के अतिरिक्त किसी अयोग्य व्यक्ति को इस विद्या को बताने से पाप का भागी होना पड़ता है। भगवान् कृष्ण ही परम देव है। वे छ ऐश्वर्योवाले हैं। गोप-गोपियो द्वारा सेवित तथा वृंदा द्वारा आराधित यह वृंदावनाधीश ही एक मात्र ईश्वर है। वही नारायण सभी ब्रह्माडो के स्वामी, नित्य एव पुराण पुरुष है। उनकी आह्लादिनी, संधिनी, ज्ञान, क्रिया आदि अनेक शक्तिया है, जिनमे आह्लादिनी शक्ति श्रेष्ठ है। यही राधा है, जिनकी कृष्ण भी पूजा करते हैं। इन्ही राधा को गंधर्वा भी कहा जाता है। इन्ही से लक्ष्मी भी उत्पन्न हुई है। रस के सागर कृष्ण की लीला के लिए एक होते हुए भी राधा-कृष्ण दो रूपो में विभक्त हुए है।

यही सर्वेश्वर कृष्ण की सर्वेश्वरी है, सनातन विद्या है तथा कृष्ण के प्राणों की देवी हैं। देवता भी एकाग्र होकर इनका ध्यान करते है। इनकी गति को कोई नही जानता। यह जिस पर प्रसन्न हो जाती है, तो समझो मोक्ष उसकी हथेली मे आ गया। इन्हे जाने बिना कृष्ण की उपासना करनेवाला सबसे बड़ा मूर्ख है। वेद भी राधा के इन नामो को गाते हैं—राधा, रसेश्वरी, रम्या, कृष्ण मत्र की देवता, सर्वाद्या, सर्ववंद्या, वृंदावन विहारिणी इत्यादि। इन नामो को पढ़नेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है। घर, आभूषण, शैय्या, मित्र, सेवक आदि की शक्ति ही संधिनी शक्ति है। इच्छा शक्ति माया है। यह सत्त्व आदि तीन गुणोवाली शक्ति ही जगत का कारण है। यह अविद्या बनकर जीव को बधन मे डाल देती है। क्रिया शक्ति भगवान् की लीला-शक्ति है।

जो इस उपनिषद् को पढ़ता है, वह अव्रती भी हो, तो व्रती हो जाता है। वह वायु आदि सभी देवताओ के समान पवित्र हो जाता है। वह राधा-कृष्ण का प्रिय होकर जहा तक देखता है, सवको पवित्र कर देता है।

☐

63. जाबालोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है । उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अत उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दें तो पूर्ण ही शेप रहता है ।

प्रथम खंड

बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य से पूछा, 'देवताओं का क्षेत्र कौन-सा है ? देवयजन क्या है ? सबका ब्रह्म सदन क्या है ?' याज्ञवल्क्य बोले, 'अविमुक्त ही देवताओ (प्राणों) का क्षेत्र है । यही इद्रियो का देवयजन है और प्राणियो का ब्रह्मसदन है । अतः कही भी जाने पर इसी को कुरुक्षेत्र (प्राणों का स्थान) समझना चाहिए । इसी को देवयजन और ब्रह्मसदन समझना चाहिए । प्राणों के निकलने पर रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश देता है, जिसमें अमरता एव मुक्ति मिलती है । अत प्राणो को अविमुक्त (बिना मुक्त किए) ही पूजना चाहिए, इन्हें त्यागना नही चाहिए ।

द्वितीय खंड

अत्रि ने याज्ञवल्क्य से पूछा, 'इस अनंत एव अव्यक्त आत्मा को कैसे जाना जाए ?' याज्ञवल्क्य बोले, 'अविमुक्त की ही उपासना करनी चाहिए । यह आत्मा अविमुक्त मे ही स्थित है ।' वह अविमुक्त किसमें स्थित है, इसके उत्तर में उन्होंने बताया कि यह वरणा एव नासी के बीच मे स्थित है । वरणा और नासी क्या है ? इसका उत्तर दिया कि इद्रियो को दोषो से रोकनेवाली वरणा तथा नासी इनके द्वारा किए गए पापो को नष्ट करती है । भौह एव नाक के मिलने का स्थान लोक-परलोक के मिलन का स्थान भी है । ब्रह्मवेत्ता इसकी दोनों सध्याओ मे उपासना करते है । अत अविमुक्त ही उपासना करने योग्य है । इसकी उपासना से ज्ञानवान बना व्यक्ति ही दूसरो को आत्मा के सबध में उपदेश दे सकता है ।

तृतीय खंड

ब्रह्मचारियो ने गुरु याज्ञवल्क्य से पूछा, 'किसके ज्ञान से अमृतत्व प्राप्त होता है ?' याज्ञवल्क्य बोले, शतरुद्रीय का जप करने से अमृतत्व की प्राप्ति होती है । इससे प्राणी मृत्यु को जीत लेता है ।

(इस उपनिषद के शेष चार खड इससे पूर्व याज्ञवल्क्य उपनिषद का प्रारभिक अंश ही है । अर्थात याज्ञवल्क्य उपनिषद के प्रारंभ मे 'जनक द्वारा याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछने से लेकर संन्यासी प्रयत्नपूर्वक अपने शुभ-अशुभ कर्मों को नष्ट करते हुए देह त्याग करते है ।' तक का वृत्तात ही इस उपनिषद का शेष भाग है, अत उसे यहां देना निरर्थक विस्तार ही होगा) ।

102. तुलसी उपनिषद्

तुलसी उपनिषद् के ऋषि नारद, छद अथर्वांगिरस एव देवता अमृता तुलसी है। बीज सुधा है, शक्ति वसुधा है तथा कीलक नारायण है। यह तुलसी सांवले शरीरवाली है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं कल्प क्रमश इसके रूप, मन, प्राण एव हाथ है। इसका वर्णन पुराणो मे है। यह अमृत से उत्पन्न रस की मंजरी के समान अनेकों रसों एव भोगों को देनेवाली है। यह विष्णु की प्रिया है, मृत्य-जन्म से मुक्त करनेवाली है, दर्शनों से ही पाप नष्ट करनेवाली, स्पर्श से पवित्र करनेवाली, वदना करने पर रोग नष्ट करनेवाली, सेवन से मृत्यु नाशक, विष्णु में चढ़ाने से विपत्ति नाश करनेवाली, खाने से प्राणशक्ति देनेवाली, परिक्रमा से निर्धनता दूर करनेवाली, जड मे लीपने से महापाप नष्ट करनेवाली तथा सूघने से अदर के मैल को नष्ट करनेवाली है। इसे जाननेवाला सच्चा वैष्णव है। इसे व्यर्थ न तोडें, देखने पर परिक्रमा करे, रात्रि मे न छुए, पर्वो मे न तोडे और जो पर्व मे तोडेगा तो विष्णु का अपमान करेगा। तुलसी, विष्णुप्रिया एव अमृता को हम अपनी श्रद्धा देते है। हम तुलसी को जानते हैं, विष्णुप्रिया का ध्यान करते हैं और अमृता हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे।

हे क्षीरसागर की पुत्री अमृता, तुम अमृत देनेवाली हो अत ससार से मेरा उद्धार करो। तुम आनदमय हो, लक्ष्मी की सखी हो तथा अत्यंत दुर्लभ हो। अपने अभयमुद्रावाले हाथों से मुझ पर कृपा करो। तुम वृक्ष न होकर भी वृक्ष के रूप मे हो, तुम मेरा अज्ञान दूर करो। हे तुलसी। तुम अतुलनीय रूपवाली, करोडों तुलाओं से बढकर तथा अजरा (देवी) हो, केवल हरि ही तुम्हारी तुलना कर सकते हैं। केवल तुम्ही जगत् माता, विष्णुप्रिया, देवताओं की पूज्या तथा मोक्ष देनेवाली हो। तुम्हारी छाया में लक्ष्मी, जड मे विष्णु तथा चारों ओर सभी देवना, सिद्ध, चारण, नाग आदि रहते है। तुम्हारी जड के चारों ओर ही सभी तीर्थ तथा मध्य में ब्रह्मा रहते है। अगले भाग पर सभी वेद, शास्त्रोंवाली उस तुलसी को मैं नमस्कार करता हूं।

तुम्हें नारद प्रणाम करते हैं। तुम विष्णु का मन हो। ब्रह्मा के आनद के आसुओ से तुम्हारा जन्म हुआ है तथा तुम्हारे प्रत्येक अग में अमृत है। तुम वृदावन में विहार करती हो। तुम्ही सब पापो का प्रायश्चित्त हो, मुझे भयकर ससार सागर से पार करो। तुम देवों, पितरों तथा ऋषियों को प्रिय हो। बिना तुलसीवाला श्राद्ध पितरों को नही मिलता, तुलसी-पत्र के बिना की गई पूजा राक्षसी पूजा है, इससे विष्णु प्रसन्न नही होते। बिना तुलसी के कोई भी यज्ञ, दान, तर्पण, तीर्थ, श्राद्ध आदि नही करना चाहिए। तुलसी की माला से किया गया जप सारी इच्छाए पूरी करता है। इसे न जाननेवाला ब्राह्मण चाडाल से भी नीच है।

यह ज्ञान विष्णु ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने नारद, सनक आदि को, सनक आदि ने वेद व्यास को, व्यास ने शुकदेव को, शुकदेव ने वामदेव को, वामदेव ने मुनियो को तथा मुनियों ने मनुष्यों को दिया। इसे जाननेवाला स्त्रीहत्या, वीरहत्या, महाभय और महादु खों से मुक्त होकर वैकुंठ प्राप्त करता है।

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णभि. शृणुयाम देवा भद्र पश्येमातक्षिभिर्यजत्रा
स्थिरैरगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु.।
स्वस्ति न इद्रो वृद्धाश्रवाः स्वस्ति न पूषा. विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि. स्वस्ति नः बृहस्पतिर्दधातु।

ॐ शाति· शांति. शांति ।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुने, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखे और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे। इद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगलनाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शात हो।'

सूर्य के विषय में अथर्ववेदीय मंत्रों की व्याख्या की जाती है। इनके ऋषि, देवता तथा छद क्रमश· ब्रह्मा, आदित्य तथा गायत्री है। हंस बीज है, हल्लेखा शक्ति है तथा सृष्टियुक्त आकाश कीलक है। चारो पुरुपार्थों (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) की सिद्धि के लिए इनका विनियोग होता है। छ स्वरों पर बैठे हुए बीज सहित छ· दलोंवाले लाल कमल पर स्थित सात घोड़ों के रथ मे सोने समान रगवाले सूर्य, चार भुजाओवाले है। दो हाथों में कमल है। एक हाथ से अभय की, दूसरे से वरदान की मुद्रा बनी है। ऐसे समय चक्र को चलाने वाले सूर्य को जाननेवाला ही ब्राह्मण होता है।

उस सविता का यश वरेण्य (वरण करने योग्य) है, हम उसका चिंतन करते है, जो हमारी बुद्धियो को प्रेरित करे। सूर्य समस्त जगत् का आत्मा है, उसी से समस्त प्राणी, यज्ञ, मेघ, अन्न तथा आत्मा उत्पन्न होते हैं। हे आदित्य। तुम्हे नमस्कार है, क्योकि तुम्ही प्रत्यक्ष कर्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ऋक्, यजुष्, साम एव अथर्ववेद तथा सभी छंद हो।

आदित्य से वायु, भूमि, जल, ज्योति, आकाश, दिशाए, देवता तथा वेद उत्पन्न होते हैं। आदित्य ही ब्रह्मांडो को तपाता है। वही ब्रह्म, अंतःकरण, पाचों प्राण, पाचों ज्ञानेंद्रियां, पाचों कर्मेंद्रियां तथा इन दसो के विषय भी है। वही अनंत ज्ञान एवं विज्ञान से युक्त है।

हे सूर्य। तुम्हे नमस्कार है, मुझे मृत्यु से बचा लो। तेजस्वी सूर्य ही विश्व का कारण है, उसे नमस्कार है। सभी प्राणी सूर्य से ही उत्पन्न होते हैं, उसी से पलते हैं तथा उसी में लय हो जाते हैं। जो सूर्य हैं, वही मैं भी हू। सूर्य ही हमारे नेत्र हैं, वह हमें देखने की शक्ति दे। हम आदित्य को जानते हैं, हजारों किरणोंवाले का ध्यान करते हैं, वह सूर्य हमें प्रेरणा दे। सविता सामने-पीछे, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे सभी ओर से व्याप्त है। वह हमारे लिए सब कुछ उत्पन्न करे और हमें लबी आयु दे। 'ॐ' में एक, 'घृणि' में दो, सूर्य मे दो तथा आदित्यों में तीन अक्षर हैं, इन्ही से सूर्य का अष्टाक्षर (आठ अक्षरोंवाला) मत्र बनता है।

103. नारायण उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ॐ शातिः शाति. शाति ।

'परमात्मा हम दोनो (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमे उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करे। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करे।'

पुरुषरूपी नारायण को सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा हुई। सर्वप्रथम नारायण से प्राण की उत्पत्ति हुई। फिर मन तथा सभी इद्रिया पैदा हुईं। समस्त विश्व को धारण करनेवाले आकाश, वायु, अग्नि, जल एव पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। नारायण से ही रुद्र, इद्र, प्रजापति, बारह आदित्य, रुद्र, वसु तथा सभी छंद उत्पन्न हुए। ये सब नारायण से ही पैदा होते है, उन्ही में पलते है तथा उन्ही मे मिल जाते है। इस ऋग्वेद के सिर के समान श्रेष्ठ ज्ञान का विद्वान अध्ययन करते है। नारायण नित्य है। वही ब्रह्मा, शिव, इंद्र, काल, दिशाएं, उपदिशाएं, ऊपर, नीचे, अदर तथा बाहर सब कुछ है। भूत, भविष्य, निष्कल, निरजन, निर्विकल्प, अवर्णनीय एव शुद्ध वही एक नारायण ही हैं। इसे जाननेवाला विष्णु मे मिल जाता है। इस यजुर्वेद के सिर के समान श्रेष्ठ ज्ञान का ज्ञाता भी उन्हें प्राप्त करता है। (1-2)

पहले 'ॐ' फिर 'नम.' कहे इसके बाद नारायण कहे (अर्थात 'ॐ नमो नारायण' कहे)। 'ॐ' यह एकाक्षर मत्र है, 'नम' मे दो अक्षर है और 'नारायण' मे पांच अक्षर है। इन सबसे आठ अक्षरो का नारायण मत्र होता है। यही नारायण का अष्टाक्षर मृत्यु का नाशक मंत्र है। इसके साथ ही इससे सतान, धन आदि की प्राप्ति के बाद अमृतत्व प्राप्त होता है। यह सामवेद के सिर के समान है। इसके ज्ञान से अमृतत्व प्राप्त होता है। 'अ', 'उ' तथा 'म' से बने ॐ के जप से योगी ससार के बधनो से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करता है। आठ अक्षर के नारायण मंत्र के जप से बैकुठ प्राप्त होता है। हृदय कमल में विद्युत् की आभा जैसा ब्रह्म ही देवकी पुत्र, मधुसूदन, पुडरीकाक्ष, विष्णु तथा अच्युत कहा जाता है। सभी प्राणियो में रहनेवाले नारायण ही सबके कारण हैं। उनका कोई भी कारण नही है। यह अथर्व सिर है। इसका प्रातः का अध्ययन रात्रि में किए हुए तथा सायकाल का अध्ययन दिन मे किए पापो को नष्ट करता है। इन दोनों समयों में पढ़ने से साधक निष्पाप हो जाता है। दोपहर मे सूर्य की ओर मुख करके पढने से पाच महापापो से मुक्ति तथा सभी वेदों एव पुराणो के अध्ययन का फल मिलता है। अंत मे साधक को नारायण का सायुज्य (शरीर से भगवान मे मिल जाना) मिलता है।

□

इस उपनिषद् का नित्य जप करनेवाला ब्रह्मज्ञानी बनता है। इसे सूर्य की ओर मुख करके जपने से महारोगो का भय नष्ट होता है। निर्धनता दूर होती है, अभक्ष्य भक्षण तथा असत्य भाषण के पाप नष्ट होते है। दोपहर में सूर्य की ओर मुख करते हुए पढने से पाच महापापो से मुक्त हो जाता है। इस सावित्री विद्या की कही भी किसी के सामने प्रशंसा नही करनी चाहिए। जो भाग्यशाली इसे प्रातःकाल पढता है, उसके सौभाग्य की वृद्धि होती है, पशुधन वढता है एवं उसे वेदो का अर्थ ज्ञात होता है। इसे तीनो समय पढने से सैकडो यज्ञों का फल मिलता है। हस्त नक्षत्र मे सूर्य होने पर इसका जप महामृत्युंजय का नाश करता है।

□

64. परमहंस उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शाति शांति शांति ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अत उस पूर्ण ब्रह्म से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दे तो पूर्ण ही शेष रहता है।

भगवान ब्रह्म के पास जाकर नारद ने पूछा कि परमहस सन्यासियो की दीक्षा कैसे होती है ? और उनका मार्ग क्या है ? इस प्रश्न पर भगवान ने बताया कि परमहस सन्यास का मार्ग अत्यत कठिन है। इसीलिए ये अत्यत दुर्लभ होते है। कभी-कभार एकाध परमहस दिखाई पड जाता है। यह बडा पवित्र आत्मा होता है। विद्वान इसे वेद पुरुष मानते है। इसका चित्त सदा मुझमे ही लगा रहता है और मै भी उसी मे रहता हूं। संन्यासी अपने पुत्र, मित्र, पत्नी आदि तथा यज्ञोपवीत, अध्ययन आदि समस्त कर्मो सहित सब प्रकार से समस्त ब्रह्माड का भी त्याग कर देता है। यह केवल कौपीन, दंड तथा आच्छादन वस्त्र (चादर) ही धारण करता है। शरीर के उपभोग के लिए (न कि भोगो के उपभोग के लिए) तथा लोक कल्याण के लिए ही इन चीजो को धारण करता है। ये दड आदि भी इसके लिए विशेष महत्त्व के नही है। (1)

इन वस्तुओं के साथ ही यह शीत-उष्ण, सुख-दुःख तथा मान-अपमान को भी त्याग देता है। काम, क्रोध, लोभ, निंदा, गर्व, दर्प आदि से ऊपर उठकर अपने शरीर को मृतक जैसा समझता है। इसे भ्रम और माया से मुक्ति मिल जाती है। यह सत्य ज्ञान का साकार रूप होता है। इसे ससार की किसी वस्तु की आवश्यकता नही रह जाती है। यह 'मै अचल-अद्वैत-आनद-चिद्धन ब्रह्म हू। वही परम धाम मेरी शिखा और यज्ञोपवीत है।' ऐसा अनुभव करता हुआ आत्मा एव परमात्मा को समान मानता है, उनमें कोई भेद नही मानता और यही इसकी सध्या होती है। सभी इच्छाओं को त्यागकर ज्ञानरूपी दड को धारण करके ब्रह्म मे रहनेवाला ही दंडी कहलाता है। आशा-इच्छा रखनेवाला ज्ञान-वैराग्य आदि से रहित भिक्षा मांगकर जीनेवाला संन्यासी कलंक है। वह रौरव नरक मे जाता है। इस अंतर को जाननेवाला ही परमहंस बनता है। (2-3)

आशावर (दिगवर) नमस्कार, स्वाहा, स्वधा, निंदा, प्रशसा न करता है, न कराता है। भिक्षा मागकर पेट भरता है। देवपूजा, आह्वान, विसर्जन, मत्र, ध्यान, उपासना आदि कुछ नही करता। उसके लिए कोई भी प्राणी या वस्तु उससे अलग नही होती। उसे सोने या किसी भी वस्तु का सग्रह नही करना चाहिए। उसके लिए कोई भी वस्तु वाधा नही बनती, कोई वस्तु दर्शनीय नही रहती और संग्रह करनेवाले सन्यासी को ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। वह रूप, रस, सुख, दुःख, अनुराग, द्वेष आदि मे बहुत दूर होता है। वह सब इंद्रियों से ऊपर होकर आत्मा में स्थित रहता है। उस पूर्ण आनद के ज्ञान मे 'मै वही ब्रह्म हू' ऐसा मानता हुआ सन्यासी अपने जीवन को धन्य करता है। (4)

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभि. शृणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षभिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति न बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शांति शाति: शाति ।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखे और दृढ़ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करे। अमगलनाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करे। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दु ख शात हों।'

गुरु परम शक्ति है। नौ छिद्रोंवाले शरीर में नौ चक्र है। वारा ही पितारूप तथा कुरुकुल्ला माता रूप है। चारों पुरुपार्थ सागर तथा देह नौ रत्नों का द्वीप है। नौ मुद्राए इसकी मुख्य शक्तियां हैं। त्वचा आदि सात धातुओं से युक्त संकल्प कल्पवृक्ष है। तेजस्वी जीव उद्यान है। जीभ द्वारा चखे जानेवाले मीठा, खट्टा, कड़ुवा, कसैला, नमकीन और तीखा ये छ रस हैं। कुडलिनी ज्ञानशक्ति का घर है। इच्छा शक्ति महात्रिपुर सुदरी है। साधक होता (हवन करनेवाला) है, ज्ञान अध्वर्य तथा ज्ञेय हवि है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय मे अभिन्नता ज्ञात होना श्री चक्र की पूजा है। भाग्य सहित श्रृगार आदि नौ रस अणिमा आदि सिद्धिया है। काम, क्रोध आदि आठ शक्तिया है। पृथ्वी आदि महाभूत तथा इद्रिया आदि सोलह विकार शक्तिया है। बोलना, चलना आदि आठ शक्तिया है। इड़ा, पिंगला आदि चौदह नाड़िया चौदह देवता हैं। प्राण, अपान आदि दस वायु, सर्प, सिद्धिपद आदि देवता हैं। इन दस वायुओं के कारण रेचक, पूरक, शोषक आदि पाच रूपों में ग्रहण किया जाता है। ये मनुष्य में चारो प्रकार से लिए गए अन्न को पचाते हैं। शीत-उष्ण, सुख-दु ख, इच्छाए, तीनों गुण ही वशिनी आदि आठ शक्तियां हैं। शब्द, स्पर्श आदि पाच विषय पाच फूलों के बाण तथा मन ईख का धनुष है। वश में होना ही बाण है, अनुराग, बंधन तथा द्वेष अकुश है। अव्यक्त, महत्, अहंकार, कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी भीतरी त्रिकोण के आगेवाले देवता हैं। पद्रह तिथियों के रूप में समय की गणना श्रद्धारूपी पद्रह देवता हैं। वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी मे कामेश्वरी सत्, चित्, एव आनद रूप पूर्ण परमात्मा है।

इन देवताओं से एक हो जाना ही कर्तव्य है। ऐसी भावना पूजा है। भीतरी तथा बाहरी के रूप को पहचानना आह्वान है। इन दोनों कारणों को एक रूप में ग्रहण करना आसान है। लाल एव सफेद पदों (योग की विशेष अवस्था में) को एक करना पाद्य (भगवान के पाव धोने का जल) है। शिष्यो को सदानद, दाय उदानद स्थिति का उपदेश अर्घ्य है। स्वयं स्वच्छ एवं सिद्ध ही आचमन जल है।

डायमंड पॉकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित जीवनोपयोगी अनमोल पुस्तकें

डायमण्ड क्विज सीरिज

गणित प्रश्नोत्तरी
सास्कृतिक साहित्यिक प्रश्नोत्तरी
क्रिकेट प्रश्नोत्तरी
खेलकूद प्रश्नोत्तरी
विज्ञान प्रश्नोत्तरी
अर्थशास्त्र प्रश्नोत्तरी
इतिहास प्रश्नोत्तरी
भूगोल प्रश्नोत्तरी
मनोविज्ञान प्रश्नोत्तरी
सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी
ज्योतिष प्रश्नोत्तरी

अन्य

मुल्ला नसरूद्दीन
बात जिनमें सुगध फूलों की
सौ वर्ष जीने के साधन
मोहिनी, विद्या, साधना और सिद्धि
डायमड हिन्दी लर्निंग कोर्स
30 दिन में अग्रेजी सीखिए
हिंदी इंग्लिश बोलचाल
हिंन्दी इंग्लिश टीचर
मनोकामना सिद्धि
डायमड नालिज गाइड
सार्थक और सुखी बुढ़ापे की ओर
घरेलू बागवानी
अमृत वाणी
सुमन सचय
फर्स्ट एड
पचतत्र
हितोपदेश
क्रोध और अहकार से कैसे बचें
शराब, सिगरेट, बीडी कैसे छोड़े
प्रेमपत्र
पहेलियां ही पहेलिया
घाघ और भड्डरी की कहावते
जातक कथाए-1
जातक कथाए-11

छात्रोपयोगी पुस्तकें ले० अनन्त पे

स्मरण शक्ति कैसे बढाऐ
सफल कैसे बनें
आत्मविश्वास कैसे प्राप्त करे
बच्चो की सफलता मे सहायता बने

स्वेट मार्डेन

आत्मविश्वास की पूंजी
सफलता की कुजी
अवसर बीता जाय
अपने आपको पहचानिये
आगे बढ़ो
सफलता के सोपान
चिंता छोड़ो सुख से जियो
हसते-हसते कैसे जिये
आप क्या नहीं कर सकते
सफलता का रहस्य
जीवन और व्यवहार
विकास का पथ
उन्नति की राहे

सारे देह में 'चित्' की ज्योति का अनुभव स्नान है। चित् शक्ति का प्रकाशित होना वस्त्र है। इच्छा आदि के सत्ताईस भेद तथा ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना ही ब्रह्मसूत्र है। अपने से भिन्न वस्तु का स्मरण न करना ही विभूषण है। ब्रह्ममय स्वच्छ परिपूर्ण आत्मा का ध्यान सुगंध है। मन स्थिर होने पर विषयों का अनुसंधान पुष्प है और उन्हीं को स्वीकार करना धूप है। प्राणायाम में प्राण-अपान की एकता से सत्, चित्, उल्का के समान आकाश शरीर ही दीपक है। अपने अलावा अन्य विषयों में मन का न जाना नैवेद्य है। तीन अवस्थाओं को एक करना ताबूल है। मूलाधार से ब्रह्मरध्र तक तथा ब्रह्मरध्र से मूलाधार तक आना-जाना प्रदक्षिणा है। तुर्यावस्था नमस्कार है। देह को शून्य मानकर परमात्मा में लय होना बलि (भोग देना) है। इस प्रकार कर्तव्य-अकर्तव्य से उदासीन होकर लीन चितन ही होम है। स्वयं उस परमात्मा के चितन मे डूब जाना ही ध्यान है।

केवल तीन मुहूर्त तक भी ऐसा ध्यान करनेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कार्य चितन करने पर बिना प्रयत्न के ही सिद्ध हो जाते है। वही शिव योगी कहा जाता है।

□

इस उपनिषद् को महान् उपनिषद् भी कहा जाता है। तब एकमात्र नारायण ही था। ब्रह्मा, ईशान, जल, अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, सूर्य, आदि कोई भी नही थे। अकेला वह नर (नारायण) ही था। ध्यान में उसके ललाट से पसीना गिरा, वही जल बना। यही हमारा सुनहरा अन्न है। तब चतुर्मुख ब्रह्मा हुआ। उसने पूर्व को मुख किया 'भू:' इस व्याहृति से ऋग्वेद, गायत्री छद, पश्चिमाभिमुख (पश्चिम को मुख) होकर 'भू' से त्रिष्टुप् छद एव यजुर्वेद, उत्तराभिमुख होकर 'भुव' से जगती छद एव सामवेद तथा दक्षिणाभिमुख होकर 'जन:' व्याहृति से अनुष्टुप् छंद एव अथर्ववेद को कहा।

वह परम, नित्य, विश्व, नारायण, हरि हजारों मुखो तथा हजारो नेत्रोवाला विश्व को उत्पन्न करनेवाला है। वह ऋषिरूपी ससार का स्वामी, समुद्र मे सोनेवाला विश्वरूप एव परम पुरुष है। उसी के आश्रय से विश्व जीवित है। वह हृदय के आकाश मे नीचे मुख किए हुए कमल के समान लटका हुआ है और अपनी शक्तियों से क्रियारत है। वहां चारो ओर लपलपानेवाली अग्नि की ज्वाला है। उसके बीच में एक छोटी ज्वाला अणीय में स्थित है। इसी ज्वाला के बीच मे परमात्मा रहता है, जिसे ब्रह्म, ईशान, अक्षर, परम स्वराट् आदि नामों से जाना जाता है।

इस महान उपनिषद को पढनेवाला ब्राह्मण यदि श्रोत्रिय न हो, तो श्रोत्रिय हो जाता है और यदि उपनीत न हो, तो उपनीत हो जाता है। वह अग्नि, वायु, सूर्य, चद्रमा तथा सत्य के समान पवित्र हो जाता है। सभी देवों का ज्ञाता हो जाता है। उसे सभी तीर्थों के स्नान का, सभी यज्ञों का, साठ हजार गायत्री जप का, हजारो इतिहास-पुराण अध्ययन का तथा दस हजार प्रणव जप का फल मिलता है। वह जहा तक देखता है, लोग पवित्र हो जाते हैं। उसकी सात पीढिया पवित्र हो जाती है। निश्चित रूप में उसे अमृतत्व प्राप्त होता है।

देवता स्वर्ग में आए। उन्होंने हाथों को ऊपर उठाकर स्तुति करते हुए रुद्र से कहा, 'भू', 'भुव', 'स्व' क्रमश. आपके आदि, मध्य और सिर हैं, आप ही विश्वरूप तथा ब्रह्म है। दो प्रकार से या तीन प्रकार से दिया गया होम या न दिया गया, सर्व (सब कुछ) असर्व, विश्व-अविश्व, किया-न-किया, पर-अपर तथा परमधाम सब आप ही हैं। हमें अमृत प्राप्त हो और आपको जानें। हम आपको नमस्कार करते हैं। आप ही अमृत, सोम, सूर्य तथा जगत् को धारण करते हैं। आप ही ग्राह को ग्राहक से, भाव को भाव से तथा सूक्ष्म को सूक्ष्म से ग्रसते हैं। हे महाग्रास, आपको नमस्कार है।

☐

चाक्षुष उपनिषद्

इस चाक्षुष (आंखों-संबधी) विद्या को पढने से ही इसकी सिद्धि हो जाती है। यह विद्या आखों के रोगो को नष्ट करनेवाली है। इससे नेत्र ज्योति तेज होती है। इस चाक्षुषी विद्या के ऋषि अहिर्बुघ्न्य है, छंद गायत्री तथा देवता सूर्य है। नेत्र-रोगो से छुटकारा पाने के लिए इसका विनियोग होता है। मत्र निम्नलिखित है—

चक्षु, चक्षु, चक्षु तेज स्थिर हो। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। शीघ्र चक्षु रोगों को शांत करो, शात करो। हे सूर्य, मुझे तेज को दिखाओ, दिखाओ। जैसे मैं अंधा न होऊं, वैसा ही करो, वैसा ही करो। कल्याण करो-करो। मेरे पूर्व जन्म में किए गए जिन दुष्कर्मों से चक्षु प्रतिरोध हो रहा है, उन्हें सभी को निर्मूल करो, निर्मूल करो। चक्षुतेज देनेवाले दिव्य भास्कर को नमस्कार है। करुणाकर अमृत (सूर्य) को नमस्कार है। सूर्य को नमस्कार है। आंखो के तेज सूर्य को नमस्कार। खेचर (आकाश में चलनेवाला) को नमस्कार। महान को नमस्कार। रजस् को नमस्कार। तमस् को नमस्कार। मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ। मुझे अधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ। मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले जाओ। भगवान उष्ण (सूर्य) शुचि (पवित्रता) रूप है। भगवान् हंस (सूर्य) शुचि के प्रतिरूप हैं।

इस चाक्षुषमती का नित्य अध्ययन करनेवाले को नेत्र-रोग नही होते। उसके कुल मे कोई भी अंधा नही होता। आठ ब्राह्मणों को इसकी दीक्षा देने से विद्या सिद्ध होती है।

विश्वरूप जातवेदा तपती ज्योति के समान तथा सुनहरे रग के विश्व के कारण उग्ररूप से तपते हुए प्राणियों के कल्याण के लिए ये भगवान सूर्य उदय होते हैं। भगवान आदित्य को नमस्कार है। उनकी आभा दिनों रूपी भार का वहन करने (ढोने)वाली है। मेधा (वुद्धि) से प्रेम करनेवाले ऋषि सूर्य के पास जाकर प्रार्थना करने लगे, 'इस अधकार को नष्ट करिए, हमारी आखो को प्रकाश दीजिए। तमोगुण के बंधन में पड़े हुए हम प्राणियों को ज्ञान का प्रकाश दीजिए। पुडरीकाक्ष को नमस्कार। पुष्करेक्षण को नमस्कार। अमलेक्षण, कमलेक्षण, विश्वरूप और महाविष्णु (सव सूर्य के नाम) की नमस्कार।

□

108. कलि संतरणोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शाति शाति शाति:।

'परमात्मा हम (गुरु-शिष्य) की साथ ही रक्षा करे। हम साथ-साथ उपभोग एव वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम परस्पर विद्वेष न करे। तीनों प्रकार के दु ख शात हो।'

द्वापर युग के अंत मे एक बार नारद ब्रह्मा के पास गए और बोले, 'भगवन्, पृथ्वी मे घूमता हुआ मैं 'कलि' के प्रभाव से कैसे मुक्त रह सकता हू, इसका उपाय बताइए।' इस पर ब्रह्मा ने कहा, 'तुमने बडी अच्छी बात पूछी है। समस्त वेदो का परम गोपनीय रहस्य तुम्हे बताता हू, इसे सुनो। इसी से तुम कलियुग के ससार से मुक्त हो जाओगे। भगवान आदिपुरुष नारायण के नाम का उच्चारण करने से कलि के दोष नष्ट हो जाते है।' नारद बोले, 'वह कौन-सा नाम है?' ब्रह्मा बोले, 'यह नाम इस प्रकार है—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इन सोलह नामों से कलिमल का नाश होता है। सभी वेदो में भी इससे बढ़कर कोई उपाय नही है। इन सोलह कलाओ के ज्ञान से जीव का अज्ञान नष्ट हो जाता है। उससे ब्रह्म प्रकाशित होता है, जैसे बादलों के हटने पर सूर्यदर्शन होता है। 'इसकी क्या विधि है?' नारद के प्रश्न पर ब्रह्मा बोले, 'इसकी कोई भी विधि नही है। शुद्ध-अशुद्ध किसी भी अवस्था मे इसे जपने से ब्रह्म की सलोकता, समीपता, सरूपता तथा सायुज्यता प्राप्त होती है। इसके साढ़े तीन करोड जप से ब्रह्महत्या, वीरहत्या तथा स्वर्ण चोरी के पाप छूट जाते है। पितरों, देवताओं तथा मनुष्यो के प्रति किए गए अपकार से पवित्र हो जाता है। सभी धर्मों (नियमो, आचरणो) के परित्याग का पाप छूट जाता है और पवित्रता प्राप्त होती है।

☐

डायमंड पॉकेट बुक्स में स्वास्थ्य, योग, सैक्स एजुकेशन व महिलापयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
रकी (स्पर्श चिकित्सा क अदभूत रहस्य)*	99.00
रेकी (स्पर्श से सुखी प्राकृतिक चिकित्सा)*	60.00
रकी (सार्वभोमिक उर्जा)*	60.00
भोजन द्वारा स्वास्थ्य*	40.00
मानसिक रोग, कारण और निवारण*	30.00
अस्थमा, एलर्जी, कारण और निवारण*	30.00
दादी माँ के घरेलु नुस्खे*	30.00
ऑखो के राग और उनका इलाज*	30.00
घरेलू इलाज*	30.00
नशा एव एड्स का उपचार*	30.00
कमर दर्द, कारण और निवारण*	30.00
श्वास सबधी रोग और उनका उपचार*	30.00
स्त्री रोगो की सहज चिकित्सा*	30.00
त्वचा रोग एव सौन्दर्य (Skin Care)*	30.00
पेट, पथरी, गेस राग कारण और निवारण*	30.00
चुम्बक चिकित्सा*	30.00
मोटापा कैसे घटाए*	20.00
कद कैसे लम्बा करे*	20.00
मधुमेह : कारण और इलाज*	30.00
हार्ट अटैक: कारण और इलाज*	30.00
एक्यूपचर गाइड*	30.00
एक्यूप्रेशर गाइड*	30.00
पारिवारिक होम्योपैथिक गाइड*	40.00
आयुर्वेदिक औषधिया	40.00
ऐलोपैथिक गाइड	45.00
प्राकृतिक चिकित्सा*	30.00
सूर्य चिकित्सा*	30.00
तनाव मुक्ति के उपाय*	30.00
अपना स्वास्थ्य अपने हाथ*	40.00
फलो व सब्जियों के रस से चिकित्सा*	30.00
भैषज्य भास्कर*	50.00
जडी-बूटियां से इलाज*	30.00
नाडी भविष्य*	30.00
योगासन और स्वास्थ्य*	40.00
स्वमूत्र चिकित्सा*	25.00
एड्स	5.00
मेरिज मेनुअल (युवा दम्पति के लिए सैक्स गाइड)*	30.00
मेडिकल सेक्स गाइड*	40.00

पुस्तक	मूल्य
बृहद् वात्सयन कामसूत्र*	30.00
सेक्स समस्याए और समाधान*	30.00
सेक्स और पति पत्नी	25.00
सेक्स के 101 सवाल	25.00
सेक्स समस्याए और उनकी औषधिया	25.00
सेक्स और स्त्री पुरुष	25.00
सेक्स पावर कैसे बढाए	25.00
सेक्स शक्ति कैसे बढाए*	40.00
सभोग शक्ति कैसे बढाए	25.00
तत्र शक्ति साधना और सैक्स*	30.00
विवाहित जीवन और सेक्स*	40.00
लेडीज स्लिमिग कोर्स*	30.00
मनचाही सन्तान कितनी आसान*	30.00
लेडीज हेल्थ गाइड*	40.00
गर्भवती व शिशु पालन	30.00
बेबी हेल्थ गाइड*	30.00
ब्यूटी गाइड*	40.00
बच्चो के सुन्दर नाम*	25.00
लेडीज सगीत	25.00
स्तन सोंदर्य	20.00
डायमड कुकरी गाइड	25.00
अचार, मुरब्बे, चटनी	25.00
शाकाहारी व्यजन	25.00
मासाहारी व्यजन	25.00
नाश्ते के व्यजन	25.00
मेहदी से श्रृगार*	20.00
आधुनिक महदी डिजाइन	30.00
सूखी, भरवा, रसेदार सब्जिया कढिया व दालें*	40.00
दक्षिण भारतीय व्यजन*	40.00
पजाबी व्यजन*	40.00
गुजराती व्यजन*	40.00
मिठाइया, आइस्क्रीम, पुडिग, केक और पस्ट्री*	40.00
चाईनीज व्यंजन*	40.00
जूस, शरबत तथा अन्य पेय पदार्थ*	40.00
मुगलई कुक बुक*	40.00
चावल के व्यजन*	40.00
माइक्रोवेव कुकिंग*	40.00
लाक्लोरिज व्यंजन*	40.00

डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.

X-30, ओखला इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज–2, नई दिल्ली–110020

पुस्तक VPP से मगाने के लिय 10/- की Postal Stamps आर्डर के साथ अवश्य भेज।
कोई भी तीन पुस्तके मगवाने पर डाक व्यय फ्री। डाक व्यय प्रति पुस्तक 5/-

निरालंब पीठ के समान है, अमृत आनद मे कल्लोल क्रीड़ा करते हुए वे मग्न रहते है। परमात्मारूप आकाश में शम-दम आदि से वे ब्रह्म से मिलते है। वे तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं। अद्वैत ब्रह्म ही उनका आराध्य है। इद्रिय संयम उनका वेद है। भय, क्रोध, मोह आदि को छोडना त्याग है। ब्रह्म से एकता ही उनके लिए स्वाद है। किसी को वश मे न करना तथा तिरस्कार न करना ही उनकी निर्मल शक्ति है। वे स्वयं प्रकाश ब्रह्म के संपुट से माया को काटते है। इसी से आसक्ति को जलाते है। आकाश के आधार ब्रह्म को धारण करना ही उनका यज्ञोपवीत एवं शिखा है। 'सत' ब्रह्म, उसका दर्शन एवं कर्मो को नष्ट करना ही क्रमश उनका दंड कमंडलु तथा कथा है। माया, ममता और अहंकार को जलाकर श्मशानवास ही उनकी जीवनचर्या है।

त्रिगुणहीन स्वरूप को खोजने के लिए माया को नष्ट करने में ही उनका समय बीतता है। काम आदि को वे जला डालते है। वे कठिन एवं दृढ़ कौपीन (लंगोट) वाले होते है। पुराने जीर्ण वस्त्र उनके वस्त्र होते है। वे अनाहत का बिना किसी क्रिया के सेवन करते हैं। मोक्ष मिलने पर कोई आचार-विचार नही होता, ऐसा स्मृतियो का कथन है। उनका आचार परम ब्रह्म रूप नाव के समान होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में शातिपूर्वक ज्ञान प्राप्त करके पुन· वानप्रस्थ में अध्ययन करके सबसे भिन्न संन्यास आश्रम होता है। अत मे अखंड ब्रह्म के समान बनकर समस्त सदेहों को नष्ट करना, यही निर्वाण का दर्शन है। इस ज्ञान को शिष्य या पुत्र को छोडकर अन्य किसी को नही देना चाहिए।

□

का ध्यान करते हुए 'तुम ब्रह्म हो,तुम यज्ञ हो' इस मंत्र के साथ सावित्री में प्रवेश करे। सभी वेदो की मा गायत्री को जल मे व्याहृति से लय करे और उस जल को पिए। प्रणव का उच्चारण करके शिखा को उखाड़ दे और वस्त्रो को भी त्याग कर इसके साथ ही भूमि मे या जल में विसर्जित कर दे। 'ओम भू स्वाहा' 'ओम भुव स्वाहा' मत्र से वस्त्रहीन होकर अपने रूप का ध्यान करे। फिर प्रणव की व्याहृतियो से 'मैंने मन, वाणी और कर्म से संन्यास ले लिया है' ऐसा पहले धीरे, फिर मध्यम तथा फिर ऊंचे स्वर मे तीन बार कहे। तब सभी प्राणियों को अभय दान देने के लिए हाथ ऊपर उठाकर प्रणव का ध्यान करता हुआ 'मै ब्रह्म हूं', 'तुम वही ब्रह्म हो', इन महावाक्यों पर विचार करता हुआ उत्तर दिशा मे चला जाए। यही सन्यास लेना है।

'यदि ऐसा न कर सके, तो गृहस्थ के बाद सभी प्राणियों को अभय दान देकर 'सखा मा ' मत्र से निर्दोष बांस का दंड लेकर कमडलु तथा गेरुआ वस्त्र पहनकर किसी योग्य गुरु से 'तत्त्वमसि' तथा प्रणव ज्ञान प्राप्त करे। फिर छाल या मृगचर्म धारण करे। जल मे तैरना, सवारी करना तथा एक ही घर से भिक्षा लेना, ऐसा न करे। तीनों समय स्नान करे, वेदांत श्रवण और अध्ययन करे, प्रणव का अनुष्ठान, ब्रह्मज्ञान करके अपने विचारो को गुप्त रखे। काम, क्रोध आदि को त्यागकर ज्ञान-वैराग्य से युक्त, शुद्ध तथा स्त्रियो से दूर रहे। सभी उपनिषदों को जानकर ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि का पालन करे। सभी प्रकार के अनुराग से दूर रहे। पतितों को छोड़कर शरीर-रक्षा के लिए चारो वर्णों से भिक्षा मांगे। लाभ-हानि को समान समझता हुआ हाथ को ही बर्तन समझे और इसी में भोजन करे। शरीर मे चर्बी न बढ़ने दे। 'मै ब्रह्म हूं' ऐसा मानकर वर्ष में गावों में मागता हुआ घूमता रहे।

'ज्ञान प्राप्त होने पर कुटीचक्र, बहूदक, हंस या परमहंस बनकर नग्न रहे। कौपीन आदि को भी जल में बहा दे। गाव मे एक, तीर्थ मे तीन, छोटे कस्बों में पाच तथा शहर में सात रात्रि रहे। बुद्धि को चंचल न करे, निर्विकार रहे, नियम-अनियम त्याग दे। गाय की तरह मागे। जलाशय को ही कमंडलु समझे। शुभ-अशुभ कर्मो को नष्ट कर, भूमि में शयन करे। सात्त्विक रहे। स्त्री-पुत्र आदि का ध्यान न करे। ज्ञानी होने पर भी अज्ञानी की तरह गुप्त रहे। इस प्रकार रात-दिन अपने स्वरूप के अनुसंधान में तथा प्रणव के ध्यान मे लगा हुआ देह त्याग करनेवाला परमहंस सन्यासी ही होता है।' (3)

'ब्रह्म प्रणव कैसा होता है ?' ब्रह्मा के इस प्रश्न पर नारायण ने बताया—'यह सोलह प्रकार का होता है। चारों अवस्थाओं में चारों को मिलाने से ये भेद होते हैं। जागृत अवस्था में जागृत तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एव तुरीय, इसी प्रकार स्वप्न में भी चारों सुषुप्ति में भी चारों तथा तुरीय में भी चारों अवस्थाए रहती है। जागृत अवस्था में विश्व चार प्रकार का होता है—विश्व-विश्व, विश्व-तैजस, विश्व-प्राज्ञ एवं विश्व- तुरीय। स्वप्न अवस्था में तैजस चार प्रकार का होता है। तैजस-विश्व, तैजस-तैजस, तैजस-प्राज्ञ एव तैजस-तुरीय। इसी प्रकार सुषुप्ति में प्राज्ञ तथा तुरीय में तुरीय भी चार प्रकार का होता है। (ओम् = अ + उ + म्) 'अ' में जागृत विश्व, 'उ' में जागृत तैजस, 'म' में जागृत प्राज्ञ तथा अर्द्धमात्रा में जागृत तुरीय होता है। विंदु, नाद, कला, कलातीत, शांति, शांति-अतीत, उन्मनी तथा मनोन्मनी में क्रमश: स्वप्न विश्व, स्वप्न तैजस, स्वप्न प्राज्ञ, स्वप्न तुरीय, सुषुप्त विश्व, सुषुप्त तैजस, सुषुप्त प्राज्ञ तथा सुषुप्त तुरीय होता है। पूर्ण तुरीय (वैखरी) में विश्व,

शांतिपाठ:

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शांतिः शांति. शांतिः।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है। उसी पूर्ण से इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अत उस पूर्ण से इस पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

मोक्ष के इच्छुक भिक्षु चार प्रकार के होते हैं—कुटीचक्र, बहूदक, हंस और परमहस। गौतम, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ आदि कुटीचक्र ही थे। कुटीचक्र केवल आठ ग्रास भोजन करके योग के मार्ग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। बहूदक, त्रिदंड, कमंडलु, शिखा, जनेऊ तथा काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण करते हैं। वे मधु-मांस का त्याग करके केवल महर्षि के घर से आठ कौर भोजन करते है तथा योगमार्ग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। हंस संन्यासी गांव में एक रात्रि, नगर में पांच रात्रि तथा क्षेत्र मे सात रात्रि से अधिक नहीं रुकते। वे गोबर एवं गोमूत्र का आहार करते हुए सदा चांद्रायण व्रत करते है और योग के मार्ग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। परमहंस संन्यासी भी आठ कौर भोजन करते है। योग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, जड़भरत, दत्तात्रेय, शुकदेव, वामदेव, हारीत आदि परमहंस ही थे। ये वृक्ष के नीचे, उजड़े घर या श्मशान में कहीं भी दिगंबर या वस्त्रधारी दोनो रूपों में रहते हैं। इन्हें धर्म-अधर्म, लाभ-हानि, वर्ण-जाति से [illegible] नही होता। सभी मे एक ही आत्मा को देखते हुए सबसे भिक्षा लेते हैं। ये वस्त्रहीन, [illegible] , ब्रह्म के ध्या[illegible] हुए केवल प्राणों की ही रक्षा हेतु भिक्षा मांगते हैं। सूने घर, [illegible] क की [illegible] का छप्पर, यज्ञशाला, पहाड़ी गुफा, गड्ढा आदि किसी भी स्था[illegible] शुद्ध मन से परमहंस संन्यासी [illegible] नियमों का पालन करते हुए
(1-5)

65. निर्वाणोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराविम एधि वेदस्य न आणिस्थ । श्रुत मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्सदधाम्यृत वदिष्यामि । सत्य वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तात्मवतु । अवतु मामवतु वक्तारम ।

ॐ शाति शंति शाति ।

हे परमात्मा,मेरी वाणी,मन मे प्रतिष्ठित हो,मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो,तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ । मुझे वेदों का ज्ञान दो । मै सुने हुए ज्ञान को न भूलूं । इस अध्ययन से मै रात-दिन एक कर दूं,मै ऋत एव सत्य बोलू । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनों की रक्षा करो । दैहिक, दैविक तथा भौतिक,तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शात हों ।

यहा निर्वाण ज्ञान की व्याख्या की जाती है । मै परमहस ही हूं,परिव्राजकों के कोई चिह्न नही होते । वे कामदेव को रोकने मे क्षेत्रपाल के समान होते है । सदेहरहित आत्मा ही उनका ऋषि है, मोक्ष देवता है,उनका उद्देश्य आकाश के समान बिना कोई अपेक्षावाला होता है,अमृत तरगो से कल्लोल करनेवाली नदी के समान आत्मा ही संन्यासी है,मोक्ष ही उसका स्वरूप है,उसकी प्रवृत्ति उपाधि (माया) रहित होती है,उच्च स्थिति के लिए अभ्यास करना ही उसकी पीठ (उपासना स्थल) है,ब्रह्म से मिलना ही दीक्षा है,ससार से मुक्ति ही उसके लिए उपदेश है,पवित्र सतोष उसकी आनदमाला है । वे बारह सूर्यो को देखते हैं,विवेक उनकी रक्षा करता है,करुणा ही उनका खेल है, एकात में मुक्तासन लगाना उनकी गोष्ठी (सभा) है,हस ही उनका आचरण तथा सिद्धांत है,धीरज उनकी चादर है,ससार के प्रति उदासीनता कौपीन है,विचार ही दड है,ब्रह्म को दिखानेवाला योग ही उनका पट्टा है,पादुका ही सपत्ति है,ईश्वर की इच्छा ही उनका आचरण है और कुंडलिनी ही उनका बध है । वह दूसरों की निदा न करने से ही जीवन्मुक्त बनता है । कल्याणमय योग निद्रा तथा खेचरी मुद्रा परम आनददायक है ।

ब्रह्म तीनों गुणों से रहित है । मन एव वाणी विवेक से ही उसे पा सकती है । अनित्य संसार मे जन्म लेनेवाले प्राणी स्वप्न जगत या धोखा देने के लिए बनाए गए हाथी के समान है । ये शरीर आदि मोह के जाल तथा रस्सी में सांप के भ्रम के समान केवल कल्पना हैं । विष्णु,ब्रह्मा आदि सैकडो नामोंवाला ब्रह्म ही सबका लक्ष्य है । मन पर अंकुश लगाना ही इसे प्राप्त करने का मार्ग है । परमेश्वर की सत्ता शून्य नही है,इसके सकेत मिलते है । सत्य सिद्ध हुआ योग ही मठ है । अमर पद ब्रह्म का स्वरूप नही है । वह आदि ब्रह्म स्वयं ज्ञानमय है । अजपा गायत्री से विकारो को दंडित करना ध्येय है । मन को रोकना कथा है । योग से सदा आनंदमय स्वरूप का दर्शन होता है । संन्यासी आनदरूपी भिक्षा को खानेवाले हैं । महान श्मशान में रहना भी उन्हे आनदवन मे रहने के समान लगता है । एकांत स्थान उनके लिए मठ है,उन्मन अवस्था गति है,उनका निर्मल शरीर

67. भिक्षुकोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांति शाति शांति ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है। उसी पूर्ण से इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अत उस पूर्ण से इस पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

मोक्ष के इच्छुक भिक्षु चार प्रकार के होते है—कुटीचक्र, बहूदक, हस और परमहस। गौतम, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ आदि कुटीचक्र ही थे। कुटीचक्र केवल आठ ग्रास भोजन करके योग के मार्ग से मोक्ष प्राप्त करते है। बहूदक, त्रिदड, कमंडलु, शिखा, जनेऊ तथा काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण करते हैं। ये मधु-मास का त्याग करके केवल महर्षि के घर से आठ कौर भोजन करते है तथा योगमार्ग से मोक्ष प्राप्त करते है। हस संन्यासी गांव में एक रात्रि, नगर में पांच रात्रि तथा क्षेत्र में सात रात्रि से अधिक नही रुकते। ये गोबर एवं गोमूत्र का आहार करते हुए सदा चांद्रायण व्रत करते है और योग के मार्ग से मोक्ष प्राप्त करते है। परमहंस संन्यासी भी आठ कौर भोजन करते है। योग से मोक्ष प्राप्त करते है। सवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, जडभरत, दत्तात्रेय, शुकदेव, वामदेव, हारीत आदि परमहस ही थे। ये वृक्ष के नीचे, उजड़े घर या श्मशान में कही भी दिगंबर या वस्त्रधारी दोनो रूपों मे रहते हैं। इन्हें धर्म-अधर्म, लाभ-हानि, वर्ण-जाति से कोई सरोकार नही होता। सभी मे एक ही आत्मा को देखते हुए सबसे भिक्षा लेते हैं। ये वस्त्रहीन, निर्द्वद, अपरिग्रही, ब्रह्म के ध्यान मे लगे हुए केवल प्राणो की ही रक्षा हेतु भिक्षा मागते हैं। सूने घर, मदिर, नदीतट, दीमक की बावी, कुम्हार का छप्पर, यज्ञशाला, पहाड़ी गुफा, गड्ढा आदि किसी भी स्थान में रहते हुए ब्रह्म के मार्ग में लगे हुए शुद्ध मन से परमहंस संन्यासी के नियमों का पालन करते हुए देह त्याग करते है, वही परम हस हैं।' (1-5)

□

66. परमहंस परिव्राजकोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्र कर्णेभ्य श्रृणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षिभिर्यजत्रा ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ॥
स्वस्ति न इद्रो वृद्धश्रवा· स्वस्ति न. पूषा विश्ववेदा ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शाति शाति शाति ।

हम कानो से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ अगोवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करे । इद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें, अमगल नाशक गरुड़ और वृहस्पति हमारा कल्याण करें । दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दु.ख शात हो ।

अपने पिता आदिनारायण के पास जाकर पितामह ब्रह्मा ने प्रणाम करने के बाद कहा, 'वर्णाश्रम धर्म को तो मै आपके मुख से सुनकर जान चुका हूं । अब मै परमहस परिव्राजक के लक्षण जानन चाहता हू । परिव्राजक (सन्यासी) बनने का अधिकारी कौन है ? उसके क्या लक्षण होते है ? परमहस परिव्राजक कौन है ? कृपया यह सब बताइए ।' योग्य गुरु के पास सभी विद्याओ को परिश्रम से प्राप्त करके विद्वान व्यक्ति इस लोक के सुखों को भ्रम समझे । तब तीनों तरह की इच्छाओं, वासनाओं, ममता, अहंकार आदि वमन के समान समझकर मोक्ष मार्ग के एक अनिवार्य उपाय गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करे । इसके बाद क्रमश वानप्रस्थी एव सन्यासी बने । इससे पूर्व ब्रह्मचर्य या गृहस्थ के बाद भी संन्यासी बन सकता है । व्रती-अव्रती, स्नातक- अस्नातक, अग्नि सेवक हो या न हो, वैराग्य होने पर पुत्र, पत्नी आदि त्यागकर सन्यास ले । सन्यास लेने से पूर्व प्राजापत्य यज्ञ करे । आग्नेयी करे । अग्नि ही प्राण है । या त्रैधात्वीय ही करे । सत्त्व, रजस एव तमसे तीन ही धातुएं है । फिर इस मत्र से अग्नि को सूघे—'हे अग्नि, यही तुम्हे प्रकाशित करनेवाला कारण है । तेज जलते हुए इसको पहचानकर हमारी सपत्तियों तथा ऐश्वर्यो की वृद्धि करो ।' 'अग्नि मूल कारण योनि है, अत· इसमे प्रवेश करो,' इस मंत्र से आहुति दे, फिर ग्रास से आहुति देनेवाले के घर से अग्नि लाकर, जलाकर पूर्व विधि के अनुसार अग्नि को सूघे । यदि अग्नि न मिले, तो जल मे हवन करे । अग्नि देवताओ का रूप है । अत. मैं उनके लिए जल से हवन करता हू, स्वाहा' इस प्रकार हवन करके घी सनी आहुति को खाए। यह वीर विधि का मार्ग है, जो अग्नि, जल प्रवेश या महाप्रस्थान का मार्ग है । यदि इसमें समर्थ न हो, तो मन या वाणी से ही सन्यास ले । *(1-2)*

'तब प्रसन्न मन से नियम सहित आत्मश्राद्ध और विरजा होम करे । अग्नि को अपनी आत्मा में स्थित समझकर लौकिक एव वैदिक नियमों से अपनी सामर्थ्य के अनुसार चौदह वृत्तियो को अपने पुत्र मे स्थापित कर दो । पुत्र न होने पर शिष्य में, वह भी न होने पर आत्मा में ऐसा करे । ब्रह्म

हूं । मुझे निद्रा, स्नान आदि की इच्छा नही है और न मै ऐसा करता ही हूं । लोग भले ही गुजा को आग समझें, किंतु इससे वह जलता नही । मै मायामय ससार को मानता ही नही, अत भजन भी नही करता । जो तत्त्व को नही जानते या सशय मे हैं, वे भले ही श्रवण-मनन के चक्कर मे पड़ें । मेरे संशय नष्ट हो गए है और मुझे तत्त्वज्ञान हो गया है, अतः कुछ सुनने या मनन करने की आवश्यकता ही नही है । इसी प्रकार जिन्हे ध्यान आदि की आवश्यकता हो करे । पूर्व जन्म के कर्मो का नाश होने तक कितना ही ध्यान करे यह व्यवहार शात नही होता । इसे कम करने के लिए लोग भले ही ध्यान करे, मै तो कर्म को ही नही मानता । मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, अत. मुझे समाधि की भी आवश्यकता नही है । मुझे जो प्राप्त करना था, वह सदा के लिए प्राप्त हो गया है । अब मुझे वैदिक या लौकिक किसी कर्म की आवश्यकता नही है । वस्तुत मै अकर्ता (कुछ भी नही करनेवाला) हू । मै सब कुछ पा चुका हू, अत यदि लोगो के आग्रह पर शास्त्रो के अनुसार चलू भी, तो मेरी क्या हानि ? शरीर भले ही पूजा, स्नान आदि करे, वाणी भले ही 'ओम' का जप या उपनिषदों का पाठ या ब्रह्मा, विष्णु आदि का नाम ले, किंतु 'मैं' तो ब्रह्म आ नंद में लीन हो गया हूं, मै केवल साक्षी हू, कोई भी काम नही करता । मै सदा अपने मन मे स्वय को कृतकृत्य मानता हूं । मुझे जो पाना था, मैंने पा लिया है । (16-29)

'मै धन्य-धन्य हो गया हू, क्योकि मै अपनी आत्मा को सरलता से जानता हू । मुझे ब्रह्मानद स्पष्ट हो गया है । अब मै सांसारिक दु.ख नहीं देखता । मेरा अज्ञान कभी का नष्ट हो गया है । मुझे अब कुछ भी नही करना है । जो कुछ भी प्राप्त करना था, मैने यही प्राप्त कर लिया है । मेरी तृप्ति की संसार मे कोई उपमा ही नही है । मै बार-बार धन्य हू । अहो पुण्य । मुझे यह दृढता से फलीभूत हुआ है । अहो संपत्तियां । अहो हम ।अहो सुख । अहो ज्ञान । अहो शास्त्र । अहो गुरु ।'

'इसका अध्ययन करनेवाला कृतकृत्य हो जाता है । उसके सुरापान, सोने की चोरी ब्रह्म-हत्या तथा भले-बुरे कार्यो के पाप-दोष छूट जाते है । इस ज्ञान को प्राप्त करके इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है ।'

□

मध्यमा मे तुरीय तैजस, पश्यंती में तुरीय प्राज्ञ और परा में तुर्येतुरीय होता है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एव तुरीय की चार मात्राए क्रमशः 'अ' 'उ' 'म्' एव अर्द्धमात्रा के अंश हैं। यही ब्रह्म प्रणव है, जिसकी परमहस तुरीयातीत तथा अवधूत उपासना करते है। उसी से ब्रह्म प्रकाशित होता है, उसी से विदेह मुक्ति होती है।' (4)

ब्रह्मा ने पूछा कि 'बिना जनेऊ और चुटिया के ब्राह्मण ब्रह्मनिष्ठ कैसे होगा ? यह तो धर्म त्याग है', इस पर विष्णु बोले, 'अरे-अरे बच्चे। उसका अद्वैत ज्ञान ही उसको चुटिया, जनेऊ तथा धर्मनिष्ठा होती है। वह सब कर्मो से पवित्र ब्राह्मण होता है। वह केवल ब्रह्मनिष्ठावाला ही नही, अपितु उसे देवता, ऋषि, तपस्वी, श्रेष्ठ तथा परमश्रेष्ठ समझना चाहिए। ससार में परमहस परिव्राजक के दर्शन दुर्लभ हैं। विरला ही परमहस होता है। वह पवित्र होता है, वेदस्वरूप होता है। उसका चित्त मुझमें ही लगा रहता है साथ ही मै भी उसी में रहता हूं। वह सदा तृप्त रहता है। वह शीत-उष्ण, सुख-दु ख एव मान-अपमान को समान समझता है। वह निंदा, क्रोध आदि से शून्य तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ होता है। उसमें छोटे-बडे की भावना नही होती। वह सभी में अपने को ही देखता है तथा दिशाए ही उसके वस्त्र होते हैं। वह नमस्कार, स्वाहा, स्वधा तथा देवपूजन-विसर्जन नही करता। निंदा-प्रशसा, मत्र आदि से दूर रहता है। वह केवल ब्रह्म का ज्ञाता तथा ध्यान करनेवाला होता है। 'मैं ब्रह्म हू' ऐसे अनुभव वाला और प्रणव की खोज में लगा परमहस परिव्राजक धन्य हो जाता है।' (5)

□

मुक्त हो जाता है। योग की शब्दावली मे प्राण का एक दूसरा नाम 'स्व' भी है, इसका आश्रय स्थान पूर्व वर्णित स्वाधिष्ठान नामक द्वितीय चक्र है। स्वाधिष्ठान के आश्रय मे रहने के कारण इसे मेद्र भी कहा जाता है। यहां यह तंतु द्वारा पिरोई गई मणि के समान सुषुम्ना नाड़ी का केद्र भी है। उस नाभि-मंडल मे चक्र को मणिपूरक कहा जाता है। बारह पखुडियोवाले पाप एव पुण्य से मुक्त महाचक्र मे जीव का भ्रमण तभी तक होता है, जब तक वह परम तत्त्व ब्रह्म को नही देख लेता है। स्वाधिष्ठान के आश्रय मे रहने वाले मेद्र से ऊपर तथा नाभि के नीचे पक्षियो के अडे जैसी आकृतिवाली कद योनि स्थित रहती है। यहां से बहत्तर हजार की सख्या मे नाडिया उत्पन्न होती है। इन बहत्तर हजार नाड़ियो मे बहत्तर नाडियो की ही गणना मुख्य रूप मे की जाती है। (11-15)

इन बहत्तर नाडियो मे से भी दस नाड़ी अति महत्त्वपूर्ण है, जो प्राणों को धारण करती है। इनमे प्रथम इडा, दूसरी पिगला, तीसरी सुषुम्ना, चौथी गाधारी, पाचवी हस्तजिह्वा, छठी पूषा, सातवी यशस्विनी, आठवी अलंबुषा, नवी कुहू तथा दसवी शंखिनी है। इन नाडियो के महाचक्र का योगियो को सदा ही ज्ञान होना चाहिए। इन दसो नाडियो मे प्रथम नाडी बायी ओर है तथा पिगला दाहिनी ओर स्थित है। तीसरी नाड़ी सुषुम्ना इडा एव पिगला के बीच मे होती है। गाधारी नाडी वाम नेत्र मे स्थित है तथा हस्तजिह्वा नाम की नाड़ी का स्थान दक्षिण नेत्र होता है। पूषा नाडी का निवास दक्षिण कान मे और यशस्विनी नाडी बाएं कान मे रहती है। मुख मे अलबुषा का निवास है। लिग इद्रिय मे कुहू स्थित है और दसवी शखिनी नाडी मूल स्थान मे प्रतिष्ठित है। (16-20)

इस प्रकार से शरीर के विभिन्न भागो मे विभिन्न नाडियो ने आश्रय लिया हुआ है। कही कोई नाडी स्थित है, तो कही कोई। इडा, पिगला तथा सुषुम्ना ये तीनो ही नाडिया प्राण मार्ग मे अर्थात श्वास मार्ग मे रहती है। (स्वर विज्ञान मे भी बाए स्वर को इडा नाडी या चद्र स्वर कहते है। दाहिना स्वर पिगला या सूर्य स्वर कहलाता है। दोनो नासिकाओ से वायु, अर्थात सास चलने पर इसे सुषुम्ना कहा जाता है।) सोम, सूर्य तथा अग्नि देवता सदा प्राण वायु में स्थित रहा करते है। मानव के शरीर में दस प्रकार के वायु माने जाते है। इनके नाम क्रमश. इस प्रकार है—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनजय। इनमे प्राण से लेकर उदान तक, प्रथम पाच वायु कहलाते है तथा शेष नाग से धनजय तक, पांच उपवायु है। (प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान इन पांचो को पांच प्राण भी कहा जाता है।) इनमे प्राण नामक प्रथम वायु का स्थान हृदय होता है और अपान वायु गुदा स्थित रहती है। समान वायु नाभि के स्थान में रहता है और उदान का निवास स्थान कठ में होता है, किंतु व्यान नामक वायु व्यक्ति के समस्त देह मे व्याप्त रहता है। ये पाचो प्राण वायु कहलाते हैं। उदगार, अर्थात डकार में नाग वायु को समझना चाहिए, छीकने मे कृकर वायु होती है। पलकों को बद करना (पलक झपकाना) कूर्म वायु का कार्य है। जम्हाई लेने मे देवदत्त नामक उपवायु को समझना चाहिए। समस्त देह में व्याप्त रहने वाला उपवायु धनजय कहलाता है, इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि यह व्यक्ति के मर जाने पर भी उसे नही छोडता है। (21-26)

इन सभी नाडियों में क्या जीव और क्या जंतु, सभी प्राणी भ्रमण करते है। जिस प्रकार गेंद एक हाथ से दूसरे हाथों में फेंकी जाती रहती है, उसी प्रकार प्राण (मुख्य प्राण) भी प्राण वायु के तथा

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शाति. शांति शाति ।

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे,एक साथ हमे उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करे। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो,हम द्वेष न करें।

साकृति ने दत्तात्रेय से पूछा,'भगवन । अवधूत कैसा होता है ? उसका क्या लक्ष्य होता है ? उसकी कैसी स्थिति होती है ? तथा उसकी पहचान क्या है ?' यह सुनकर परम दयावान दत्तात्रेय बोले,'जो अक्षर (अविनाशी) वन जाए,सवके लिए पूज्य वन जाए,ससार के वधनों से मुक्त हो जाए तथा 'तत्त्वमसि'— तुम वही ब्रह्म हो,इसे जान जाए, वही अवधूत कहलाता है। जो वर्ण आश्रम (जात-पात) के वधनों से ऊपर उठकर आत्मा में स्थित हो जाए,उस अति वर्णाश्रमी योगी को अवधूत कहते है। ब्रह्म,मोद एव प्रमोद (प्रसन्नता आदि) क्रमश जिसके सिर,वायां एवं दाहिना हाथ बन जाए वह आनदमय व्यक्ति गाय की तरह पवित्र वन जाता है। ग्वाला जैसे गाय के सिर में,मध्य में (पीठ मे) या पावो में नही रहता,अपितु उसकी पूछ की ओर रहता है। भगवान भी उसकी पूछ में रहता है।अत उसे इस पूंछ की तरफ रहना चाहिए। इस प्रकार ये चार मार्ग परम गति देनेवाले हैं। (1-5)

'कर्म सतान या धन से उतनी जल्दी अमृत्व प्राप्त नही होता,जितना त्याग से होता है। अपनी इच्छा के अनुसार विहार करना ही उसका संसार होता है,वे वस्त्रवाले भी होते है तथा दिगवर भी। उनके लिए धर्म-अधर्म या पवित्र-अपवित्र कुछ भी नहीं होता। वे आत्मा में ही अश्वमेध यज्ञ करते है। वे महान यजकर्ता तथा महान योगी होते हैं। उनका हर कर्म विचित्र होता है। उनके मनमाने आचरण की निंदा नही करनी चाहिए। मूर्खों के समान वे पाप-पुण्य में लिप्त नही होते। जैसे सूर्य सभी रसों को भोगता है और अग्नि सब कुछ खा जाता है,वैसे ही योगी विपयो को भोगता है,कितु शुद्ध होने से उसे पुण्य-पाप नही छूते। जैसे समुद्र मे जल प्रवेश करते है,वैसे ही योगी में कामनाए प्रवेश करती है,कितु वह शांत रहता है कामनाए नही करता। सत्य तो यह है कि किसी का विरोध, उत्पत्ति,वधन नही है और न कोई साधक मुमुक्षु या मुक्त ही है। 'यहा और परलोक में कार्यो एव मुक्ति के लिए मुझे बहुत कर्म करने थे। अब यह सब हो गया है।' इस तरह विचारता हुआ अवधूत सदा तृप्त रहता है। अज्ञानी पुत्र आदि की इच्छा से ससार मे फसकर दु खी होते है। मै परम आनद पा चुका हू। अत मै क्यों इसमें फसू ? परलोक जाने के इच्छुक सत कर्म करें। मै सभी लोको का आत्मा तथा साक्षात सभी लोक हूं। मुझे कोई कर्म की आवश्यकता नही है। (6-15)

'जिसे अधिकार है,'वे व्याख्यान दें या वेद पढें,किंतु मै अधिकारहीन ही नही क्रियाहीन भी

अवधूतोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शाति शाति शाति ।

परमात्मा हम दोनो (गुरु एव शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमे उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करे। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करे।

साकृति ने दत्तात्रेय से पूछा, 'भगवन । अवधूत कैसा होता है ? उसका क्या लक्ष्य होता है ? उसकी कैसी स्थिति होती है ? तथा उसकी पहचान क्या है ?' यह सुनकर परम दयावान दत्तात्रेय बोले, 'जो अक्षर (अविनाशी) बन जाए, सबके लिए पूज्य बन जाए, संसार के बधनो से मुक्त हो जाए तथा 'तत्त्वमसि'— तुम वही ब्रह्म हो, इसे जान जाए, वही अवधूत कहलाता है। जो वर्ण आश्रम (जात-पात) के बंधनों से ऊपर उठकर आत्मा में स्थित हो जाए, उस अति वर्णाश्रमी योगी को अवधूत कहते है। ब्रह्म, मोद एव प्रमोद (प्रसन्नता आदि) क्रमश· जिसके सिर, बाया एव दाहिना हाथ बन जाएं वह आनदमय व्यक्ति गाय की तरह पवित्र बन जाता है। ग्वाला जैसे गाय के सिर मे, मध्य में (पीठ मे) या पांवों में नही रहता, अपितु उसकी पूछ की ओर रहता है। भगवान भी उसकी पूछ मे रहता है। अत उसे इस पूछ की तरफ रहना चाहिए। इस प्रकार ये चार मार्ग परम गति देनेवाले है। (1-5)

'कर्म सतान या धन से उतनी जल्दी अमृत्व प्राप्त नही होता, जितना त्याग से होता है। अपनी इच्छा के अनुसार विहार करना ही उसका संसार होता है, वे वस्त्रवाले भी होते है तथा दिगबर भी। उनके लिए धर्म-अधर्म या पवित्र-अपवित्र कुछ भी नही होता। वे आत्मा मे ही अश्वमेध यज्ञ करते है। वे महान यज्ञकर्ता तथा महान योगी होते हैं। उनका हर कर्म विचित्र होता है। उनके मनमाने आचरण की निंदा नही करनी चाहिए। मूर्खों के समान वे पाप-पुण्य में लिप्त नही होते। जैसे सूर्य सभी रसों को भोगता है और अग्नि सब कुछ खा जाता है, वैसे ही योगी विषयो को भोगता है, किंतु शुद्ध होने से उसे पुण्य-पाप नही छूते। जैसे समुद्र मे जल प्रवेश करते है, वैसे ही योगी मे कामनाए प्रवेश करती है, किंतु वह शांत रहता है कामनाए नही करता। सत्य तो यह है कि किसी का विरोध, उत्पत्ति, बधन नही है और न कोई साधक मुमुक्षु या मुक्त ही है। 'यहा और परलोक मे कार्यो एव मुक्ति के लिए मुझे बहुत कर्म करने थे। अब यह सब हो गया है।' इस तरह विचारता हुआ अवधूत सदा तृप्त रहता है। अज्ञानी पुत्र आदि की इच्छा से ससार में फंसकर दु खी होते है। मै परम आनद पा चुका हूं। अत मै क्यो इसमें फंसू ? परलोक जाने के इच्छुक सत कर्म करे। मै सभी लोको का आत्मा तथा साक्षात सभी लोक हूं। मुझे कोई कर्म की आवश्यकता नही है। (6-15)

'जिसे अधिकार है, 'वे व्याख्यान दें या वेद पढे, किंतु मै अधिकारहीन ही नही क्रियाहीन भी

69. योगचूड़ामणि उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममागानि वाक्प्राणचक्षुष श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषद माह ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरण मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सतु ते मयिसतु।

ॐ शांति शाति शाति।

मेरे अग वृद्धि को प्राप्त हो। वाणी,प्राण,चक्षु,श्रोत्र आदि इद्रिया तथा बल समृद्ध हो। यह उपनिषद वेद्य ब्रह्म है। ब्रह्म मेरा परित्याग न करे। मै ब्रह्म का परित्याग न करू। हमारा परस्पर अनिराकरण हो। मै उपनिषदों के अध्ययन मे निरत रहू,इनका ज्ञान मुझे प्राप्त हो। दैहिक,दैविक एव भौतिक तीनो प्रकार के ताप नष्ट हो।

प्रथम अध्याय

योगियों के हित की कामना की दृष्टि रखते हुए योग चूडामणि उपनिषद का वर्णन करता हू। यह ज्ञान कैवल्य की (मोक्ष की) सिद्धि देनेवाला है,गोपनीय है तथा योग तत्त्व के जानने वाले श्रेष्ठ योगियो ने सदा इसको अपनाया है। आसन,प्राणसंरोध (प्राणायाम),प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि,योग के ये छ अग होते हैं। इसके पश्चात आसनो की गणना होती है। योग के इन आसनो मे प्रथम आसन सिद्धासन,दूसरा कमलासन,अर्थात पद्मासन है। षटचक,षोडश आधार,तीन लक्ष्य तथा पाच आकाशो को जो योगी अपने शरीर मे नही देखता,उसे सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है ? इनमे आधार (मूलाधार) चार दलोंवाला है। स्वाधिष्ठान छ दलोवाला है। नाभि मे दस दलोवाला कमल है और हृदय में बारह दलोंवाला पद्म कमल स्थित है। हृदय मे बारह दलो (पत्रो, अर्थात पंखुडियो)वाला, विशुद्ध चक्र में सोलह पखुडियोवाला तथा भ्रूमध्य दोनो भौहो के मध्य मे दो पखुडियो से युक्त कमल सुशोभित है। (1-5)

ब्रह्मरध्र के महापथ मे हजार दलोवाला कमल है। आधार चक्र प्रथम चक्र है। इसके पश्चात स्वाधिष्ठान नामक चक्र द्वितीय चक्र है। दोनों के मध्य में योनिस्थान अथवा कामरूप स्थित है। गुदा स्थान मे कामाख्य,चार दलवाला कमल है। इसके बीच में कामाख्या नामक योनि है,जिसकी सिद्ध सदा से वदना करते आए है। कामाख्या के बीच मे पश्चिम की ओर मुहवाला महालिग स्थित है। नाभि मे मणि के समान बिब; अर्थात मणिपुर को जाननेवाला वस्तुत योग का जाननेवाला होता है। तपाए गए सोने के समान प्रकाशमान बिजली की धार के समान चमचमाता हुआ त्रिकोण के आकारवाली वह्नि का स्थान मेद्र के नीचे है। समाधि मे स्थित योगी को चारो ओर मुखोवाली परम ज्योति अपने अत मे दिखाई देती है। (6-10)

इस परम ज्योति के इस प्रकार अपने अत· में दर्शन होने पर योगी पुनर्जन्म के बधन से पूर्णतया